कर्णपर्व ।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१.	वैशम्पायन से जनमेजय का प्रश्न करना	१
२.	राजा धृतराष्ट्र का शोक करना और प्रश्न पूछना	३
३.	सञ्जय का संक्षेप में कर्ण के मारे जाने का वृत्तान्त कहना	६
४.	राजा धृतराष्ट्र का शोक करना	८
५.	धृतराष्ट्र के प्रश्न के अनुसार कौरव दल के मारे गये योद्धाओं का वर्णन	१०
६.	पाण्डव पक्ष के मारे गये योद्धाओं के नामों का वर्णन	१६
७	मृत्यु से बचे हुए वीरों का वर्णन	२०
८.	कर्ण के गुणों का वर्णन करके राजा धृतराष्ट्र का शोक प्रकट करना	२३
९.	धृतराष्ट्र का शोक और कर्ण की मृत्यु के विषय में प्रश्न	२६
१०.	कर्ण का सेनापति-पद पर अभिषेक और युद्ध-यात्रा की तैयारी	३६
११.	व्यूह बना करके कर्ण और अर्जुन का युद्ध के निमित्त रणभूमि में आना	४३
१२.	संकुल युद्ध में क्षेमधूर्ति का मारा जाना	४७
१३.	द्वन्द्व युद्ध । विन्द और अनुविन्द दोनों भाइयों का सात्यकि के हाथ से वध होना	५२
१४.	राजा चित्रसेन और चित्र का मारा जाना	५६
१५.	भीमसेन से अश्वत्थामा का संग्राम	६०
१६.	अश्वत्थामा और अर्जुन का युद्ध होना	६४
१७.	अर्जुन का अश्वत्थामा को पराजित करना	७०
१८.	दण्ड और दण्डधार का मारा जाना	७३
१९.	संशप्तक संहार	७७
२०.	पाण्ड्यराज का मारा जाना	८३
२१.	संकुल युद्ध का वर्णन	८९
२२.	गजयुद्ध और संकुल युद्ध	९३
२३.	सहदेव और दुःशासन का युद्ध	९७
२४.	कर्ण और नकुल का युद्ध	९९
२५.	युयुत्सु से उलूक का और शकुनि से सुतसोम का युद्ध	१०७
२६.	कृपाचार्य और कृतवर्मा से धृष्टद्युम्न और शिखण्डी का संग्राम	१११
२७.	अर्जुन का संशप्तक सेना को मार भगाना	११६
२८.	युधिष्ठिर और दुर्योधन का युद्ध	१२०
२९.	युधिष्ठिर से दुर्योधन का परास्त होना	१२५
३०.	सोलहवें दिन के युद्ध की समाप्ति	१२९
३१.	कर्ण और दुर्योधन का संवाद	१३३
३२.	दुर्योधन के कहने सुनने पर शल्य का बड़े आग्रह से कर्ण का सारथी बनना स्वीकार करना	१४१
३३.	त्रिपुरासुर के उपाख्यान का वर्णन	१४८
३४.	त्रिपुर-संहार के निमित्त रुद्र का अभिषेक	१५५
३५.	शल्यका दुर्योधन की प्रार्थना स्वीकार करना	१७१
३६.	कर्ण की युद्ध-यात्रा	१७६
३७.	कर्ण के युद्धभूमि को जाते समय अशकुन होने का वर्णन । कर्ण और शल्य का परस्पर वार्तालाप	१८०
३८.	कर्ण का अर्जुन को दिखा सकनेवाले पुरुष को भाँति भाँति के पारितोषिक देने की घोषणा करना	१८६
३९.	शल्य का कर्ण से अप्रिय वचन कहना	१८८
४०.	कर्ण कृत शल्य की निन्दा	१९२
४१.	हंस और कौए का उपाख्यान	१९८
४२.	कर्ण और शल्य का संवाद	२०७
४३.	कर्ण के कटु वचन	२१४
४४.	धृतराष्ट्र की सभा में बटोही ब्राह्मण से सुना हुआ शल्य के देश का लोकाचार सुनाकर कर्ण का निन्दा करना	२१५
४५.	कर्ण के कटुवचन और दुर्योधन का दोनों को शान्त करना	२२०
४६.	व्यूह-रचना का वर्णन और शल्य तथा कर्ण का संवाद	२२६
४७.	युद्ध का आरम्भ	२३५
४८.	युद्ध का वर्णन	२३७
४९.	कर्ण का युधिष्ठिर को परास्त करके उपहास करना	२४४
५०.	भीमसेन और कर्ण का संग्राम	२५४

—:o:—

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५१.	भीमसेन और कर्ण का फिर युद्ध और दुर्योधन के कई भाइयों का मारा जाना। संकुल युद्ध	२५९
५२.	संकुल युद्ध	२६७
५३.	अर्जुन का संशप्तकगण से युद्ध	२७१
५४.	संकुल युद्ध	२७६
५५.	अश्वत्थामाका युधिष्ठिर को परास्त करना	२८०
५६.	संकुल युद्ध	२८४
५७.	दुर्योधनका सेनाको उत्साहित करना	२९८
५८.	श्रीकृष्ण का अर्जुन को रणभूमि की दशा दिखलाना	३००
५९.	संकुल युद्ध	३०६
६०.	श्रीकृष्ण का अर्जुन से यह कहना कि कौरवगण धर्मराज को पकड़ने का उद्योग कर रहे हैं	३१२
६१.	वीरों का द्वन्द्व युद्ध	३२१
६२.	संकुल युद्ध	३२९
६३.	कर्ण के बाणों से पीड़ित धर्मराज का विश्राम करने के निमित्त अपने शिविर में जाना	३३२
६४.	अर्जुन और अश्वत्थामा का युद्ध	३३६
६५.	भीमसेन को रणभूमि का भार सौंपकर अर्जुन का शिविर में जाना	३४३
६६.	कर्ण को मरा हुआ जान कर युधिष्ठिर का अर्जुन की प्रशंसा करना	३४६
६७.	अर्जुन का कर्ण को जीवित बताकर उसके वध की प्रतिज्ञा करना	३५१
६८.	युधिष्ठिर-कृत अर्जुन का तिरस्कार	३५४
६९.	अर्जुन का कुपित होकर युधिष्ठिर को मार डालने के निमित्त उठना और श्रीकृष्ण का रोक लेना	३५८
७०.	अर्जुन-कृत धर्मराज का तिरस्कार और आत्म प्रशंसा	३६७
७१.	अर्जुन का युधिष्ठिर को प्रसन्न करके कर्ण के वध की प्रतिज्ञा करना	३७५
७२.	अर्जुन को युद्धयात्रा के समय शकुन होना। श्रीकृष्ण का अर्जुन को उन्मादित करना	३७९
७३.	श्रीकृष्ण का कर्ण को ही सब अनर्थों की जड़ बताकर उसे मारने के निमित्त अर्जुन को उत्तेजित करना	३८३
७४	अर्जुन की कर्णवध-प्रतिज्ञा	३९६
७५.	युद्ध का वर्णन	४०१
७६.	भीमसेन और सारथी विशोक का संवाद	४०४
७७.	अर्जुन के पराक्रम का वर्णन। भीमसेन का शकुनि को परास्त करना	४०८
७८.	कर्ण के पराक्रम का वर्णन	४१६
७९.	अर्जुन का कर्ण के समीप पहुँचना। शल्यकृत कर्ण प्रोत्साहन और कर्ण-कृत अर्जुन-वध की प्रतिज्ञा	४२३
८०.	सकुल युद्ध का वर्णन	४३४
८१.	सकुल युद्ध का वर्णन	४३७
८२.	भीमसेन और दुःशासन का समागम और परस्पर वार्त्तालाप	४४३
८३.	दुःशासन-वध वर्णन	४४७
८४.	नकुल और वृषसेन का युद्ध	४५३
८५.	वृषसेन का मारा जाना	४५७
८६.	श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद	४६२
८७.	कर्ण और अर्जुन का समागम और युद्ध देखने के निमित्त आकाश में देवता, सिद्ध, गन्धर्व आदि का जमघट	४६५
८८.	अश्वत्थामा का दुर्योधन को समझाना और उसका न मानना	४७७
८९.	कर्ण और अर्जुन का युद्ध	४८१
९०.	कर्ण का नागास्त्र छोड़ना और उनके रथचक्र को पृथ्वी का पकड़ लेना। कर्ण का अर्जुन से क्षण भर युद्ध बन्द करने के निमित्त कहना	४९२
९१.	कर्ण का मारा जाना	५०६
९२.	शल्य का दुर्योधन को सान्त्वना देना	५१३
९३.	दुर्योधन का फिर युद्ध के निमित्त उद्योग करना और सेना का भागना	५१५
९४.	शल्य का दुर्योधन से युद्ध बन्द करने के निमित्त कहना	५२१
९५.	दुर्योधन आदि का शिविर को जाना	५२९
९६.	श्रीकृष्ण और अर्जुन को युधिष्ठिर के समीप जाना और कर्ण की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिर का प्रसन्न होना	५३१

कर्णपर्व ।

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततो द्रोणे हते राजन्दुर्योधनमुखा नृपाः ।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन् ॥ १ ॥
ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः ।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम् ॥ २ ॥
ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसंमितैः ।
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥ ३ ॥
ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन्सुखम् ।
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः ॥ ४ ॥
विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः ।
दुःशासनश्च शकुनिः सौबलश्च महाबलः ॥ ५ ॥
उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने ।
चिन्तयन्तः परिक्लेशान्पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ६ ॥
यत्तद्द्यूते परिक्लिष्टा कृष्णा चानायिता सभाम् ।
तत्स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ७ ॥

पहला अध्याय ॥ १ ॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय ! जब महाबली द्रोणाचार्य मारे गये तब अत्यन्त व्याकुल हुए-हुए राजा दुर्योधन, सब राजाओं को साथ लेकर, अश्वत्थामा के समीप पहुँचे । मोह होने के कारण अत्यन्त निस्तेज और द्रोण-वध के कारण अत्यन्त शोकाकुल सब लोग चारों ओर से उन अश्वत्थामा को घेरकर बैठ गये । शास्त्रोक्त बातों से दुःख का वेग कम होने पर सब राजा लोग रात्रि के समय अपने-अपने डेरे में गये ॥१।३॥ उस तीव्र जन-संहार की स्मरण ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा । वे दुःख और शोक के कारण व्याकुल थे, रात्रि को करवटें ही बदलते रहे । कर्ण, दुःशासन और महारथी शकुनि ये तीनों उस रात्रि को दुर्योधन के डेरे में ही रहे । पाण्डवों को इनसे जो-जो महाक्लेश पहुँचे थे उनका स्मरण इस समय इन्हें बेतरह भय दिखाने लगा । जुए में अनेक प्रकार के क्लेश देने और द्रौपदी को सभा में बुला

तथा तु सञ्चिन्तयतां तान्क्लेशान्द्यूतकारितान् ।
दुःखेन क्षणदा राजन्नगामाब्दशतोपमा ॥ ८ ॥
ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने ।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥
ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत ।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः ॥ १० ॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्दधिपात्रघृताक्षतैः ॥ ११ ॥
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः ।
वन्द्यमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः ॥ १२ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
शिबिरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १४ ॥
तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन्बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥
ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥
ततस्तु सञ्जयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् ।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥

भेजने आदि का स्मरण करके वे बहुत ही व्याकुल हुए॥४।७॥जुए से पाण्डवों को जो जो कष्ट पहुँचे थे उन्हें सोचने के कारण कौरवों को वह एक रात्रि सौ वर्ष के समान हो गई। प्रातःकाल होने पर कौरव भी, भावी की प्रेरणा से, फिर विधिपूर्वक आवश्यक काम और युद्ध की तैयारी करने लगे। स्नान, सन्ध्या आदि करने के उपरान्त युद्ध की तैयारी होने लगी और सब लोग सुसज्जित होकर युद्ध को रवाना हुए ॥८।१०॥इससे पहले उन्होंने मङ्गल-उत्सव करके, कर्ण को सेनापति बनाकर, ब्राह्मणों की पूजा की। दधिपात्र, घी, अक्षत, गाय, घोड़े, सुवर्ण और बहुमूल्य वस्त्र देकर सबने ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त किया। सूत मागध-चारण वन्दना और जय जयकार करने लगे। इसी प्रकार पाण्डव दल के लोग भी प्रातःकाल के आवश्यक कामों से निवृत्त होकर, युद्ध का निश्चय करके, शीघ्रता के साथ अपने अपने डेरों से निकले ॥११।१३॥अब परस्पर विजय के निमित्त लाग-डाँट रखनेवाले पाण्डव और कौरव बहुत ही लोमहर्षण संग्राम करने लगे। महारथी कर्ण को सेनापति बनाकर कौरवों ने दो दिन पाण्डवों से घोर युद्ध किया। महाप्रतापी कर्ण ने इन दो दिनों में असंख्य शत्रुओं को मारा और अन्त को वे, आपके पुत्रों के सम्मुख ही, अर्जुन के बाण से मृत्यु को प्राप्त हुए। कर्ण की मृत्यु हो जाने पर सञ्जय शीघ्र ही हस्तिनापुर में पहुँचे

जनमेजय उवाच—आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम् ।
आजगाम परामार्ति वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥ १८ ॥
स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥
यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः ।
तस्मिन्हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥
दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्त्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥
तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन्बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥
तथैव चाऽन्यान्सुहृदः पुत्रान्पौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात्प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ २४ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

और उन्होंने राजा धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध का सब वृत्तान्त कह सुनाया॥१४।१७॥राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! महात्मा भीष्म पितामह और यशस्वी द्रोणाचार्य की मृत्यु होने की सूचना पाकर राजा धृतराष्ट्र बहुत ही चिन्तित हो रहे थे । अब दुर्योधन के हितैषी कर्ण की, जिनके बाहु-बल और वीर्य के आश्रय वे अपने पुत्रों के विजयी होने की आशा रक्खे हुए थे, मृत्यु सुनकर उनकी क्या दशा हुई होगी ? वे कैसे जीते रहे होंगे ? ऐसे शोक-समाचार को सुनकर भी यदि उनके प्राण नहीं निकले तो, मैं समझता हूँ, मनुष्य अत्यन्त कष्ट की दशा में भी किसी प्रकार शरीर को छोड़ना नहीं चाहता॥१८।२१॥वृद्ध राजा धृतराष्ट्र अपने प्रिय और सगे भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण, बाह्लीक, सोमदत्त, भूरिश्रवा तथा अन्य बहुत से सुहृत्-पुत्र-पौत्र आदि की मृत्यु का समाचार सुनकर भी जीते रहे,इससे जान पड़ता है कि प्राण छोड़ देना बहुत ही दुष्कर है। हे तपोधन ! अब आप सब समाचार आदि से अन्त तक विस्तारपूर्वक कहिए। अपने पूर्वपुरुषों के पुण्य चरित्र सुनने की मेरी उत्कण्ठा किसी प्रकार भी नहीं मिटती॥२२।२४॥

कर्णपर्व का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच—हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा ।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १ ॥
स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

वैशम्पायन ने कहा कि हे राजा जनमेजय ! महा- बली कर्ण की मृत्यु हो जाने पर महात्मा सञ्जय उस

तथा तु सञ्चिन्तयतां तान्क्लेशान्द्यूतकारितान् ।
दुःखेन क्षणदा राजञ्जगामाब्दशतोपमा ॥ ८ ॥
ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने ।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥
ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत ।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः ॥ १० ॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्दधिपात्रघृताक्षतैः ॥ ११ ॥
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः ।
वन्द्यमाना जयाशीर्भि· सूतमागधवन्दिभिः ॥ १२ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
शिविरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १४ ॥
तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन्बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥
ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥
ततस्तु सञ्जयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् ।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥

भेजने आदि का स्मरण करके वे बहुत ही व्याकुल हुए॥४।७॥जुए से पाण्डवों को जो जो कष्ट पहुँचे थे उन्हें सोचने के कारण कौरवों को वह एक रात्रि सौ वर्ष के समान हो गई। प्रात काल होने पर कौरव भी, भावी की प्रेरणा से, फिर विधिपूर्वक आवश्यक काम और युद्ध की तैयारी करने लगे। स्नान, सन्ध्या आदि करने के उपरान्त युद्ध की तैयारी होने लगी और सब लोग सुसज्जित होकर युद्ध को रवाना हुए ॥८।१०॥इससे पहले उन्होंने मङ्गल-उत्सव करके, कर्ण को सेनापति बनाकर, ब्राह्मणों की पूजा की। दधिपात्र, घी, अक्षत, गाय, घोड़े, सुवर्ण और बहुमूल्य वस्त्र देकर उन्होंने ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त किया। सूत मागध-चारण वन्दना और जय जयकार करने लगे। इसी प्रकार पाण्डव दल के लोग भी प्रात काल के आवश्यक कामों से निवृत्त होकर, युद्ध का निश्चय करके, शीघ्रता के साथ अपने अपने डेरों से निकले ॥११।१३॥अब परस्पर विजय के निमित्त लाग-डाँट रखनेवाले पाण्डव और कौरव बहुत ही लोमहर्षण सग्राम करने लगे। महारथी कर्ण को सेनापति बनाकर कौरवों ने दो दिन पाण्डवों से घोर युद्ध किया। महाप्रतापी कर्ण ने इन दो दिनों में असख्य शत्रुओं को मारा और अन्त को वे, आपके पुत्रों के सम्मुख ही, अर्जुन के बाण से मृत्यु को प्राप्त हुए। कर्ण की मृत्यु हो जाने पर सञ्जय शीघ्र ही हस्तिनापुर में पहुँचे

जनमेजय उवाच—आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम् ।
आजगाम परामार्तिं वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥ १८ ॥
स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥
यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः ।
तस्मिन्हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥
दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्त्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥
तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन्बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥
तथैव चाऽन्यान्सुहृदः पुत्रान्पौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात्प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ २४ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

और उन्होंने राजा धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध का सब वृत्तान्त कह सुनाया॥१४।१७॥राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! महात्मा भीष्म पितामह और यशस्वी द्रोणाचार्य की मृत्यु होने की सूचना पाकर राजा धृतराष्ट्र बहुत ही चिन्तित हो रहे थे । अब दुर्योधन के हितैषी कर्ण की, जिनके बाहु-बल और वीर्य के आश्रय वे अपने पुत्रों के विजयी होने की आशा रक्खे हुए थे, मृत्यु सुनकर उनकी क्या दशा हुई होगी ? वे कैसे जीते रहे होंगे ! ऐसे शोक-समाचार को सुनकर भी यदि उनके प्राण नहीं निकले तो, मैं समझता हूँ, मनुष्य अत्यन्त कष्ट की दशा में भी किसी प्रकार शरीर को छोड़ना नहीं चाहता॥१८।२१॥वृद्ध राजा धृतराष्ट्र अपने प्रिय और सगे भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण, बाह्लीक, सोमदत्त, भूरिश्रवा तथा अन्य बहुत से सुहृत्-पुत्र-पौत्र आदि की मृत्यु का समाचार सुनकर भी जीते रहे,इससे जान पड़ता है कि प्राण छोड़ देना बहुत ही दुष्कर है। हे तपोधन! अब आप सब समाचार आदि से अन्त तक विस्तारपूर्वक कहिए। अपने पूर्वपुरुषों के पुण्य चरित्र सुनने की मेरी उत्कण्ठा किसी प्रकार भी नहीं मिटती॥२२।२४॥

कर्णपर्व का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच—हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा ।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १ ॥
स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥ २ ॥

दूसरा अध्याय ॥ २ ॥

वैशम्पायन ने कहा कि हे राजा जनमेजय ! महाबली कर्ण की मृत्यु हो जाने पर महात्मा सञ्जय उस

स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम् ।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥ ३ ॥
सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥ ४ ॥
सञ्जयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान् ।
स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यति ॥ ५ ॥
हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगाङ्गेयकेशवैः ।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ६ ॥
रामनारदकण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले ।
न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ७ ॥
सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान्भीष्मद्रोणमुखान्परैः ।
निहतान्युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ८ ॥
तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति सञ्जय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १० ॥
यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव तु ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसम्भवः ॥ ११ ॥
तं हतं यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ १२ ॥

रात्रि में ही व्याकुल और खिन्न भाव से, पवन के समान वेग से जानेवाले घोड़ों को हाँकते हुए, हस्तिनापुर में पहुँचे। तेज और श्री से रहित, खिन्न, वृद्ध राजा धृतराष्ट्र से मिलकर, हाथ जोड़कर, बड़े कष्ट से उन्होंने यों कहा—॥१।४॥हे महाराज! मैं सञ्जय हूँ। आप कुशल से तो हैं? हाय, बड़े कष्ट की बात है! अपने ही दोष से आप पर यह आपत्ति आई है। इस आपत्ति के कारण अब आप व्याकुल होते तो नहीं हैं? विदुर, द्रोण, श्रीकृष्ण और भीष्म ने पहले जो हित की सम्मति दी थी उसे आपने नहीं माना। अब उसका स्मरण करके आपको पश्चात्ताप तो नहीं हो रहा है? सभा में परशुराम, नारद, कण्व आदि महर्षियों ने आकर आपको हित की बातें सुनाई थीं। उन्हें आपने नहीं माना। अब उनको याद कर आप पश्चात्ताप तो नहीं करते हैं? आपके सुहृद् और हितैषी भीष्म, द्रोण आदि को शत्रुओं ने युद्ध में मार डाला, यह स्मरण करके क्या आप व्यथित होते हैं?॥५।८॥हाथ जोड़कर यों कह रहे सूत-पुत्र सञ्जय की बातों से अत्यन्त पीड़ित राजा धृतराष्ट्र ने लम्बी श्वास लेकर कहा—हे सञ्जय! दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले महाबली भीष्म और द्रोण की मृत्यु सुनकर मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। जिन्होंने नित्य दस सहस्र रथियों को मारा वे महावीर भीष्म, पाण्डवों के बल से रक्षित, शिखण्डी के बाणों से मारे गये। यह समाचार मेरे चित्त को मथन

भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महाहवे ।
साक्षाद्रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥ १३ ॥
यस्य प्रसादात्कौन्तेया राजपुत्रा महारथाः ।
महारथत्वं संप्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥ १४ ॥
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसन्धं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १५ ॥
ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे ।
तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः ॥ १६ ॥
त्रैलोक्ये यस्य चाऽस्त्रेषु न पुमान्विद्यते समः ।
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥ १७ ॥
संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ।
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः ॥ १८ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ।
विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नाञ्शोकसागरे ॥ १९ ॥
प्लवमानान्हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे ।
दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः ॥ २० ॥
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ।
मत्पुत्रस्य च शेषस्य तथान्येषां च सञ्जय ॥ २१ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत्कथम् ।
एतत्सर्वं यथा वृत्तं तथा गावल्गणे मम ॥ २२ ॥

किये डालता है॥९।१२॥भृगुकुमार परशुराम ने प्रसन्न होकर बालकपन में जिन्हें धनुर्वेद सिखलाया और सब दिव्य अस्त्र दिये, जिनकी कृपा से महाबली पाण्डवगण और अन्य अनेक राजा महारथी कहलाते हैं, उन सत्यप्रतिज्ञ धनुर्द्धरश्रेष्ठ आचार्य द्रोण को समर में धृष्टद्युम्न ने मार डाला ! यह सुनकर मेरा हृदय अत्यन्त कातर हो रहा है । इस पृथ्वीमण्डल में महावीर भीष्म और द्रोण के समान चारों प्रकार की अस्त्रविद्या में निपुण दूसरा कोई नहीं था। उन्हीं दोनों की मृत्यु हो जाने की सूचना पाकर मैं अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूँ॥१३।१६॥ हे सञ्जय! त्रिभुवन में जिनके समान अस्त्र जाननेवाला कोई नहीं देख पड़ता, वे वीरवर द्रोणाचार्य जब समर में मारे गये तब मेरे पक्ष के वीरों ने क्या किया ? महावीर अर्जुन के पराक्रम से जब संशप्तक-सेना मारी गई, अश्वत्थामा का नारायणास्त्र निष्फल हो गया और सब सेना भाग खड़ी हुई तब कौरवों ने क्या किया ! मुझे जान पड़ता है कि द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् वे सब लोग समुद्र के मध्य नाव टूटने पर उसके यात्रियों की सी दशा को प्राप्त हुए होंगे॥१७।२०॥हे सञ्जय ! सारी सेना जब भागने लगी तब कर्ण,कृतवर्मा, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और बचे हुए मेरे पुत्रों तथा अन्य वीरों की क्या दशा हुई ? तुम यह

आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च विक्रमम् ।
सञ्जय उवाच—तवापराधाद्यद्वृत्तं कौरवेयेषु मारिष ॥ २३ ॥
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः ।
यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति ।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद्व्यथते बुधः ॥ २४ ॥
धृतराष्ट्र उवाच —न व्यथाभ्यधिका काचिद्विद्यते मम सञ्जय ।
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सब समाचार और युद्ध में कौरवों तथा पाण्डवों का पराक्रम विस्तारपूर्वक मुझे सुनाओ॥२०।२३॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! आपके दोष से कौरवों की जो दुर्दशा हुई और हो रही है, उसे सुनकर आप व्यथित न हों । ऐसी होनी ही थी । भाग्य-दोष से होनेवाले अनिष्ट से बुद्धिमान् लोग व्यथित नहीं होते, क्योंकि मनुष्यों का इष्ट अनिष्ट तो दैव के अधीन ही है। जो होनी है वह होगी और जो नहीं होनी है वह नहीं होगी। इसलिए इष्ट के न प्राप्त होने और अनिष्ट के प्राप्त होने पर व्यथित होना या शोक करना बुद्धिमान् का काम नहीं है॥२३।२४॥धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मुझे इन अनिष्ट समाचारों से बहुत अधिक व्यथा नहीं हो सकती। मैं इसे केवल भाग्य का दोष ही समझता हूँ। तुम संक्षेप रूप से सब समाचार कहो॥२५॥

कर्णपर्व का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच—हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः ।
बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥ १ ॥
अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशाम्पते ।
अवेक्षमाणाः शोकार्त्ता नाभ्यभाषन्परस्परम् ॥ २ ॥
तान्दृष्ट्वा व्यथिताकारान्सैन्यानि तव भारत ।
ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३ ॥
शस्त्राण्येषां तु राजेन्द्र शोणिताक्तानि सर्वशः ।
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि ॥ ४ ॥
तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥ ५ ॥

तीसरा अध्याय ॥ ३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! श्रेष्ठ वीर महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य जब युद्ध में मारे गये तब आपके महारथी पुत्र विषाद से मलिनमुख,चिन्तित और अचेत से हो उठे । शोक से व्याकुल,मुख लटकाये हुए, सब शस्त्रधारी कौरव चुपचाप एक दूसरे की ओर ताकने लगे। उन्हें व्यथित देखकर सैनिक लोग भी,स्वयं दुःख और त्रास से पीड़ित होकर, शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगे॥१।३॥युद्ध में द्रोणाचार्य की मृत्यु देखकर वे ऐसे व्याकुल हो गये कि रक्त से युक्त हथियार उनके हाथों से छूट पड़े । उनकी कमर में जो

तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् ।
बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥
भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ॥ ७ ॥
तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः ॥ ८ ॥
जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे ।
भवेत्किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥ ९ ॥
पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्त्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १० ॥
यस्य वै युधि सन्त्रासात्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
निवर्त्तते सदा मन्दः सिंहात्क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११ ॥
येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२ ॥
येन दिव्यास्त्रविच्छूरो मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या निहतो भैरवं नदन् ॥ १३ ॥
तस्य दुर्वारवीर्यस्य सत्यसन्धस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४ ॥
द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पश्यन्तु पाण्डुपुत्रास्ते विष्णुवासवयोरिव ॥ १५ ॥

खड्ग आदि अनेक प्रकार के शस्त्र लटक रहे थे वे आकाशमण्डल में नक्षत्रों की भाँति चमक रहे थे। अपनी सेना को इस प्रकार निश्चेष्ट और मृत तुल्य देखकर राजा दुर्योधन ने कहा—हे वीर योद्धाओ! तुम्हारे ही बाहुबल के आश्रय मैंने पाण्डवों को युद्ध के निमित्त ललकारा और यह युद्ध ठाना है। किन्तु इस समय द्रोणाचार्य की मृत्यु होने पर तुम लोग विषादपूर्ण देख पड रहे हो, युद्ध में वैसा उत्साह नहीं देख पड़ता॥१।८॥ युद्ध करनेवाले योद्धा युद्ध करने में मारे ही जाते हैं।समरभूमि में जानेवाला या तो मृत्यु को प्राप्त होता है या शत्रु को मारकर विजय प्राप्त करता है। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? तुम लोग उत्साहपूर्वक चारों ओर से युद्ध करो। यह देखो, महारथी महात्मा वैकर्तन कर्ण अपना अस्त्रबल और बाहुबल दिखाते हुए युद्धभूमि में विचर रहे हैं। सिंह के सम्मुख जैसे क्षुद्र मृग भय के मारे नहीं जाता वैसे ही मन्दमति अर्जुन युद्ध में कर्ण का सामना नहीं करते। दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन की दुर्दशा तो तुम लोग देख ही चुके हो॥९। १२॥कर्ण ने साधारण मनुष्य-युद्ध करके ही भीमसेन को परास्त किया था। दिव्य अस्त्रों को जाननेवाला मायावी शूर घटोत्कच युद्ध में पराक्रम दिखाकर बेतरह सिंहनाद कर रहा था। उसको दिव्य अमोघ शक्ति से वीर कर्ण ने मार डाला। कर्ण का पराक्रम ऐसा है कि शत्रुगण उसके सम्मुख कुछ नहीं कर सकते।

सर्व एव भवन्तश्च शक्ताः प्रत्येकशोऽपि वा ।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ।
वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाऽद्य परस्परम् ॥ १६ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा ।
तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ १७ ॥
सैनापत्यमथाऽवाप्य कर्णो राजन्महारथः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥ १८ ॥
स सृञ्जयानां सर्वेषां पञ्चालानां च मारिष ।
केकयानां विदेहानां चकार कदनं महत् ॥ १९ ॥
तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासञ्छरासनात् ।
अग्रे पुङ्खेषु संसक्ता यथा भ्रमरपंक्तयः ॥ २० ॥
स पीडयित्वा पञ्चालान्पाण्डवांश्च तरस्विनः ।
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः ॥ २१ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आज युद्ध में तुम लोग उन्हीं सत्यप्रतिज्ञ बुद्धिमान् कर्ण का अक्षय बाहुबल देखोगे। विष्णु और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी अश्वत्थामा और कर्ण का पराक्रम आज पाण्डव देखेंगे। तुम सब पराक्रमी और अस्त्र-विद्या में निपुण हो। तुममें से प्रत्येक इतनी शक्ति रखता है कि सेना सहित पाण्डवों को मारना कुछ कठिन नहीं है।फिर तुम सब लोग मिलकर क्या नहीं कर सकते?॥१३।१६॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज!सैनिकों को यों उत्साहित करके आपके पुत्र दुर्योधन ने,भाइयों के साथ, कर्ण के समीप जाकर उन्हें सेनापति का पद दिया। दुर्मद महावीर महारथी कर्ण सेनापति होने पर ज़ोर से सिंहनाद करके शत्रुओं से तुमुल युद्ध करने लगे। उन्होंने समाम में सब सृञ्जय, पाञ्चाल, कैकेय, विदेह आदि देशों के वीरों को मारना प्रारम्भ कर दिया। उनके धनुष से निरन्तर,भौंरों की पङ्क्तियों के समान शब्द कर रहे, सैकड़ों सहस्रों बाण निकल रहे थे। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! महाबली कर्ण महापराक्रमी पाञ्चालों और पाण्डवों को पीड़ित करके, सहस्रों वीर योद्धाओं को मारकर, अन्त को वीर अर्जुन के हाथों मारे गये। ॥१७।२१॥

कर्णपर्व का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच—एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
शोकस्य[illegible]पश्यन्वै हतं मेने सुयोधनम् ॥ १ ॥
विह्वलः [illegible] नष्टचेत[illegible]व द्विपः ।
[illegible] विह्वले र[illegible]मे ॥ २ ॥

॥ ४

[illegible] राष्ट्र[illegible] में डूब गये। अपने पुत्र दुर्यो-
[illegible] समाचार सुन[illegible] धन[illegible]वे, अत्यन्त कातर होकर,

आर्त्तनादो महानासीत्स्त्रीणां भरतसत्तम ।
स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः ॥ ३ ॥
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः ।
रुरुदुर्दुःखशोकार्त्ता भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ४ ॥
राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ ५ ॥
ततस्ताः सञ्जयो राजन्समाश्वासयदातुराः ।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥ ६ ॥
समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः ।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥ ७ ॥
राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥ ८ ॥
स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां तांश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः ।
उन्मत्त इव राजेन्द्र स्थितस्तूष्णीं विशाम्पते ॥ ९ ॥
ततो ध्यात्वा चिरं कालं निःश्वस्य च पुनः पुनः ।
स्वान्पुत्रान्गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् ॥ १० ॥
गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च ।
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥
संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत सञ्जयम् ॥ १२ ॥
यत्त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं सञ्जय तन्मया ।
कच्चिद्दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥ १३ ॥

चेतना-हीन गजराज की भाँति धरती पर गिर पड़े । रनिवास की स्त्रियाँ वृद्ध राजा की यह दशा देखकर हाय हाय करने लगीं,। वह शब्द सर्वत्र गूँज उठा। भरत-कुल की महिलाएँ भयानक शोकसागर में डूबकर, व्याकुल होकर, रोने लगीं॥ ३।४॥गान्धारी आदि स्त्रियाँ राजा के समीप जाकर, अचेत हो-होकर, गिर पड़ीं। नेत्रों में आँसू भरे हुए और शोक से मूर्च्छित सी उन रमणियों को महात्मा सञ्जय समझाने और सान्त्वना देने लगे। सञ्जय के आश्वासन देने से सब स्त्रियाँ कुछ धैर्य करके उठ बैठीं। उनके अङ्ग पवन-सञ्चालित केले के पत्तों की भाँति काँप रहे थे। प्रज्ञाचक्षु बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र को महामति विदुर सान्त्वना देने लगे॥५। ८॥राजा धृतराष्ट्र धीरे धीरे सावधान हुए। अपने समीप सब स्त्रियों को उपस्थित जानकर, ग्रहग्रस्त पुरुष की भाँति, वे चुपचाप बैठे रहे। बहुत देर तक योंही सोचने के पश्चात् बारम्बार लम्बे-लम्बे श्वास छोड़ने और पाण्डवों की प्रशंसा करने के साथ ही वे अपने दुर्मति पुत्रों की निन्दा करने लगे।शकुनि की,और अपनी,बुद्धि को बुरा कहकर वे देर तक सोचते और शोक के वेग से काँपते रहे।क्षण भर के पश्चात् धैर्यधारणपूर्वक स्थिरचित्त होकर

जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकार्मुकः ।
ब्रूहि सञ्जय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥ १४ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतो राजानं जनमेजय ।
हतो वैकर्त्तनो राजन्सह पुत्रैर्महारथः ॥ १५ ॥
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः ।
दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना ।
पीतं च रुधिरं कोपाद्भीमसेनेन संयुगे ॥ १६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोको नाम चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

उन्होंने पूछा—॥९।१२॥हे सञ्जय! तुमने जो बातें कहीं उन्हें मैंने सुना॥तुम ठीक ठीक मुझसे कहो,राज्याभिलाषी मेरे पुत्र दुर्योधन ने विजय लाभ से हताश होकर प्राण तो नहीं छोड़ दिये?॥१३।१४॥राजा धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महावीर कर्ण अपने पुत्र और भाई बन्धुओं सहित मारे गये। महायशस्वी प्रतापी भीमसेन ने रणभूमि में दुःशासन को गिराकर, क्रोधान्ध हो, अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के निमित्त उनके हृदय का रक्त पिया॥१५।१६॥

—०—

कर्णपर्व का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच—इति श्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
अब्रवीत्सञ्जयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥ १ ॥
दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्याऽदीर्घजीविनः ।
हतं वैकर्त्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति ॥ २ ॥
तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के च जीवन्ति के मृताः ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—हतः शान्तनवो राजन्दुराधर्षः प्रतापवान् ।
हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय ॥ ५ ॥

वैशम्पायन ने कहा कि हे महाराज! महामति सञ्जय के वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र शोक से विह्वल हो उठे। अब उन्होंने कहा—हे तात! मेरी दुर्नीति और शीघ्र ही मृत्यु के मुख में जानेवाले मेरे पुत्र दुर्योधन के अन्याय का ही यह परिणाम है कि आज वैकर्त्तन कर्ण की मृत्यु सुनकर उस कठिन शोक से मैं व्याकुल हो रहा हूँ— वह शोक मेरे मर्मस्थल को काटे डालता है। मैं इस दुःख से छूटना चाहता हूँ। मेरे आगे तुम यह कहो कि कौरवों और सृञ्जयों में कौन कौन वीर पुरुष मारे गये हैं और कौन कौन अभी जीवित हैं। यह वृत्तान्त सुनाकर तुम मेरे इस सन्देह को दूर करो॥१।३॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महाप्रतापी दुर्द्धर्ष भीष्म पितामह ने दस दिन में पाण्डवों की सेना के एक अर्बुद वीरों को मारा और अब वे रणशय्या पर शयन कर रहे हैं। महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य ने पाञ्चालों के झुण्ड के झुण्ड रथी योद्धाओं को

तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद्रुक्मरथो हतः ॥ ५ ॥
हतशेषस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्त्तनो हतः ॥ ६ ॥
विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्त्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥ ७ ॥
तथा पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान् ॥ ८ ॥
घोररूपान्परिक्लेशान्दुर्योधनकृतान्बहून् ।
प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ १० ॥
सिन्धुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानि ह ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥ ११ ॥
अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैः शरैः ।
अर्जुनेन हतो राजन्महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२ ॥
तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्त्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥ १३ ॥
तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः ।
द्रौपदेयेन सङ्गम्य गमितो यमसादनम् ॥ १४ ॥

मारा था। इस प्रकार वीर युद्ध करने के पश्चात् पन्द्रहवें दिन वे भी मारे गये। भीष्म और द्रोण के हाथों से जो पाण्डव-सेना बच रही थी उसमें से आधी सेना मारने के पश्चात् वीरवर कर्ण की मृत्यु हुई॥४।६॥ हे महाराज! महाबली राजकुमार विविंशति ने द्वारका के यादवों के सैकड़ों योद्धा मारे और अन्त को वे स्वयं युद्ध में मारे गये। आपके पुत्र शूर विकर्ण के बाण चुक गये थे तथापि क्षत्रिय के धर्म को स्मरण करके उन्होंने रणभूमि नहीं छोड़ी और वे उसी दशा में शत्रु के हाथ से मारे गये। दुर्योधन के द्वारा प्राप्त महाघोर बहुत से क्लेशों को और अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करके वीर भीमसेन ने विकर्ण को मार डाला॥७।९॥

अवन्ति देश के राजपुत्र महारथी दोनों भाई विन्द और अनुविन्द युद्ध में भली भाँति लड़े और दुष्कर कर्म करके अन्त में मारे गये। सिन्धु आदि दस राष्ट्र जिनकी आज्ञा का पालन करते थे और जो आपके कहे पर चलते थे, उन महावीर जयद्रथ को अकेले अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से,ग्यारह अक्षौहिणी सेना को जीतकर, मार डाला। पिता की आज्ञा माननेवाले,दुर्योधन के पुत्र,मनस्वी युद्धदुर्मद को अभिमन्यु ने मारा॥१०।१३॥ युद्ध में प्रचण्ड रूपवाले शूर दुःशासन के पुत्र को द्रौपदी के पुत्र ने मार डाला। समुद्र के अनूप प्रदेश में रहनेवाले किरातों के स्वामि, धर्मात्मा, इन्द्र के आदरपात्र सखा और क्षत्रिय-धर्म में निरत राजा भगदत्त को

किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् ।
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपाल क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ १६ ॥
तथा कौरवदायादो न्यस्तशस्त्रो महायशाः ।
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि ॥ १७ ॥
श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरन्धरः ।
चरन्नभीतवत्सङ्ख्ये निहतः सव्यसाचिना ॥ १८ ॥
तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥
यस्य राजन्गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥ २० ॥
कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुमतान्परान् ।
सौभद्रेणेह विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २१ ॥
बहुशो योधयित्वा तु भीमसेनं महारथम् ।
चित्रसेनस्तव सुतो भीमसेनेन पातितः ॥ २२ ॥
मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्द्धनः ।
असिचर्मधरः श्रीमान्सौभद्रेण निपातितः ॥ २३ ॥
समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥ २४ ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २५ ॥

अर्जुन ने पराक्रमपूर्वक मार गिराया। महायशस्वी वीर भूरिश्रवा ने जब शस्त्र रख दिये तब यादव सात्यकि ने उनको मार डाला॥१४।१७॥आपके पुत्र, सदा अमर्षपूर्ण रहनेवाले, अस्त्र विद्या में निपुण, युद्धदुर्मद, दुःशासन को भीमसेन ने बलपूर्वक मार डाला। कई सहस्र हाथियों की अद्भुत सेना साथ रखनेवाले राजा सुदक्षिण को अर्जुन ने यमपुर पहुँचा दिया। कोसल देश के राजा ने बहुत से शत्रु-योद्धाओं को मारा और अन्त को उन्हें अभिमन्यु ने बलपूर्वक मार डाला। बहुत समय तक युद्ध करके महारथी भीमसेन के हाथ से राजकुमार चित्रसेन भी मारे गये॥१८।२२॥मद्रराज के पुत्र, शूर, ढाल-तलवार से शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करने के पश्चात् अभिमन्यु के हाथ से मारे गये। युद्ध में कर्ण के समान ही योद्धा महातेजस्वी, स्फूर्तिशाली दृढविक्रम कर्णपुत्र वृषसेन को अर्जुन ने मार डाला। अभिमन्यु के वध का स्मरण करके और अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके अर्जुन ने, कर्ण के सम्मुख ही, अपने पराक्रम और बाहुबल से वृषसेन को यम

नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥ २६ ॥
शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन्भ्राता मातुलजो युधि ॥ २७ ॥
राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥ २८ ॥
भगदत्तसुतो राजन्कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता सङ्ख्ये नकुलेन निपातितः ॥ २९ ॥
पितामहस्तव तथा बाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।
निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥ ३० ॥
जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासन्धिर्महाबलः ।
मागधो निहतः सङ्ख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥ ३१ ॥
पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन्दुःसहश्च महारथः ।
गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥ ३२ ॥
दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥
उभौ कलिङ्गवृषकौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ ।
कृत्वा त्वासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३४ ॥
सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान् ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३५ ॥
तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान् ।
समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥ ३६ ॥

पुर भेज दिया। अम्बष्ठदेशीय क्षत्रियश्रेष्ठ श्रुतायु निर्भय होकर युद्ध करते रहे। पाण्डवों से सदा वैर रखनेवाले उक्त राजा ने अर्जुन से दारुण युद्ध किया और स्वयं उनके बाणों से मारे गये॥२३।२६॥सहदेव ने अपने मामा के बेटे रुक्मरथ को मार डाला। वृद्ध राजा भगीरथ और कैकेय देश के बृहत्क्षत्र, ये दोनों बड़े बली और पराक्रमी होकर भी युद्ध में मारे गये। वीर नकुल ने,श्येन पक्षी की भाँति, युद्ध में विचर रहे महाबली भगदत्त के पुत्र कृतप्रज्ञ को मारा। भीमसेन ने आपके पितामह महाबली पराक्रमी बाह्लीक को,बाह्लीक देश की सेना के साथ,मारकर गिरा दिया॥२७।३०॥ वीर अभिमन्यु ने मगधराज जरासन्ध के पुत्र जयत्सेन को युद्ध में मारा। हे महाराज ! आपके पुत्र शूरमानी महारथी दुर्मुख और दुःसह को भीमसेन ने गदा के प्रहार से मार डाला। ऐसे ही आपके पुत्र दुर्मर्षण, दुर्विषह और महारथी दुर्जय—दुष्कर कर्म करने के पश्चात्—मारे गये। युद्ध-दुर्मद दोनों भाई कलिङ्ग और वृषक भी दुष्कर कर्म करके मारे गये॥३१।३४॥आपके सचिव शूर वीर्यशाली वृषवर्मा को भीमसेन ने पराक्रम के साथ मार डाला।दस सहस्र हाथियों का बल रखने-

वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥ ३७ ॥
अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः ।
शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः ॥ ३८ ॥
गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः ।
तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना ॥ ३९ ॥
श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ४० ॥
स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ ।
त्वदर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥ ४१ ॥
उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।
शाल्वराजो महाबाहुर्भीमसेनेन पातितः ॥ ४२ ॥
ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ४३ ॥
तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशाम्पते ।
निहतो गदया राजन्भीमसेनेन संयुगे ॥ ४४ ॥
तथा राजन्महेष्वासो जलसन्धो महाबलः ।
सुमहत्कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ॥ ४५ ॥
अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान् ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ४६ ॥
राधेयः सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥ ४७ ॥

वाले पौरव, अपनी सेना के साथ, युद्ध में अर्जुन के हाथ से मारे गये । हे महाराज ! अचूक प्रहार करनेवाले दो सहस्र बसाति योद्धा और शूरसेन देश के सब पराक्रमी वीर युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए । कवचधारी, प्रहार करनेवाले, युद्ध में दुर्द्धर्ष अभीषाहगण, महारथी शिबि और कलिङ्ग देश के क्षत्रिय युद्ध में मारे गये॥३५।३८॥गोकुल में रहनेवाले,समर में महाक्रोधी, वीर गोपों की सेना को भी युद्ध में अर्जुन ने मार डाला । कई सहस्र संशप्तकगण आदि सब अर्जुन के सम्मुख जाकर मारे गये । आपके साले वृषक और अचल,आपकी ओर से अच्छी प्रकार लड़े और अन्त को वे भी अर्जुन के हाथ से मृत्यु को प्राप्त हो गये।शाल्व देश के राजा,नाम के अनुसार ही,उग्रकर्मा को भीमसेन ने मार डाला॥३९।४२॥हे महाराज ! ओघवान् और बृहन्त,इन दोनों ने मित्र के निमित्त परम पराक्रम प्रकट करके शरीर-त्याग किया । श्रेष्ठ रथी क्षेमधूर्ति को भीमसेन ने रण में गदा के प्रहार से मार डाला । महाधनुर्द्धर महाबली जलसन्ध ने अच्छी प्रकार शत्रुसेना का संहार किया और अन्त को सात्यकि के हाथ से मारे गये । राक्षसेन्द्र अलम्बुष खरों (गदहों)के रथ पर

मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥ ४८ ॥
मावेल्लकास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्च ये ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४९ ॥
पत्तीनां निहताः सङ्घा हयानां प्रयुतानि च ।
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ५० ॥
सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः ।
कालेन महतायस्ताः कुशलैर्ये च वर्धिताः ॥ ५१ ॥
ते हताः समरे राजन्पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥ ५२ ॥
एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे ।
हताः सहस्रशो राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५३ ॥
एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे ।
महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ॥ ५४ ॥
यथा कृष्णेन नरको मुरश्च नरकारिणा ।
कार्त्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण यथा हतः ॥ ५५ ॥
सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः ।
रणे कृत्वा महद्युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ ५६ ॥
यथा स्कन्देन महिषो यथा रुद्रेण चान्धकः ।
तथार्जुनेन स हतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥ ५७ ॥

बैठकर आपकी ओर से अच्छी प्रकार लड़ा। उसे घटोत्कच ने पराक्रमपूर्वक मार डाला॥४३।४७॥ अर्जुन के हाथ से कर्ण, उनके महारथी भाई, कैकेय, मालव, मद्रक, उग्रकर्मी द्राविड़, यौधेय, ललित्थ, क्षुद्रक, औशीनर, मावेल्लक, तुण्डिकेर, सावित्रीपुत्रक, पूर्व उत्तर पश्चिम और दक्षिण इत्यादि दिशाओं के अनेक देशों के वीर असंख्य योद्धा मारे गये। पैदलों के झुण्ड, प्रयुत घोड़े, रथों के समूह और श्रेष्ठ हाथियों के झुण्ड के झुण्ड मारे गये। सुख में पले हुए, महाबली, परस्पर मारने के निमित्त उद्यत, ध्वजा, शस्त्र, कवच, बहुमूल्य वस्त्रों और आभूषणों आदि से अलंकृत असंख्य वीर काल के वश होकर अर्जुन के बाणों से मारे गये॥४८।५२॥

हे महाराज! जिनका वर्णन किया गया ये तथा अन्य सैंकड़ों-सहस्रों राजा लोग अपने अनुचरों और सैनिकों सहित रण में मारे गये हैं। आप जो मुझसे पूछते हैं, सो मैंने आपके आगे कह दिया। कर्ण और अर्जुन के युद्ध में इस प्रकार यह जनसंहार हुआ है। पहले जैसे इन्द्र से वृत्र, राम से रावण, श्रीकृष्ण से नरकासुर और मुर, तथा भार्गव परशुराम से कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन का दारुण युद्ध हुआ था, वैसे ही अर्जुन से कर्ण का युद्ध हुआ और उसमें अर्जुन ने द्वैरथ-युद्ध करके रणदुर्मद कर्ण को मार डाला। जातिवालों और भाइयों सहित शूर युद्धदुर्मद कर्ण ने त्रैलोक्य को चकित कर देनेवाला महायुद्ध किया॥५३।५६॥

सामात्यबान्धवो राजन्कर्णः प्रहरतां वरः ।
जयाशा धार्त्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥ ५८ ॥
तीर्णस्तत्पाण्डवो राजन्यत्पुरा नावबुध्यसे ।
उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकांक्षिभिः ॥ ५९ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम् ।
पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन्हितैषिणा ।
अहितान्येव चीर्णाणि तेषां तत्फलमागतम् ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥

स्कन्द के हाथ से महिषासुर या शिव के हाथ से अन्धकासुर जैसे मारा गया था,वैसे ही अमात्य-बान्धवो सहित महारथी कर्ण द्वैरथ युद्ध में अर्जुन के हाथ से मारे गये । श्रेष्ठ योद्धा कर्ण ही आपके पुत्रों की जय की आशा और इस पाण्डव कौरव वैर की जड़ थे । उन्हें मारकर पाण्डव रणसागर के पार पहुँच गये । हे राजेन्द्र ! पहले समझाने से भी जो आपकी समझ में नहीं आता था,आपके हितचिन्तक मित्र लाख कहते थे,पर आप ध्यान ही नहीं देते थे,यह वही महाघोर सङ्कट और कष्ट का समय आ गया है । हे राजेन्द्र ! आप पुत्रों के हितैषी थे और आपके पुत्र अन्याय से पाण्डवों का भाग ले लेना चाहते थे । राज्यलोभी पुत्रों का कहा मानकर आपने सदा पाण्डवों का अहित ही किया । यह आपकी उसी करतूत का ही फल है॥५७।६०॥

कर्ण पर्व का पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः ।
हतांश्च पाण्डवेयानां मामकैर्ब्रूहि सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच– कुन्तयो युधि विक्रान्ता समसत्वा महाबलाः ।
सानुबन्धाः सहामात्या गाङ्गेयेन निपातिताः ॥ २ ॥
नारायणा बलभद्राः शूराश्च शतशोऽपरे ।
अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ॥ ३ ॥
समः किरीटिना सङ्ख्ये वीर्येण च बलेन च ।
सत्यजित्सत्यसन्धेन द्रोणेन निहतो युधि ॥ ४ ॥
पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन सह सङ्गम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥

छठा अध्याय ॥ ६ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! तुमने पाण्डवों के हाथ से मरे हुए, मेरे पक्ष के, वीरों के नाम तो सुनाये अब पाण्डव पक्ष के उन वीरों के नाम सुनाओ, जिन्हें कौरवों ने मारा है॥१॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! पराक्रमी भीष्म पितामह ने कृताब, युद्धप्रिय, महावीर्यशाली, महाबली, सेना और सचिव सहित सैंकड़ों सहस्रों नारायण, बल्लव, राम आदि नामवाले, विजय में अनुरक्त शूरों को मार गिराया । पराक्रमी और बल में अर्जुन के तुल्य राजा सत्यजित् को युद्ध में द्रोणाचार्य ने मार गिराया। महारथी द्रोणाचार्य से युद्ध

तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६ ॥
यो बाल एव समरे सम्मितः सव्यसाचिना ।
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥ ७ ॥
परेषां कदनं कृत्वा महारथविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ॥ ८ ॥
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ।
कृतं तं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान्रणे ।
सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥ १० ॥
अम्बष्ठस्य सुतः श्रीमान्मित्रहेतोः पराक्रमम् ।
आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्योधनसुतं रणे ॥ ११ ॥
सुमहत्कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।
बृहन्तः सुमहेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ १२ ॥
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।
मणिमान्दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ॥ १३ ॥
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन युधि पातितौ ।
अंशुमान्भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ॥ १४ ॥
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।
सामुद्रश्चित्रसेनश्च सह पुत्रेण भारत ॥ १५ ॥
समुद्रसेनेन बलाद्गमितो यमसादनम् ।
अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

करके युद्धनिपुण सब पाञ्चाल मारे गये॥२।५॥वृद्ध राजा विराट, द्रुपद, उनके पुत्र आदि—पाण्डवों के निमित्त पराक्रम प्रकट करके—आचार्य के हाथ से मारे गये। बालकपन में ही अर्जुन के समान योद्धा गिने जानेवाले, श्रीकृष्ण के समान दुर्द्धर्ष और बल में बलभद्र के बराबर,वीरवर,रण-विशारद बालक अभिमन्यु ने अगणित शत्रु-सेना का संहार किया। अकेले अभिमन्यु का सामना न कर सकने पर उन्हें छः महारथियों ने मिलकर मार डाला। क्षत्रियधर्म का पालन कर रहे अभिमन्यु ने रथ नष्ट हो जाने पर भी युद्ध करना नहीं छोड़ा। उन्हें उसी अवस्था में दुःशासन के पुत्र ने गदा के प्रहार से मार डाला॥६।१०॥पटच्चर निहन्ता अम्बष्ठ के पुत्र श्रीमान् बहुत बड़ी सेना लेकर अपने मित्र पाण्डवों की ओर से युद्ध कर रहे थे।सैन्यसंहार कर चुकने पर वे दुर्योधन के पुत्र वीर लक्ष्मण के हाथ से मारे गये। महाधनुर्द्धर, अस्त्रनिपुण, युद्धदुर्मद राजा बृहन्त को रण में दुःशासन ने मार डाला। पाण्डवों की ओर से युद्धकरनेवाले मणिमान् और दण्डधार को द्रोणाचार्य ने मारा॥१०।१४॥भोजराज महारथी अंशुमान् को और उनकी सेना को द्रोणाचार्य ने मारा।

अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् ।
चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा च कदनं महत् ॥ १७ ॥
चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे ।
वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः ॥ १८ ॥
कैकेयेन च विक्रम्य भ्राता भ्रात्रा निपातितः ।
जनमेजयो गदायोधी पार्वतीयः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ।
रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव ॥ २० ॥
द्रोणेन युगपद्राजन्दिवं सम्प्रापितौ शरैः ।
नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशाम्पते ॥ २१ ॥
कृत्वा न सुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः ॥ २२ ॥
संग्रामनिर्जिताँल्लोकान्गमितौ द्रोणसायकैः ।
अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥
वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे ।
अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥ २४ ॥
निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः ।
मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत ॥ २५ ॥
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ।
शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ॥ २६ ॥
लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ।
सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महारथौ ॥ २७ ॥

समुद्रतटवासी चित्रसेन और उनके पराक्रमी पुत्र को समुद्रसेन ने बलपूर्वक मार डाला। अनूपदेशवासी नील और वीर्यशाली व्याघ्रदत्त को अश्वत्थामा और विकर्ण ने यमपुर भेज दिया। चित्रयुद्ध-निपुण चित्रायुध को घोर सैन्य संहार करते देखकर विकर्ण ने विचित्र गति से युद्ध में मार डाला॥१४।१८॥युद्ध में भीमसेन के समान कैकेय देश के राजकुमार को कैकेय देश के ही दूसरे राजकुमार ने, भाई को भाई ने, मार डाला। गदायुद्ध करनेवाले, प्रतापी, पहाड़ी राजा जनमेजय को आपके पुत्र दुर्मुख ने मारा। दो ग्रहों के समान शोभायमान रोचमान नाम के दो भाइयों को द्रोणाचार्य ने अपने बाणों से यमपुर भेज दिया। हे महाराज! इनके अतिरिक्त और असंख्य पराक्रमी राजा लोग युद्ध में दुष्कर कर्म करके मारे गये हैं। अर्जुन के मामा पुरुजित् और कुन्तिभोज को महावीर द्रोणाचार्य ने मार डाला। उन्होंने पाञ्चाल देश के वीर मित्रवर्मा और क्षत्रधर्मा को भी यमपुर भेज दिया॥१८।२३॥ काशिराज अभिभू अपनी सेना सहित वसुदान के पुत्र के हाथ से मारे गये। महापराक्रमी अमितौजा, युधामन्यु और उत्तमौजा, इन तीनों वीरों ने सैकड़ों योद्धा-

प्रचरन्तौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे ।
वार्धक्षेमिर्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥ २८ ॥
आयुधक्षयमासाद्य प्रशान्तिं परमां गतः ।
सेनाविन्दुसुतः श्रेष्ठः शस्त्रवान्प्रवरो युधि ॥ २९ ॥
वाह्लिकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः ।
धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥ ३० ॥
कृत्वा न सुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ।
तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे ॥ ३१ ॥
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम् ।
सेनाविन्दुः कुरुश्रेष्ठः कृत्वा कदनमाहवे ॥ ३२ ॥
पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः ।
निहत्य शात्रवान्सङ्ख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥ ३३ ॥
तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् ।
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ॥ ३४ ॥
श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा न सुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ३५ ॥
तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित् ।
भीष्मेण निहतो राजञ्शेतेऽद्य परवीरहा ॥ ३६ ॥
विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः ।
कुर्वन्तौ सुमहत्कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३७ ॥
वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३८ ॥

ओं को मारा और अन्त को वे हमारे पक्ष के वीरों के हाथ से मारे गये । आपके पोते लक्ष्मण ने शिखण्डी के पुत्र क्षत्रदेव को मारा॥२३।२७॥सुचित्र और चित्रवर्मा, ये दोनों महारथी बापबेटे बड़े वीर थे । इन्हें द्रोणाचार्य ने युद्ध में मारा । हे महाराज ! वृद्धक्षेम के पुत्र भी, पर्वदिवस में सागर की भांति, शस्त्र न रहने पर मृत्यु की परम शान्ति को प्राप्त हुए । क्षत्रियश्रेष्ठ सेनाबिन्दु के पुत्र युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करते समय कौरवेन्द्र महाराज बाह्लीक के हाथ से मारे गये। चेदि देश के श्रेष्ठ महारथी धृष्टकेतु भी दुष्कर कर्म करके अन्त को यमपुर सिधारे । वीर सत्यधृति युद्ध में शत्रुसंहार और पाण्डवों के निमित्त पराक्रम करके मृत्यु के वश हुए॥२७।३२॥शिशुपाल के पुत्र राजा सुकेतु भी शत्रुओं को रण में मारकर अन्त को द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये । पराक्रमी मदिराश्व, सूर्यदत्त आदि वीर भी द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये । विराट के छोटे भाई श्रीमान् शतानीक और पराक्रमी श्रेणिमान्, दोनों वीर दुष्कर कर्म करके अन्त में यमपुर को सिधार गये । अस्त्रविद्या में निपुण शत्रुनाशन मगधराज भी भीष्म के बाणों से मारे गये॥३३।३६॥

एते चाऽन्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः ।
हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

विराट के पुत्र शङ्ख और महारथी उत्तर भी दुष्कर कर्म करके मृत्यु को प्राप्त हुए। वसुदान कौरव सेना का संहार करते समय द्रोणाचार्य के हाथ से मारे गये। हे महाराज ! इनको तथा पाण्डव दल के और भी महारथियों को द्रोणाचार्य ने मारा। आपने जो मुझसे पूछा था, सो मैंने सुना दिया॥३७।३९॥

कर्ण पर्व का छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेकस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १ ॥
तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नार्थो वै जीवितेऽसति॥ २ ॥
न च शोचामि राधेयं हतमाहवशोभनम् ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतत् ॥ ३ ॥
हतप्रवरसैन्यं मे यथा शंससि सञ्जय ।
अहतानपि मे शंस केऽत्र जीवन्ति के च न ॥ ४ ॥
एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः ।
येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ॥ ५ ॥

सञ्जय उवाच—यस्मिन्महास्त्राणि समर्पितानि चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि ।
दिव्यानि राजन्विहितानि चैव द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥ ६ ॥
महारथः कृतिमान्क्षिप्रहस्तो दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः ।
स वीर्यवान्द्रोणपुत्रस्तरस्वी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ७ ॥

सातवाँ अध्याय ॥ ७ ॥

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मेरी सेना के सब प्रधान-प्रधान वीर मारे जा चुके हैं। इसी से जो बच रहे हैं, उन्हें भी मैं मृतप्राय ही समझता हूँ। मेरे लिए महाधनुर्धर अद्वितीय वीर भीष्म और द्रोण दोनों मारे जा चुके, अब मेरा जीना व्यर्थ है। जिसकी बाहुओं में दस सहस्र हाथियों के बराबर बल था वह युद्ध में सुशोभित होनेवाला वीरवर कर्ण अब इस पृथ्वी पर नहीं है। कर्ण की मृत्यु मेरे लिए असह्य है। हे सञ्जय ! जैसे तुमने मेरी सेना के मुख्य-मुख्य वीरों के मरने का ब्यौरा सुनाया, वैसे ही उन योद्धाओं के भी नाम बताओ, जो अभी तक जीते हैं। तुमने जिन लोगों को मृत बतलाया उनके मरने से मुझे जीते हुए लोग भी मरे से जान पड़ते हैं॥१।५॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! वीर द्रोणाचार्य ने जिन्हें धनुर्वेद-कथित चतुर्विध (दृढ, दूर, सूक्ष्म, शब्द-वेध) विचित्र दिव्य अस्त्र बतलाये हैं वे महारथी, कृता, स्फूर्तिशाली, दृढ शस्त्रधारी, दृढमुष्टि, दृढ रूप से बाण चलानेवाले, पराक्रमी अश्वत्थामा आपकी ओर से युद्ध

आनर्त्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ महारथः सात्वतानां वरिष्ठः ।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ८ ॥
आर्तायनिः समदुष्प्रकम्प्यः सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम् ।
यः स्वस्रीयान्पाण्डवेयान्विसृज्य सत्यां वाचं स्वां चिकीर्षुस्तरस्वी ॥ ९ ॥
तेजोवधं सूतपुत्रस्य सङ्ख्ये प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात् ।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १० ॥
आजानेयैः सैन्धवैः पार्वतीयैर्नदीजकाम्बोजवनायुजैश्च ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ११ ॥
शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्महाबाहुर्बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद्भारसाहं व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥ १२ ॥
महारथः केकयराजपुत्रः सदश्वयुक्तं च पताकिनं च ।
रथं समारुह्य कुरुप्रवीर व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १३ ॥
तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः ।
व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्र व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे ॥ १४ ॥
दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये व्यवस्थितः सिंह इवावभासे ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन व्यवस्थितः समरे योत्स्यमानः ॥ १५ ॥
स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ १६ ॥
तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणिस्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १७ ॥

करने को प्रस्तुत है। द्वारकावासी भोजराज, यादवश्रेष्ठ, महारथी वीर कृतवर्मा आपका हित करने के निमित्त युद्ध करने को प्रस्तुत है॥६।८॥प्रतिज्ञा पालन के निमित्त अपने भानजे पाण्डवों को छोड़कर आपका साथ देनेवाले इन्द्रसम पराक्रमी दुर्द्धर्ष आर्तायन के पुत्र शल्य, जो युधिष्ठिर के आगे यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि युद्ध में कर्ण का तेज नष्ट करेंगे, अभी युद्ध करने को उपस्थित हैं। बहुमूल्य घोड़ों का रिसाला साथ लिये गान्धारराज शकुनि आपकी ओर से युद्ध करने को प्रस्तुत हैं॥९।११॥महाबाहु, महारथी और विचित्र अस्त्रों के युद्ध में निपुण कृपाचार्य भारी भार को सहनेवाले विचित्र, बड़े और दृढ़ धनुष को लिए समरभूमि में आपकी ओर से युद्ध करने को प्रस्तुत हैं। महारथी केकय देश का राजपुत्र भी, उत्तम घोड़ों और पताकाओं से शोभित रथ पर बैठकर, आपकी ओर से युद्ध करने को प्रस्तुत है। आपके पुत्र कुरुश्रेष्ठ पुरुमित्र भी सूर्य और अग्नि के समान चमकीले रथ पर बैठकर मेघहीन आकाश में सूर्य के समान प्रकाशमान हैं और पाण्डवों से युद्ध करने को प्रस्तुत हैं॥१२।१४॥युद्ध का महा उत्साह रखनेवाले राजा दुर्योधन, हाथियों में सिंह की भाँति, सुनहरे रथ पर बैठकर युद्ध करने के निमित्त प्रस्तुत हैं। राजाओं में सुवर्ण का कवच पहने हुए कमलवर्ण दुर्योधन थोड़े धुएँ से युक्त अग्नि, अथवा मेघ की आड़ में स्थित प्रकाश रहित सूर्य की भान्ति, कर्णवध के शोक से मलिनमुख होकर भी युद्ध के निमित्त प्रस्तुत हैं। इसी प्रकार से

ह्रीनिषेवो भारतराजपुत्र उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः ।
जारासन्धिः प्रथमश्चादृढश्च चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ॥ १८ ॥
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च व्यवस्थिताः सहसैन्या नराग्र्याः
कैतव्यानामधिपः शूरमानी रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ॥ १९ ॥
रथी हयी नागपत्तिप्रयायी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ।
वीरः श्रुतायुश्च धृतायुधश्च चित्राङ्गदश्चित्रसेनश्च वीरः ॥ २० ॥
व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्र्याः प्रहारिणो मानिनः सत्यसन्धाः
कर्णात्मजः सत्यसन्धो महात्मा व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः २१ ॥
अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
महद्बलं दुर्भिदमल्पवीर्यैः समन्वितौ योद्धुकामौ त्वदर्थे ॥ २२ ॥
एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—आख्याता जीवमाना ये परे सैन्या यथायथम् ।
इतीदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच—एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किञ्चिच्छेषं स्वकं बलम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा व्यामोहमागच्छच्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ।
मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्तं तिष्ठ सञ्जय ॥ २६ ॥

ढाल-तलवार लेकर युद्ध करनेवाले आपके पुत्र सुषेण, और सत्यसेन और चित्रसेन, ये तीनों वीर उत्साह-पूर्वक युद्ध करने को प्रस्तुत हैं । महाबली राजपुत्र उग्रायुध, सुदर्श, जरासन्ध का ज्येष्ठ पुत्र, चित्रायुध से श्रुतवर्मा, जय, शल, सत्यव्रत, दु:शल आदि अपनी-अपनी सेना साथ लिये युद्ध करने को प्रस्तुत हैं॥१५-१९॥हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों की सेना साथ लेकर चलनेवाले, प्रत्येक रण में शत्रुओं का संहार करनेवाले, वीर-मानी, कैतव्याधिपति राजपुत्र आपकी ओर से समर में मरने-मारने के निमित्त प्रस्तुत हैं । वीर श्रुतायु, धृतायुध, चित्राङ्गद, चित्रसेन आदि नररत्न, मानी, सत्यप्रतिज्ञ, प्रहार करने में निपुण योद्धा आपकी ओर से युद्ध करना चाहते हैं । सत्यप्रतिज्ञ महारथी कर्ण के तीन पुत्र अस्त्रविद्या में पारदर्शी और स्फूर्तिशाली हैं वे बड़े साहसी हैं और इसी कारण थोड़ी सी सेना लेकर पाण्डवों की विशाल सेना पर आक्रमण करने को उद्यत हैं । महेन्द्रतुल्य दुर्योधन इन्हें तथा अन्य अनेक महाप्रभाव-सम्पन्न अमितवीर्य योद्धाओं को साथ लिये गजसेना के मध्य विजय की अभिलाषा से युद्ध करने को प्रस्तुत हैं॥२३॥यह सुन-कर राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! हमारे और शत्रुपक्ष के जीवित तथा मृत वीरों के नाम तुमने मुझे बतला दिये । इस प्रकार दोनों पक्ष के बल की तुलना करके मुझे निश्चय हो गया है कि अब मेरे पक्ष की विजय नहीं होगी॥२४॥वैशम्पायन ने कहा—हे राजा जनमेजय ! महाराज धृतराष्ट्र यों कहने के पश्चात् अपने पक्ष के श्रेष्ठ-श्रेष्ठ अधिकांश वीरों की मृत्यु और थोड़े से बचे हुए अपने सैन्यबल का वृत्तान्त

व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
मनो मुह्यति चाऽङ्गानि न च शक्नोमि धारितुम् ॥ २७ ॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
भ्रान्तचित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥ २८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सुनने के कारण शोक से व्याकुल और अचेत से हो उठे। अब उन्होंने सञ्जय से कहा—हे सूत! क्षण भर ठहर जाओ। इस अप्रिय समाचार के सुनने से मेरा मन व्याकुल हो गया है। मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं। मैं किसी प्रकार धैर्य धारण नहीं कर सकता। अब वृद्ध राजा विह्वल और अचेतप्राय हो गये॥२५।२८॥

कर्ण पर्व का सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जनमेजय उवाच—श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान् ।
नरेन्द्रः किञ्चिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्राप्तवान्परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन्यदुक्तवान्काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच—श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसंमोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ॥ ३ ॥
चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ।
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४ ॥
दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युते ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥ ५ ॥
महीवियद्दिगम्बूनां सर्वनाशमिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥ ६ ॥

आठवाँ अध्याय ॥ ८ ॥

राजा जनमेजय ने कहा—हे तपोधन! कुरुराज धृतराष्ट्र ने महाबली कर्ण और युद्ध से विमुख न होनेवाले पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर, आत्मीय-विनाश और पुत्र-वियोग से उत्पन्न दुःख से अत्यन्त विह्वल होकर, जो कुछ कहा सो आप मुझे सुनाइए ॥१।२॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजेन्द्र! कर्ण की मृत्यु एक ऐसी अद्भुत घटना थी जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता और जो प्राणियों को मोहाकुल बना देनेवाली कही जा सकती है। सुमेरु पर्वत का अपना स्थान छोड़कर चलना, महात्मा शुक्राचार्य के चित्त को मोह अथवा बुद्धि विभ्रम होना, महातेजस्वी भीमकर्मा इन्द्र का शत्रुओं से हारना, महातेजोमय सूर्यपिण्ड का आकाश से पृथ्वीतल पर गिर पड़ना, अक्षय समुद्रजल का सूख जाना, पृथ्वी-आकाश दिशा और जलराशि का अद्भुत अत्यन्ताभाव अथवा पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्मों का कुछ फल न होना जैसे असम्भव, अद्भुत, अचिन्त्य, अयुक्त और अश्रद्धेय है वैसे ही कर्ण की मृत्यु भी थी॥३।६॥ उनकी

सञ्चिन्त्य निपुणं बुद्धया धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति सञ्चिन्त्य कर्णस्य समरे वधम् ॥ ७ ॥
प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति विनाशनम् ।
शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशये ॥ ८ ॥
विस्रस्ताङ्गः श्वसन्दीनो हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः ।
विललाप महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सञ्जयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः ।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन् ॥ १० ॥
वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्त्तते ।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥ ११ ॥
यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च ।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे ॥ १२ ॥
यमाश्रित्य महाबाहुं द्विषत्पां जयकांक्षया ।
दुर्योधनोऽकरोद्वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥ १३ ॥
स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे ।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥ १४ ॥
यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनञ्जयम् ।
न वृष्णीन्सहितानन्यान्स्वबाहुबलदर्पितः ॥ १५ ॥
शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।
अहं दिव्याद्रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥ १६ ॥

मृत्यु का समाचार सुनकर महाराज धृतराष्ट्र,थोड़ी देर तक सोचकर, समझ गये कि अब उनकी सेना का कोइ भी प्राणी जीता नहीं बचेगा । पहले उन्हें कर्ण के मरने का विश्वास ही नहीं होता था; किन्तु अन्त को उन्होंने सोचा कि प्राणिमात्र को एक दिन अवश्य मरना है और इसी से कर्ण कि मृत्यु भी कुछ विचित्र नहीं है । उनका सारा शरीर और हृदय शोक की अग्नि से मानों जल उठा । उनके सब अङ्ग शिथिल हो गये । वे दुःखित होकर दीन भाव से लम्बी श्वास लेकर हाय-हाय करते हुए इस प्रकार विलाप करने लगे—॥७।९॥हे सञ्जय! अधिरथ के पुत्र वीर कर्ण, सिंह और गजराज के समान पराक्रमी,वृषस्कन्ध,वृषनेत्र और वृषगति थे।युवा कर्ण के सब अङ्ग वज्र के समान थे। जैसे कोई साँड़ किसी साँड को सम्मुख पाकर पीछे नहीं हटता वैसे ही शत्रु से, चाहे वह साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, युद्ध करने में कर्ण कभी पीछे नहीं हटे। उनकी प्रत्यञ्चा और बाणवर्षा के निर्घोष और तलशब्द को सुनकर ही रथी,हाथी,घोड़े और पैदल योद्धा भयभीत हो जाते थे और युद्ध में सम्मुख नहीं ठहरते थे। शत्रुनाशन और रण से पीछे न हटनेवाले कर्ण का आश्रय पाकर ही, उन्हीं के बल पर दुर्योधन ने महारथी पाण्डवों से वैर किया था । उन्हीं पराक्रमी महारथी पुरुषसिंह कर्ण को अर्जुन ने रण में कैसे मार डाला!॥१०।१४॥ वीर कर्ण को अपने बाहुबल का ऐसा अलङ्कार था कि

इति यः सततं मन्दमब्रोचल्लोभमोहितम् ।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम् ॥ १७ ॥
योऽजयत्सर्वकाम्बोजानावन्त्यान्केकयैः सह ।
गान्धारान्मद्रकान्मत्स्यांस्त्रिगर्तांस्तङ्गणाञ्शकान् ॥ १८ ॥
पञ्चालांश्च विदेहांश्च कुलिन्दान्काशिकोसलान् ।
सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान्पुण्ड्रचीरकान् ॥ १९ ॥
वत्सान्कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकानपि ।
जित्वैतान्समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥ २० ॥
शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः ।
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः ॥ २१ ॥
दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित् ॥ २२ ॥
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः ।
वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो नरेष्वपि ॥ २३ ॥
तृतीयमन्यं लोकेषु वृषं नैवानुशुश्रुम ।
उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ॥ २४ ॥
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।
योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः ॥ २५ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं कृत्स्नामुर्वीमथाजयत् ।
यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः ॥ २६ ॥

वे अपने आगे श्रीकृष्ण, अर्जुन और अन्य व यादवों को कुछ समझते ही न थे। पाण्डवों के भय से आतुर राज्य के लोभी, लोभ से मोहित, चिन्ता से अधोमुख, मन्दमति दुर्योधन से कर्ण सदा कहा करते थे कि तुम क्यों चिन्ता करते हो? मैं अकेला ही अपराजित कृष्ण और अर्जुन को मारकर दिव्य रथ से पृथ्वी पर गिरा दूँगा॥१५।१७॥ अकेले कर्ण ने प्रज्वलित, कङ्कपत्रशोभित, तीक्ष्ण बाणों से सब काम्बोज, अवन्ती देश के, कैकेय देश के, गान्धार देश के, मद्र देश के, मत्स्य देश के, त्रिगर्त देश के, तङ्गण, शक, पाञ्चाल देश के, विदेह देश के, कुलिन्द, काशी राज्य के, कोसल देश के, सुह्म देश के, अङ्ग देश के, वङ्ग देश के, निषाद, पुण्ड्र, चीरक देश के, वत्स देश के, कलिङ्ग देश के, तरल, अश्मक, ऋषिक आदि अनेकानेक देशों के राजाओं और योद्धाओं को जीतकर उन्हें राजा दुर्योधन को कर देने के निमित्त विवश किया था। महारथी कर्ण ने दुर्योधन की उन्नति के निमित्त सब शत्रुओं को परास्त कर दिया था। वही महातेजस्वी वैकर्तन कर्ण, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता और कौरव दल के सेनापति होकर, किस प्रकार समर में शूर पाण्डवों के हाथ से मारे गये? ॥१७।२३॥ सर्वत्र जल बरसाने के कारण देवताओं में इन्द्र का नाम वृष (वर्षा करनेवाला) है, और सबको यथेष्ट वस्तु दान करने के कारण मनुष्यों में कर्ण को भी लोग वृष कहते थे। त्रिलोकी में तीसरा और कोई

परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम् ।
दुःखात्सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि सञ्जय ॥ १२ ॥
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः ।
नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥ १३ ॥
सहि पार्थं महानासीत्पुत्राणां मम सञ्जय ।
युद्धे हि निहतः शूरो विसृजन्सायकान्वहून् ॥ १४ ॥
को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम् ।
रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत्सायकार्दितः ॥ १५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद्विदारितम् ।
स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन्रुधिरोक्षितः ॥ १६ ॥
मातङ्ग इव मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः ।
यो वलं धार्त्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ॥ १७ ॥
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम् ।
स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥ १८ ॥
शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः ।
पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ॥ १९ ॥
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः ।
अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत्तु जायते ॥ २० ॥
अहो नु बलवद्दैवं कालश्च दुरतिक्रमः ।
पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः ॥ २१ ॥

सकूँगा ! मुझे यह सबसे बड़ा दुःख प्राप्त हुआ है। भीष्म,द्रोण और कर्ण की मृत्यु मेरे निमित्त घोर से घोर दुःखकारक है। कर्ण की भी मृत्यु हो जाने से अब मुझे निश्चय हो गया है, और मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि अब कौरवपक्ष सर्वनाश से नहीं बच सकता। हे सञ्जय! मेरे पुत्रों को कर्ण का बड़ा आश्रय था। वही शूर कर्ण युद्ध में असंख्य बाण बरसाकर अन्त को मृत्यु को प्राप्त हो गये॥११।१४॥ पुरुषश्रेष्ठ कर्ण जब मर गये तब मेरे ही जीवन का क्या प्रयोजन है! अवश्य ही अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर वीर कर्ण,वज्रपात से फटे हुए पर्वत शिखर के समान,रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े होंगे। रक्त से भीगे हुए वीर कर्ण,गजराज के गिराये हुए गजराज की भाँति,रणभूमि की शोभा को बढ़ा रहे होंगे।जो महाधनुर्द्धर कर्ण मेरे पुत्रों के बल, पाण्डवों के निमित्त विभीषिकास्वरूप और धनुर्द्धर वीरों के अगुआ थे,उन्हें आज अर्जुन ने मार डाला। वीर कर्ण मित्रों को सदा अभय देते थे॥१५।१८॥इन्द्र के मारे हुए बल दानव की भाँति वही कर्ण इस समय रणभूमि में पड़े होंगे। लँगड़े का मार्ग चलना, दरिद्री की इच्छा, प्यासे को जल की बूँदें और दुर्योधन का राज्यलोभ ये सब व्यर्थ हैं। सत्य है, दैव बड़ा बलवान् है और काल को कोई टाल नहीं सकता।मनुष्य कुछ करना चाहता है,किन्तु प्रबल दैव और ही कुछ कर देता है॥१९।२१॥हे सञ्जय! मेरा पुत्र दुःशासन

कच्चिद्विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम ।
कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे ॥ २२ ॥
कच्चिन्न निहतः शूरो यथान्ये क्षत्रियर्षभाः ।
युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा ॥ २३ ॥
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम् ।
शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना ॥ २४ ॥
पानीयं याचितं पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलम् ।
जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च ॥ २५ ॥
अब्रवीत्स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः ।
प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु वः ॥ २६ ॥
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुंक्ष्व पाण्डुसुतैः सह ।
अकुर्वन्वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः ॥ २७ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः ।
अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च सञ्जय ॥ २८ ॥
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः ।
यथा हि शकुनिं गृह्य च्छित्वा पक्षौ च सञ्जय॥ २९ ॥
विसर्जयन्ति संहृष्टास्ताड्यमानाः कुमारकाः ।
लूनपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते ॥ ३० ॥

क्या दीनभाव से पौरुषहीन होकर रण से भाग खड़ा हुआ था ? और क्या वह उसी दशा में मारा गया? उसने रण में कायरता तो नहीं दिखाई ? जैसे और श्रेष्ठ क्षत्रिय वीरता दिखाकर मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं वैसे ही वह भी मृत्यु को प्राप्त हो गया है न? आदि से अन्त तक युधिष्ठिर युद्ध के विरुद्ध ही रहे, किन्तु मेरे पुत्र मन्दमति दुर्योधन ने युधिष्ठिर की वह बात स्वीकार नहीं की; जैसे कोई मूर्ख पुरुष पथ्य औषध को नहीं ग्रहण करता॥२१।२४॥पितामह भीष्म ने शर-शय्या पर लेटे-लेटे पीने के निमित्त जल माँगा था और अर्जुन ने पृथ्वी को बाण से फोड़ करके तत्काल वहीं पर जल उत्पन्न कर दिया था। उस समय भी भीष्म ने दुर्योधन को समझाया था कि पुत्र। पाण्डवों से सन्धि कर लो। सन्धि करने से शान्ति स्थापित होगी। यह तुम पाण्डवों और कौरवों का युद्ध मेरी मृत्यु से ही समाप्त हो जाय। पाण्डवों से मित्रता करके तुम भ्रातृभाव को बढ़ाओ और हिस्सा बाँटकर राज्य करो॥२५।२७॥हे सञ्जय! उस समय मेरे पुत्र ने भीष्म की बात नहीं मानी; किन्तु अब वह अवश्य ही उस भूल के लिए शोक और पश्चात्ताप कर रहा होगा। दूरदर्शी विदुर और वृद्ध पितामह ने जो कहा था वही अब होता दिखाई पड़ता है। उस द्यूत (जुए) के कारण ही यह सब हुआ है। अमात्य पुत्र, पौत्र आदि के मरने से मैं उस पक्षी की भाँति कष्ट पा रहा हूँ, जिसके पङ्ख नोच लिये गये हों। बालक जैसे किसी पक्षी को पकड़-कर उसके पर काटकर उसे छोड़ दें, उसे सतावें और वह पर न होने के कारण कहीं उड़कर न जा सके, वैसी ही दशा इस समय मेरी होगी। मैं सजातीय

तथाहमपि संप्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः ।
क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच—इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहुदुःखितः ।
प्रोवाच सञ्जयं भूयः शोकव्याकुलमानसः ॥ ३२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—योऽजयत्सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान्केकयैः सह ।
गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे ॥ ३३ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं योऽजयत्पृथिवीं प्रभुः ।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः ॥ ३४ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना ।
के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३५ ॥
कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे ।
उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो निपातितः ॥ ३६ ॥
भीष्ममप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः ।
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ३७ ॥
तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि ।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः ॥ ३८ ॥
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन सञ्जय ।
अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः ॥ ३९ ॥
अश्रौषमहमेतद्वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।
भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद्वज्रभृत्स्वयम् ॥ ४० ॥

बन्धु-बान्धव-स्वजन आदि से हीन और सब प्रकार विवश, अर्थहीन, दीन और शत्रुओं के अधीन होकर सिवा कष्ट भोगने के क्या करूँगा ! कहाँ जाऊँगा ! ॥२८।३१॥ वैशम्पायन कहते हैं कि हे राजा जनमेजय! अत्यन्त दुःखित और शोक से व्याकुल राजा धृतराष्ट्र ने इस प्रकार बहुत विलाप करके फिर सञ्जय से कहा—हे सञ्जय ! जिन महावीर ने दुर्योधन के अभ्युदय के निमित्त युद्ध में सब काम्बोज, अम्बष्ठ, केकय, गान्धार, विदेह आदि देशों को जीता था, उन्हीं कर्ण को शूर पाण्डवों ने जीत लिया ! युद्ध में अर्जुन ने जब महाधनुर्धर कर्ण को मार डाला तब मेरे पक्ष के कौन कौन वीर युद्ध से भागे ? पाण्डवों के हाथ से मरे हुए कर्ण को रण में अकेले छोड़कर तो वे नहीं भाग खड़े हुए ? जिस प्रकार वीर कर्ण मारे गये, सो तुम पहले ही कह चुके हो ॥३२।३५॥ भीष्म पितामह शिखण्डी पर बाण नहीं चलाते थे, उसी अवस्था में उन श्रेष्ठ अजेय पितामह को शिखण्डी ने उग्र बाण मार-मारकर गिरा दिया। वैसे ही जब घायल द्रोणाचार्य शस्त्र त्यागकर योगस्थ हो गये, तब खड्गप्रहार करके धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया। इस प्रकार शत्रुओं ने छल करके, भीष्म और द्रोणाचार्य को मार डाला। यह मैं तुम्हीं से श्रवण कर चुका हूँ। मैं सत्य

न्यायेन युध्यमानौ हि तद्वै सत्यं ब्रवीमि ते ।
कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ॥ ४१ ॥
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत् ।
यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ॥ ४२ ॥
प्रायच्छद् द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरन्दरः ।
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः ॥ ४३ ॥
अशेत निहतः पत्री चन्दनेष्वरिसूदनः ।
भीष्मद्रोणमुखान्वीरान्योऽवमन्ये महारथान् ॥ ४४ ॥
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत ।
यश्च द्रोणमुखान्दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः ॥ ४५ ॥
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत्कार्मुकं शितैः ।
यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥ ४६ ॥
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत् ।
सहदेवं च निर्जित्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४७ ॥
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद्धर्मचिन्तया ।
यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥ ४८ ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान् ।
एतांश्च दिवसान्यस्य युद्धे भीतो धनञ्जयः ॥ ४९ ॥
नागमद् द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे ।
संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदाऽन्यतः ॥ ५० ॥

कहता हूँ कि न्यायपूर्वक धर्मयुद्ध करके भीष्म और द्रोणाचार्य को साक्षात् इन्द्र भी नहीं मार सकते थे ॥३९।४०॥ कर्ण समर में विविध दिव्य अस्त्रों के प्रयोग करनेवाले वीर इन्द्रतुल्य योद्धा थे, उनके समीप मृत्यु कैसे आ सकी ! इन्द्र ने कर्ण से कवच कुण्डल लेकर उन्हें बिजली सी चमकीली, दिव्य, सुवर्ण-भूषित, शत्रुनाशिनी एक शक्ति दी थी। कर्ण के तरकस में एक सर्पमुख, दिव्य, सुवर्ण-भूषित, तीक्ष्ण, युद्ध में शत्रु को मारनेवाला विकट बाण था ॥४१।४२॥ अभिमानी कर्ण भीष्म और द्रोण आदि शूरवीरों से भी नम्र नहीं हुए थे । उन्होंने परशुराम से महाघोर ब्रह्मास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी । युद्ध में जब अभिमन्यु ने द्रोण आदि वीरों को बाणवर्षा से व्यथित और विमुख कर दिया था, तब कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से अभिमन्यु का धनुष काट डाला था । वज्र के समान वेगशाली, भुजाओं में दस सहस्र हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन को कर्ण ने सहसा रथहीन कर दिया था और उपहास किया था । उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से सहदेव को रथ हीन और परास्त करके भी, केवल कुन्ती से की हुई प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए, मृत्यु को नहीं पहुँचाया, दया करके छोड़ दिया ॥४४।४८॥ सहस्रों प्रकार की माया फैला रहे, विजय के निमित्त यत्न कर रहे राक्षसराज घटोत्कच को कर्ण ने इन्द्र की दी हुई उसी अमोघ शक्ति से मार डाला। इतने दिनों तक अर्जुन कर्ण से डरते ही रहे,

एतान्हत्वा हनिष्यामि पश्चाद्वैकर्तनं रणे ।
इति व्यपदिशन्पार्थो वर्जयन्सूतजं रणे ॥ ५१ ॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा ।
रथभङ्गो न चेत्तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥ ५२ ॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः ।
को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद्धनुः ॥ ५३ ॥
विमुञ्चन्तं शरान्घोरान्दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम् ॥ ५४ ॥
ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः ।
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम् ॥ ५५ ॥
न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने ।
न हन्मि फाल्गुनं यावत्तावत्पादौ न धावये ॥ ५६ ॥
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः ।
यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत्पुरुषर्षभः ।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः ॥ ५८ ॥
मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान्बलात् ।
तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम् ॥ ५९ ॥
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत्कुरुसन्निधौ ।
न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः ॥ ६० ॥

सम्मुख द्वैरथ-युद्ध करने की उनकी सामर्थ्य नहीं पड़ी। वही कर्ण किस प्रकार समर में मारे गये? सशस्त्र मुझे ललकार रहे हैं; इनको मार लेने पर ही मैं कर्ण का सामना करूँगा,—यह कहकर अर्जुन कर्ण से युद्ध करना टालते रहे। उन्हीं को अर्जुन ने अकस्मात् कैसे मार डाला?॥४८।५२॥यदि युद्ध करते समय उनका रथ नहीं टूट गया था, धनुष नहीं कट गया था, या अस्त्र नहीं नष्ट हो गये थे, तो फिर शत्रुओं ने उन्हें कैसे मार डाला? महारथी कर्ण जब महा धनुष हाथ में लेकर घोर बाण और अस्त्र बरसाते हों, उस समय उन वीर को कौन पुरुषसिंह जीत सकता था? अवश्य ही उनका धनुष कट गया होगा या रथ पृथ्वी में धँस गया होगा, अथवा अस्त्र शस्त्र नष्ट हो गये होंगे, तभी तो वे मारे गये। कर्ण की मृत्यु का और कोई कारण मुझे नहीं देख पड़ता॥५२।५६॥वीर कर्ण की यह प्रतिज्ञा थी कि मैं जब तक अर्जुन को नहीं मार लूँगा, तब तक चरण नहीं धुलाऊँगा। धर्मराज युधिष्ठिर को कर्ण के भय से, त्रयोदश वर्ष तक निद्रा नहीं आती थी॥५६।५८॥पराक्रमी कर्ण के बाहुबल के विश्वास से ही मेरे पुत्र ने बलपूर्वक पाण्डवों की पत्नी (द्रौपदी) को भरी सभा में लाने का साहस किया था। यही नहीं, सभा में पाण्डवों के सम्मुख ही, सब कौरवों के आगे, उसने द्रौपदी को दासभार्या तक कहा था। महावीर कर्ण ने उस समय सभा में पाण्डवों के आगे

उपतिष्ठस्व भर्त्तारमन्यं वा वरवर्णिनि ।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाः संश्रावयन्रुषा ॥ ६१ ॥
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः ।
यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः ॥ ६२ ॥
न हनिष्यति कौन्तेयान्पक्षपातात्सुयोधन ।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ६३ ॥
किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी ।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः ॥ ६४ ॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः ।
यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ॥ ६५ ॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन्पार्थानवैक्षत ।
यस्य नासीद्भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ॥ ६६ ॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्त्तमपि सञ्जय ।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः ॥ ६७ ॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः ।
न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः ॥ ६८ ॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित्प्रमुखतोऽर्हति ।
अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः ॥ ६९ ॥
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः ।
येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥ ७० ॥

ही ऐसी कठोर बातें द्रौपदी से कही थीं कि हे पाञ्चाली ! अब ये पाण्डव तुम्हारे पति नहीं हैं, ये सब खोखले तिलों के समान निस्सार हैं। इसलिए हे सुन्दरी ! तुम किसी अन्य पुरुष को अपना पति बना लो। हे सञ्जय ! वही वीर-मानी कर्ण कैसे शत्रुओं के हाथ से मारे गये ?॥५८।६२॥कर्ण सदा दुर्योधन से कहा करते थे कि हे राजेन्द्र ! महारथी भीष्म या महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य यदि पक्षपात के कारण पाण्डवों को नहीं मारेंगे, तो मैं अकेला सबको मारूँगा, तुम अपने मन की चिन्ता दूर करो। स्निग्ध चन्दन-चर्चित मेरे बाण जब चारों ओर दौड़ने लगेंगे तब गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय तरकस कुछ नहीं कर सकेंगे। हे सञ्जय ! उन्हीं महाबलशाली कर्ण को अर्जुन ने कैसे मार लिया ? जिन कर्ण ने गाण्डीव धनुष से निकलनेवाले बाणों के उग्र स्पर्श की कुछ अपेक्षा न करके पाण्डवों की ओर देखकर द्रौपदी से कहा था कि हे पाञ्चाली ! तुम पति विहीन हो; जो अर्जुन, अभिमन्यु और श्रीकृष्ण से नहीं डरते थे; जो अपने बाहुबल के बल पर क्षणभर के लिए भी श्रीकृष्ण और पाण्डवों से नहीं नम्र हुए, उन्हें पाण्डवों ने कैसे मार डाला ?॥६२।६६॥मैं तो समझता हूँ कि इन्द्र सहित सब देवता भी कर्ण को नहीं मार सकते थे। कर्ण यदि प्रत्यञ्चा को हाथ से छुएँ, पहनने के लिए तल्त्र (दस्ताने) और कवच हाथ में लें, तो तभी

एतान्हत्वा हनिष्यामि पश्चाद्वैकर्तनं रणे ।
इति व्यपदिशन्पार्थो वर्जयन्सूतजं रणे ॥ ५१ ॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा ।
रथभङ्गो न चेत्तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥ ५२ ॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः ।
को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद्धनुः ॥ ५३ ॥
विमुञ्चन्तं शरान्घोरान्दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम् ॥ ५४ ॥
ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः ।
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम् ॥ ५५ ॥
न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने ।
न हन्मि फाल्गुनं यावत्तावत्पादौ न धावये ॥ ५६ ॥
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः ।
यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५७ ॥
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत्पुरुषर्षभः ।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः ॥ ५८ ॥
मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान्बलात् ।
तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम् ॥ ५९ ॥
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत्कुरुसन्निधौ ।
न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः ॥ ६० ॥

सम्मुख द्वैरथ-युद्ध करने की उनकी समर्थता नहीं पड़ी। वही कर्ण किस प्रकार समर में मारे गये?संशप्तक मुझे ललकार रहे हैं; इनको मार लेने पर ही मैं कर्ण का सामना करूँगा,—यह कहकर अर्जुन कर्ण से युद्ध करना टालते रहे। उन्हीं को अर्जुन ने अकस्मात् कैसे मार डाला?॥४८।५२॥यदि युद्ध करते समय उनका रथ नहीं टूट गया था, धनुष नहीं कट गया था, या अस्त्र नहीं नष्ट हो गये थे, तो फिर शत्रुओं ने उन्हें कैसे मार डाला? महारथी कर्ण जब महा धनुष हाथ में लेकर घोर बाण और अस्त्र बरसाते हों, उस समय उन वीर को कौन पुरुषसिंह जीत सकता था? अवश्य ही उनका धनुष कट गया होगा या रथ पृथ्वी में धँस गया होगा, अथवा अस्त्र शस्त्र नष्ट हो गये होंगे, तभी तो वे मारे गये। कर्ण की मृत्यु का और कोई कारण मुझे नहीं देख पड़ता॥५२।५६॥वीर कर्ण की यह प्रतिज्ञा थी कि मैं जब तक अर्जुन को नहीं मार लूँगा, तब तक चरण नहीं धुलाऊँगा। धर्मराज युधिष्ठिर को कर्ण के भय से, त्रयोदश वर्ष तक निद्रा नहीं आती थी॥५६।५८॥पराक्रमी कर्ण के बाहुबल के विश्वास से ही मेरे पुत्र ने बलपूर्वक पाण्डवों की पत्नी (द्रौपदी) को भरी सभा में लाने का साहस किया था। यही नहीं,सभा में पाण्डवों के सम्मुख ही, सब कौरवों के आगे, उसने द्रौपदी को दासभार्या तक कहा था। महावीर कर्ण ने उस समय सभा में पाण्डवों के आगे

उपतिष्ठस्व भर्त्तारमन्यं वा वरवर्णिनि ।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाः संश्रावयन्रुषा ॥ ६१ ॥
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः ।
यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः ॥ ६२ ॥
न हनिष्यति कौन्तेयान्पक्षपातात्सुयोधन ।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ६३ ॥
किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी ।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः ॥ ६४ ॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः ।
यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ॥ ६५ ॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन्पार्थानवैक्षत ।
यस्य नासीद्भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ॥ ६६ ॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्त्तमपि सञ्जय ।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः ॥ ६७ ॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः ।
न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः ॥ ६८ ॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित्प्रमुखतोऽर्हति ।
अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः ॥ ६९ ॥
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः ।
येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥ ७० ॥

ही ऐसी कठोर बातें द्रौपदी से कही थीं कि हे पाञ्चाली ! अब ये पाण्डव तुम्हारे पति नहीं हैं, ये सब खोखले तिलों के समान निस्सार हैं । इसलिए हे सुन्दरी ! तुम किसी अन्य पुरुष को अपना पति बना लो । हे सञ्जय ! वही वीर-मानी कर्ण कैसे शत्रुओं के हाथ से मारे गये ?॥५८।६२॥कर्ण सदा दुर्योधन से कहा करते थे कि हे राजेन्द्र ! महारथी भीष्म या महाधनुर्द्धर द्रोणाचार्य यदि पक्षपात के कारण पाण्डवों को नहीं मारेंगे, तो मैं अकेला सबको मारूँगा; तुम अपने मन की चिन्ता दूर करो । स्निग्ध चन्दन-चर्चित मेरे बाण जब चारों ओर दौड़ने लगेंगे तब गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय तरकस कुछ नहीं कर सकेंगे । हे सञ्जय ! उन्हीं महाबलशाली कर्ण को अर्जुन ने कैसे मार लिया ? जिस कर्ण ने गाण्डीव धनुष से निकलनेवाले बाणों के उग्र स्पर्श की कुछ अपेक्षा न करके पाण्डवों की ओर देखकर द्रौपदी से कहा था कि हे पाञ्चाली ! तुम पति विहीन हो; जो अर्जुन, अभिमन्यु और श्रीकृष्ण से नहीं डरते थे; जो अपने बाहुबल के बल पर क्षणभर के लिए भी श्रीकृष्ण और पाण्डवों से नहीं नम्र हुए, उन्हें पाण्डवों ने कैसे मार डाला ?॥६२।६६॥मैं तो समझता हूँ कि इन्द्र सहित सब देवता भी कर्ण को नहीं मार सकते थे । कर्ण यदि प्रत्यञ्चा को हाथ से छुएँ, पहनने के लिए तलत्र (दस्ताने) और कवच हाथ में लें, तो तभी

वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत ।
स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम् ॥ ७१ ॥
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः ।
हतं वैकर्त्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥
जयतः पाण्डवान्दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा वृषसेनं च संयुगे ॥ ७३ ॥
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः ।
पराङ्मुखांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥ ७४ ॥
विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः ।
अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥ ७५ ॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
स्वयं वैरं महत्कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥ ७६ ॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ७७ ॥
रुधिरे पीयमाने च किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।
सह गान्धारराजेन सभायां यदभाषत ॥ ७८ ॥
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन्किमब्रवीत् ।
द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ॥ ७९ ॥

कोई मनुष्य उनके सम्मुख ठहरने का साहस नहीं कर सकता था। पृथ्वी तल चाहे चन्द्र, सूर्य और अग्नि की किरणों से एकदम शून्य भी हो जाय, किन्तु कर्ण का मारा जाना सम्भव नहीं॥६६।७०॥हे सञ्जय! मेरे पुत्र दुर्मति दुर्योधन ने सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये हुए श्रीकृष्ण को, वीर कर्ण और अपने भाई दुःशासन की सहायता के बल पर ही शुष्क प्रत्युत्तर दे दिया था। इस समय वृषभ-स्कन्ध कर्ण और दुःशासन को शत्रुओं के हाथ से निहत देखकर वह अवश्य ही शोक कर रहा होगा। अर्जुन के हाथ से द्वैरथ युद्ध में कर्ण को निहत और पाण्डवों को विजयी देखकर दुर्योधन ने क्या कहा? मैं समझता हूँ कि युद्ध में दुर्मर्षण, वृषसेन आदि महारथियों को मरते और शत्रुपक्ष के महारथियों के प्रहार से अपनी सेना को भागने—महारथी राजाओं को रणविमुख होते—देखकर अवश्य दुर्योधन शोक कर रहा होगा॥७०।७५॥हे सञ्जय! किसी के समझाने से न माननेवाले, अभिमानी, दुर्मति, अजितेन्द्रिय दुर्योधन ने अपनी सेना को उत्साहहीन देखकर क्या कहा? हितचिन्तक इष्ट-मित्रों के रोकने पर भी दुर्योधन ने स्वयं पाण्डवों से विरोध किया और अन्त को यह दारुण युद्ध ठान दिया। अब युद्ध में प्रधान-प्रधान पुरुषों सहित अधिकांश सेना के मरने पर उस दुर्योधन ने क्या कहा? युद्ध में भीमसेन ने जब दुःशासन को मारकर उसके हृदय का रक्त पान किया तब दुर्योधन ने क्या कहा? कौरव-सभा में गान्धारराज शकुनि के साथ दुर्योधन कहा करता था कि वीर कर्ण युद्ध में अर्जुन को मारेंगे। अब अर्जुन के हाथ से कर्ण के मारे जाने पर दुर्योधन ने क्या कहा?॥७५।७९॥शकुनि

शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।
कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥ ८० ॥
हतं वैकर्त्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते ॥ ८१ ॥
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः ।
युवा रूपेण सम्पन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥ ८२ ॥
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत सञ्जय ।
आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ॥ ८३ ॥
कृपः शारद्वतस्तात-हते कर्णे किमब्रवीत् ।
मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः ।
किमभाषत सौवीरो मद्राणामधिपो बली ॥ ८५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वा रणदुर्जयाः ।
ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः ।
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त सञ्जय ॥ ८६ ॥
द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे ।
के वा मुखमनीकानामासन्सञ्जय भागशः ॥ ८७ ॥
मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्त्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ८८ ॥
केऽरक्षन्दाक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः ।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ८९ ॥

ने पहले हर्षपूर्वक द्यूतक्रीड़ा का ठान ठाना और पाण्डवों को कपट से जीतकर राज्य से निकाल दिया था। इस समय महावीर कर्ण के मरने पर उस शकुनि ने क्या कहा? हृदिक के पुत्र, यादव महारथी कृतवर्मा ने शूरवीर कर्ण की मृत्यु देखकर क्या कहा? ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग जिनसे धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं और सेवा करते हैं उन बुद्धिमान्, युवा, सुरूप, महायशस्वी वीर अश्वत्थामा ने, कर्ण के मारे जाने पर, क्या कहा? गौतमवंशी, धनुर्वेद के आचार्य, श्रेष्ठ योद्धा कृपाचार्य ने कर्ण के मारे जाने पर क्या कहा?॥७९।८४॥ कर्ण के रथ को हाँकनेवाले, सभा को शोभित करनेवाले, महाधनुर्द्धर, मद्रराज शल्य ने कर्ण की मृत्यु होने पर क्या कहा? और जो पृथ्वीतल के अनेक राजा युद्ध करने आये थे, उन रण में दुर्जय राजाओं ने कर्ण के मारे जाने पर क्या-क्या कहा? हे सञ्जय! पहले पुरुषश्रेष्ठ महारथी द्रोणाचार्य के मारे जाने पर मेरी सेना के पक्षों में कौन-कौन वीर आगे स्थित हुए थे? मद्रराज शल्य किस प्रकार कर्ण के सारथी बनाये गये? यह सब समाचार आप मुझसे कहो॥८४।८८॥ महावीर कर्ण जब युद्ध करने चले थे तब किन वीरों ने उनके रथ के दाहने पहिये की, किन वीरों ने बायें पहिये की और किन वीरों ने उनके

के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः ।
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः ॥ ९० ॥
पाण्डवाश्च स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदाः ॥ ९१ ॥
स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ९२ ॥
मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ ९३ ॥
तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे त्यक्तजीवितौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे ॥ ९४ ॥
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णं च पाण्डवैः ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः ॥ ९५ ॥
द्रोणे हते च यद्वृत्तं कौरवाणां परैः सह ।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ९६ ॥
यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत् ।
तथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम् ॥ ९७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

पृष्ठ भाग की रक्षा की थी ? किन शूरों ने वीर कर्ण का साथ दिया और कौन कायर उन्हें छोड़कर भाग खड़े हुए ? तुम सब कौरव दल के लोग मिलकर भी कर्ण की रक्षा नहीं कर सके ? तुम लोगों के सम्मुख ही महारथी कर्ण कैसे मारे गये ? पाण्डव लोग स्वयं शूर हैं। वे महारथी कर्ण पर आक्रमण करने के समय उसी प्रकार बाणों की वर्षा कर रहे होंगे जिस प्रकार मेघ जल बरसाते हैं। हे सञ्जय! कर्ण के पास वह जो सर्पमुख श्रेष्ठ बाण था, वह कैसे व्यर्थ हो गया? ॥८८।९२॥मेरी सेना के श्रेष्ठ और प्रधान योद्धा मारे जा चुके हैं,सबका उत्साह नष्ट हो गया है। मुझे जान पड़ता है कि जो मेरी सेना शेष रह गयी है,वह भी अब नहीं बच सकती। महावीर पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण ने मेरे निमित्त अपने प्राण दे दिये। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर, मैं समझता हूँ कि मेरा जीता रहना व्यर्थ है। दस सहस्र हाथियों के बल के बराबर कर्ण का बाहुबल था। वे कर्ण भी पाण्डवों के हाथ से मारे गये। बारम्बार इस प्रकार का कष्ट मैं नहीं सह सकता। अब तुम यह बतलाओ कि द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कौरवों और पाण्डवों ने कैसे युद्ध किया ? कौरवों के हितैषी कर्ण ने जिस प्रकार पाण्डवों से युद्ध किया और अन्त को वे जिस प्रकार मारे गये, सो मेरे मुझसे कहो॥९२।९७॥

—०—

कर्णपर्व का नवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

सञ्जय उवाच हते द्रोणे महेष्वासे नस्मिन्नहनि भारत ।
कृते च मोघसङ्कल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १ ॥

द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे ।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद्भ्रातृभिर्वृतः ॥ २ ॥
तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥ ३ ॥
स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत ॥ ४ ॥
लब्धलक्षैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा ।
सन्ध्याकालं समासाद्य प्रत्यहारमकारयत् ॥ ५ ॥
कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिविरं स्वकम् ।
कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ॥ ६ ॥
पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः ॥ ७ ॥
ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना ।
तानाभाष्य महेष्वासान्प्राप्तकालमभाषत ॥ ८ ॥
मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम् ।
एवङ्गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः ॥ ९ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः ।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा ॥ १० ॥

दसवाँ अध्याय ॥ १० ॥

*सञ्जय ने कहा—हे महाराज! धनुर्द्धरश्रेष्ठ द्रोणा*चार्य की मृत्यु के दिन महारथी अश्वत्थामा ने सारी पाण्डवसेना का नाश करने की प्रतिज्ञा की, किन्तु नारायणास्त्र और आग्नेय अस्त्र निष्फल होने के कारण उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हो पाई। उस समय कौरवों की सेना इधर-उधर भागने लगी। उधर अर्जुन अपनी सेना को,व्यूह-रचनापूर्वक,समराङ्गण में खड़ी करके भाइयों सहित युद्ध करने को स्थित हुए॥१।२॥आपके पुत्र राज दुर्योधन भी महावीर अर्जुन को युद्धभूमि में स्थित और अपनी सेना को भागते देखकर अपने पौरुष से उसे लौटाने लगे। अपने बाहुबल के आश्रय से दुर्योधन ने अपनी सेना को फिर युद्ध के लिये उत्साहित करके बहुत देर तक—विजयी, उत्साहित, प्रसन्न और शत्रुजय के लिये यत्न कर रहे—पाण्डवों से युद्ध किया। अन्त को सूर्यास्त होने पर युद्ध समाप्त किया गया॥३।५॥कौरवगण युद्ध समाप्त करके सेना सहित अपने शिविर में गये। वहाँ सब लोग अत्यन्त मनोहर कोमल बिछौनेवाले महामूल्य आसनों और पलँगों पर बैठकर, सुख-शय्याओं पर विराजमान देवताओं की भाँति, सम्मति करने लगे। उस समय राजा दुर्योधन ने मधुर वाक्यों से उन श्रेष्ठ वीरों को प्रसन्न करते हुए समय के अनुकूल यों कहा—॥६। ८॥हे नरपतियो! आप लोग बुद्धिमानों में श्रेष्ठ नररत्न हैं। इस समय आप अपनी-अपनी सम्मति के अनुसार यह बतलावें कि हमारे लिए आवश्यक कर्त्तव्य क्या है॥९॥सञ्जय कहते हैं—*हे महाराज! दुर्योधन*

तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम् ।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ॥ ११ ॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे ।
रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ॥ १२ ॥
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः ।
लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ॥ १३ ॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः ।
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥ १४ ॥
सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते ।
ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ॥ १५ ॥
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत ।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून् ॥ १६ ॥
एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ १७ ॥
एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तवात्मजः ।
आशां बहुमतीं चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा ॥ १८ ॥
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ।
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ॥ १९ ॥
ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वाऽस्य तद्वचः ।
प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥ २० ॥

के यों पूछने पर युद्ध की इच्छा रखनेवाले, सिंहासनों पर विराजमान, वे पुरुषसिंह भाँति भाँति की चेष्टाओं से युद्ध के लिए उत्साह प्रकट करने लगे। युद्ध में प्राण देने के लिए प्रस्तुत नरपतियों की चेष्टाएँ और सङ्केत देख सुनकर और बालसूर्य के समान तेजस्वी राजा दुर्योधन के मुख की ओर देखकर बातचीत करने में चतुर अश्वत्थामा ने कहा—हे श्रेष्ठ वीरो! स्वामि भक्ति, देश काल आदि की अनुकूलता, बल या युद्ध कौशल और नीति ये ही उपाय युद्ध में विजय पाने के पण्डितों ने बतलाये हैं। किन्तु यह सब उपाय दैव की अनुकूलता के आश्रित हैं॥१०।१३॥यद्यपि हमारे पक्ष के ऐसे देवतुल्य महारथी मारे जा चुके हैं, जो कि पृथ्वी पर श्रेष्ठ वीर, नीतिज्ञ, रणनिपुण, बली, स्वामि भक्त और देश काल के श्रेष्ठ ज्ञाता थे, तो भी हमें जय की आशा न छोड़नी चाहिए। सुनीति के साथ पूर्वोक्त उपायों का प्रयोग करने से दैव भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। स्वामिभक्ति आदि उपायों की अपेक्षा दैव को प्रबल समझना युक्त नहीं है। इसलिए इस समय हम लोग योद्धा के सब गुणों से युक्त, नरवर, कर्ण को अपना सेनापति बनाकर शत्रुओं का संहार करेंगे। ये कर्ण महाबली, शूर, अस्त्र विद्या में निपुण, रणदुर्मद और साक्षात् यमराज के समान शत्रुओं के लिए असह्य हैं। ये रण में शत्रुओं को सब प्रकार से जीत सकते हैं॥१३।१७॥हे महाराज! अश्वत्थामा के मुख से ये

स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥
कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि ।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः ॥ २२ ॥
श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत्तव रोचते ।
भवान्प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥ २३ ॥
भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम ।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः ॥ २४ ॥
वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनञ्जये ।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात्तव ॥ २५ ॥
पितामहत्वं सम्प्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे ।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु ॥ २६ ॥
न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे ॥ २७ ॥
हते तस्मिन्महेष्वासे शरतल्पगते तथा ।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत्पुरःसरः ॥ २८ ॥
तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे मतिः ।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम् ॥ २९ ॥

प्रिय और हितकर वचन सुनकर राजा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए। भीष्म और द्रोण की मृत्यु के उपरान्त दुर्योधन के हृदय में यह बड़ी आशा थी कि कर्ण अकेले ही पाण्डवों को जीत लेंगे। उसी आशा से दुर्योधन को धैर्य हुआ। उन्होंने आश्वस्त होकर, अपने बाहुबल का विश्वास करके, स्नेहपूर्वक कर्ण से कहा॥१८।२१॥ हे मित्र कर्ण! अपने ऊपर तुम्हारे परम स्नेह, बाहुबल तथा मित्रता को मैं विशेष रूप से जानता हूँ, तथापि मैं तुमसे इस समय जो हित की बात कहता हूँ उसे सुन लो, फिर जो तुम्हारा मन चाहे और जो तुमको पसन्द आए वही करना। तुम बड़े चतुर और बुद्धिमान् हो, मुझे तुम्हारा ही आश्रय है। मेरे सेनापति पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण की मृत्यु हो चुकी है। वे दोनों आश्रय अवश्य थे, किन्तु वृद्ध थे। परन्तु युवा होने के कारण तुम उनसे अधिक बली और स्फूर्तिशाली हो। इसलिए अब तुम मेरे सेनापति बनो। भीष्म और द्रोण दोनों महारथी वृद्ध होने के अतिरिक्त अर्जुन से स्नेह भी रखते थे। तुम्हारे कहने से ही मैंने प्रथम सेनापति बनाकर उन दोनों वीरों का सम्मान किया था॥२२।२५॥ महात्मा भीष्म पितामह हमारे ही समान पाण्डवों के भी पितामह थे। इसी सम्बन्ध का विचार करके उन्होंने दस दिन के युद्ध में पूर्णरूप से पाण्डवों की रक्षा की। तुम उस समय यह कहकर कि "जब तक पितामह जीते रहेंगे, मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा," शस्त्र-त्याग कर चुके थे। इसी से अवसर पाकर, शिखण्डी को आगे खड़ा करके, अर्जुन ने पितामह को रथ से गिरा दिया। महाधनुर्धर पितामह जब शरशय्या पर शयन कर चुके तब हे पुरुषसिंह! तुम्हारे कहने से द्रोणाचार्य सेनापति बनाये गये। मेरा विचार है कि उन्होंने भी, गुरु होने के कारण, अपने शिष्य पाण्डवों की रक्षा की। वृद्ध

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रमम् ।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन् ॥ ३० ॥
भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः ।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम् ॥ ३१ ॥
स भवान्धुर्यवत्संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति ।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना ॥ ३२ ॥
देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः ।
तथा भवानिमां सेनां धार्त्तराष्ट्रीं बिभर्तु वै ॥ ३३ ॥
जहि शत्रुगणान्सर्वान्महेन्द्रो दानवानिव ।
अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः ॥ ३४ ॥
द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षेतां महाचमूम् ॥ ३५ ॥
भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः ।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृञ्जयाश्च ह ॥ ३६ ॥
यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन्स्वेन तेजसा ।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून्प्रतापय ॥ ३७ ॥
सञ्जय उवाच—आशा बलवती राजन्पुत्रस्य तव याभवत् ।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ॥ ३८ ॥
तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत् ।
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थिताग्रे संयुयुत्सति ॥ ३९ ॥

आचार्य को दुष्ट धृष्टद्युम्न ने मार डाला॥२६।२९॥हे पराक्रमी कर्ण ! उन दोनों प्रधान सेनापतियों के मारे जाने पर अब मुझे तुम्हारे समान दूसरा योद्धा अपनी सेना में नहीं देख पड़ता । निस्सन्देह तुम्हीं मुझे इस युद्ध में विजय दिलाओगे । तुम युद्ध के पहले, बीच में और अन्त में सदा मेरा हित करनेवाले हो । तुम स्वयं इस समय युद्ध में श्रेष्ठ समर्थ पुरुष के समान युद्ध का भार सँभालो और आप ही सेनापति के पद पर अपना अभिषेक करो । यही तुमको उचित है। देवताओं के सेनापति जैसे भगवान् कार्त्तिकेय हैं॥३०।३३॥वैसे ही तुम हमारे सेनापति होकर इस कौरव-सेना की रक्षा और सञ्चालन करते हुए वैसे ही शत्रुओं का संहार करो जैसे इन्द्र दानवों को मारते हैं । दैत्यगण जैसे पुरुषोत्तम विष्णु को देखकर भाग गये थे, वैसे ही तुमको युद्ध में सेनापति होकर खड़े हुए देख पाण्डवों और पाञ्चालों के महारथी भाग खड़े होंगे। इसलिए हे वीर ! तुम इस महासेना का सञ्चालन करो । तुम जब युद्ध के लिए उद्यत होंगे तब मन्दमति पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयगण अपने अनुचरों सहित भाग खड़े होंगे । सूर्यदेव जैसे उदय होकर अपने तेज से घने अँधेरे को मिटा देते हैं वैसे ही तुम भी शत्रुओं को सन्ताप पहुँचाओ॥३४।३७॥सञ्जय कहते हैं—हे राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधन को प्रबल आशा थी कि पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के

कर्ण उवाच—उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव सन्निधौ ।
जेष्यामि पाण्डवान्सर्वान्सपुत्रान्सजनार्दनान् ॥ ४० ॥
सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्रसंशयः ।
स्थिरो भव महाराज जितान्विद्धि च पाण्डवान् ॥ ४१ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः ।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥
सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः ।
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥
दुर्योधनमुखा राजन्राजानो विजयैषिणः ।
शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ४४ ॥
तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः ।
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ४५ ॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः ।
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ ४७ ॥
ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च ।
वाचयामास विप्राग्र्यान्राधेयः परवीरहा ॥ ४८ ॥

मारे जाने पर कर्ण पाण्डवों को जीत लेंगे। इसी निश्चय पर दुर्योधन ने कहा कि हे कर्ण! अर्जुन किसी प्रकार संग्राम में तुम्हारे सामने नहीं ठहर सकते॥३८।३९॥ राजा दुर्योधन के इस प्रकार कहने पर महाबली कर्ण ने प्रसन्न होकर सब राजाओं के मध्य में दुर्योधन को प्रसन्न करते हुए कहा—हे महाराज! मैं तुम्हारे आगे पहले ही कह चुका हूँ कि कृष्ण सहित सब पाण्डवों और उनके पुत्रों को जीत लूँगा। मैं तुम्हारा सेनापति अवश्य बनूँगा। निर्भय और निश्चिन्त होकर पाण्डवों को पराजित ही समझो॥४०।४१॥सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! यह सुनकर राजाओं सहित दुर्योधन, देवगण सहित इन्द्र की भाँति, प्रसन्नतापूर्वक अपने आसन से उठ खड़े हुए। जैसे देवताओं ने स्कन्द को सेनापति बनाया था वैसे ही कर्ण को सेनापति बनाकर, उनका सत्कार करने के लिए, सब लोग उद्यत हुए। हे महाराज! तब विजय की इच्छा रखनेवाले दुर्योधन आदि राजाओं ने विधिपूर्वक कर्ण का अभिषेक किया॥४२।४५॥गूलर के आसन पर रेशमी कपड़ा बिछा हुआ था, उसी पर महावीर कर्ण आराम से बैठे। शास्त्रोक्त विधि से मन्त्र पढ़-पढ़कर, सोने के और मिट्टी के कलशों में भरे हुए अभिमन्त्रित पवित्र जल से, उनका अभिषेक किया गया। हाथी दाँत के पात्रों और गैंड़े तथा गवय आदि के सींगों में जल भरकर उससे, और पवित्र गन्धवाली ओषधियों तथा मणि-मुक्तायुक्त अन्य वस्तुओं (आभूषण आदि) से तथा अन्य सामग्रियों से कर्ण का अभिषेक किया गया। उस अभिषेक के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सत् शूद्रगण श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए कर्ण की स्तुति करने लगे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार सेनापति के पद पर अपना अभिषेक हो चुकने पर शत्रुदलन कर्ण ने

जय पार्थान्सगोविन्दान्सानुगांस्तान्महामृधे ।
इति तं वन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥ ४९ ॥
जहि पार्थान्सपञ्चालान्राधेय विजयाय नः ।
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥ ५० ॥
न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः ।
उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥ ५१ ॥
नहि पार्थाः सपञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवायतः ।
आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ॥ ५२ ॥
अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः ।
अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ५३ ॥
सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव ।
अमन्यत तदात्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥ ५४ ॥
कर्णोऽपि राजन्सम्प्राप्य सैनापत्यमरिन्दमः ।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ५५ ॥
तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥ ५६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रेष्ठ वेदपाठी ब्राह्मणों को सुवर्ण, धन, गाय आदि देकर सन्तुष्ट किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया ॥४६।४८॥तब ब्राह्मण और सूत मागध-बन्दीजन कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देने लगे कि हे वीर! तुम्हारी जय हो। सूर्य जैसे उदय होकर अपनी उग्र किरणों से अँधेरे को दूर करते हैं वैसे ही तुम भी कृष्ण और अनुचरों सहित पाण्डवों को महायुद्ध में परास्त करो और विजय प्राप्त करो। तुम पाञ्चालों की सेना का संहार करो। उल्लू पक्षी जैसे सूर्य की किरणों को देख नहीं सकते, वैसे ही कृष्ण सहित सब पाण्डव तुम्हारे छोड़े हुए प्रज्वलित बाणों को देख भी नहीं सकेंगे, उनके स्पर्श को सहने को कौन कहे। वज्रपाणि इन्द्र के सम्मुख जैसे दानव नहीं स्थित हो सकते, वैसे ही तुम्हारे आगे पाण्डव और पाञ्चालगण नहीं स्थित हो सकेंगे ॥४९।५२॥हे पुरुषश्रेष्ठ! इस प्रकार सेनापति-पद पर अभिषेक होने के उपरान्त तेजस्वी कर्ण का तेज और भी अधिक हो गया। वे दूसरे सूर्य के समान जान पड़ने लगे। आपके पुत्र राजा दुर्योधन, जिनके सिर पर मृत्यु सवार है, कर्ण को सेनापति बनाकर अपने को कृतार्थ समझने लगे। महाबली कर्ण ने सेनापति होकर सब सेनाओं को सूर्योदय के समय युद्ध के निमित्त प्रस्तुत होने की आज्ञा दे दी। हे भरतकुलश्रेष्ठ! तारकामय-संग्राम में देवगण सहित कार्त्तिकेय की जैसी शोभा हुई थी वैसी ही शोभा को प्राप्त होकर वीर कर्ण आपके पुत्र और अन्य राजाओं के मध्य में शोभित हुए॥५३।५६॥

—०—

कर्ण पर्व का दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सैनापत्यं तु सम्प्राप्य कर्णो वैकर्त्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥ १ ॥
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा ।
अकरोत्किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥ ३ ॥
महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ४ ॥
कल्पतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम् ।
सन्नह्यतां नराणां च वाजिनां च विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः ॥ ६ ॥
ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्षेण केतुना ॥ ७ ॥
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिङ्किणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥ ८ ॥
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥ ९ ॥
ध्मापयन्वारिजं राजन्हेमजालविभूषितम् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्त्तस्वरविभूषितम् ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मेरे पुत्र दुर्योधन ने, अपने सहोदर भाई के तुल्य स्नेहपूर्ण मधुर वचन कहकर, जब कर्ण को सेनापति बनाया तब मेरे पुत्र के हितचिन्तक प्रिय करनेवाले महामति कर्ण ने, सेना को सूर्योदय के समय सुसज्जित होने की आज्ञा देकर, फिर क्या किया?॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महावीर कर्ण का अभिप्राय जानकर कौरवगण सेना को सुसज्जित होने की आज्ञा देने लगे। उस समय तुरही नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। हे महाराज! रात्रि के पिछले पहर आपकी सेना के मध्य तैयारी होने लगी और "तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ" का बड़ा कोलाहल चारों ओर सुनाई पड़ने लगा। सजे जा रहे बड़े बड़े हाथियों और घोड़ों का, जोते जा रहे रथों का और एक दूसरे को तैयार होने के निमित्त पुकार रहे और तैयार हो रहे योद्धाओं का भारी शब्द आकाश में गूँज उठा॥३।६॥उस समय महाबली कर्ण पताकायुक्त रथ पर विराजमान देख पड़े। उस रथ में श्वेत ध्वजा फहरा रही थी। घोड़े भी बगले के रङ्ग के श्वेत लगे हुए थे। केतु में सुवर्ण की, हाथी की जञ्जीर (नागकक्षा) शोभायमान हो रही थी। सुवर्ण पृष्ठ शोभित दृढ़ धनुष, सैकड़ों भरे हुए तरकस, गदा, वरूथ, शतघ्नी, किङ्किणी, शक्ति, शूल, तोमर, अनेक धनुष

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम् ।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो निघ्नन्दुरासदम् ॥ ११ ॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष ।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १२ ॥
ततस्तु त्वरयन्योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद्बलम् ॥ १३ ॥
व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः ।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान्विजिगीषया ॥ १४ ॥
मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन्व्यवस्थितः ।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥ १५ ॥
द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः ।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥ १६ ॥
वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः ।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः ॥ १७ ॥
पादे तु दक्षिणे राजन्गौतमः सत्यविक्रमः ।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥ १८ ॥
अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
महत्या सेनया सार्द्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥
दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसङ्गरः ।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः ॥ २० ॥

आदि अस्त्र-शस्त्र और सामान उसमें रक्खे हुए थे।वह रथ निर्मल सूर्य के समान जगमगा रहा था॥७।९॥वायु के प्रतिकूल होने के कारण उसकी पताका पीछे की ओर फहरा रही थी । उस रथ पर बैठकर वीर कर्ण सुवर्णजाल-भूषित शङ्ख बजाने और सुवर्णभूषित प्रत्यञ्चा का शब्द करने लगे । उदय हो रहे सूर्य के समान तेजस्वी महारथी कर्ण को, अन्धकार सदृश, भय का नाश करते हुए रथ पर स्थित देखकर कौरवों को भीष्म, द्रोण तथा अन्य श्रेष्ठ वीरों की मृत्यु का शोक भूल सा गया॥१०।१२॥अब शङ्ख बजाकर योद्धाओं को शीघ्र आगे बढ़ाते हुए कर्ण कौरवों की भारी सेना को लेकर चले। शत्रुओं को सन्ताप पहुँचानेवाले महारथी कर्ण, मकर व्यूह की रचना करके, पाण्डवों को जीतने के निमित्त उनकी ओर बढ़े॥१३।१४॥हे राजेन्द्र ! उस मकर-व्यूह के मुख में वीर कर्ण, नेत्रों में महावीर शकुनि और महाबली उलूक, मस्तक में अश्वत्थामा, ग्रीवा में दुर्योधन के सब भाई और मध्य भाग में सब श्रेष्ठ सेना साथ लिए राजा दुर्योधन स्वयं खड़े हुए। बायें चरण में युद्धदुर्मद गोपालों की (नारायणी)सेना लिए हुए कृतवर्मा स्थित हुए । दाहने चरण में सत्यविक्रमी कृपाचार्यजी महाधनुर्द्धर दाक्षिणात्यों की और त्रिगर्त देश की सेना साथ लेकर सुशोभित हुए । बायें चरण के पीछे बहुत सी सेना सहित मद्रराज शल्य और दाहने चरण के पिछले भाग में एक

पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा ।
चित्ररथश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥
तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥
पश्य पार्थ यथा सेना धार्त्तराष्ट्रीह संयुगे ।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥
हतवीरतमा ह्येषां धार्त्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥
एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते ।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ २५ ॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन ॥ २६ ॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २७ ॥
भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥ २८ ॥
वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः ।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३० ॥

सहस्र रथ और तीन सौ हाथी लिये सत्यसन्ध सुषेण स्थित हुए। व्यूह के पिछले भाग(पूँछ)में सेना सहित महाबली चित्र और चित्रसेन नाम के दोनों सहोदर भाई स्थित हुए। इस प्रकार मत्स्याकार के सदृश व्यूह बनाया गया॥१५।२१॥हे महाराज ! वीर कर्ण ने जब इस प्रकार युद्ध के निमित्त तैयारी की तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन की ओर देखकर, कहने लगे—हे वीरशिरोमणि अर्जुन ! यह देखो, कर्ण ने वीरों के द्वारा सुरक्षित कौरवसेना को,व्यूह बना करके, स्थित किया है। हे पार्थ ! दुर्योधन की सेना के सब श्रेष्ठ योद्धा मारे जा चुके हैं, सेना भी थोड़ी ही शेष रही है। मैं तो अब इसे तृणतुल्य समझता हूँ। किन्तु अभी एक कर्ण महारथी अवशिष्ट है॥२२।२५॥इसे देवता, असुर,गन्धर्व,किन्नर,नाग आदि चराचर तीनों लोकों के प्राणी नहीं जीत सकते। हे महाबाहु ! इस महारथी को आज तुम मार डालो; बस, तुम्हारी पूर्ण विजय हो जायगी और मेरे हृदय से बारह वर्ष का सन्ताप निकल जायगा। यह जानकर अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार व्यूह बनाकर युद्ध करो॥२५।२७॥हे राजेन्द्र ! अर्जुन ने बड़े भाई के ये वचन सुनकर अपनी सेना को अर्धचन्द्राकार व्यूह में स्थित किया। व्यूह के वाम भाग में भीमसेन, दक्षिण भाग में महाधनुर्द्धर धृष्टद्युम्न, मध्यभाग में राजा युधिष्ठिर और स्वयं अर्जुन स्थित हुए। धर्मराज के पीछे नकुल और सहदेव स्थित

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम् ।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो निघ्नन्दुरासदम् ॥ ११ ॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष ।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १२ ॥
ततस्तु त्वरयन्योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद्बलम् ॥ १३ ॥
व्यूह्य व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः ।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान्विजिगीषया ॥ १४ ॥
मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन्व्यवस्थितः ।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥ १५ ॥
द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः ।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥ १६ ॥
वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः ।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः ॥ १७ ॥
पादे तु दक्षिणे राजन्गौतमः सत्यविक्रमः ।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥ १८ ॥
अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
महत्या सेनया सार्द्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥
दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसङ्गरः ।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः ॥ २० ॥

आदि अस्त्र-शस्त्र और सामान उसमें रक्खे हुए थे। वह रथ निर्मल सूर्य के समान जगमगा रहा था॥७।९॥ वायु के प्रतिकूल होने के कारण उसकी पताका पीछे की ओर फहरा रही थी। उस रथ पर बैठकर वीर कर्ण सुवर्णजाल-भूषित शङ्ख बजाने और सुवर्णभूषित प्रत्यञ्चा का शब्द करने लगे। उदय हो रहे सूर्य के समान तेजस्वी महारथी कर्ण को, अन्धकार सदृश, भय का नाश करते हुए रथ पर स्थित देखकर कौरवों को भीष्म, द्रोण तथा अन्य श्रेष्ठ वीरों की मृत्यु का शोक भूल सा गया॥१०।१२॥ अब शङ्ख बजाकर योद्धाओं को शीघ्र आगे बढ़ाते हुए कर्ण कौरवों की भारी सेना को लेकर चले। शत्रुओं को सन्ताप पहुँचानेवाले महारथी कर्ण, मकर व्यूह की रचना करके, पाण्डवों को जीतने के निमित्त उनकी ओर बढ़े॥१३।१४॥ हे राजेन्द्र! उस मकर-व्यूह के मुख में वीर कर्ण, नेत्रों में महावीर शकुनि और महाबली उलूक, मस्तक में अश्वत्थामा, ग्रीवा में दुर्योधन के सब भाई और मध्य भाग में सब श्रेष्ठ सेना साथ लिए राजा दुर्योधन स्वयं खड़े हुए। बायें चरण में युद्धदुर्मद गोपालों की (नारायणी)सेना लिए हुए कृतवर्मा स्थित हुए। दाहने चरण में सत्यविक्रमी कृपाचार्यजी महाधनुर्द्धर दाक्षिणात्यों की और त्रिगर्त देश की सेना साथ लेकर सुशोभित हुए। बायें चरण के पीछे बहुत सी सेना सहित मद्रराज शल्य और दाहने चरण के पिछले भाग में एक

पृच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा ।
चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥
तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥
पश्य पार्थ यथा सेना धार्त्तराष्ट्रीह संयुगे ।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥
हतवीरतमा ह्येषा धार्त्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥
एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते ।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ २५ ॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन ॥ २६ ॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २७ ॥
भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥ २८ ॥
वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः ।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३० ॥

सहस्र रथ और तीन सौ हाथी लिये मल्लमन्ध सुषेण स्थित हुए। व्यूह के पिछले भाग(पूँछ)में सेना सहित महाबली चित्र और चित्रसेन नाम के दोनों सहोदर भाई स्थित हुए। इस प्रकार मत्स्याकार के सदृश व्यूह बनाया गया॥१५।२१॥हे महाराज ! वीर कर्ण ने जब इस प्रकार युद्ध के निमित्त तैयारी की तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन की ओर देखकर, कहने लगे —हे वीरशिरोमणि अर्जुन ! यह देखो, कर्ण ने वीरों के द्वारा सुरक्षित कौरवसेना का,व्यूह बना करके, स्थित किया है। हे पार्थ ! दुर्योधन की सेना के सब श्रेष्ठ योद्धा मारे जा चुके हैं, सेना भी थोड़ी ही शेष रही है। मैं तो अब इसे तृणतुल्य समझता हूं। किन्तु अभी एक कर्ण महारथी अवशिष्ट है॥२२।२५॥इसे देवता, असुर,गन्धर्व,किन्नर,नाग आदि चराचर तीनों लोकों के प्राणी नहीं जीत सकते। हे महाबाहु ! इस महारथी को आज तुम मार डालो; बस, तुम्हारी पूर्ण विजय हो जायगी और मेरे हृदय से बारह वर्ष का सन्ताप निकल जायगा। यह जानकर अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार व्यूह बनाकर युद्ध करो॥२५।२७॥हे राजेन्द्र ! अर्जुन ने बड़े भाई के ये वचन सुनकर अपनी सेना को अर्धचन्द्राकार व्यूह में स्थित किया। व्यूह के वाम भाग में भीमसेन, दक्षिण भाग में महाधनुर्द्धर धृष्टद्युम्न, मध्यभाग में राजा युधिष्ठिर और स्वयं अर्जुन स्थित हुए। धर्मराज के पीछे नकुल और सहदेव स्थित

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३१ ॥
शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्तं च भारत ॥ ३२ ॥
एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान्पाण्डवान्मेने धार्त्तराष्ट्रः सबान्धवः ॥ ३४ ॥
तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्त्तराष्ट्रान्हतान्मेने सकर्णान्वै जनाधिपः ॥ ३५ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभीः ।
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥
सेनयोरुभयो राजन्प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥ ३७ ॥
हयहेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनोश्चोग्राः सम्बभूवुर्जनाधिप ॥ ३८ ॥
न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥ ३९ ॥
उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले ।
योद्धुकामे स्थिते राजन्हन्तुमन्योन्यमोजसा ॥ ४० ॥

हुए। अर्जुन के द्वारा रक्षित उनके रथ के चक्ररक्षक पाञ्चाल देश के वीर योद्धा युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुन के निकट स्थित हुए। बचे हुए और सब कवच धारी क्षत्रिय राजा लोग, अपने उत्साह के अनुसार, व्यूह के अन्य भागों में स्थित हुए। इस प्रकार दोनों ओर के व्यूह (मोर्चे) बँध जाने पर महायोद्धा कौरव और पाण्डव युद्ध के निमित्त उत्सुक हो उठे॥२८। ३२॥भाइयों सहित राजा दुर्योधन ने कर्ण के बनाये व्यूह की रचना देखकर अपने मन में पाण्डवों को मरा हुआ समझ लिया। ऐसे ही उधर राजा युधिष्ठिर ने भी अपनी सेना की व्यूह-रचना देखकर समझ लिया कि कर्ण और भाइयों सहित दुर्योधन मारे जा चुके ॥३३।३५॥तब दोनों सेनाओं में शङ्ख,नगाड़े,पणव, गोमुख, डङ्के, तुरही, झाँझे, डिंडिम आदि अनेक प्रकार के उत्साह बढ़ानेवाले विचित्र बाजे बजने लगे। जय के अभिलाषी शूरों का सिंहनाद चारों ओर सुनाई पड़ने लगा। हे राजेन्द्र! चारों ओर हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का शब्द गूँज उठा। रथों की घरघराहट का उग्र शब्द कान फोड़ने लगा॥३६।३८॥व्यूह के अग्र भाग में कवचधारी सेनापति कर्ण को देखकर कौरव पक्ष के मनुष्यों को आचार्य द्रोण की मृत्यु का शोक ही विसरण हो गया। हे महाराज! कवच पहने हुए दोनों सेनाओं के वीर प्रसन्नमुख और प्रसन्नचित्त हो रहे थे।दोनों ओर के योद्धा एक दूसरे को मारने-

तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ ।
अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ४१ ॥
नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तेषां पक्षैः प्रपक्षैश्च निर्जग्मुस्ते युयुत्सवः ॥ ४२ ॥
ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मरने और युद्ध करने को प्रस्तुत थे। विजय-प्राप्ति के निमित्त यत्न करनेवाले कर्ण और अर्जुन दोनों वीर कुपित होकर स्पर्धा की दृष्टि से एक दूसरे को देखकर अपनी-अपनी सेना को घूम फिरकर देख रहे थे। वे दोनों क्रोध पूर्वक शीघ्रता से नृत्य सा करते हुए एक दूसरे के सम्मुख युद्ध करने को आये और उनके आसपास और पीछे से युद्ध की इच्छा रखनेवाले अनेक योद्धा निकलकर परस्पर भिड़ने लगे। उस समय मनुष्य, हाथी, घोड़े, रथ आदि से युक्त दोनों ओर की चतुरङ्गिणी सेनाएँ परस्पर भिड़कर युद्ध करने लगीं॥३९।४३॥

—०—

कर्ण पर्व का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्याय. ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच—ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ सम्प्रजह्राते देवासुरसमप्रभे ॥ १ ॥
ततो नररथाश्वेभैः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः ।
सम्प्रहारान्भृशं चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् ॥ २ ॥
पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः ।
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥ ३ ॥
अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः ।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥ ४ ॥
व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः ।
बाहवः पातिता रेजुर्धरण्यां सायुधाङ्गदैः ॥ ५ ॥

बारहवाँ अध्याय ॥ १२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! देवताओं और दानवों की सेना के समान वे प्रसन्नचित्त हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों से परिपूर्ण दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़ गईं और योद्धा लोग एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। रथों, हाथियों और घोड़ों पर सवार तथा पैदल योद्धा लोग परम पराक्रम पूर्वक शरीर के साथ ही पातक को नष्ट करनेवाले उग्र प्रहार करने लगे। प्रधान योद्धा लोग अर्धचन्द्र, भल्ल, क्षुरप्र आदि बाणों और खड्ग, पट्टिश, परश्वध आदि शस्त्रों के प्रहार से युद्ध करने वाले वीरों के पूर्णचन्द्र-कान्ति-युक्त, सूर्यसमान तेजस्वी और कमलसमान सुगन्धित मुखकमलों को छिन्न भिन्न कर गिराने और उनसे रणभूमि को आच्छादित करने लगे॥१।३॥पुष्ट और लम्बे हाथों वाले वीर के पुष्ट और लम्बे हाथ काट-काटकर

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्तांगुलितलैस्तथा ।
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव ॥ ६ ॥
द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः ।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥
गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि ।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८ ॥
रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन्परमसंकुले ॥ ९ ॥
रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥
रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥ ११ ॥
रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२ ॥
तथा तस्मिन्बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च ।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥
वृता व्यूहेन महता पाड्याश्चोला सकेरलाः ।
व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥ १५ ॥

लगे। शस्त्र और अङ्गद आदि आभूषणों से शोभित और लाल अङ्गुलियों तथा हथेलियोंवाले उन हाथों के इधर उधर तड़पने से जान पड़ता था कि रणभूमि में गरुड के मारे हुए पाँच मुख के सर्प तड़प रहे हैं॥४। ६॥पुण्य क्षीण होने पर जैसे स्वर्गवासी पुण्यात्मा लोग विमानोंसे पृथ्वीतल पर गिरते हैं,वैसे ही शत्रुओंके प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हुए वीर लोग हाथियों,घोड़ों और रथों पर से नीचे गिर रहे थे। बहुत से शूरवीर रण में शत्रुओं के मुशल, परिघ और भारी गदाओं आदि के प्रहार से चूर्ण होकर पृथ्वी पर गिरने लगे॥७।८॥ उस महासकुल युद्ध में रथियों को रथों, हाथियों को हाथी और घोड़ों के सवारों को घोड़ों के सवार नष्ट भ्रष्ट करने लगे। रथों से कुचले हुए मनुष्यों, हाथियों को तोड़े रथों और पैदलों के मारे हुए घुड़सवारों तथा घुड़सवारों के मारेहुए पैदलों का पृथ्वी पर ढेर लगने लगा। घोड़ों, रथों और पैदलों को हाथियों ने और रथों,हाथियों और घोड़ों को पैदलों ने गिराना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार रथ, हाथी, घोड़ और मनुष्य-गण शत्रुपक्ष के रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्यों के हाथ,पाँव, और शस्त्र आदि को नष्ट करके घोर युद्ध करने लगे॥१०।१२॥हे महाराज! इस प्रकार जब शूरोंने सेना को नाश करना प्रारम्भ किया तब,भीमसेन को आगे करके, पाण्डवगण हम लोगों पर आक्रमण करने को बढ़े। उनके साथ धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,

आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥ १६ ॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।
समानमृत्यवो राजन्नात्यजन्त परस्परम् ॥ १७ ॥
कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः ।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः ॥ १८ ॥
अथापरे पुनः शूराश्चेदिपञ्चालकेकयाः ।
कारूषाः कोसलाः काश्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः ॥ १९ ॥
तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः ।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ २० ॥
तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः ।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात्त्वदीयान्नागधूर्गतः ॥ २१ ॥
स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत्कल्पितो बभौ ।
उदयाग्र्यद्रिभवनं यथाभ्युदितभास्करम् ॥ २२ ॥
तस्यायसं वर्मवरं वररत्नविभूषितम् ।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम् ॥ २३ ॥
स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः ।
चरन्मध्यन्दिनार्काभस्तेजसा व्यदहद्रिपून् ॥ २४ ॥

द्रौपदी के पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, सात्यकि, चेकितान और द्रविड़ देश की सेना सहित पाण्ड्य, चोल, केरल आदि देशों के योद्धा भी अग्रसर हुए। उन सब के विशाल वक्षःस्थल, भुजाएँ लम्बी, कन्धे ऊँचे, नेत्र विशाल, दाँत लाल और वस्त्र अनेक वर्ण के थे॥१३।१५॥ वे अनेक प्रकार के आभूषण पहने और पराक्रम में मस्त हाथी के समान थे। भान्ति-भान्ति के सुगन्धित चूर्ण उनके शरीरों को सुगन्धित कर रहे थे। खड्ग बाँधे और पाश हाथ में लिये हुए हाथियों के सवार योद्धा परस्पर भिड़कर मरने-मारने लगे। जीते-जी कोई किसी के आगे से नहीं हटता था। लम्बे केश धारण किये, कलापभूषित, चाप-धारी, प्रियवचन बोलनेवाले, घोर-रूप और पराक्रमी घुड़सवार तथा पैदल योद्धा बाणों से घायल हो-होकर रणभूमि में गिरने लगे॥१६। १८॥इसी समय चेदि, पाञ्चाल, कैकेय, करूष, कोशल, काशी और मगध आदि देशों के वीर योद्धा भी प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने के निमित्त वेग से आगे बढ़े। रथों, हाथियों, घोड़ों पर सवार योद्धागण और उग्र कर्म करनेवाले पैदल वीर अनेक प्रकार के बाजों के शब्द से प्रसन्न और उत्साहित होकर हँसने और नाचने लगे। उस समय उस महती सेना के मध्य हाथी पर सवार भीमसेन, श्रेष्ठ गजारोही योद्धाओं को साथ लिए, आपकी सेना के सम्मुख आए॥१९।२२॥ भीमसेन के श्रेष्ठ हाथी का रूप अत्यन्त उग्र था और वह विधिपूर्वक सुसज्जित था। उसके ऊपर बैठे भीमसेन उदयाचल के शिखर पर विराजमान सूर्यदेव के समान शोभायमान हो रहे थे। उस हाथी पर पड़ा हुआ, अनेक रत्नों से शोभित, लोहे का कवच तारागण-शोभित शरद् ऋतु का स्वच्छ आकाश सा प्रतीत हो रहा था। सुन्दर मुकुट और अन्य अलङ्कारों से शोभित

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्तांगुलितलैस्तथा ।
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव ॥ ६ ॥
द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः ।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥
गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि ।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८ ॥
रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन्परमसंकुले ॥ ९ ॥
रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥
रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥ ११ ॥
रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२ ॥
तथा तस्मिन्बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च ।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥
वृता व्यूहेन महता पाड्याश्चोलाः सकेरलाः ।
व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥ १५ ॥

लगे। शस्त्र और अङ्गद आदि आभूषणों से शोभित और लाल अङ्गुलियों तथा हथेलियोंवाले उन हाथों के इधर-उधर तड़पने से जान पड़ता था कि रणभूमि में गरुड़ के मारे हुए पाँच मुख के सर्प तड़प रहे हैं॥४। ६॥पुण्य क्षीण होने पर जैसे स्वर्गवासी पुण्यात्मा लोग विमानोंसे पृथ्वीतल पर गिरते हैं,वैसे ही शत्रुओंके प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हुए वीर लोग हाथियों,घोड़ों और रथों पर से नीचे गिर रहे थे। बहुत से शूरवीर रण में शत्रुओं के मुशल, परिघ और भारी गदाओं आदि के प्रहार से चूर्ण होकर पृथ्वी पर गिरने लगे॥७।८॥ उस महासंकुल युद्ध में रथियों को रथी, हाथियों को हाथी और घोड़ों के सवारों को घोड़ों के सवार नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। रथों से कुचले हुए मनुष्यों, हाथियों को तोड़े रथों और पैदलों के मारे हुए घुड़सवारों तथा घुड़सवारों के मारेहुए पैदलों का पृथ्वी पर ढेर लगने लगा। घोड़ों, रथों और पैदलों को हाथियों ने और रथों,हाथियों और घोड़ों को पैदलों ने गिराना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्य-गण शत्रुपक्ष के रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्यों के हाथ,पाँव, और शस्त्र आदि को नष्ट करके घोर युद्ध करने लगे॥१०।१२॥हे महाराज। इस प्रकार जब शूरोंने सेना को नाश करना प्रारम्भ किया तब,भीमसेन को आगे करके, पाण्डवगण हम लोगों पर आक्रमण करने को बढ़े। उनके साथ धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,

आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥ १६ ॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।
समानमृत्यवो राजन्नात्यजन्त परस्परम् ॥ १७ ॥
कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः ।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः ॥ १८ ॥
अथापरे पुनः शूराश्चेदिपञ्चालकेकयाः ।
कारूपाः कोसलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः ॥ १९ ॥
तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः ।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ २० ॥
तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः ।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात्त्वदीयान्नागधूर्गतः ॥ २१ ॥
स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत्कल्पितो बभौ ।
उदयाग्र्यद्रिभवनं यथाभ्युदितभास्करम् ॥ २२ ॥
तस्यायसं वर्मवरं वररत्नविभूषितम् ।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम् ॥ २३ ॥
स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः ।
चरन्मध्यन्दिनार्काभस्तेजसा व्यदहद्रिपून् ॥ २४ ॥

द्रौपदी के पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, सात्यकि, चेकितान और द्रविड़ देश की सेना सहित पाण्ड्य, चोल, केरल आदि देशों के योद्धा भी अग्रसर हुए। उन सब के विशाल वक्षःस्थल, भुजाएँ लम्बी, कन्धे ऊँचे, नेत्र विशाल, दाँत लाल और वस्त्र अनेक वर्ण के थे॥१३।१५॥ वे अनेक प्रकार के आभूषण पहने और पराक्रम में मस्त हाथी के समान थे। भान्ति-भान्ति के सुगन्धित चूर्ण उनके शरीरों को सुगन्धित कर रहे थे। खड्ग बाँधे और पाश हाथ में लिये हुए हाथियों के सवार योद्धा परस्पर भिड़कर मरने-मारने लगे। जीते-जी कोई किसी के आगे से नहीं हटता था। लम्बे केश धारण किये, कलापभूषित, चाप-धारी, प्रिय वचन बोलनेवाले, घोर-रूप और पराक्रमी घुड़सवार तथा पैदल योद्धा बाणों से घायल हो-होकर रणभूमि में गिरने लगे॥१६।१८॥इसी समय चेदि, पाञ्चाल, कैकेय, करूप, कोशल, काञ्ची और मगध आदि देशों के वीर योद्धा भी प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने के निमित्त वेग से आगे बढ़े। रथों, हाथियों, घोड़ों पर सवार योद्धागण और उग्र कर्म करनेवाले पैदल वीर अनेक प्रकार के बाजों के शब्द से प्रसन्न और उत्साहित होकर हँसने और नाचने लगे। उस समय उस महती सेना के मध्य हाथी पर सवार भीमसेन, श्रेष्ठ गजारोही योद्धाओं को साथ लिए, आपकी सेना के सम्मुख आए॥१९।२२॥ भीमसेन के श्रेष्ठ हाथी का रूप अत्यन्त उग्र था और वह विधिपूर्वक सुसज्जित था। उसके ऊपर बैठे भीमसेन उदयाचल के शिखर पर विराजमान सूर्यदेव के समान शोभायमान हो रहे थे। उस हाथी पर पड़ा हुआ, अनेक रत्नों से शोभित, लोहे का कवच तारागण-शोभित शरद् ऋतु का स्वच्छ आकाश सा प्रतीत हो रहा था। सुन्दर मुकुट और अन्य अलङ्कारों से शोभित

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात्क्षेमधूर्तिर्द्विपस्थितः ।
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम् ॥ २५ ॥
तयोः समभवद्युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः ।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ २६ ॥
संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम् ।
बलवत्सूर्यरश्म्याभैर्भित्वान्योन्यं विनेदतुः ॥ २७ ॥
व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः ।
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम् ॥ २८ ॥
क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैस्तु सर्वतः ।
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः ॥ २९ ॥
समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ ।
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ ॥ ३० ॥
तावन्योन्यस्य धनुषी छित्त्वान्योन्यं विनेदतुः ।
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः ॥ ३१ ॥
क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे ।
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन् ॥ ३२ ॥
स भीमसेनः शुशुभे तोमरैरङ्गमाश्रितैः ।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् ॥ ३३ ॥
ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम् ।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान् ॥ ३४ ॥

भीमसेन उस हाथी के ऊपर से तोमर का प्रहार करके, शरद् ऋतु के मध्याह्न के सूर्य के समान, अपने तेज से शत्रुओं को भस्म कर रहे थे॥२२।२४॥सेना के अग्र भाग में स्थित और हाथी पर सवार क्षेमधूर्ति राजा भीमसेन के हाथी को देखकर हँसते हुए उधर ही चले और भीमसेन को युद्ध के निमित्त ललकारने लगे। उग्र रूपवाले और महापर्वत के समान ऊँचे दोनों हाथी परस्पर अपनी इच्छा से भिड़कर भयङ्कर युद्ध करने लगे। उधर हाथियों को भिड़ने देखकर उनके सवार क्षेमधूर्ति और भीमसेन भी, सूर्य किरण सदृश चमकीले तोमरों से बलपूर्वक परस्पर प्रहार करके, सिंह के तुल्य गरजने लगे॥२५।२७॥फिर हाथियों को हटाकर वे मण्डलाकार गतियाँ (पैंतरे) दिखाने लगे।इसके पश्चात् दोनों योद्धा धनुष लेकर परस्पर बाण मारने लगे।उल्लास से सिंहनाद करके,ताल ठोंक कर और सनसनाते हुए बाणों की वर्षा करके दोनों वीर अपनी अपनी सेना को प्रसन्न और उत्साहित करने लगे। उनके हाथी सूँड उठा उठाकर परस्पर भिड़ रहे थे और उनके हौदों पर पताकाएँ फहरा रही थीं। दोनों ने दोनों के धनुष काटकर सिंहनाद किया। फिर वर्षा ऋतु के मेघों के समान दोनों वीर एक दूसरे पर शक्ति-तोमर आदि शस्त्र बरसाने लगे॥२८।३१॥ इतने में ही महाबली क्षेमधूर्ति ने भीमसेन के वक्ष:-स्थल में एक तीक्ष्ण तोमर मारकर सिंहनाद किया।

ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः ।
दशभिस्तोमरं भित्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥ ३५ ॥
अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम् ।
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन्पाण्डवः शरैः ॥ ३६ ॥
स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे ।
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद्वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥
तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट् ।
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३८ ॥
सन्निवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्त्तिः प्रतापवान् ।
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ॥ ३९ ॥
ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा ।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत् ॥ ४० ॥
ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्त्तिः पराभिनत् ।
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥ ४१ ॥
स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत ।
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ॥ ४२ ॥
तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत् ।
तस्मात्प्रमथितान्नागात्क्षेमधूर्तिमवप्लुतम् ॥ ४३ ॥
उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन्वृकोदरः ।
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम् ॥ ४४ ॥

इसके पश्चात् ७ तोमर और मारे। भीमसेनका शरीर क्रोध से प्रज्वलित हो उठा । जैसे मेघ की आड़ में स्थित सूर्य की किरणें चारों ओर छिटकती हैं, वैसे ही भीमसेन के अङ्ग में वे तोमर शोभायमान हुए । तब भीमसेन ने भी अपने शत्रु के ऊपर एक सूर्य सा चमकीला वेगगामी लोहे का तोमर चलाया। उधर कुलूताधिपति क्षेमधूर्ति ने धनुष चढ़ाकर स्फूर्त्ति के साथ दस बाणों से उस तोमर को काट डाला और भीमसेन को साठ बाण मारे॥३२।३५॥भीमसेन ने भी मेघ के समान शब्द करनेवाला धनुष लेकर शत्रु के हाथी पर बाण बरसाना और गरजना प्रारम्भ किया । युद्ध में भीम के बाणों से पीड़ित होकर वह हाथी, वायु से उड़ाये मेघ की भाँति; बेतहाशा भाग खड़ा हुआ, लाख रोकने पर भी नहीं रुका । भीमसेन के गजराज ने उस हाथी का इस प्रकार पीछा किया, जैसे आँधी से उड़ाये मेघ के पीछे दूसरा मेघ चलता है॥३६। ३८॥प्रतापी क्षेमधूर्ति ने बहुत यत्न करके अपने हाथी को लौटाकर स्थित किया और भीमसेन के हाथी को बाणों से घायल कर दिया। अब क्षेमधूर्ति ने क्रोध करके रण में भीमसेन को अनेक प्रहारों से घायल किया और फिर उनके हाथी के मर्मस्थलों में तीक्ष्ण नाराच बाण मारे । क्षेमधूर्ति के प्रहार से भीमसेन का महा गजराज मर गया । सावधान भीमसेन, हाथी के गिरने के पहिले ही उसके ऊपरसे कूद पड़े॥३९।४२॥उन्होंने

वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ।
तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम् ।
प्राद्रवद्व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि क्षेमधूर्तिवधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कुपित होकर क्षेमधूर्ति के हाथी को गदा के प्रहार से चूर-चूर कर डाला। क्षेमधूर्ति भी अपने हाथी की पीठ पर से कूद पड़े। वे तीक्ष्ण खड्ग खींचकर भीमसेन की ओर झपटे। खड्ग लेकर आ रहे शत्रु के ऊपर भीमसेन ने गदा का प्रहार किया। उस प्रहार से क्षेमधूर्ति के प्राण निकल गये। वे खड्ग हाथ में लिए उसी हाथी के शरीर पर से वैसे ही गिर पड़े, जैसे वज्रपात से फटे हुए पर्वत के शिखर पर वज्र-प्रहार से मरा हुआ सिंह गिर पड़े। कुलूत देश के यशस्वी राजा क्षेमधूर्ति को मरते देखकर आपकी सेना अत्यन्त व्यथित और उत्साह-हीन होकर भाग खड़ी हुई॥४३।४५॥

कर्ण पर्व का बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच—ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
जघान समरे शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १ ॥
तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः ॥ २ ॥
कर्णोऽपि राजन्समरे व्यहनत्पाण्डवीं चमूम् ।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥ ३ ॥
तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः ।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ ४ ॥
वध्यमाने बले तस्मिन्सूतपुत्रेण मारिष ।
नकुलोऽभ्यद्रवत्तूर्णं सूतपुत्रं महारणे ॥ ५ ॥
भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्मदुष्करम् ।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत् ॥ ६ ॥
श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः ।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम् ॥ ७ ॥

तेरहवाँ अध्याय ॥ १३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! तब महाधनुर्धर कर्ण तीक्ष्ण बाणों से रणभूमि में पाण्डवों की सेना का संहार करने लगे। हे राजेन्द्र! ऐसे ही पाण्डव पक्ष के महारथी योद्धा लोग, कर्ण के सम्मुख ही, कुपित होकर आपके पुत्र की सेना को मारने लगे। कर्ण समर में सूर्य-किरण के समान देदीप्यमाण और घर्षित किये गये तीक्ष्ण नाराच बाणों से पाण्डवों की सेना को नष्ट कर रहे थे॥१।३॥कर्ण के नाराच बाणों की चोट खाये हुए बड़े बड़े हाथी अत्यन्त व्यथित, शिथिल और आर्त होकर चिंघारने, चक्कर खाकर गिरने और मरने लगे। इस प्रकार कर्ण को अपनी सेना का संहार करते देखकर वीरवर नकुल उनसे युद्ध करने के लिए

दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
संशप्तकगणान्क्रुद्धो ह्यभ्यधावद्धनञ्जयः ॥ ८ ॥
धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम् ॥ ९ ॥
श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान् ॥ १० ॥
केकयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता ।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत ॥ ११ ॥
तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम् ।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने ॥ १२ ॥
शरसम्भिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन्विव्यधतुः शरैः ॥ १३ ॥
तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन्सर्वतोदिशः ।
छादयञ्छरवर्षेण वारयामास भारत ॥ १४ ॥
वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः ।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः ॥ १५ ॥
तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः ।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे ॥ १६ ॥
अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान् ।
सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च ॥ १७ ॥

थे। रण में दुष्कर कर्म कर रहे अश्वत्थामा से भीमसेन भिड़ गये। सात्यकि ने विन्द और अनुविन्द को रोका। श्रुतकर्मा को आते देखकर राजा चित्रसेन उनके सम्मुख आ गये। विचित्र ध्वजा और धनुष से शोभित राजा चित्र से प्रतिविन्ध्य का युद्ध होने लगा॥४।७॥ राजा दुर्योधन का राजा युधिष्ठिर ने सामना किया। सब महारथगण प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन से भिड़ गये। वीरों का संहार करनेवाले उस महासंग्राम में धृष्टद्युम्न और कृपाचार्य का युद्ध होने लगा। शिखण्डी और कृतवर्मा परस्पर युद्ध करने लगे। श्रुतकीर्ति से शल्य का युद्ध होने लगा। प्रतापी सहदेव से आपके पुत्र दुःशासन लड़ने लगे। केकय देश के दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द सात्यकि के ऊपर और वीरवर सात्यकि उनके ऊपर कुपित होकर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥८।११॥ जैसे दो हाथी अपने विपक्षी गजराज के ऊपर दाँत प्रहार करते हैं, वैसे ही वे दोनों भाई सात्यकि के वक्षस्थल को लक्ष्य करके तीक्ष्ण और दृढ़ बाण मारने लगे। सात्यकि ने हँसते हँसते उनके सब बाणों को व्यर्थ करके सब दिशाओं को अपने बाणों से व्याप्त कर दिया। युद्ध में उन दोनों भाइयों के कवच कट गये। सात्यकि के बाणों से व्याकुल वे दोनों वीर भी अपने बाणों से सात्यकि के रथ को ढकने लगे॥१२।१५॥ रणनिपुण महावीर सात्यकि ने यह देखकर उन दोनों वीरों के धनुष काट डाले। तीक्ष्ण बाण बरसाकर

ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः स्वर्णभूषणाः ॥ १८ ॥
बाणान्धकारमभवत्तयो राजन्महामृधे ।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥ १९ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः ।
धनुरन्यत्समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ॥ २० ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् ।
अपतत्तच्छिरो राजन्कुण्डलोपचितं महत् ॥ २१ ॥
शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महारणे ।
शोचयन्केकयान्सर्वाञ्जगामाशु वसुन्धराम् ॥ २२ ॥
तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः ।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत् ॥ २३ ॥
स षष्ट्या सात्यकिं विध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः
ननाद बलवन्नादं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥
सात्यकिं च ततस्तूर्णं केकयानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २५ ॥
स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
रराज समरे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ॥ २६ ॥

दोनों राजकुमारों को रण से भगाने का प्रयत्न करने लगे। धनुष कट जाने पर वे दोनों भाई शीघ्र ही अन्य धनुष लेकर सात्यकि पर बाण बरसाते हुए रण स्थल में विचरने लगे। उनके वे कङ्कपत्र-शोभित सुवर्णालङ्कृत तीक्ष्ण बाण आसपास प्रकाश फैलाते हुए चारों ओर गिरने लगे। उन दोनों भाइयों ने इतने बाण बरसाये कि क्षण भर में रणभूमि में अँधेरा छा गया। इतने में सात्यकि ने उन दोनों वीरों के धनुष काट डाले और उन्होंने भी स्फूर्ति से सात्यकि का धनुष काट डाला॥१६।१९॥हे महाराज! तब युद्ध में अजेय सात्यकि ने क्रुद्ध होकर अन्य धनुष हाथ में लिया और उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। फिर एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से अनुविन्द का सिर काट डाला। वह कुण्डलों से शोभित सिर कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जिस प्रकार शम्बरासुर का सिर कट गया था उसी प्रकार केकेय देश की सेना को शोक-सागर में निमग्न करता हुआ अनुविन्द का सिर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥२०।२२॥अपने शूर भाई की मृत्यु देखकर महारथी विन्द क्रोध से अधीर हो उठे। वे दूसरा धनुष लेकर और उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सात्यकि से युद्ध करने लगे। विन्द ने सुवर्णपुङ्ख शोभित और घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये साठ बाण सात्यकि के वक्ष-स्थल में मारकर, "ठहर जा ठहर जा" कहकर, सिंहनाद किया। महारथी विन्द ने क्रोध करके स्फूर्ति के साथ सात्यकि के वक्ष स्थल और दोनों हाथों में कई सहस्र तीक्ष्ण बाण मारे॥२३।२५॥पराक्रमी सात्यकि के सब अङ्ग बाणों से छिन्न भिन्न हो गये। वे उस समय फूले हुए ढाक के पेड़ के समान जान पड़ने

सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना ।
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव ॥ २७ ॥
तावन्योन्यस्य समरे सञ्छिद्य धनुषी शुभे ।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ ॥ २८ ॥
विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे ।
शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥ २९ ॥
विरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥ ३० ॥
मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे ।
अन्योन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे ॥ ३१ ॥
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ३२ ॥
सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः ।
चर्म च्छित्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥ ३३ ॥
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च ।
तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ ३४ ॥
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः ।
सवर्मा केकयो राजन्द्विधा छिन्नो महारणे ॥ ३५ ॥
निपपात महेष्वासो वज्राहत इवाचलः ।
तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ॥ ३६ ॥
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ।
ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ॥ ३७ ॥

लगे।इस प्रकार वीर विन्द के प्रहार से जर्जर सात्यकि ने हँसते हँसते उनको पचीस बाण मारे। उन दोनों वीरों ने युद्ध में एक दूसरे का धनुष काट डाला। दोनों ने दोनों के रथों,घोड़ों और सारथियों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार रथ न रहने पर दोनों वीर खड्ग और शतचन्द्र-चित्रित ढाल हाथ में लेकर एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित हुए। देवासुर-युद्ध में महाबली जम्भासुर और इन्द्र जैसे लड़े थे॥२९।३०॥वैसे ही वे दोनों वीरश्रेष्ठ ढाल-खड्ग लेकर महासमर में अनेक प्रकार के पैंतरे बदलने लगे। दोनों परस्पर प्रहार करने का अवसर देखते थे। एक दूसरे को मार डालने का यत्न कर रहा था। इसी मध्य में सात्यकि ने खड्ग के प्रहार से विन्द की ढाल काट डाली। विन्द ने भी सात्यकि की शतचन्द्र-चित्रित ढाल काट डाली। दोनों वीर फिर आगे बढ़कर,पीछे हटकर अनेक प्रकार के पैंतरे, कौशल और स्फूर्ति दिखाने लगे। रणभूमि में खड्ग लेकर विचर रहे विन्द को सात्यकि ने खड्ग का एक ऐसा पूर्ण वेग से हाथ स्फूर्ति से मारा कि वे उससे बचा नहीं सके। कवचधारी विन्दके शरीर के दो टुकड़े हो गये॥३१।३५॥और वे वज्राघात से फटे

केकयानां महत्सैन्यं व्यधमत्सात्यकिः शरैः ।
सा वध्यमाना समरे केकयानां महाचमूः ।
तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हुए पर्वत के समान पृथ्वी पर गिर पड़े । रण में इस प्रकार विन्द को भी मारकर महारथी सात्यकि स्फूर्ति के साथ युधामन्यु के रथ पर सवार हो लिये। इसके पश्चात् एक सुसज्जित रथ सात्यकि के लिए शीघ्र लाया गया। उस पर बैठकर वे कैकेय देश की श्रेष्ठ सेना को तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। कैकेय देश की वह विशाल सेना सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर, अपने शत्रु सात्यकि के सम्मुख से, इधर-उधर भागने लगी॥३६।३८॥

कर्ण पर्व का तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच—श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम् ।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः ॥ १ ॥
अभिसारस्तु तं राजन्नवभिर्नतपर्वभिः ।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ २ ॥
श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥ ३ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना ।
मूर्च्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः ।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥ ५ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम् ।
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ७ ॥

चौदहवाँ अध्याय ॥ १४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! उधर महावीर श्रुतकर्मा ने अत्यन्त कुपित होकर राजा चित्रसेन को पचास बाण मारे । हे राजेन्द्र ! महाराज चित्रसेन ने भी नव बाण श्रुतकर्मा को और पाँच बाण उनके सारथी को मारे । वीरवर श्रुतकर्मा ने क्रोध करके चित्रसेन के मर्मस्थल में एक तीक्ष्ण नाराच मारा । वह नाराच बाण इतने वेग से आकर लगा कि चित्रसेन को मूर्छा आगई॥१।४॥इतने में महायशस्वी श्रुतकीर्ति ने श्रुतकर्मा को नब्बे तीक्ष्ण बाण मारकर छिपा सा दिया। इधर महारथी चित्रसेन को होश हो आया । उन्होंने एक भल्ल बाण से श्रुतकर्मा का धनुष काट डाला और उन को सात बाण मारे । श्रुतकर्मा ने दूसरा सुवर्णभूषित दृढ धनुष लेकर चित्रसेन पर इतने बाणों की वर्षा की कि रक्त से उनका विचित्र रूप हो गया। विचित्र

स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा ।
युवेव समरेऽशोभद्गोष्ठीमध्ये स्वलंकृतः ॥ ८ ॥
श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
विभेद तरसा शूरस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥
श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः ।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥ १० ॥
ततः स रुधिराक्ताङ्गो रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः ॥ ११ ॥
श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १२ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः ।
छादयन्समरे राजन्विव्याध च सुपत्रिभिः ॥ १३ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥
तच्छिरो न्यपतद्भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत् ।
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतलम् ॥ १५ ॥
राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारं तु मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥ १६ ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥ १७ ॥
ते वध्यमानाः समरे तत्र पौत्रेण धन्विना ।
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः ॥ १८ ॥

माला पहने हुए युवा चित्रसेन के शरीर में अनेक बाण लगने से काँटेदार स्याही (एक पशु) के समान प्रतीत होने लगे॥५।८॥उन्होंने भी कुपित होकर "ठहर ठहर" कहते कहते श्रुतकर्मा के हृदय में एक उग्र बाण मारा॥ वह बाण लगने से श्रुतकर्मा का वक्ष स्थल फट गया और गेरू के पर्वत से जैसे गेरू बहता है वैसे रक्त बहने लगा॥ रक्त से सारा शरीर भीग जाने के कारण श्रुतकर्मा फूले हुए ढाक के पेड़ से जान पड़ने लगे॥७।११॥ इस प्रकार शत्रु के प्रहार से पीड़ित होने पर श्रुतकर्मा ने उनके धनुष को काट डाला। चित्रसेन का धनुष कट जाने पर श्रुतकर्मा ने उनको तीन सौ तीक्ष्ण बाण मारे।इसके पश्चात् और एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से चित्रसेन के शिरस्त्राण शोभित सिर को काट डाला। उनका प्रभायुक्त सिर,आकाश से चन्द्रबिम्ब के समान, पृथ्वी-तल पर गिर पड़ा॥१२।१५॥अभिसार-नरेश चित्रसेन को निहत देखकर उनकी सब सेना कुपित होकर श्रुतकर्मा पर आक्रमण करने को चली। तब महा-धनुर्धर श्रुतकर्मा ने कुपित होकर बाण-वर्षा से वैसे

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान्द्विषज्जये ।
द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥ १९ ॥
प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः ।
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणापि च ॥ २० ॥
तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २१ ॥
प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा तस्य भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान् ॥ २२ ॥
ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम् ।
प्राहिणोत्तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥ २३ ॥
तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥ २४ ॥
सा पपात द्विधा छिन्ना प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।
युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाशनिः ॥ २५ ॥
शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम् ।
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम् ॥ २६ ॥
सा जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे ।
रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २७ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम् ॥ २८ ॥

ही उस सेना को मारना आरम्भ किया, जैसे प्रलय-काल में यमराज सब प्राणियों का संहार करते हैं। हे महाराज! आपके पौत्र श्रुतकर्मा के बाणों से मारे जा रहे सब सैनिक, दावानल से जल रहे हाथियों के समान,चारों ओर भागने लगे। शत्रु विजय के बारे में निरुत्साह होकर भागते हुए शत्रुपक्ष के सैनिकों को बाणवर्षा से भगा रहे श्रुतकर्मा उस समय बहुत ही शोभायमान हो रहे थे॥१६।१९॥इधर प्रतिविन्ध्य और महाराज चित्र से युद्ध होने लगा। प्रतिविन्ध्य ने चित्र को पाँच तीक्ष्ण बाण मारकर सारथी को तीन बाणों से पीड़ित किया और फिर एक बाण ध्वजा में मारा। चित्र ने भी प्रतिविन्ध्य के वक्ष स्थल और बाहुओं में सुवर्णपुङ्ख-शोभित तीक्ष्ण कङ्कपत्रयुक्त नव भल्ल बाण मारे। हे राजेन्द्र! प्रतिविन्ध्य ने चित्र का धनुष काटकर उनको पाँच तीक्ष्ण बाण मारे॥२०।२२॥तब चित्र ने सुवर्णघण्टायुक्त एक असह्य शक्ति प्रतिविन्ध्य के ऊपर फेंकी। वह मानों प्राणों को खोज रही थी। बड़ी उल्का के समान एकाएक आकाशमार्ग में चली आ रही उस उग्र शक्ति के प्रतिविन्ध्य ने हँसते-हँसते दो टुकड़े कर डाले। प्रतिविन्ध्य के तीक्ष्ण बाणों से दो टुकड़े होकर वह शक्ति प्रलयकाल के वज्र के समान सबको भयभीत करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी॥२३।२५॥उस शक्ति को इस प्रकार व्यर्थ होते देखकर चित्र ने सुवर्णभूषित एक बड़ी गदा उठाकर

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन्महामनाः ।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥ २९ ॥
समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभाः ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिता भासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥ ३० ॥
प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकांक्षया ॥ ३१ ॥
स तस्य गात्रावरणं भित्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ ३२ ॥
स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसन्निभौ ॥ ३३ ॥
चित्रं सम्प्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥ ३४ ॥
सृजन्तो विविधान्बाणाञ्शतघ्नीश्च सकिङ्किणीः ।
तमवच्छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ ३५ ॥
तान्विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत्तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३६ ॥
ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्रकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ॥ ३७ ॥

प्रतिविन्ध्य के ऊपर फेंकी। वह गदा अपने वेग से प्रतिविन्ध्य के रथ, सारथी और घोड़ों को चूर्ण करके पृथ्वी मे धँस गई। इसी अवसर में प्रतिविन्ध्य ने रथ से कूदकर स्फूर्ति के साथ एक सुवर्णदण्ड शोभित भयानक शक्ति चित्र के ऊपर फेंकी। महामनस्वी चित्र ने उस शक्ति को हाथ से पकड़ लिया और वही शक्ति प्रतिविन्ध्य को लक्ष्यकर उन पर चलाई। महावीर प्रतिविन्ध्य के दाहने हाथ को घायल करके वह शक्ति पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस शक्ति के प्रकाश से रणभूमि का उतना स्थान बिजली के से प्रकाशमें जगमगा उठा॥२९।३०॥हे महाराज! तब प्रतिविन्ध्य ने क्रुद्ध होकर चित्र को मार डालने के लिये उन पर सुवर्ण से शोभित तोमर फेंका। उस तोमर के प्रहार से चित्र का कवच कट गया और हृदय भी फट गया। इस प्रकार उनके प्राण लेकर वह तोमर, बिल में सर्प के समान, पृथ्वी में घुस गया। तोमर लगने से प्राणहीन होकर और परिघ सी मोटी गोल लम्बी भुजाएँ फैलाकर राजा चित्र पृथ्वी पर गिर पड़े॥३१।३३॥हे राजेन्द्र! उनकी मृत्यु देखकर रण की शोभा बढ़ानेवाले आपके पक्ष के वीर योद्धा लोग चारों ओर से प्रतिविन्ध्य पर आक्रमण करने के निमित्त दौड़ पड़े।विविध बाण और किङ्किणीजाल-शोभित शतघ्नी आदि शस्त्र बरसाते हुए उन शूरवीरों ने प्रतिविन्ध्य को वैसे ही आच्छादित कर दिया,जैसे मेघ सूर्य को छिपा लेते हैं। इन्द्र जैसे असुर-सेना को भगा देते हैं, वैसे ही महाबाहु प्रतिविन्ध्य ने बाण बरसाकर कौरव-सेना को भगा दिया॥३४।३६॥आँधी से टुकड़-

विप्रद्रुते बले तस्मिन्वध्यमाने समन्ततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात्तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥ ३८ ॥
ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि चित्रवधे चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

टुकड़े होकर उड़ रहे मेघों के समान कौरव सेना पाण्डव सेना के आगे से भागने लगी। चारों ओर से नष्टभ्रष्ट हो रही कौरव सेना को भागते देखकर महाप्रतापी अश्वत्थामा अकेले ही महाबली भीमसेन से युद्ध करने के निमित्त वेग से आगे बढ़े। देवासुर संग्राम में इन्द्र और वृत्रासुर ने जैसे घोर युद्ध किया था, वैसे ही वे दोनों वीर परस्पर भिड़कर दारुण युद्ध करने लगे ॥३७।३९॥

कर्ण पर्व का चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

सञ्जय उवाच—भीमसेनं ततो द्रौणी राजन्विव्याध पत्रिणा ।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १ ॥
अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः ।
सर्वमर्माणि सम्प्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥ २ ॥
भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः ।
रराज समरे राजन्रश्मिवानिव भास्करः ॥ ३ ॥
ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४ ॥
शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्याहनद्राजन्नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५ ॥
ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पाण्डवः ।
यथा श्रृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥ ६ ॥
ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥ ७ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय ॥ १५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! अश्वत्थामा ने पहले स्फूर्ति दिखाते हुए भीमसेन को एक बाण मारा और उसके पश्चात् ही नब्बे तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें पीड़ित किया। मर्मज्ञ अश्वत्थामा ने सब मर्मस्थलों में लक्ष्यकर बाण मारे। उन तीक्ष्ण बाणों के शरीर में घुसने पर महाबली भीमसेन किरणों से युक्त सूर्यदेव के समान शोभा को प्राप्त हुए॥१।३॥उन्होंने भी लक्ष्यकर सहस्र बाण अश्वत्थामा को मारे और सिंहनाद किया। अश्वत्थामा ने अपने बाणों से उन बाणों को व्यर्थ करके, मुसकाकर, भीमसेन के ललाट में एक विकट नाराच मारा। वह बाण मस्तक में लगने से भीमसेन वैसे ही शोभायमान हुए जैसे दर्प में भरा हुआ गैंडा वन में अपने सींग से शो

ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत ।
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥ ८ ॥
ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम् ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥ ९ ॥
तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १० ॥
तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथचर्यगतौ वीरौ शुशुभाते बलोत्कटौ ॥ ११ ॥
आदित्याविव सन्दीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः ॥ १२ ॥
ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत् ॥ १३ ॥
व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयङ्करौ ॥ १४ ॥
अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः ।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥ १५ ॥
चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिन्दमौ ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव ॥ १६ ॥
अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे ।
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम् ॥ १७ ॥

भित होता है॥७।८॥भीमसेन ने पराक्रमपूर्वक रण में प्रहार कर रहे अश्वत्थामा के मस्तक में तीन नाराच मारे। उन तीनों बाणों के मस्तक में लगने से अश्वत्थामा वर्षा में भीगे हुए तीन शिखरोंवाले पर्वत के समान जान पड़ने लगे। उन्होंने भीमसेन के ऊपर सैकड़ों बाण चलाये; किन्तु पर्वत जैसे आँधी के वेग से नहीं विचलित होता वैसे ही भीमसेन तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने भी अश्वत्थामा को अनेक बाण मारे; किन्तु वे अश्वत्थामा को वैसे ही विचलित नहीं कर सके, जैसे जल का प्रवाह पर्वत को नहीं गिरा सकता ॥९।१०॥रथ पर बैठे हुए वे दोनों महारथी एक दूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। जान पड़ता था कि वे दोनों प्रलयकाल के सूर्य हैं, जो किरणरूप बाणों से संसार का नाश करते हुए एक दूसरे को तपा रहे हैं। दोनों निर्भय वीर महारण में बाण-प्रहार करके एक दूसरे के अस्त्र-प्रहारों को व्यर्थ करने का यत्न कर रहे थे। उन दोनों भयङ्कर नरसिंहों के बाण ही दाढ़ें और धनुष ही मुख थे॥११।१४॥आकाश में मेघों से आच्छादित हुए चन्द्र-सूर्य के समान वे दोनों योद्धा बाणवर्षा से अदृश्य हो गये। क्षण भर में बाणों को काटकर वे मेघ को विदीर्णकर निकले हुए मङ्गल और बुध ग्रह के समान प्रकाशित हो उठे। इस प्रकार महादारुण संग्राम होते समय अश्वत्थामा बाण बरसाते हुए भीमसेन को दाहिनी ओर छोड़ गये। शत्रु के इस विजयसूचक कर्म को भीम-

किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम् ।
न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ १८ ॥
प्रतिचक्रे ततो राजन्पाण्डवोऽप्यपसव्यतः ।
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ॥ १९ ॥
बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
चरित्वा विविधान्मार्गान्मण्डलस्थानमेव च ॥ २० ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ॥ २१ ॥
ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे ।
ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ २२ ॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः ।
ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्तत ॥ २३ ॥
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत् ।
ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यां तु भारत ॥ २४ ॥
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तच्च सैन्यं समन्ततः ।
बाणसङ्घैर्वृतं घोरमाकाशं समपद्यत ॥ २५ ॥
उल्कापातावृतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप ।
बाणाभिघातात्सञ्जज्ञे तत्र भारत पावकः ॥ २६ ॥
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद्वाहिनीद्वयम् ।
तत्र सिद्धा महाराज सम्पतन्तोऽब्रुवन्वचः ॥ २७ ॥

सेन नहीं सह सके। वे भी जलधारा के समान बाणों से पर्वत-सदृश अश्वत्थामा को पीड़ित करते हुए उनके वाम भाग में चले गये॥१५।१९॥इस प्रकार विविध मण्डलाकार गतियों से आगे बढ़कर, पीछे हटकर, दोनों योद्धा दारुण युद्ध कर रहे थे।दोनों ही,अनेक प्रकार की गतियाँ और पैंतरे दिखाते हुए,कानों तक खींचकर छोड़े गये बाणों से परस्पर प्रहार कर रहे थे। दोनों ही एक दूसरे को मार डालने का यत्न कर रहे थे, दोनों ही एक दूसरे के रथ को नष्ट कर डालने की घात में थे। महारथी अश्वत्थामा युद्ध में दिव्य महास्त्र छोड़ने लगे; किन्तु वीर भीमसेन ने अपने दिव्य अस्त्रों से उन अस्त्रों को भी व्यर्थ कर दिया।हे महाराज! उस समय घोर अस्त्र युद्ध होने लगा॥१९।२३॥जिस प्रकार प्रलय के समय आकाश में दो ग्रह युद्ध करें उसी प्रकार वे दोनों वीर दारुण संग्राम कर रहे थे। उन दोनों वीरों के बाण,सब दिशाओं को और आपकी सेना को प्रकाशित करते हुए,चारों ओर गिर रहे थे।आकाश में चारों ओर असंख्य बाण ही बाण दिखाई पड़ रहे थे।जान पड़ता था कि चारों ओर युद्धभूमि में आकाश से उल्काएँ गिर रही हैं, इस प्रकार वे बाण एक दूसरे से टकराकर अग्नि निकालते हुए नीचे गिरते थे।बाणों के परस्पर संघर्ष से अग्नि उत्पन्न हो गई,अग्नि की चिनगारियाँ और जल रहे बाण ऊपर गिर-गिरकर दोनों सेनाओं को जलाने लगे॥२४।२७॥युद्ध देखने-

युद्धानामति सर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो ।
सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २८ ॥
नेदृशं च पुनर्युद्धं भविष्यति कदाचन ।
अहो ज्ञानेन सम्पन्नावुभौ ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥ २९ ॥
अहो शौर्येण सम्पन्नावुभौ चोग्रपराक्रमौ ।
अहो भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता ॥ ३० ॥
अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः ।
स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ ॥ ३१ ॥
रुद्रौ द्वाविव संभूतौ यथा द्वाविव भास्करौ ।
यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥ ३२ ॥
इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः समपद्यत ॥ ३४ ॥
प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन् ॥ ३५ ॥
तौ शूरौ समरे राजन्परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३६ ॥
क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात्प्रस्फुरिताधरौ ।
क्रोधात्सन्दष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥ ३७ ॥
अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ ।
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥ ३८ ॥

वाले सिद्धगण आपस में कहने लगे कि "यह युद्ध सब युद्धों से बढ़कर हो रहा है और सब युद्ध इसकी सोलहवीं कला को भी नहीं पहुँचते। ऐसा युद्ध फिर कभी हो नहीं सकता। अहो, ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों को ही युद्ध-विद्या का पूर्ण ज्ञान है। दोनों ही शूर और उग्र पराक्रमी हैं। अहो, भीमसेन का बल सीमा से बाहर है, और अश्वत्थामा को अतुल अस्त्राभ्यास है। ये दोनों वीर समर में यम के समान स्थित हैं। जैसे दो रुद्र, दो सूर्य और दो यम हों, वैसे ही ये दोनों वीर घोर रूप धारण किये हुए रण में स्थित हैं"॥२७।३२॥ हे महाराज! सिद्धों के ऐसे ही वचन बारम्बार आकाश में सुनाई पड़ने लगे। आकाश में एकत्र हुए स्वर्गवासी देवगण सिंहनाद करने लगे। रण में दोनों वीरों के अद्भुत तथा अचिन्त्य कर्म देखकर सिद्धों और चारणों को बड़ा आश्चर्य हुआ। देवता, सिद्ध और महर्षिगण "धन्य भीमसेन" "धन्य अश्वत्थामा" कहकर दोनों की प्रशंसा करने और साधु वाद देने लगे॥३३।३५॥ हे राजेन्द्र! एक दूसरे के

इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विध्वा प्राणाञ्जहार सः ।
छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान्हतयोधान्ससारथीन् ॥ १३ ॥
विध्वस्तायुधतूणीरान्समुन्मथितकेतनान् ।
सञ्छिन्नयोक्त्ररश्मीकान्विवरूथान्विकूबरान् ॥ १४ ॥
विस्रस्तबन्धुरयुगान्विस्रस्ताक्षप्रमण्डलान् ।
रथान्विशकलीकुर्वन्महाभ्राणीव मारुतः ॥ १५ ॥
विस्मापयन्प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम् ।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः ॥ १६ ॥
सिद्धदेवर्षिसङ्घाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥ १७ ॥
केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाक्चाशरीरिणी ।
चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः ॥ १८ ॥
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ ।
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥ १९ ॥
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ ।
इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥ २० ॥
अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद्रणे ।
अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्शरान् ॥ २१ ॥
सेषुणा पाणिनाहूय प्रहसन्द्रौणिरब्रवीत् ।
यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥ २२ ॥

दैत्यों के साथ इन्द्र का जैसा घोर युद्ध हुआ था वैसा ही लोमहर्षण युद्ध उस समय संशप्तकों के साथ वीर अर्जुन कर रहे थे। सब ओर से आ रहे शत्रुओं के अस्त्रों को अस्त्रों से ही नष्ट करके अर्जुन बाण मारकर उनके प्राण लेने लगे। शत्रुओं के भय को बढानेवाले अर्जुन ने उसी प्रकार शत्रुओं के रथों के टुकडे-टुकडे कर दिये जिस प्रकार प्रचण्ड आँधी मेघों के टुकडे उडा देती है॥११।१५॥सहस्रों महारथी योद्धाओं के समान अद्भुत युद्ध कर रहे अर्जुन के कार्यों को देखकर दर्शकों को बडा आश्चर्य हुआ। उनके बाणों से रथों के त्रिवेणु, पहिये, अक्ष,योद्धा,सारथी,शस्त्र, तरकस, ध्वजा, जोत, लगाम,कूबर, बन्धन,युग, अक्षप्रमण्डल आदि अङ्गों के खण्ड-खण्ड हो गये। सिद्ध, देवता, ऋषि और चारणगण अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। देवता लोग नगाडे बजाने लगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन के सिर पर पुष्पों की वर्षा होने लगी। आकाशवाणी हुई कि चन्द्रमा, अग्नि, वायु और सूर्य की कान्ति, दीप्ति, बल और द्युति को सदा धारण करनेवाले ये वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। पूर्व समय में जैसे ब्रह्मा और शिव एक रथ पर स्थित हुए थे, वैसे ही इस समय ये दोनों अजेय वीर एक रथ पर सवार हैं।ये वीर नर और नारायण हैं, जो कि सब प्राणियों में श्रेष्ठ हैं॥१६। २०॥हे महाराज ! यह अत्यन्त आश्चर्य देख-सुनकर अश्वत्थामा अत्यन्त कुपित हो उठे और उस महायुद्ध

ततः सर्वात्मना त्वय युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ।
एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥ २३ ॥
बहु मेनेऽर्जुनोत्मानमिति चाह जनार्दनम् ।
संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥ २४ ॥
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव ।
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे ॥ २५ ॥
एवमुक्तोऽवहत्पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके ।
जैत्रेण विधिनाहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥ २६ ॥
तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन्स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥ २७ ॥
निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ॥ २८ ॥
यामभ्यर्थयसे मोहाद्दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन्युध्यस्व स्थिरो भूत्वाऽद्य पाण्डवम् २९ ॥
इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः ।
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥ ३० ॥
तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् ।
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥ ३१ ॥

में श्रीकृष्ण और अर्जुन की ओर बड़े वेग से चले। शत्रुओं का नाश करनेवाले, बाणों की वर्षा कर रहे, अर्जुन को बाण-सहित हाथ के संकेत से अपनी ओर बुलाकर महावीर अश्वत्थामा ने हँसकर कहा—हे वीर! यदि तुम मुझे अपने योग्य, पूजनीय अतिथि समझते हो तो अब पूर्ण यत्न से युद्धरूप अतिथि-सत्कार करो॥ २०।२३॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार एकाएक अश्वत्थामा ने जब युद्ध के निमित्त अर्जुन को ललकारा तब उसे अपना बहुत सम्मान मानकर अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! मुझे संशप्तक सेना का भी संहार करना है और इधर अश्वत्थामा भी युद्ध के निमित्त ललकार रहे हैं। बतलाइए, इस अवसर पर मुझे पहले क्या करना चाहिए? यदि आप उचित समझें तो पहले अश्वत्थामा की इच्छा पूर्ण करना ही युक्त होगा॥ २३।२५॥ हे राजेन्द्र! कृष्णचन्द्र अर्जुन के ये वचन सुनकर उनका रथ अश्वत्थामा के समीप ले गये, जैसे कि शिक्षा-विधि से बुलाये गये इन्द्र को वायुदेव यज्ञशाला में पहुँचाते हैं। समीप पहुँचकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अश्वत्थामा! स्थिर होकर शीघ्र प्रहार करो और अर्जुन के प्रहार को सहो। नौकरों के निमित्त अपने प्रतिपालक स्वामी के ऋण को चुकाने का यही उपयुक्त समय है। [तुम भी अपने स्वामी दुर्योधन का ऋण चुकाने की चेष्टा कर लो।] ब्राह्मणों का विवाद (शास्त्रार्थ) सूक्ष्म होता है, और क्षत्रियों की जय-पराजय का विषय स्थूल है। तुम मोहवश अर्जुन से युद्धरूप आतिथ्य माँगते हो; किन्तु इनके दिव्य अस्त्रों को तुम नहीं सह सकोगे। अस्तु, अब स्थिर होकर उस सत्कार के प्राप्त करने के निमित्त अर्जुन से युद्ध करो॥ २६।२९॥ महारथी द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण के वचन सुनकर कहा—अच्छी बात है, यही होगा। अब अत्यन्त कुपित अश्वत्थामा

सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ ।
त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥ ३२ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ॥ ३३ ॥
इषुधेर्धनुषश्चैव ज्यायाश्चैवाथ मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥ ३४ ॥
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च ।
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३५ ॥
शरजालेन महता विध्वा माधवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ३६ ॥
तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत् ।
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति ॥ ३७ ॥
वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रवेश्य शरवेश्मनि ।
एषोऽस्मि हन्मि सङ्कल्पं शिक्षया च बलेन च ॥ ३८ ॥
अश्वत्थाम्नः शरानस्तांश्छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा ।
व्यधमद्वरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ॥ ३९ ॥
ततः संशप्तकान्भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥ ४० ॥
ये ये ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपास्तदा जनाः ।
ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेऽऽत्मानमात्मना ॥ ४१ ॥

ने श्रीकृष्ण को साठ और अर्जुन को तीन तीक्ष्ण नाराच बाण मारे । अर्जुन ने भी कुपित होकर तीन बाणों से अश्वत्थामा का धनुष काट डाला । उन्होंने तुरत एक भयानक धनुष लेकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और निमेषमात्र में ही तीन सौ बाण श्रीकृष्ण को और एक सहस्र बाण अर्जुन को मारे॥३०।३२॥इसके पश्चात् वीर अश्वत्थामा यत्नपूर्वक सहस्रों,लाखों, करोड़ों बाण बरसाने लगे।उनकी निरन्तर अपार बाण वर्षा के प्रभाव से अर्जुन के हाथ कुण्ठित से हो गये।उस समय योगबल के कारण,और अस्त्र के प्रभाव से,अश्वत्थामा के तरकस, धनुष,धनुष की प्रत्यञ्चा, अङ्गुलियों,बाहुओं,हथेलियों, वक्ष स्थल, मुख, नाक, नेत्र, कान, सिर, सम्पूर्ण अङ्ग, रोम रोम, रथ और ध्वजा से निरन्तर असंख्य बाण निकल रहे थे।इस प्रकार बाणजाल से श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाँधकर अश्वत्थामा बहुत प्रसन्न हुए और मेघ के समान गरजकर सिंहनाद करने लगे॥३३।३६॥शत्रुदमन अर्जुन ने महाबली अश्वत्थामा का सिंहनाद सुनकर कहा—हे श्रीकृष्ण!मेरे प्रति गुरुपुत्र का यह दौरात्म्य तो देखिए । वे इन बाणों से हम दोनों को आवृत करके मरा हुआ समझ रहे हैं।देखिए, मैं अभी अपनी युद्धशिक्षा के कौशल तथा बल से अश्वत्थामा की (हमें मार डालने की) इच्छा को व्यर्थ किये डालता हूँ॥३७।३८॥हे महाराज ! अर्जुन ने इतना कहकर, वायु जैसे नीहार (ओस) को मिटा

ते गाण्डीवप्रमुक्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान्घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान्रणे ॥ ४२ ॥
भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदवर्षिणाम् ।
यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥ ४३ ॥
पश्चात्तु शैलवत्पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः ।
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥ ४४ ॥
गन्धर्वनगराकारान्रथांश्चैव सुकल्पितान् ।
विनीतैर्जवनैर्युक्तानास्थितान्युद्धदुर्मदैः ॥ ४५ ॥
शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
स्वलंकृतानश्वसादीन्पत्तींश्चाहन्धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
धनञ्जययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीक्ष्णैःशरगभस्तिभिः ॥ ४७ ॥
पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसन्निभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन्वज्रीव पर्वतम् ॥ ४८ ॥
तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुरागमद्योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥ ४९ ॥
ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥ ५० ॥

देती है वैसे ही,स्फूर्ति के साथ अपने बाणों से अश्वत्थामा के एक एक बाण के तीन-तीन खण्ड कर डाले।इस प्रकार अश्वत्थामा की चेष्टा को व्यर्थ करके अर्जुन ने संशप्तकगणों पर भी उग्र बाणों की वर्षा की,जिससे उनके घोड़े, सारथी, रथ, हाथी, ध्वजा, पैदल और वे स्वयं घायल होने लगे।उस समय शत्रुपक्ष का जो मनुष्य जहाँ जिस प्रकार स्थित था, वहाँ उसी दशा में उसे जान पड़ने लगा कि उसके चारों ओर बाण ही बाण हैं।गाण्डीव धनुष से छूटे हुए अनेक प्रकार के बाण कोस भर पर या और भी आगे स्थित हाथियों और मनुष्यों को मार-मारकर गिरा रहे थे। जिनके मस्तक से मद गिर रहा था, ऐसे हाथियों की सूँड़े भल्ल बाणों से कट-कटकर वैसे ही पृथ्वी पर गिरने लगीं, जैसे कुल्हाड़ी से काटे गये बड़े-बड़े वृक्षों की शाखाएँ पृथ्वी पर गिरें॥३९।४३॥सूँड़ कटने के पश्चात् पर्वत के समान हाथी भी अपने सवारों सहित पृथ्वी पर गिरने लगे,जैसे कि इन्द्र के वज्र की चोट से फट-फटकर पर्वत गिरें।जिनमें सुशिक्षित शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए थे और युद्धमें अजेय वीर बैठे हुए थे,ऐसे गन्धर्व-नगर के समान सुसज्जित बड़े बड़े रथों का,अर्जुन के बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर,पृथ्वी पर ढेर होने लगा। शत्रुओं पर बाण बरसा रहे अर्जुन ने सुन्दर अलङ्कृत पैदलों और घुड़सवारों को मार मारकर गिरा दिया। अर्जुन उस समय प्रलयकाल के सूर्य के समान तप रहे थे।उन्होंने बाणरूप किरणों से संशप्तक सेना रूप महासागर को सुखा दिया॥४४।४७॥संशप्तक सेना को नष्ट करना अन्य किसी वीर के लिए बहुत ही कष्टसाध्य था।हे राजेन्द्र!इन्द्र जैसे पर्वत पर वज्र-प्रहार करते हैं वैसे ही अर्जुन ने फिर स्फूर्ति के साथ बड़े वेग से वज्र-तुल्य नाराच बाण मारकर महापर्वत के समान अचल

अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपांक्तेयानिव त्यक्त्वा दाता पांक्तेयमर्थिनम् ॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वण्यश्वत्थामार्जुनसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अश्वत्थामा को घायल कर दिया। उन्होंने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर घोड़े और सारथी सहित अर्जुन के ऊपर अनेक बाण छोड़े; किन्तु अर्जुन ने उन बाणों को काट डाला। तब अश्वत्थामा ने अपने अनुरूप शत्रु अर्जुन से युद्ध करने के निमित्त, उनके सम्मुख जाकर, उन पर अपने तरकस के बाण बरसाना प्रारम्भ कर दिया। जैसे कोई पुरुष अपने घर आये हुए अतिथि को, उसका सत्कार करने के निमित्त, अपना गृह अर्पण करे वैसे ही अश्वत्थामा ने अर्जुन के ऊपर अपने अस्त्र शस्त्र छोड़ना प्रारम्भ किया। जिस प्रकार दान देनेवाला पुरुष पंक्ति से भ्रष्ट (अपात्र) लोगों को छोड़कर पंक्ति में बैठने योग्य (सुपात्र) याचक के पास जाता है, वैसे ही अर्जुन भी संशप्तक-सेना को छोड़कर अश्वत्थामा के पास आ गये॥४८।५१॥

कर्ण पर्व का सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच—ततः समभवद्युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ १ ॥
सन्तापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव ॥ २ ॥
ततोऽविध्यद् भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम् ।
स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः ॥ ३ ॥
अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम् ।
स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः ॥ ४ ॥
ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्रमवासृजद्वासुदेवेऽभिभूते ।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत्पृषत्कैर्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥ ५ ॥
स केशवं चार्जुनं चातितेजा विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा ।
बाणैः सुमुक्तैरतितीव्रवेगैर्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत ॥ ६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय ॥ १७ ॥

द्रौणेरिषूनर्जुनः सन्निवार्य व्यायच्छतस्तद् द्विगुणैः सुपुङ्खैः ।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीरमावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत् ॥ ७ ॥
धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः पाणीन्भुजान्पाणिगतं च शस्त्रम्
छत्राणि केतूंस्तुरगानथेषां वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥ ८ ॥
चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तैर्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम् ९ ॥
सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः समास्थिता यत्नकृतैर्नृवीरैः।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्तास्तैरेव सार्द्धं नृवरा निपेतुः ॥ १० ॥
पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि ।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरकर्त्तितानि प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ११ ॥
अथ द्विपैर्देवरिपुद्विपाभैर्देवारिदर्पापहमत्युदग्रम् ।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ १२ ॥
तेषां द्विपानां निचकर्त्त पार्थो वर्माणि चर्माणि करान्नियन्तॄन्
ध्वजान्पताकाश्च ततः प्रपेतुर्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ १३ ॥
तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं बाणैः किरीटी नव सूर्यवर्णैः ।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालैर्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम्॥ १४ ॥
ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते १५ ॥

आरम्भ किया॥३।५॥अत्यन्त रौद्र कर्म करनेवाले महा तेजस्वी अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के मर्म-स्थलों में लक्ष्य करके अगणित बाण मारे। वे बाण ऐसे थे कि उनकी चोट से साक्षात् मृत्यु भी व्यथित हो जाय। अर्जुन ने अश्वत्थामा के बाणों को उनसे दुगुने बाणों से व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार घोड़े, सारथी, ध्वजा आदि सहित वीर अश्वत्थामा को बाणों से पीड़ित करके वे फिर संशप्तक-सेना को मारने लगे। समर से न हटनेवाले संशप्तक वीरों के धनुष, बाण, तरकस, धनुष की प्रत्यञ्चा, हाथ, हथेली, हाथों के शस्त्र, छत्र, ध्वजा, घोड़े, रथ की ईषा, वस्त्र, माला, आभूषण, कवच, ढाल-वस्त्र और सिर आदि को अर्जुन ने यत्नपूर्वक अपने बाणों से छिन्न-भिन्न करना आरम्भ कर दिया॥६।९॥सुसज्जित रथ, हाथी, घोड़े आदि के ऊपर बैठे हुए वीर संशप्तकगण यत्नपूर्वक युद्ध कर रहे थे। वीर अर्जुन तीक्ष्ण सैकड़ों बाण मारकर उन वाहनों और उन पर बैठे हुए वीरों को पृथ्वी पर गिराने लगे। अर्जुन भल्ल, अर्धचन्द्र, क्षुर आदि विविध बाणों से शत्रुओं के किरीट-मुकुट, माला और आभूषणों से अलङ्कृत और कमल, सूर्य तथा पूर्णचन्द्र के समान मुखवाले सिरों को काट-काटकर निरन्तर पृथ्वी पर गिराने लगे। तब कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग और निषाद आदि देशों के दानव तुल्य वीर योद्धा लोग ऐरावत के समान श्रेष्ठ हाथियों को आगे बढ़ाकर अर्जुन को मार डालने के निमित्त उनकी ओर चले॥१०।१२॥ अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ अपने बाणों से जब उन हाथियों के कवच, मर्म, सूँड़, महावत, ध्वजा, पताका आदि को काट डाला तब वे वज्र के प्रहार से फटे हुए पर्वतों के शिखर के समान पृथ्वी पर गिरने लगे। इस प्रकार अर्जुन के बाणों से वह गज सेना छिन्न

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीयानभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः ॥ १६ ॥
नाप्याददत्सन्दधन्नैव मुञ्चन्बाणान्रथेऽदृश्यत सव्यसाची ।
रथांश्च नागांस्तुरगान्पदातीन्संस्यूतदेहान्ददृशुर्हतांश्च ॥ १७ ॥
सन्धाय नाराचवरान्दशाशु द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज ।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुपुङ्खाः ॥ १८ ॥
तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्यावसृक्स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ ।
समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥ १९ ॥
अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् ।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं कष्टो भवेद्व्याधिरिवाक्रियावान् ॥ २० ॥
तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष ।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू ॥ २१ ॥
गाण्डीवमुक्तैः कुपितो विकर्णैर्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद ।
छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्यं ते तं रणाद्दूहुरतीव दूरम् ॥ २२ ॥
स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गैर्द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः ।
इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं पार्थेन सार्द्धं मतिमान्विमृश्य ।
जानञ्जयं नियतं वृष्णिवीरे धनञ्जये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ २३ ॥

भिन्न होकर भाग खड़ी हुई। तब फिर वे सूर्यवत् बाणों की वर्षा से गुरु पुत्र को उसी प्रकार आच्छादित करने लगे जिस प्रकार वायु उदय हो रहे सूर्य को मेघों से आच्छादित कर देता है। अश्वत्थामा ने भी अपने बाणों से अर्जुन के बाणों को काट डाला। वर्षाकाल में गगनमण्डल में सूर्य चन्द्र को छिपाकर जैसे मेघ गरजते हैं वैसे ही तीक्ष्ण बाणों से श्रीकृष्ण और अर्जुन को आच्छादित करके महारथी अश्वत्थामा गरजने लगे॥१३।१५॥इस प्रकार अश्वत्थामा और उनके साथ की सेना ने निकट आकर जब शस्त्र वर्षा से अर्जुन को पीड़ित किया तब अर्जुन ने भी एकाएक उस बाणजाल के अन्धकार को दूर करके उन्हें सुवर्ण-पुङ्ख युक्त तीक्ष्ण बाणों से मारना आरम्भ किया। उस समय रथ में बैठे हुए अर्जुन ऐसी स्फूर्ति से हाथ चला रहे थे कि कब वे बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते और कब छोड़ते हैं, यह कुछ भी नहीं देख पड़ता था। केवल यही देख पड़ता था कि रथ, हाथी, घोड़े और पैदल योद्धा उनके बाणों से छिन्न भिन्न हो रहे हैं—मर-मरकर पृथ्वी ऊपर ढेर हो रहे हैं॥१६।१७॥तब अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ दस नाराच बाणों को एक बाण के समान धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा। उनमें से पाँच बाण अर्जुन को और पाँच बाण श्रीकृष्ण को लगे। सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और इन्द्र तथा कुबेर के समान श्रीकृष्ण और अर्जुन के शरीर में वे बाण वेग से घुस गये और रक्त की धारा बह चली। सबने समझा कि समग्र धनुर्वेद के ज्ञाता गुरुपुत्र के प्रहार से श्रीकृष्ण और अर्जुन की मृत्यु ही हो गई॥१८।१९॥तब श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! तुम शत्रु को मारने में शिथिलता क्यों कर रहे हो? यह तुम्हारा प्रमाद युक्त नहीं। तुम गुरुपुत्र समझकर अश्वत्थामा से कोमल युद्ध कर रहे हो। किन्तु जैसे रोग की चिकित्सा करने में आलस्य

नियम्य स हयान्द्रौणिः समाश्वास्य च मारिष ।
रथाश्वनरसम्बाधं कर्णस्य प्राविशद्बलम् ॥ २४ ॥
प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥ २५ ॥
संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वण्यश्वत्थामपराजये सप्तदशोऽध्याय ॥ १७ ॥

करने से वह फिर बढ़कर बड़ा कष्ट देता है, वैसे ही अश्वत्थामा भी इस प्रकार उपेक्षा करने से बड़ी हानि पहुँचा सकते हैं॥२०॥हे महाराज! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने, सावधान होकर, कहा—अच्छी बात है, मैं अभी अश्वत्थामा को परास्त करता हूँ। अब हँसते हँसते अर्जुन ने अश्वत्थामा के चन्दन चर्चित हाथों में, वक्ष स्थल में, सिर में और जाँघों में असंख्य विकट बाण लक्ष्य-लक्ष्यकर मारना आरम्भ किया। वे बाण गाण्डीव धनुष से छूटकर अश्वत्थामा के अङ्गों को छिन्न भिन्न करने लगे। इसी मध्य में अर्जुन ने अश्वत्थामा के घोड़ों की लगामें काट दीं। अर्जुन के बाणों से पीड़ित घोड़े बड़े वेग से भागे और उनके रथ को रणभूमि से बहुत दूर ले गये। अर्जुन के दृढ़ प्रहार से अश्वत्थामा पीड़ित हो रहे थे। वायु के समान वेग से जानेवाले घोड़े जब उन्हें अर्जुन के आगे से हटा ले गये तब फिर उनकी समर्थना न पड़ी कि सम्मुख जाकर अर्जुन से युद्ध करें। अश्वत्थामा बुद्धिमान् थे। उन्होंने सोचकर फिर अर्जुन के सम्मुख न जाने में ही अपना कल्याण समझा॥२१। २३॥वे जानते थे कि श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई संग्राम में जीत नहीं सकता। जहाँ वे दोनों वीर हैं वहीं विजय है। अश्वत्थामा का उत्साह भङ्ग हो गया। उनके बाण अस्त्र आदि भी समाप्त हो गये थे। वे सीधे कर्ण की सेना में चले गये। मन्त्र, औषध, क्रिया आदि उपचारों से जैसे व्याधि शरीर से दूर होती है वैसे ही विरुद्ध आचरण करनेवाले अश्वत्थामा को जब घोड़े युद्धभूमि से हटा ले गये तब जल प्रवाह के समान शब्द करनेवाले और वायु से फहरा रही पताका से शोभित रथ को बढ़ाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन संशप्तक-सेना की ओर फिर चल दिये॥२४।२६॥

कर्ण पर्व का सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

सञ्जय उवाच—अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः ।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् ॥ १ ॥
निवर्त्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान्गरुडानिलरंहसः ॥ २ ॥

अठारहवाँ अध्याय ॥ १८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! धृतराष्ट्र! उसी समय रणभूमि की उत्तर सीमा में पाण्डव-सेना के मध्य घोर कोलाहल सुनाई पड़ा। वीरवर दण्डधार बड़े वेग से बाणवर्षा करके रथों, हाथी, घोड़े, पैदल आदि का संहार कर रहे थे और इसी से सब लोग अपने वाहनों सहित चिल्लाते हुए भाग रहे थे। गरुड़ और वायु के समान वेगवाले घोड़ों को हाँक रहे कृष्णचन्द्र ने रथ को उसी ओर फेरकर अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! मगध देश के वीर योद्धाओं में श्रेष्ठ यह दण्डधार, शत्रुदलन हाथी पर बैठा हुआ, तुम्हारी सेना का संहार कर रहा है। शिक्षा और बल में यह भगदत्त से किसी प्रकार न्यून नहीं है। इसका

मागधोऽप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ३ ॥
एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत्पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति ॥ ४ ॥
स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहे ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥ ५ ॥
सुकल्पितं दानवनागसन्निभं महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान्सहस्रशः समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥ ६ ॥
रथानधिष्ठाय स वाजिसारथीन्नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत् ॥ ७ ॥
नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणान्निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह ।
व्यपोथयद्दन्तिवरेण शुष्मिणा स शब्दवत्स्थूलनलं यथा तथा ॥ ८ ॥
अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने मृदङ्गभेरीबहुशङ्खनादिते ।
रथाश्वमातङ्गसहस्रसंकुले रथोत्तमेनाभ्यपतद् द्विपोत्तमम् ॥ ९ ॥
ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमैर्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभिस्ततो ननाद प्रजहास चासकृत्॥ १० ॥

हाथी भी बड़ा विकट है । इसलिए पहले इसे मार लो, फिर संशप्तक सेना का संहार करना । ■ राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण ने यों कहकर, बात की बात में, अर्जुन को दण्डधार के हाथी के पास पहुँचा दिया॥१।४॥अशुभ ग्रह धूमकेतु के समान त्रास उत्पन्न करनेवाला, महा बली, मागध श्रेष्ठ, दारुण दण्डधार अपने योद्धाओं को साथ लिये सारी शत्रु सेना को मथ रहा था । गज-युद्ध में उसका सामना करनेवाला कोई न था । जैसे अन्य ग्रह उत्पाती केतु ग्रह का वेग नहीं सह सकते वैसे ही दण्डधार का पराक्रम अन्य वीरों के निमित्त असह्य हो रहा था । वह वीर राजा जिस गजराज पर बैठा हुआ था वह विकट हाथी दानवराज के हाथी के समान, सुसज्जित, रण में महामेघ के समान शब्द करनेवाला और रथ, हाथी, घोड़े, पैदल आदि को नष्ट करनेवाला था । पराक्रमी राजा दण्डधार काल-चक्र के तुल्य चारों ओर घूमकर, उस हाथी के ऊपर से बाणों की वर्षा करके असंख्य महारथियों, महावतों हाथियों, घोड़ों, उनके सवारों और पैदलों को मारने और गिराने लगा। उसका श्रेष्ठ हाथी भी घोड़ों और सारथी सहित रथों तथा मनुष्यों को, आक्रमण करके पाँवों से रौंद रहा था। वह तेजस्वी हाथी जहाँ तहाँ काँसे और लोहे के कवचों से शोभित मनुष्यों और घोड़ों को गिराकर रौंदता था, जिससे सूखे नल वन (नरकुल) को रौंदने का सा शब्द होता था॥५।८॥ इधर महापराक्रमी अर्जुन अपने श्रेष्ठ रथ को बढ़ाकर रणभूमि में उसी गजराज के पास पहुँचे।वहाँ चारों ओर धनुष की डोरियों का शब्द,रथों के पहियों की घरघराहट, असंख्य मृदङ्ग,शङ्ख,नगाड़े आदि की ध्वनि और सहस्रों रथ,हाथी घोड़े,मनुष्य आदि का कोलाहल गूँज रहा था॥ वीर दण्डधार ने अर्जुन को बारह, श्रीकृष्ण को सोलह और घोड़ों को तीन-तीन बाण मारकर सिंहनाद किया। वह इस प्रकार स्फूर्ति दिखाकर हँसने लगा॥९।१०॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषु कार्मुकं चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन्सहपादगोप्तृंस्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः ॥ ११ ॥
ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना घनोपमेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं धनञ्जयं चाभिजघान तोमरैः ॥ १२ ॥
अथास्य बाहू द्वीपहस्तसन्निभौ शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः ।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डवस्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत् ॥ १३ ॥
स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः समाचितः काञ्चनवर्मभृद् द्विपः ।
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः॥ १४ ॥
स वेदनार्त्तोऽम्बुदनिःस्वनो नदंश्चरन्भ्रमन्प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत्
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा यथागिरिर्वज्रविदारितस्तथा ॥ १५ ॥
हिमावदातेन सुवर्णमालिना हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना ।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रजाज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनञ्जयम् ॥ १६ ॥
स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभिर्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः ।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयंस्ततोऽस्य बाहू निचकर्त पाण्डवः ॥ १७ ॥
क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ ।
गजात्पतन्तौ युगपद्विरेजतुर्यथाद्रिशृङ्गात्पतितौ महोरगौ ॥ १८ ॥

यह देखकर वीर अर्जुन ने भल्ल बाणों से दण्डधार की प्रत्यञ्चा और बाण सहित धनुष और अलंकृत भारी ध्वजा काट डाली। फिर हाथी के प्रधान महावत और चारों चरण-रक्षकों को मार डाला। इस से गिरिव्रज के राजा दण्डधार को क्रोध चढ़ आया। उसने अर्जुन और श्रीकृष्ण को उद्विग्न करने के निमित्त अपने वायु के समान वेगशाली मदोन्मत्त और प्रचण्ड हाथी को आगे बढ़ाया। दण्डधार बारम्बार अर्जुन और श्रीकृष्ण पर तोमरों से प्रहार करने लगा॥१०।१२॥तब अर्जुन ने कई क्षुर बाण एक साथ छोड़कर दण्डधार के पूर्णचन्द्र-तुल्य मुख से शोभित सिर और हाथी की सूंड के समान दोनों हाथों को काट डाला। साथ ही सैकड़ों बाण उस हाथी को मारे। सुनहरे कवच से शोभित उस हाथी के शरीर में अर्जुन के सुवर्ण-भूषित बाण लगने से ऐसा जान पड़ने लगा कि रात्रि के समय किसी पर्वत पर दावानल लगी हुई है और उसमें उसके ऊपर के वृक्ष-ओषधी आदि जल रहे हैं। बाण-प्रहार की वेदना से पीड़ित वह मेघ-गर्जन के समान आर्तनाद करता हुआ चक्कर खाकर लड़खड़ाता भागा और कुछ दूर जाकर,वज्र से फटे हुए पर्वत के समान अपने महावत सहित पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गया॥१३।१५॥अपने भाई दण्डधार की मृत्यु देखकर महाबली दण्ड भी सुवर्ण माला से शोभित हिमाचल के शिखर के समान ऊँचे, श्वेत हाथी पर चढ़कर श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारने के निमित्त उनके समीप आया। उसने सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमय तीन तीक्ष्ण तोमर अर्जुन को और पाँच तोमर कृष्णचन्द्र को मारे। इस प्रकार दोनों शत्रुओं को पीड़ित करके वह सिंहनाद करने लगा। अर्जुन ने कुपित होकर दो क्षुरप्र बाणों से उसके तोमरयुक्त दोनों हाथ काट डाले। चन्दन-चर्चित और अङ्गद-भूषित उसकी दोनों विशाल भुजाएँ हाथी की पीठ पर से पृथ्वी पर गिरते समय पर्वत के शिखर पर से गिरनेवाले दो महासर्पों के समान जान पड़ीं॥१६॥

तथार्धचन्द्रेण हतं किरीटिना पपात दग्धस्य शिरः क्षितिं द्विपात्
सशोणितार्द्रान्निपतन्विरेजे दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम् ॥ १९ ॥
अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसन्निभं दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
विभेद पार्थः स पपात नादयन्हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥ २० ॥
ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा जिगीषवः संयति सव्यसाचिना।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ ततः प्रभग्नं सुमहद्विपोर्बलम्॥ २१ ॥
गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च सङ्घशः परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहिता भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥ २२ ॥
अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः २३ ॥
न चेदरक्षिष्य इमं जनं भयाद् द्विपद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम् ।
तथा भविष्यद् द्विषतां प्रमोदनं यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४ ॥
इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीडिता निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं जगाम संशप्तकसङ्घहा पुनः ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१८॥फिर अर्जुन ने एक अर्धचन्द्र बाण से दण्ड का सिर भी काट डाला। रुधिर से सना हुआ सिर हाथी के ऊपर से वैसे ही गिरा जैसे सूर्य का मण्डल अस्ताचल से पश्चिम दिशा में नीचे जाता है। अर्जुन ने सूर्य-किरण-तुल्य तीक्ष्ण बाण मारकर, कैलाश पर्वत के शिखर के समान, हाथी के शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला। वज्र की चोट से फटे श्वेत पर्वत के शिखर के समान, शब्द करता हुआ,वह हाथी पृथ्वी पर गिरकर मर गया। दण्ड और दण्डधार के साथ और भी अनेक योद्धा वैसे ही हाथियों पर विराजमान थे। वे लोग युद्ध करके अर्जुन को जीतने का उद्योग करने लगे। अर्जुन ने उन योद्धाओं को मारा और उनके हाथियों की भी वही दशा कर दी,जो कि दण्ड और दण्डधार के हाथियों की की थी। यह दशा देखकर शत्रुपक्ष की भारी सेना भय के मारे भाग खड़ी हुई॥१९।२१॥हाथियों, रथों, घोड़ों, और मनुष्यों के समूह परस्पर प्रहार कर रहे थे। उनमें से अधिकांश मर-मरकर पृथ्वी पर गिरते जा रहे थे। भागते समय एक पर एक गिर रहा था। बहुत लोग कोलाहल करते हुए चोट खाकर भागे, किन्तु भाग नहीं सके; चक्कर खाकर गिर पड़े और मर गये। इधर अर्जुन को उनके पक्ष के सैनिकों ने चारों ओर से आकर घेर लिया। देवमण्डली के मध्य में इन्द्र के समान उनके मध्य में अर्जुन शोभायमान हुए। सब सैनिक हर्ष प्रकट करते हुए कहने लगे—हे वीर धनञ्जय ! मृत्यु से जैसे मनुष्य भयभीत होते हैं वैसे ही इस दण्डधार से हमें भय था। बड़े सौभाग्य की बात है, जो तुमने इस शत्रु को मार डाला। हे शत्रुदमन ! इन बली शत्रुओं ने हम सबको पीड़ित कर रक्खा था। यदि तुम आकर इस भय से हमारी रक्षा न करते, तो जिस प्रकार इन शत्रुओं के मरने से हम प्रसन्न हो रहे हैं उसी प्रकार हमारे शत्रु हमारी मृत्यु देखकर प्रसन्न होते। हे महाराज ! महावीर प्रसन्नचित्त अर्जुन अपने पक्ष के लोगों के मुख से ये प्रशंसापूर्ण वचन सुनकर, और यथोचित रूप से उनका सत्कार करके, फिर संशप्तकगण का संहार करने के निमित्त उनकी ओर चल दिये॥२२।२५॥

—०—

कर्ण पर्व का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच—प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान्बहून् ।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥
पार्थबाणहता राजन्नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २ ॥
धुर्यान्धुर्यगतान्सूतान्ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीन्पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डव ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥ ४ ॥
वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥
तेषां तस्य च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥
तमविध्यत्त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥
तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन् ।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वानहितानहनद्बहून् ॥ ९ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय ॥ १९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इस प्रकार महावीर दण्ड और दण्डधार के मारे जाने पर वीर अर्जुन फिर, वक्र अतिवक्र गति से जानेवाले मङ्गल ग्रह के समान, संशप्तक-सेना के सम्मुख पहुँचे। कौरव पक्ष के हाथी, घोड़े, रथ और योद्धा लोग अर्जुन के बाणों से विचलित होकर, चक्कर खाकर गिरने, मरने और मलिन होने लगे॥१।२॥ समर में अर्जुन ने भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र और वत्सदन्त आदि अनेक प्रकार के बाण मारकर शत्रुओं के श्रेष्ठ वाहन, सारथी, ध्वजा, बाण, धनुष, खड्ग, हाथ में स्थित शस्त्र, बाहु और सिर आदि को, काट-काटकर, ढेर लगा दिया। बहुत से साँड़ जैसे एक गाय के निमित्त किसी एक साँड़ पर आक्रमण करते हैं, वैसे ही शत्रुपक्ष के सहस्रों योद्धा अर्जुन पर आक्रमण करते हुए आगे बढ़े। त्रैलोक्य-विजय के समय इन्द्र से दैत्यों ने जैसे घोर युद्ध किया था, वैसे ही इस समय वे वीर योद्धा लोग अर्जुन से तुमुल संग्राम कर रहे थे॥४।६॥ इसी समय उग्रायुध के पुत्र ने दन्दशूक (डस लेनेवाले काले) सर्प सदृश प्राणघातक तीन बाण अर्जुन को मारे। उन बाणों के प्रहार से कुपित होकर अर्जुन ने तुरन्त उसका सिर काट डाला। वर्षा ऋतु में प्रचण्ड आँधी से सञ्चालित मेघ-मण्डल जैसे हिमालय को आच्छादित कर लेता है वैसे ही शत्रुदल के योद्धाओं ने विविध अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से अर्जुन के रथ को आच्छादित कर दिया। महा-

तथार्धचन्द्रेण हतं किरीटिना पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात्
सशोणितार्द्रान्निपतन्विरेजे दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम् ॥ १९ ॥
अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसन्निभं दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥ २० ॥
ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा जिगीषवः संयति सव्यसाचिना ।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ ततः प्रभग्नं सुमहद्द्विपोर्बलम्॥ २१ ॥
गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च सङ्घशः परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहिता भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥ २२ ॥
अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः २३ ॥
न चेदरक्षिष्य इमं जनं भयाद् द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम् ।
तथा भविष्यद् द्विषतां प्रमोदनं यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४ ॥
इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीडिता निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः ।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं जगाम संशप्तकसङ्घहा पुनः ॥ २५ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१८॥फिर अर्जुन ने एक अर्धचन्द्र बाण से दण्ड का सिर भी काट डाला। रुधिर से सना हुआ सिर हाथी के ऊपर से वैसे ही गिरा जैसे सूर्य का मण्डल अस्ताचल से पश्चिम दिशा में नीचे जाता है। अर्जुन ने सूर्य किरण-तुल्य तीक्ष्ण बाण मारकर, कैलाश पर्वत के शिखर के समान, हाथी के शरीर को छिन्न भिन्न कर डाला। वज्र की चोट से फटे श्वेत पर्वत के शिखर के समान, शब्द करता हुआ,वह हाथी पृथ्वी पर गिरकर मर गया। दण्ड और दण्डधार के साथ और भी अनेक योद्धा वैसे ही हाथियों पर विराजमान थे। वे लोग युद्ध करके अर्जुन को जीतने का उद्योग करने लगे। अर्जुन ने उन योद्धाओं को मारा और उनके हाथियों की भी वही दशा कर दी,जो कि दण्ड और दण्डधार के हाथियों की की थी। यह दशा देखकर शत्रुपक्ष की भारी सेना भय के मारे भाग खड़ी हुई॥१९।२१॥हाथियों, रथों, घोड़ों, और मनुष्यों के समूह परस्पर प्रहार कर रहे थे। उनमें से अधिकांश मर मरकर पृथ्वी पर गिरते जा रहे थे। भागते समय एक पर एक गिर रहा था। बहुत लोग कोलाहल करते हुए चोट खाकर भागे, किन्तु भाग नहीं सके; चक्कर खाकर गिर पड़े और मर गये। इधर अर्जुन को उनके पक्ष के सैनिकों ने चारों ओर से आकर घेर लिया। देवमण्डली के मध्य में इन्द्र के समान उनके मध्य में अर्जुन शोभायमान हुए। सब सैनिक हर्ष प्रकट करते हुए कहने लगे—हे वीर धनञ्जय ! मृत्यु से जैसे मनुष्य भयभीत होते हैं वैसे ही इस दण्डधार से हमें भय था। बड़े सौभाग्य की बात है, जो तुमने इस शत्रु को मार डाला। हे शत्रुदमन ! इन बली शत्रुओं ने हम सबको पीड़ित कर रक्खा था। यदि तुम आकर इस भय से हमारी रक्षा न करते, तो जिस प्रकार इन शत्रुओं के मरने से हम प्रसन्न हो रहे हैं उसी प्रकार हमारे शत्रु हमारी मृत्यु देखकर प्रसन्न होते। हे महाराज ! महावीर प्रसन्नचित्त अर्जुन अपने पक्ष के लोगों के मुख से ये प्रशंसापूर्ण वचन सुनकर, और यथोचित्त रूप से उनका सत्कार करके, फिर संशप्तकगण का संहार करने के निमित्त उनकी ओर चल दिये॥२२।२५॥

—०—

कर्ण पर्व का अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच—प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान्बहून् ।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥
पार्थबाणहता राजन्नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २ ॥
धुर्यान्धुर्यगतान्सूतान्ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीन्पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डव ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥ ४ ॥
वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥
तेषां तस्य च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥
तमविध्यत्त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥
तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन् ।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वान्सहितानहनद्बहून् ॥ ९ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय ॥ १९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इस प्रकार महावीर दण्ड और दण्डधार के मारे जाने पर वीर अर्जुन फिर, वक्र अतिवक्र गति से जानेवाले मङ्गल ग्रह के समान, संशप्तक-सेना के सम्मुख पहुँचे। कौरव पक्ष के हाथी, घोड़े, रथ और योद्धा लोग अर्जुन के बाणों से विचलित होकर, चक्कर खाकर गिरने, मरने और मलिन होने लगे॥१।२॥समर में अर्जुन ने भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र और वत्सदन्त आदि अनेक प्रकार के बाण मारकर शत्रुओं के श्रेष्ठ वाहन, सारथी, ध्वजा, बाण, धनुष, खड्ग, हाथ में स्थित शस्त्र, बाहु और सिर आदि को, काट-काटकर, ढेर लगा दिया। बहुत से साँड जैसे एक गाय के निमित्त किसी एक साँड पर आक्रमण करते हैं, वैसे ही शत्रुपक्ष के सहस्रों योद्धा अर्जुन पर आक्रमण करते हुए आगे बढ़े। त्रैलोक्य-विजय के समय इन्द्र से दैत्यों ने जैसे घोर युद्ध किया था, वैसे ही उस समय वे वीर योद्धा लोग अर्जुन से तुमुल संग्राम कर रहे थे॥४।६॥इसी समय उग्रायुध के पुत्र ने दन्दशूक (डस लेनेवाले काले) सर्प सदृश प्राण-घातक तीन बाण अर्जुन को मारे। उन बाणों के प्रहार से कुपित होकर अर्जुन ने तुरन्त उसका सिर काट डाला। वर्षा ऋतु में प्रचण्ड आँधी से सञ्चालित मेघ-मण्डल जैसे हिमालय को आच्छादित कर लेता है वैसे ही शत्रुदल के योद्धाओं ने विविध अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से अर्जुन के रथ को आच्छादित कर दिया। महा-

छिन्नत्रिवेणुसङ्घातान्हताश्वान्पार्ष्णिसारथीन् ।
विस्रस्तहस्ततूणीरान्विचक्ररथकेतनान् ॥ १० ॥
सञ्छिन्नरश्मियोक्त्राक्षान्व्यनुकर्षयुगान्रथान् ।
विध्वस्तसर्वसन्नाहान्बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥ ११ ॥
ते रथास्तत्र विध्वस्ताः परार्ध्या भान्त्यनेकशः ।
धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः ॥ १२ ॥
द्विपाः संभिन्नमर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः ।
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रपाताग्निभिर्यथा ॥ १३ ॥
सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः ।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः ॥ १४ ॥
नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥ १५ ॥
अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः ।
शरैर्निजघ्निवान्पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६ ॥
महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः ।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥ १७ ॥
विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः ।
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥ १८ ॥

वीर अर्जुन ने अपने अस्त्रबल से शत्रुओं के अस्त्र-शस्त्रों को व्यर्थ करके तीक्ष्ण बाणों से असंख्य वीरों को मार डाला । उन्होंने तीक्ष्ण बाण बरसाकर स्फूर्ति के साथ योद्धाओं के रथों के त्रिवेणु, घोड़े, सारथी, हाथ, तरकस, पहिये, आसन, रास, जोत, जुआ, रथ के नीचे की लकड़ी और सब बन्धन आदि अङ्ग उपाङ्गों को काट काटकर ढेर लगा दिया॥७।११॥इस प्रकार टूटे फूटे हुए बहुमूल्य विशाल रथ धनी लोगों के—अग्नि, आँधी और जल से—नष्ट हुए महलों के खण्डहर से प्रतीत होते थे।वज्र के समान विकट बाणों से जिनके मर्मस्थल कट-फट गये थे, ऐसे बड़े-बड़े हाथी वज्र, वायु और अग्नि से विनष्ट हुए—पर्वतों की चोटी पर के—मकानों के समान पृथ्वी पर गिर रहे थे । महेन्द्र जैसे दानवों का संहार करते हैं वैसे ही वज्र, अग्नि, विष आदि के समान शीघ्र प्राण हरनेवाले तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन ने असंख्य वैरियों को समर में मार गिराया । अर्जुन के बाणों की चोट खाकर सवारों सहित बहुत से घोड़े पृथ्वी पर गिर पड़े । उनकी जिह्वा और आँतें निकल आई थीं और रक्त से तर होने के कारण उनका रूप भयानक हो रहा था॥१२।१४॥अर्जुन के नाराच बाण लगने से शत्रुपक्ष के मनुष्य, हाथी और घोड़े चक्कर खाकर लड़खड़ाकर गिरने, आर्तनाद करने, और मरने लगे । बहुमूल्य कवच और आभूषण पहने, अनेक प्रकार के वस्त्रों और शस्त्रों से शोभित वीरगण रथ हाथी घोड़े आदि अपने वाहनों सहित अर्जुन के हाथ से मरकर पृथ्वी पर लोटने लगे॥१५।१७॥युद्ध में निर्भय, वीर-कर्म करनेवाले, पुण्यात्मा, श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न योद्धा लोग अपने श्रेष्ठ कर्मों से स्वर्ग को सिधारे । उनके

यथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन् ।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥ १९ ॥
उह्यमाना रथाश्वैर्मैः पत्तयश्च जिघांसवः ।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥ २० ॥
तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २१ ॥
साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसम्प्लवम् ।
सहसा सन्तितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥ २२ ॥
अथाब्रवीद्वासुदेवः पार्थं किं क्रीडसेऽनघ ।
संशप्तकान्प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥ २३ ॥
तथेत्युक्त्वार्जुनः कृष्णं शिष्टान्संशप्तकांस्तदा ।
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद्दैत्यानिन्द्र इवावधीत् ॥ २४ ॥
आददत्सन्दधन्नेपून्दृष्टः कैश्चिद्रणेऽर्जुनः ।
विमुञ्चन्वा शराञ्शीघ्रं दृश्यतेऽवहितैरपि ॥ २५ ॥
आश्चर्यमिति गोविन्दः सममन्यत भारत ।
हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् ॥ २६ ॥
ततः संग्रामभूमिं च वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

शरीर पृथ्वी पर पड़े हुए थे। हे महाराज ! इसी मध्य में आपके पक्ष के वीरगण, अनेक देशों के राजा लोग, अपने-अपने दलों को साथ लिए हुए चारों ओर से अर्जुन के रथ की ओर चले॥१८।२०॥ये सब क्रोध से विह्वल हो रहे थे। ये रथ, हाथी, घोड़े आदि वाहनों पर सवार थे। उनके साथ सहस्रों की संख्या में पैदल योद्धा भी थे। वे सब स्फूर्ति के साथ भाँति भाँति के शस्त्र अर्जुन के रथ पर बरसाने लगे। वे अर्जुन को मार डालने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। स्फूर्तिशाली अर्जुन ने योद्धा रूप मेघों की की हुई उस शस्त्रवर्षा को तीक्ष्ण बाणों से बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया। पैदल, हाथी, घोड़े, रथ आदि से पूर्ण वह सेना महासागर के तुल्य अपार थी। बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र उसमें प्रवाह के समान जान पड़ते थे। अर्जुन अपने अस्त्र-शस्त्र के सेतु के द्वारा एकाएक उस सागर के पार जाना चाहते थे। यह देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! तुम इन साधारण शत्रुओं के साथ क्रीड़ा कर क्यों वृथा समय नष्ट कर रहे हो ? इन संशप्तकों को शीघ्र मारकर फिर कर्ण को मारने का उद्योग करो॥२१।२३॥हे राजेन्द्र ! महावीर अर्जुन, श्रीकृष्ण का कथन मानकर, दानवदलन इन्द्र के तुल्य बल-वीर्य दिखाकर बचे हुए संशप्तकों को अस्त्र-शस्त्रों से शीघ्रता के साथ मारने लगे। किसी को नहीं देख पड़ता था कि अर्जुन कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते और कब छोड़ते हैं। श्रीकृष्ण भी अर्जुन की स्फूर्ति देखकर बहुत विस्मित हुए। जैसे हंसों के समूह सरोवर में प्रवेश करते हैं, वैसे ही अर्जुन के घोड़े शत्रुसेना में प्रवेश करने लगे॥२४।२६॥इस प्रकार बहुत जन संहार होने पर संग्रामभूमि को देख रहे

एष पार्थ महारौद्रो वर्त्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ २८ ॥
पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
महतां चापविद्धानि कलापानिषुधींस्तथा ॥ २९ ॥
जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान्विमुक्तानिव पन्नगान् ॥ ३० ॥
आकीर्णास्तोमरांश्चापि विचित्रान्हेमभूषितान् ।
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि भारत ॥ ३१ ॥
सुवर्णविकृतान्प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषिताः ।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ ३२ ॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान्हेमभूषितान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान् ॥ ३३ ॥
परिघान्भिन्दिपालांश्च भुशुण्डीः कुणपानपि ।
अयस्कुन्तांश्च पतितान्मुसलानि गुरूणि च ॥ ३४ ॥
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥ ३५ ॥
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ।
गजवाजिरथैः क्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः ॥ ३६ ॥
मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७ ॥
शरीरैर्बहुधा छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! एक दुर्योधन के अपराध से यह भरतवंशका संहार और पृथ्वीतल के राजाओं का नाश हो रहा है। वह देखो, मरे हुए योद्धाओं के सुवर्ण से मढ़ी पीठवाले असंख्य धनुष, तरकस और अलङ्कार इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। सुवर्णपुङ्ख-युक्त, और सन्नतपर्व वाण, तेल में धोये और केंचुल छोड़े हुए नाग के समान चमक रहे हैं॥२७।३०॥नाराच वाण, तोमर,सुवर्णदण्ड युक्त छत्र, सुवर्ण की पीठवाली ढालें, सुवर्ण-शोभित प्रास, सुवर्ण-मण्डित शक्तियाँ, सुवर्ण की पट्टियों से बँधी हुई गदाएँ,ऋष्टियाँ,पट्टिश, सुवर्णदण्ड से पृथक् हो गये परश्वध, परिघ,भिन्दिपाल, भुशुण्डी,कुणप,लौहकुन्त,भारी मूसल आदि भाँति भाँति के अस्त्र-शस्त्र हाथों में लिए ये जय चाहनेवाले वीर योद्धा रणभूमि में मरे पड़े हैं,किन्तु देखने में जीवित से जान पड़ते हैं॥३१।३५॥सहस्रों ऐसे योद्धा मरे पड़े हैं, जिनके अङ्ग गदा-प्रहार से चूर्ण हो गये हैं,मुशल प्रहार से मस्तक फट गये हैं, ऊपर से हाथी, घोड़े, रथ आदि के निकलने के कारण शरीर छिन्न भिन्न हो गये हैं। मनुष्यों,हाथियों और घोड़ों के शरीर वाण, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, निस्त्रिंश, पट्टिश, प्रास, नखर,

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः ।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९ ॥
सांगुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च नरस्विनाम् ॥ ४० ॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
रथांश्च बहुधा भग्नान्हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ ४१ ॥
अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिप्लुतान् ।
अनुकर्षानुपासङ्गान्पताका विविधान्ध्वजान् ॥ ४२ ॥
योधानां च महाशङ्खान्पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान् ।
निरस्तजिह्वान्मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ॥ ४३ ॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजयोधिनः ।
वारणानां परिस्तोमान्संयुक्तानेककम्बलान् ॥ ४४ ॥
विपाटितविचित्राश्च रूपश्चित्राः कुथास्तथा ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥ ४५ ॥
वैदूर्यमणिदण्डांश्च पतितांश्चांकुशान्भुवि ।
अश्वानां च युगापीडान्रत्नचित्रानुरश्छदान् ॥ ४६ ॥
विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कुथाः ।
विचित्रान्मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ॥ ४७ ॥

खड्ग आदि शस्त्रों से खण्ड-खण्ड होकर रुधिर से तर हो रहे हैं। हे शत्रुनाशन ! मरे हुए वीरों के शरीरों से सारी युद्धभूमि भरी पड़ी है॥३६।३८॥ वीरों के कटे हुए, चन्दन-चर्चित, अङ्गद केयूर आदि आभूषणों और तलत्राणों से शोभित विशाल बाहु चारों ओर पड़े हैं, जिनसे रणभूमि की अपूर्व शोभा हो रही है। लोगों के अङ्गुलित्राण-युक्त कटे हुए हाथों के अग्रभाग, हाथी की सूँड़ के समान कटी हुई जाँघें, चूड़ामणि और कुण्डलों से शोभित सिर सब ओर ढेर हो रहे हैं। सुवर्ण किंकिणीयुक्त बड़े बड़े श्रेष्ठ रथ टूटे फूटे पड़े हैं॥३९।४१॥ देखो, घायल घोड़े रक्त से नहाये पड़े हैं। रथ के नीचे के काष्ठ, तरकस, पताका, विविध ध्वजा, योद्धाओं के श्वेत महाशङ्ख, प्रकीर्णक, मरे पड़े हुए पर्वताकार हाथी, विचित्र वैजयन्ती (झण्डे), मरे हुए हाथियों के सवार योद्धा, हाथियों के हौदे, उन पर के बहुमूल्य अनेक कम्बल, हाथियों के गले के घण्टे, विचित्र आसन, घोड़ों की पीठ पर की जीनें, वैदूर्य मणि की डण्डीवाले पृथ्वी पर पड़े अंकुश, घोड़ों के सिर पर की कलँगियाँ, रत्नों से शोभित सुवर्ण माला और कवच, सवारों की ध्वजाओं के अग्रभाग में गिरे हुए सुवर्ण-शोभित विचित्र कम्बल, विचित्र मणियों से चित्रित और सुवर्ण से मण्डित घोड़ों की पीठ पर के बहुमूल्य ऊनी आसन और काठी आदि सामान युद्धभूमि में सर्वत्र पड़ा हुआ है। राजाओं की चूड़ामणियाँ, सुवर्ण की विचित्र मालाएँ, छत्र, चामर-व्यजन आदि इधर-उधर बिखरे पड़े हैं॥४२।४५॥ वीरों के सुन्दर कुण्डलों से शोभित और चन्द्र तथा नक्षत्रों के समान कान्तिसम्पन्न, अलङ्कृत, दाढ़ी मूँछों वाले सिर युद्धभूमि

अश्वास्तरपरिस्तोमान्राङ्कवान्पतितान्भुवि ।
चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥ ४८ ॥
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ।
चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ४९ ॥
क्लृप्तश्मश्रुभिराकीर्णां पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम् ।
कुमुदोत्पलपद्मानां खण्डैः फुल्लं यथा सरः ॥ ५० ॥
तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदोत्पलसन्निभैः ।
तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ॥ ५१ ॥
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम् ।
एतत्तवैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ॥ ५२ ॥
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत्कृतमाहवे ।
एवं तां दर्शयन्कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥ ५३ ॥
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ॥ ५४ ॥
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् ।
प्रविश्य तद्बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥ ५५ ॥
पाण्ड्येनाभ्यर्दितं सैन्यं त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः ।
स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥ ५६ ॥
न्यहन्यद् द्विषतां पूगान्गतासूनन्तको यथा ।
गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ॥ ५७ ॥

में भरे पड़े हैं। उनसे बहनेवाले रक्त से रणभूमि में कीचड़ ही कीचड़ दिखाई पड़ता है। देखो, जो जीव अभी मरे नहीं हैं, जाते हैं, वे भी घायल होकर आर्तनाद कर रहे हैं। वीरों के कटे हुए सिरों से यह रणभूमि खिले हुए कमल और कुमुद के पुष्पों से परिपूर्ण सरोवर अथवा शरद् ऋतु में चन्द्र-नक्षत्र युक्त आकाश-मण्डल के समान जान पड़ती है॥४६।५०॥हे अर्जुन! इस महायुद्ध में जो श्लाघ्यकार्य तुमने किया है वह तुम्हारे ही योग्य है। ऐसा युद्ध या तो इन्द्र कर सकते हैं और या तुम कर सकते हो। तीसरा पुरुष ऐसा अद्भुत कर्म नहीं कर सकता। हे राजेन्द्र! महात्मा कृष्णचन्द्र इस प्रकार अर्जुन को युद्धभूमि दिखलाते हुए जा रहे थे। इसी समय उन्हें दुर्योधन की सेना में घोर कोलाहल, शङ्ख दुन्दुभि भेरी पणव आदि बाजों का शब्द और इधर-उधर दौड़ रहे रथों हाथियों घोड़ों और मनुष्यों का घोर नाद सुन पड़ा॥५१।५४॥वायु के वेग से जानेवाले घोड़ों को बढ़ाकर श्रीकृष्ण ने उस सेना के मध्य प्रवेश किया। जाकर देखा कि महाबली पाण्ड्यराज ने आपकी सेना को पीड़ित कर रक्खा है। पाण्ड्यराज का अद्भुत पराक्रम देखकर श्रीकृष्ण को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। यमराज जैसे प्राणियों का संहार करते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ धनुर्धर पाण्ड्यराज अनेक प्रकार के बाणों से सहस्रों शत्रुओं का संहार कर रहे थे। वे हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को, बाणों से

भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूनपातयत् ।
शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि नानागस्त्राणि सायकैः ।
छित्त्वा तानवधीच्छत्रून्पाण्ड्यः शक्र इवासुरान् ॥ ५८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

टुकड़े टुकड़े करके, पृथ्वी पर गिरा रहे थे। इन्द्र जैसे असुरों का नाश करते हैं वैसे पाण्ड्यराज वीर शत्रुओं के अस्त्र शस्त्रों को अपने बाणों से छिन्न भिन्न करके उन्हें मार रहे थे॥ ५५।५८॥

कर्ण पर्व का उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्याय ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच—प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः ।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया सञ्जय कीर्तितम् ॥ १ ॥
तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम् ।
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच—भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान् ।
समाप्तविद्यान्धनुषि श्रेष्ठान्यान्मन्यसे रथान् ॥ ३ ॥
यो ह्याक्षिपति वीर्येण-सर्वानेतान्महारथान् ।
न मेने चात्मना तुल्यं कञ्चिदेव नरेश्वरम् ॥ ४ ॥
तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते ।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नैच्छतात्मनि ॥ ५ ॥
स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कर्णस्यानीकमहनत्परामृत इवान्तकः ॥ ६ ॥
तदुदीर्णरथाश्वं च पत्तिप्रवरसंकुलम् ।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात् ॥ ७ ॥

बीसवाँ अध्याय ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! तुम पहले ही वीर प्रसिद्ध पाण्ड्यदेश के राजा मलयध्वज का नाम ले चुके हो, किन्तु उनके युद्ध और पराक्रम का वर्णन नहीं किया। अब तुम उनके पराक्रम, शिक्षा, प्रभाव, वीर्य, बल व प्रमाण और दर्प आदि का विस्तार से वर्णन करो॥ १।२॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! आप जिन धनुर्विद्या के पारगामी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, अर्जुन और कृष्णचन्द्र, इन सात वीरों को श्रेष्ठ योद्धा और धनुर्धर मानते हैं, उन सब महारथियों को वीरश्रेष्ठ मलयध्वज अपने से बढ़कर नहीं समझते थे और सदा उनमें ईर्ष्या [illegible] राजा को बल वीर्य और [illegible] में [illegible] समझते थे यदि कोई उन्हें [illegible] कहता था, तो वे इस [illegible] अर्थात् अपने को [illegible] थे तथा कृष्णचन्द्र [illegible] विषय में न्यून [illegible] श्रेष्ठ [illegible] पाण्ड्य [illegible] करते थे। [illegible]

व्यश्वसूतध्वजरथान्विप्रविद्धायुधद्विपान् ।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ॥ ८ ॥
द्विरदान्द्विरदारोहान्विपताकायुधध्वजान् ।
सपादरक्षानहनद्वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा ॥ ९ ॥
सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान्हयानपि ।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्रककुन्तलान् ॥ १० ॥
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान्संग्रामकर्कशान् ।
विशस्त्रकवचान्बाणैः कृत्वा चैवाकरोद्व्यसून् ॥ ११ ॥
चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे ।
दृष्ट्वा द्रौणिरसम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तस्ततोऽभ्ययात्॥ १२ ॥
आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत् ।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयत् ॥ १३ ॥
राजन्कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत ।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष ॥ १४ ॥
मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद्धनुः ।
दोर्भ्यां विस्फारयन्भासि महाजलदवद्भृशम् ॥ १५ ॥
शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः ।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥ १६ ॥
रथद्विरदपत्त्यश्वानेकः प्रमथसे बहून् ।
मृगसङ्घानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः ॥ १७ ॥

कर्ण की अपार सेना पाण्ड्यराज के प्रहार से पीड़ित होकर कुम्हार के चाक के समान चारों ओर भागने और प्राण बचाने लगी। शत्रुदमन पाण्ड्यराज बाणों से घोड़े, सारथी, ध्वजा, रथी आदि सहित रथों के टुकड़े वैसे ही करने लगे, जैसे प्रबल आँधी मेघों को टुकड़े-टुकड़े करके उड़ा देती है॥६।८॥सवारों सहित बड़े बड़े हाथी, मलयध्वज के भयंकर बाणों के प्रहार से ध्वजा पताका शस्त्र आदि से हीन होकर, चरण-रक्षक सिपाहियों सहित, वज्रपात से फटे हुए पर्वतों के समान,पृथ्वी पर गिरने और मरने लगे। महावीर पाण्ड्यराज ने तीक्ष्ण बाणों से शक्ति प्रास तरकस आदि धारण किये हुए,रणविशारद, घोड़ों पर सवार, बलवीर्यशाली पुलिन्द, खश, बाह्लीक, निषाद, अन्ध्रक, कुन्तल, दाक्षिणात्य और भोजवंशी योद्धाओं के शस्त्र और कवच काट डाले और उनमें से अधिकांश को मार डाला॥९।११॥इसी समय निर्भय अश्वत्थामा ने निर्भय पाण्ड्यराज को बाणों से चतुरङ्गिणी सेना का संहार करते देखकर उन्हें युद्ध के निमित्त ललकारा। निःशङ्क अश्वत्थामा ने निःशङ्क होकर लड़ रहे मलय-ध्वज से मुसकाकर मधुर स्वर में कहा—हे राजेन्द्र! हे कमललोचन ! आपके शस्त्र और वाहन श्रेष्ठ हैं, आपका बल और पौरुष प्रसिद्ध है और शरीर भी वज्र के समान दृढ़ है। आप विशाल भुजाओं की दृढ़ मुट्ठी से भारी धनुष को चढ़ाते हुए महामेघ के

महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन् ।
वर्षान्ते सस्यहा मेघो भासि ह्लादीव पार्थिव ॥ १८ ॥
संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान् ।
मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेनान्धको यथा ॥ १९ ॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः ।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः ॥ २० ॥
मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः ।
स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः ॥ २१ ॥
ततोऽपरान्सुतीक्ष्णाग्रान्नाराचान्मर्मभेदिनः ।
गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाप्यवासृजत् ॥ २२ ॥
ताञ्शरानच्छिनत्पाण्ड्यो नवभिर्निशितैः शरैः ।
चतुर्भिरर्दयच्चाश्वानाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥ २३ ॥
अथ द्रोणसुतस्येषूंस्तांश्छित्वा निशितैः शरैः ।
धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः ॥ २४ ॥
दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा ।
प्रेक्ष्य चाशु रथे युक्तान्नरैरन्यान्हयोत्तमान् ॥ २५ ॥

समान जान पड़ते हैं॥१२।१५॥शत्रुओं के ऊपर आप बड़े वेग से बाण बरसा रहे हैं। मुझे इस समय यहाँ अपने अतिरिक्त और कोई ऐसा योद्धा नहीं देख पड़ता, जो आप से युद्ध कर सके। आप अत्यधिक बलवाले सिंह के समान निर्भय होकर वन में रहनेवाले मृगों के समान इन असंख्य रथों, घोड़ों, पैदलों और हाथियों को अकेले ही मार-मारकर गिरा रहे हैं। वर्षा ऋतु के अन्त में सूर्यनारायण जैसे अपनी किरणों से पृथ्वी-मण्डल को तपाते हैं, वैसे ही आप रथ के महाशब्द से पृथ्वी और आकाश को परिपूर्ण करते हुए सर्प-सदृश बाणों से कौरव-सेना को पीड़ित कर रहे हैं॥१६।१८॥शिव से त्र्यम्बकासुर ने जैसे घोर युद्ध किया था वैसे ही [illegible] अनेकों का नाश करना व्यर्थ है। ये वचन सुनकर श्रेष्ठ वीर मलयध्वज 'तथास्तु' कहकर अश्वत्थामा के सम्मुख आये।पाण्ड्यराज ने एक विकट कर्णिक बाण उनको मारा॥अश्वत्थामा ने भी अग्निशिखा के तुल्य मर्मभेदी उग्र अनेक बाण मलयध्वज के मर्मस्थलों में मारे। इस प्रकार बाणों से शत्रुओं को पीड़ित करके अश्वत्थामा ने और नव कङ्कपत्रयुक्त नाराच बाण लेकर उन्हें दसवीं गति से छोड़ा*॥१९।२२॥पाण्ड्यराज ने नव बाणों से अश्वत्थामा के बाणों को काट डाला, और फिर चार बाणों से उनके रथ के चारों घोड़ों को भी मार गिराया। इस प्रकार अश्वत्थामा के बाणों को व्यर्थ करके मलयध्वज ने उनके धनुष की दृढ़ [illegible] समान तेजस्वी

*बाण [illegible] स्खलित गति, यमकाक्रान्त गति, क्रुष्ट गति और अतिक्रुष्ट गति। पहली तीन गतियाँ सिर हृदय और पार्श्वदेश में स्पर्श करती हैं। चौथी क्रुष्ट चमड़ी को छील लेती है। पाँचवीं दाहनी और बाईं ओर से जाकर कवच को काट देती है। छठी लक्ष्यभेदिनी है। सातवीं लक्ष्य से च्युत होनेवाली है। आठवीं लक्ष्य को भेदकर बारम्बार निकलती है। नवीं लक्ष्य के देश बाहु आदि को भेदती है।दसवीं अतिक्रुष्ट गति से जानेवाला बाण सिर काट कर उसे बहुत दूर ले जाता है।

ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः ।
इषुसम्बाधमाकाशमकरोद्दिश एव च ॥ २६ ॥
ततस्तानस्यतः सर्वान्द्रौणेर्बाणान्महात्मनः ।
जानानोऽप्यक्षयान्पाण्ड्यो शातयत्पुरुषर्षभः ॥ २७ ॥
प्रयुक्तांस्तान्प्रयत्नेन च्छित्त्वा द्रौणेरिपूनरिः ।
चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥
अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ।
प्रास्य द्रोणसुतो बाणान्वृष्टिं पूषानुजो यथा ॥ २९ ॥
अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम् ।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष ॥ ३० ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम् ।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन् ॥ ३१ ॥
पर्जन्य इव घर्मान्ते वृष्ट्या साद्रिद्रुमां महीम् ।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्या व्यवीवृषत् ॥ ३२ ॥
द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम् ।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा पाण्ड्यानिलोऽनुदत्॥ ३३ ॥
तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम् ।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्वाश्वांश्चतुरोऽहनत् ॥ ३४ ॥
सूतमेकेपुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम् ।
धनुश्छित्वार्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद्रथम् ॥ ३५ ॥

और शत्रुदलदलन अश्वत्थामा ने दिव्य धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। इतने में अनुचरों ने उनके रथ में अन्य श्रेष्ठ घोड़े लाकर लगा दिये। अब अश्वत्थामा एक साथ सहस्रों बाण बरसाने लगे। आकाश भर में और सब दिशाओं में अश्वत्थामा के बाण छा गये॥२३।२६॥ उनके बाणों को, अक्षय जानकर भी, पुरुषश्रेष्ठ मलयध्वज छिन्न भिन्न करने लगे। इस प्रकार अश्वत्थामा के छोड़े हुए बाणों को व्यर्थ करके वीर मलयध्वज ने उन रथ के पहियों की रक्षा करनेवालों को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया। महातेजस्वी अश्वत्थामा अपने शत्रु की यह स्फूर्ति न सह सके। उनका धनुष मण्डलाकार गति से घूमने लगा। मेघ जैसे जल बर्षाते हैं वैसे ही अश्वत्थामा भी बाणों की वर्षा करने लगे। आठ-आठ बैलों से खींचे जानेवाले, बाणों से भरे, आठ छकड़े अश्वत्थामा ने आधे पहर में खाली कर डाले। कुपित काल के समान रौद्ररूप अश्वत्थामा को उस समय जिसने देखा, वही भयविह्वल और अचेत सा हो गया॥२७।३१॥मेघ जैसे वर्षा ऋतु में पर्वत वृक्ष सहित सम्पूर्ण पृथ्वी पर जल बरसाते हैं, वैसे ही अश्वत्थामा ने शत्रुसेना के ऊपर निरन्तर बाण बरसाये, मेघस्वरूप अश्वत्थामा की की हुई उस बाण वर्षा को अग्निस्वरूप मलयध्वज ने वायव्य अस्त्र से नष्ट कर दिया, उनको इस प्रकार सिंहनाद करते देखकर अश्वत्थामा कुपित हो उठे। उन्होंने मलयाचल पर्वत

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य च्छित्त्वा सर्वायुधानि च ।
प्रासमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया ॥ ३६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत् ।
द्रावयामास स तदा पाण्डवानां महद्बलम् ॥ ३७ ॥
विरथान्रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत ।
गजान्बहुभिरानर्च्छच्छरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३८ ॥
अथ द्रौणिर्महेष्वासः पाण्ड्यं शत्रुनिवर्हणम् ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं नाहनद्युद्धकांक्षया ॥ ३९ ॥
हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पितस्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली ।
तमाद्रवद् द्रौणिशराहतस्त्वरञ्जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम्॥ ४० ॥
तं वारणं वारणयुद्धकोविदो द्विपोत्तमं पर्वतसानुसन्निभम् ।
समभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वरन्यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा ॥ ४१ ॥
स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः ।
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन्गजं गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन्॥ ४२ ॥
मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन्पराहनद् द्रौणिवराङ्गभूषणम्॥ ४३ ॥
तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं भृशातिपातात्पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं यथाद्रिशृङ्गं धरणीतले तथा ॥ ४४ ॥

के समान ऊँचा और चन्दन अगुरु आदि से पूजित मलयध्वज की ध्वजा काट डाली,फिर चारों घोड़े मार डाले,एक बाण से सारथी का सिर काट डाला,और मेघ के समान शब्द करनेवाले धनुष को अर्धचन्द्र बाण से काट डाला॥३२।३५॥इसके उपरान्त मलयध्वज के रथ को भी तिल तिल करके पृथ्वी पर गिरा दिया।इस प्रकार अस्त्रों से सब अस्त्र व्यर्थ कर डाले और बाणों से सब शस्त्र भी काट डाले। उस समय अश्वत्थामा अपने शत्रु को सुगमता से ही मार डाल सकते थे;किन्तु उन्होंने युद्ध करने की अभिलाषा से मलयध्वज को नहीं मारा।इसी मध्य में कर्ण ने हाथियों की सेना पर आक्रमण करके पाण्डवों की सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया॥३६।३८॥रथियों को रथ-हीन करके उन्होंने हाथियों और घोड़ों की खबर ली।इसी समय पाण्ड्यराज की सेना का एक सुसज्जित हाथी, जिसका सवार मारा जा चुका था;बड़े वेग से शब्द करता हुआ उसी ओर भागा जा रहा था। रथ हीन और अश्वत्थामा के बाणों से पीड़ित मलयध्वज शीघ्रता से उस हाथी की ओर,हाथी भाँति गरजते हुए चले, गजयुद्ध में चतुर मलयध्वज पर्वतशिखर-सदृश उस हाथी की पीठ पर स्फूर्ति के साथ ऐसे सवार हो गये, जैसे कोई सिंह पर्वत की चोटी पर गरजता हुआ चढ़ जाय॥३९।४१॥यत्नपूर्वक अस्त्र चलानेके निमित्त उद्यत कुपित मलयध्वज ने गरज कर अङ्कुश के प्रहार से उस हाथी को कुपित किया और उसे आगे बढ़ाकर, सूर्यकिरण के समान चमकीला, एक तोमर अश्वत्थामा के ऊपर छोड़कर घोर सिंहनाद किया। "तुम मरे, तुम मरे" इस प्रकार बारम्बार कह रहे मलयध्वज के हाथ से छूटे हुए उस तोमर की चोट से अश्वत्थामा का मणि, हीरे, सुवर्ण, वस्त्र, माला, मोती [illegible]

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना पादाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समाददे चान्तकदण्डसन्निभानिपूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥ ४५ ॥
द्विपस्य पादाग्रकरान्स पञ्चभिर्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः स पाण्ड्यराजानुचरान्महारथान् ४६ ॥
सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषणौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४७ ॥
शिरश्च तत्पूर्णशशिप्रभाननं सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितावपि भ्राजति तत्सकुण्डलं विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ४८ ॥
स तु द्विपः पञ्चभिरुत्तमेषुभिः कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः।
कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता यथा हविस्तद्दशदैवतं तथा ॥ ४९ ॥
स पाद्शो राक्षसभोजनान्बहून्प्रदाय पाण्ड्योऽश्वमनुष्यकुञ्जरान्
स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रियस्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहतः ५० ॥
समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः॥ ५१ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अलङ्कृत बहुमूल्य, सूर्य-चन्द्र ग्रह गण, अग्नि आदि के समान कान्ति—वाला किरीट मुकुट कटकर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़ा, जिस प्रकार इन्द्र के वज्र प्रहार से पर्वत का शिखर पृथ्वी पर गिर पड़े॥४२।४४॥तब महारथी अश्वत्थामा, लात की चोट खाये हुए महासर्प के समान कुपित हो उठे। उन्होंने यमदण्ड के समान भयानक और शत्रुओं के प्राण हरनेवाले चौदह बाण तरकस से निकाले। अश्वत्थामा ने पाँच बाणों से उस हाथी के चारों पाँव और सूँड़ काट डाली, और तीन बाणों से मलयध्वज के दोनों हाथ और सिर काट डाला। फिर छः बाणों से मलयध्वज के छहों अनुचरों को मार गिराया। वे छहों वीर महारथी और छहों ऋतुओं के समान कान्तिशाली थे। पाण्ड्यराज मलयध्वज के चन्दन-चर्चित और सुवर्ण मणि मोती हीरे आदि के आभूषणों से अलंकृत दोनों हाथ, गरुड़ के मारे दो महासर्पों के समान, पृथ्वी पर गिर पड़े। मलयध्वज का वह पूर्णचन्द्र के समान मुखमण्डल सुन्दर नासिका और क्रोध से लाल विशाल नेत्रों से शोभित हो रहा था। पृथ्वी पर गिरने पर भी वह कुण्डल-शोभित सिर विशाखा नक्षत्र के दो तारों के मध्य चन्द्रमा के समान बहुत ही सुन्दर जान पड़ रहा था ॥४५।४८॥हे महाराज! रणनिपुण अश्वत्थामा ने पाँच बाणों से उस हाथी के शरीर के चतुष्कोण छः टुकड़े कर डाले और तीन बाणों से मलयध्वज के शरीर के भी वैसे ही चार टुकड़े कर दिये। उन्होंने सवार सहित उस हाथी के दस टुकड़े इस प्रकार कर डाले, जिस प्रकार दशहविष्क इष्टि में पिष्टपिण्ड के दस भाग, दस देवताओं के निमित्त, किये जाते हैं। हे राजेन्द्र! पहले हाथी घोड़े मनुष्य आदि के टुकड़े टुकड़े करके, राक्षसों को भोजन देकर, महाबली मलयध्वज इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुए जिस प्रकार श्मशान की अग्नि मृत शरीर रूप स्वधा को पाकर, जलाकर, फिर जल से शान्त हो जाती है। अच्छी प्रकार शस्त्र और शास्त्र की विद्या के ज्ञाता गुरुपुत्र को उस समय विजय पाते देखकर आपके पुत्र राजा दुर्योधन उनके पास सुहृद्गण सहित आये और उन्होंने परम प्रसन्नतापूर्वक अश्वत्थामा का सत्कार वैसे ही किया जैसे बलि विजय के उपरान्त इन्द्र ने विष्णु की पूजा की थी॥४९।५१॥

कर्ण पर्व का बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अथ एकविंशोऽध्याय ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि सञ्जय ।
एकवीरेण कर्णेन द्राविते्षु परेषु च ॥ १ ॥
समाप्तविद्यो बलवान्युक्तो वीरः स पाण्डवः ।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शङ्करेण महात्मना ॥ २ ॥
तस्मान्महद्भयं तीव्रममित्रघ्नाद्धनञ्जयात् ।
स यत्तत्राकरोत्पार्थस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम् ।
पश्यामि नाहं राजानमपयातांश्च पाण्डवान् ॥ ४ ॥
निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ।
अश्वत्थाम्नश्च सङ्कल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः ॥ ५ ॥
तथाश्वरथनागानां कृतं च कदनं महत् ।
सर्वमाख्यातवान्वीरो वासुदेवः किरीटिने ॥ ६ ॥
एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम् ।
वाहयाश्वान्हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः ॥ ७ ॥
ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना ।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत्समागमः ॥ ८ ॥
ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ९ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! इस प्रकार अश्वत्थामा ने जब महाबली पाण्ड्यराज को मार डाला और महाबली कर्ण ने अकेले ही युधिष्ठिर और उनकी सेना को मार भगाया तब विजय पानेवालों में श्रेष्ठ महाबली अर्जुन ने कुपित होकर क्या किया? अर्जुन पूर्ण रूप से धनुर्विद्या के जाननेवाले, बलवान् और सब श्रेष्ठ साधनों से युक्त हैं। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि महात्मा शङ्कर ने उनको यह वरदान दिया है कि कोई प्राणी तुमको न जीत सकेगा। मुझे शत्रुनाशन अर्जुन से ही बड़ा भय लगता है। इसलिए तुम विस्तार के साथ कहो कि इसके उपरान्त युद्ध में अर्जुन ने क्या किया॥१।३॥सञ्जय ने कहा—कि हे महाराज! पाण्ड्यराज के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का हित करने के निमित्त कहा—हे अर्जुन! हमारे महाराज युधिष्ठिर यहाँ कहीं नहीं देख पड़ते। अन्य पाण्डव भी कर्ण के आगे से भाग गये हैं। यदि तुम्हारे चारों भाई लौट आवें तो शत्रुदल मार भगाया जाय। यह देखो महारथी कर्ण ने, अश्वत्थामा की इच्छा के अनुसार, सृञ्जयों को मार गिराया है। उसने हाथियों, घोड़ों और रथों का भी सत्यानाश कर दिया॥४।६॥हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण के वचन सुनकर और राजा युधिष्ठिर पर भारी सङ्कट आया जानकर अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! घोड़ों को शीघ्र हाँककर उसी जगह ले चलो। श्रीकृष्ण ने, अर्जुन के कहने के अनुसार, युद्धभूमि में अद्वितीय वीर अर्जुन का रथ आगे बढ़ाया। उस समय फिर दोनों सेनाएँ भिड़ गईं और दारुण युद्ध होने लगा।

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ १० ॥
धनूंषि बाणान्परिघानसिपट्टिशतोमरान् ।
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान् ॥ ११ ॥
गदाः प्रासाञ्शितान्कुन्तान्भिन्दिपालान्महांकुशान्
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥
बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत् ।
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान् ॥ १३ ॥
तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम् ।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः ॥ १४ ॥
ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत् ॥ १५ ॥
तालशब्दांश्च विविधाञ्शूराणां चाभिगर्जताम् ।
श्रुत्वा तत्र भृशं त्रेसुः पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥ १६ ॥
तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान् ॥ १७ ॥
पञ्च पञ्चालवीराणां रथान्दश च पञ्च च ।
साश्वसूतध्वजान्कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १८ ॥

दोनों ओर के वीर सिंहनाद करने लगे। भीमसेन को आगे करके पाण्डव सेना ने आक्रमण किया और कर्ण को आगे करके हम लोग उनके आक्रमण को रोकने लगे। इस प्रकार कर्ण के साथ पाण्डवों का भयङ्कर संग्राम होने लगा॥७।१०॥दोनों पक्ष के वीरगण एक दूसरे को मार डालने के निमित्त अनेक प्रकार के बाण, बेलन, खड्ग, पट्टिश, तोमर, मूसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, परशु, गदा, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल और अंकुश आदि ले लेकर, धनुष की प्रत्यञ्चा के शब्द, बाण चलाने के शब्द, तल शब्द, रथों की घरघराहट और सिंहनाद से सब दिशाओं को, आकाश-मण्डल और पृथ्वी-मण्डल को प्रतिध्वनित करते हुए अपने शत्रुओं के सम्मुख आये और उन पर आक्रमण करने लगे। वीर पुरुष धनुष बाण रथ आदि के शब्द और सिंहनाद से अत्यन्त प्रसन्न और उत्साहित होकर, विजय पाने की इच्छा से, अपने प्रतिद्वन्द्वी वीरों से घोर युद्ध करने लगे॥११।१४॥धनुष की प्रत्यञ्चा, तलत्र और धनुष का शब्द, हाथियों का चीत्कार, चल रहे शस्त्रों की झनझनाहट, पैदल सैनिकों का कोलाहल, घायल होकर गिर रहे लोगों का आर्तनाद और शूर-वीरों का सिंहनाद चारों ओर गूँज उठा। इन सब शब्दों को सुनकर अनेक सैनिक भय के मारे मलिन होकर गिरने लगे। महावीर कर्ण ने उन गरज रहे और अस्त्र-शस्त्र बरसा रहे शत्रुओं में से अधिकांश को अपने बाणों की चोट से मार गिराया॥१५।१७॥कर्ण ने अपने बाणों से पाञ्चाल सेना के बीस रथियों को घोड़े, सारथी और ध्वजा सहित नष्ट कर दिया। तब पाण्डवपक्ष के प्रधान और रणनिपुण सुशिक्षित वीर्यशाली अनेक योद्धाओं ने कुपित होकर चारों ओर से कर्ण को घेर लिया। उन वीरों के बाणों से आकाश परिपूर्ण हो गया।

योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे ।
शीघ्राश्वास्तूर्णमाप्लुत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ १९ ॥
ततः कर्णो द्विपत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन् ।
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥ २० ॥
द्विपन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम् ।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥ २१ ॥
चर्मवर्माणि संछिन्नान्यपतन्भुवि देहिनाम् ।
विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्त्रिणः ॥ २२ ॥
वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः ।
मौर्व्या तलत्रे न्यहनत्कशया वाजिनो यथा ॥ २३ ॥
पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शरगोचरमागतान् ।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव ॥ २४ ॥
ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥ २५ ॥
तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपञ्चालपाण्डुषु ।
प्रियानसून्रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥ २६ ॥
सुसन्नद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः ।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः ॥ २७ ॥

जल के पक्षी सारस आदि से परिपूर्ण सरोवर में जैसे कोई गजराज घुसकर कमलवन को विदलित करता है वैसे ही वीर कर्ण ने भी बाणों की वर्षा से शत्रु सेना को नष्ट करना आरम्भ किया॥१८।१९॥वीर कर्ण शत्रु सेना में घुसकर, उत्तम धनुष से विकट बाण बरसा-कर, शत्रुओं के सिर काटने और पृथ्वी पर गिराने लगे। वीर योद्धा लोग यद्यपि सुदृढ़ कवच पहने हुए थे तथापि कर्ण के बाणों के आघात उनसे नहीं सहे जाते थे। दूसरा बाण मारने की आवश्यकता [illegible] भी नहीं पड़ती थी, क्योंकि एक ही बाण लगने से उनके प्राण निकल जाते थे और वे गिर पड़ते थे। सवार जैसे घोड़े को कोड़ा मारता है वैसे ही कर्ण, प्रत्यञ्चा से छूटे हुए बाणों से, शत्रुओं के अंगों पर प्रहार करते थे। उनके बाण इस वेग से जाते थे कि शत्रुओं के तलत्राण और कवच आदि को काटते हुए शरीर में घुस जाते थे। सिंह जैसे मृगों के समूह को मारता है वैसे ही वीर कर्ण भी, जहाँ तक उनके बाण पहुँचते थे उस सेना के मध्य आये हुए, पाण्डव पक्ष के सृञ्जय पाञ्चाल आदि वीरों को विमर्दित कर रहे थे॥२०।२४॥तब धृष्टद्युम्न, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, नकुल, सहदेव और सात्यकि, ये सब महारथी कर्ण के सम्मुख आये। इस प्रकार कौरव और पाञ्चालगण सहित पाण्डव, विजय-लाभ के निमित्त, दारुण संग्राम करने लगे। प्रिय प्राणों का मोह छोड़कर योद्धा लोग परस्पर लड़ने और प्रहार करने लगे। कवच, शिरस्त्राण और आभूषणों से अलंकृत महाबली योद्धा लोग कालदण्ड के समान गदा, मूसल, बेलन आदि शस्त्रों को लेकर एक दूसरे पर झपट रहे थे। कोई सिंहनाद कर रहा था, कोई आगे

समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः ।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥ २८ ॥
ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चान्योन्यताडिताः ।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥ २९ ॥
दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसन्निभैः ।
जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः ॥ ३० ॥
परश्वधैश्चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ ३१ ॥
ततक्षुश्चिच्छिदुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा ।
सञ्चकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा रणमहार्णवे ॥ ३२ ॥
पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥ ३३ ॥
रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः ।
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३४ ॥
ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः ।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च च्छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥ ३५ ॥
नरांश्च नागान्सरथान्हयान्ममृदुराहवे ।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥ ३६ ॥
सपताका ध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः ।
पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥ ३७ ॥

शत्रु को ललकार रहा था और कोई उछलकर शत्रु पर प्रहार कर रहा था।एक दूसरे के प्रहार से घायल होकर योद्धा लोग पृथ्वी पर गिर रहे थे॥२५।२८॥ किसी के मुख से रक्त बह रहा था, किसी के अङ्गों से रक्त निकल रहा था।किसी का सिर चूर हो गया था, किसी के नेत्र निकल आए थे, किसी के हाथ का शस्त्र अकर्मण्य (बेकाम) होकर अलग गिर पड़ा था। बहुतों के मुख में चोट लगने से रुधिर निकल आया था और वह दाँतों में जम गया था;उनके मुख खिले हुए अनार के फल से जान पड़ते थे। बहुत से योद्धा,हाथों में शस्त्र लिये,मर जाने पर भी जीवित-से जान पड़ते थे।हे महाराज! उस महारण में योद्धा लोग परस्पर परश्वधों, पट्टिशों, खड्गों, शक्तियों, भिन्दिपालों, नखरों, प्रासों और तोमरों से एक दूसरे के शरीर को काष्ठ के समान चीर रहे, काट रहे, छेद रहे,भोंक रहे,कतर रहे और मार रहे थे।परस्पर के प्रहार से मरकर, रुधिर से तर होकर, सहस्रों योद्धा पृथ्वी पर गिर रहे थे, जिन्हें देखने से प्रतीत होता था कि मानों कटे हुए लाल चन्दन के वृक्षों से उनका रस निकल रहा है॥२९।३३॥रथियों ने रथी योद्धाओं को,हाथियों ने हाथियों को, घोड़ों ने घोड़ों को और पैदलों ने पैदलों को सहस्रों की संख्या में मार-मारकर गिरा दिया। क्षुर, भल्ल और अर्धचन्द्र बाणों से कटी हुई ध्वजा,सिर, छत्र,हाथियों की सूँड़ें

हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः ।
अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥ ३८ ॥
सादिभिः पत्तिसङ्घाश्च निहता युधि शेरते ।
मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ॥
हतानां वदनान्यासन्गात्राणि च महाहवे ॥ ३९ ॥
रूपाण्यत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप ।
समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥ ४० ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

और मनुष्यों की भुजाएँ रणभूमि में गिर रही थीं। मनुष्य, हाथी और घोड़े मरकर तथा रथ टूट-फूटकर रणभूमि में गिर रहे थे॥३४।३६॥घोड़े के सवार शूर योद्धा लोग खड्ग के प्रहार से हाथियों की सूँड़ें काट डालते थे;वे हाथी ध्वजा और पताका के साथ वज्र-पात से फटे हुए पर्वतों के समान पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। पैदल सिपाही उछल-उछलकर हाथियों और रथों पर प्रहार करते थे। रथ,हाथी आदि उनके प्रहार से टूटकर और मरकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। पैदलों के प्रहार से मरे हुए घोड़ों के सवार और घुड़सवारों के प्रहार से मरे हुए पैदल लोग युद्धभूमि में गिर रहे थे। मारे गये मनुष्यों के मुखमण्डल और शरीर मले गये कमल के फूलों और मुरझाई हुई मालाओं के समान दिखाई पड़ रहे थे। हाथी, घोड़े, मनुष्य आदि के परम रमणीय दर्शनीय स्वरूप, भीगे वस्त्रों के समान, अत्यन्त मलिन और दुर्निरीक्ष्य हो उठे॥३६।४०॥

कर्ण पर्व का इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्याय. ॥ २२ ॥

सञ्जय उवाच--हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥ १ ॥
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः ।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २ ॥
मेकलाः कोशला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा ।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३ ॥
शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥ ४ ॥

बाईसवाँ अध्याय ॥ २२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! धृतराष्ट्र ! तब दुर्योधन की आज्ञा पाकर प्रधान-प्रधान हाथियों के सवार योद्धा लोग कुपित होकर धृष्टद्युम्न को मार डालने के निमित्त, अपने-अपने हाथियों को बढ़ाकर, धृष्टद्युम्न की ओर बढ़े। गजयुद्ध में निपुण पूर्व और दक्षिण के देशों के योद्धा लोग, बरसते मेघों के समान, आगे बढ़कर पाञ्चाल-सेना पर बाण, तोमर, नाराच आदि की वर्षा करने लगे। अङ्ग, बङ्ग, पुण्ड्र, मगध, ताम्रलिप्त, मेकल, कोशल, मद्र, दशार्ण, निषध और कलिङ्ग आदि देशों के योद्धाओं ने मिलकर पाञ्चाल सेना के ऊपर आक्रमण किया। अँगूठों, घुटनों और अंकुशों के प्रहार से प्रेरित उन उन्मत्त हाथियों को वेग से आते देखकर

[illegible] ।
चोदितान्पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृपत् ॥ ५ ॥
एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत ।
द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्शरैः ॥ ६ ॥
प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम् ।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ॥ ७ ॥
तान्नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः ।
वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
समन्तात्सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥ ९ ॥
ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान्रथानपि ।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ १० ॥
बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः ।
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥ ११ ॥
प्रमुखे वर्त्तमानं तु द्विपमङ्गस्य सात्यकिः ।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्वा मर्माण्यपातयत् ॥ १२ ॥
तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाहनद्वक्षः सात्यकिः सोऽपतद्भुवि ॥ १३ ॥

वीर धृष्टद्युम्न ने उनके ऊपर नाराच बाण बरसाने आरम्भ कर दिए॥१।४॥धृष्टद्युम्न ने स्फूर्ति के साथ उन पर्वताकार हाथियों में से हर एक को छ , आठ और दस तक बाण मारे । मेघों के द्वारा सूर्य के छिपाये जाने के समान हाथियों की सेना के द्वारा धृष्टद्युम्न को घिरते देखकर पाण्डव और पाञ्चालगण, धनुष चढ़ाकर, सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े। उधर महावत हाथियों को धृष्टद्युम्न की ओर बढ़ा रहे थे,॥५।७॥और इधर धनुष की प्रत्यञ्चा बजा रहे, वीर नृत्य कर रहे, तलध्वनि से रणभूमि को गुँजा रहे पराक्रमी नकुल,सहदेव, द्रोपदी के पुत्र,सात्यकि, शिखण्डी, चेकितान और प्रभद्रकगण आदि वीर चारों ओर से उस गजसेना पर इस प्रकार निरन्तर बाण बरसा रहे थे,जिस प्रकार मेघों के समूह पर्वतों पर जल बरसाते हैं । हाथियों को उनके म्लेच्छ सवारों ने अंकुश मार-मारकर कुपित किया और वे शत्रुओं के बाणों के प्रहार से भी अत्यन्त कुपित हो उठे । घोड़ों,मनुष्यों और रथों को सूँड़ों से उठाकर वे हाथी पृथ्वी पर पटकने, पाँवों से रौंदने और दाँतों से चीरने-फाड़ने लगे । हाथियों के दाँतों के प्रहार से बहुत से वीर पुरुष गिरने और मरने लगे॥८।११॥इसी समय सात्यकि ने अपने सम्मुख उपस्थित वङ्ग देश के नरेश के गजराज को,मर्मस्थल में नाराच बाण मारकर, पृथ्वी पर गिरा दिया । वङ्गराज उस हाथी के ऊपर से कूदकर प्रहार से अपने को बचाने लगे,इतने में सात्यकि ने स्फूर्ति के साथ उनके वक्ष -स्थल में नाराच बाण मारा । वे भी मरकर पृथ्वी पर

पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् ।
सहदेवः प्रयत्नास्तैर्नाराचैरहनत्त्रिभिः ॥ १४ ॥
विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् ।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात् ॥ १५ ॥
सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत् ।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम् ॥ १६ ॥
दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान् ।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत् ॥ १७ ॥
तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः ।
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना ॥ १८ ॥
अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे ।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः ॥ १९ ॥
चलत्पताकैः सुमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः ।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः ॥ २० ॥
मेकलोत्कलकालिङ्गा निषधास्ताम्रलिप्तकाः ।
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः ॥ २१ ॥
तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः ।
परिपेतुः सुसंरब्धाः पाण्डुपञ्चालसोमकाः ॥ २२ ॥

गिर पड़े॥१२।१३॥पुण्ड्र देश के राजा का हाथी, चलते हुए पर्वत के समान, वेग से आ रहा था। सहदेव ने उसको तीन नाराच बाण मारे। उसके प्रहार से उस हाथी के ध्वजा-पताका कवच आदि कटकर गिर पड़े। सहदेव ने उसके महावत को और उसे भी मार डाला। इस प्रकार पुण्ड्रनरेश को नष्ट करके सहदेव अङ्गनरेश की ओर बढ़े। नकुल ने सहदेव को रोक लिया, और स्वयं अङ्गनरेश के शरीर में यमदण्ड-सदृश तीन नाराच बाण मारकर उनके हाथी को भी सौ नाराच बाण मारे॥१४।१६॥तब अङ्गराज ने अत्यन्त कुपित होकर सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमय आठ सौ तोमर नकुल के ऊपर चलाये। किन्तु उन्होंने फुर्ति के साथ एक एक तोमर के तीन तीन टुकड़े कर डाले और फिर एक अर्धचन्द्र बाण से अङ्गराज का सिर काट डाला। म्लेच्छ अङ्गराज अपने हाथी के साथ मरकर रणभूमि में गिर पड़ा। इस प्रकार गजयुद्ध में निपुण अङ्ग देश के राजकुमार के मारे जाने पर उस देश के सब गज-योद्धा अपने हाथियों को बढ़ाकर नकुल को मारने का उद्योग करने लगे॥१७।१९॥उन हाथियों के ऊपर पताकाएँ फहरा रही थीं और उनके शरीरों में सोने के कवच तथा अंबारि शोभायमान हो रही थीं। ऐसे प्रज्वलित पर्वताकार हाथियों से नकुल को कुचलवा डालने के निमित्त आगे बढ़ रहे मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध और ताम्रलिप्त आदि देशों के भी गजयोद्धा एकत्र होकर नकुल के ऊपर निरन्तर बाण तोमर आदि की वर्षा भी करने लगे। सूर्य को जिस प्रकार मेघ आच्छादित कर दें, उसी प्रकार उन शत्रुओं के द्वारा नकुल को घिरने देखकर पाण्डव, पाञ्चाल और सोमकगण कुपित होकर नकुल की सहायता और शत्रुओं का संहार करने को आगे

ततस्तद्भवद्युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह ।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः ॥ २३ ॥
नागानां प्रास्फुटन्कुम्भा मर्माणि विविधानि च ।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च ॥ २४ ॥
तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः ।
सहदेवो जघानाशु तेऽपतन्सह सादिभिः ॥ २५ ॥
अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद्धनुरुत्तमम् ।
नाराचैरहनन्नागान्नकुलः कुलनन्दनः ॥ २६ ॥
ततः पाञ्चालशैनेयौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
शिखण्डी च महानागान्सिषिचुः शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥
ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः ।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥ २८ ॥
एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः ।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम् ॥ २९ ॥
तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः ॥ ३० ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

बढे॥२०।२२॥हे महाराज ! तब बाणों और तोमरों की वर्षा कर रहे रथ योद्धाओं और गज-योद्धाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा । रथी योद्धाओं के बाण-प्रहार से हाथियों के मस्तक, मर्मस्थल, नख और दाँत आदि अङ्ग-उपाङ्ग छिन्न भिन्न होने लगे । रथी लोग सुवर्ण-भूषित नाराचों की चोट से हाथियों की सेना को पीड़ित और नष्ट करने लगे । महावीर सहदेव ने चौंसठ अत्यन्त तीक्ष्ण नाराच बाण मारकर उनमें से आठ बड़े-बड़े हाथियों को, उनके सवारों के सहित, मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया॥२३।२५॥महावीर नकुल ने भी श्रेष्ठ धनुष को खींचकर नाराच बाणों से हाथियों और उनके सवारों को मारा और पीड़ित किया। इसी समय वीर धृष्टद्युम्न, महारथी सात्यकि, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्रगण और प्रभद्रकगण भी उन पर्वताकार हाथियों पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । वज्रप्रहार से जिस प्रकार पर्वत फट फटकर गिरें, वैसे ही शत्रुओं के पर्वत से हाथी मेघ सदृश पाण्डव पक्ष के योद्धाओं की बाणवर्षा से घायल होकर और मर-मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे । इस प्रकार वे पाण्डव दल के वीर हाथियों की सेना का संहार करके अन्य सेना-पक्ष पर स्फूर्ति के साथ बाण बरसाने लगे । उस समय कौरव सेना उसी प्रकार इधर उधर वेग से भागने लगी जिस प्रकार किनारा कट जाने पर नदी का जल बह निकलता है । हे राजेन्द्र ! युधिष्ठिर के योद्धा लोग इस प्रकार आपकी सेना को मथकर, उसमें हलचल डालकर, फिर कर्ण पर आक्रमण करने को वेग से चले॥२६।३०॥

कर्ण पर्व का बाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच—सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम् ।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥ १ ॥
तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ २ ॥
ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना ।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥ ३ ॥
सहदेवस्ततो राजन्नाराचेन तवात्मजम् ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ ४ ॥
दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन्महाहवे ।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥
सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे ।
आविध्य प्रासृजत्तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति ॥ ६ ॥
समार्गणगुणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः ।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥ ७ ॥
अथान्यद्धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान् ।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः ॥ ८ ॥
तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमविषम् ।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ॥ ९ ॥
ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः ।
धनुश्चान्यत्समादाय शरं जग्राह वीर्यवान् ॥ १० ॥

तेईसवाँ अध्याय ॥ २३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! धृतराष्ट्र ! सहदेव कुपित होकर कौरव-सेना का संहार करने लगे। यह देखकर, सहदेव से युद्ध करने के निमित्त, दुःशासन उनके सम्मुख आये और भाई से भाई का संग्राम होने लगा। दोनों भाइयों को लड़ते देखकर दोनों पक्ष के वीर योद्धा लोग सिंहनाद करने लगे, कोई-कोई वस्त्र उछालकर हर्ष और उत्साह दिखाने लगा। हे महाराज ! आपके पुत्र धनुर्धर दुःशासन ने क्रोध करके सहदेव के हृदय में तीन तीक्ष्ण बाण मारे॥१। ३॥तब सहदेव ने भी क्रोध करके पहले एक नाराच बाण और फिर अन्य सत्तर विशिख बाण दुःशासन को मारे। साथ ही दुःशासन के सारथी को भी तीन बाण मारे। दुःशासन ने सहदेव का धनुष काट डाला और उनके वक्षःस्थल और हाथों में तिहत्तर बाण मारे। इससे सहदेव क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने खड्ग उठाकर दुःशासन को लक्ष्य कर उनके रथ पर फेंका॥४। ६॥उसके प्रहार से, बाण और प्रत्यञ्चा सहित, दुःशासन का धनुष कट गया। इस प्रकार वह खड्ग धनुष को काटकर, आकाश से गिरे हुए सर्प के तुल्य, पृथ्वी पर गिर पड़ा।अनन्तर सहदेव ने स्फूर्ति के साथ दूसरा धनुष लेकर दुःशासन के ऊपर प्राणान्त करनेवाला एक बाण छोड़ा। पराक्रमी दुःशासन ने तीक्ष्ण खड्ग

तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः ।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव ॥ ११ ॥
ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे ।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥
ताञ्शरान्समरे राजन्वेगेनापततो बहून् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत ॥ १३ ॥
सन्निवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् ।
अथास्मै सुबहून्बाणान्प्रेषयामास संयुगे ॥ १४ ॥
तान्बाणांस्तव पुत्रोऽपि छित्त्वैकैकं त्रिभिः शरैः ।
ननाद सुमहानादं दारयाणो वसुन्धराम् ॥ १५ ॥
ततो दुःशासनो राजन्विध्वा पाण्डुसुतं रणे ।
सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत् ॥ १६ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ॥ १७ ॥
विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् ।
स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत् ॥ १८ ॥
प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नगः ।
ततः संमुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः ॥ १९ ॥
मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम् ।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः ॥ २० ॥

से उस बाण के दो टुकड़े कर डाले॥७९॥फिर वही खड्ग सहदेव के ऊपर फेंककर वीर दुःशासन ने और एक धनुष-बाण हाथ में लिया।सहदेव ने उस तीक्ष्ण खड्ग को, तीक्ष्ण बाणों से खण्ड खण्ड करके, गिरा दिया। उनको इस प्रकार अद्भुत कर्म करके हँसते देखकर दुःशासन ने उनके रथ पर चौंसठ बाण छोड़े। वेग से आ रहे उन बाणों को सहदेव ने, एक-एक के पाँच-पाँच टुकड़े करके, व्यर्थ कर दिया। प्रतापी सहदेव ने इस प्रकार उन बाणों को काटकर दुःशासन के ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े॥१०।१४॥आपके पुत्र ने भी स्फूर्ति के साथ उनमें से एक एक बाण को तीन-तीन बाणों से काट करके घोर सिंहनाद किया, जिससे सारी रणभूमि गूँज उठी।दुःशासन ने भी कुपित होकर सहदेव को बाण मारकर नव तीक्ष्ण बाणों से उनके सारथीको पीड़ित किया॥१५।१६॥हे पृथ्वीराज! तब सहदेव ने क्रोधान्ध होकर धनुष पर एक मृत्यु के समान विकट बाण चढ़ाया।उन्होंने बलपूर्वक धनुष को खींचकर वह बाण दुःशासन को मारा। वेग से आ रहे उस बाण ने दुःशासन का दृढ़ कवच तोड़ डाला। उनके शरीर को चीरता हुआ वह बाण उसी प्रकार पृथ्वी में घुस गया, जिस प्रकार सर्प बिल में घुस जाता है।उस बाण के लगने से महारथी दुःशासन मूर्छित हो गये॥१७।१९॥उनको अचेत देखकर और स्वयं तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर सारथी

पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः ॥ २१ ॥
पिपीलिकपुटं राजन्यथा मृद्नन्नरो रुषा ।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत ॥ २२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सहदेवदुःशासनयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

भयभीत हो गया और जल्दी से रथ को रणभूमि से दूर हटा ले गया । इस प्रकार दुःशासन को पराजित करके वीर सहदेव चारों ओर दुर्योधन की सेना को मथने लगे। मनुष्य क्रोध करके जैसे चींटियों को दलित कर डाले, वैसे ही महारथी सहदेव ने कौरव-सेना को नष्ट भ्रष्ट कर दिया॥२०।२२॥

कर्ण पर्व का तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सञ्जय उवाच—नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।
कर्णो वैकर्त्तनो राजन्वारयामास वै रुषा ॥ १ ॥
नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्य चक्षुषा ॥ २ ॥
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम् ।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥ ३ ॥
त्वद्दोषात्कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम् ।
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ४ ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः ।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥ ५ ॥
प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम् ।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ६ ॥

चौबीसवाँ अध्याय ॥ २४ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! उधर नकुल को कुपित होकर कौरव-सेना को भगाते देखकर कर्ण को क्रोध चढ़ आया और वे नकुल को रोकने के निमित्त उनके सम्मुख आ गये, कर्ण को सम्मुख देखकर नकुल ने हँसकर कहा—अरे पापी सूतपुत्र ! बहुत दिनों के पश्चात् देवताओं की सुदृष्टि मुझ पर हुई जो आज तू रणभूमि में मेरे सम्मुख आया । तू ही इस अनर्थ का, वैर का, और कलह का मूल है । तेरे ही दोष से आज कुरुवंश के सब वीर पुरुष परस्पर लड़कर मर रहे हैं । आज समर में तुझे मारकर मुझे शान्ति मिलेगी, मैं कृतकृत्य होऊँगा, मेरा सञ्चित सन्ताप मिटेगा॥१।४॥ नकुल के ये वचन सुनकर कर्ण ने हँसकर कहा—हे वीर ! तुम्हारे ये वचन राजपुत्र के, और विशेषकर धनुर्द्धर योद्धा के, योग्य ही हैं। अच्छी बात है, प्रहार करो । हम भी तुम्हारे पौरुष को देख लें। हे शूर ! किन्तु पहले कार्य करके फिर मुख से कहना चाहिए । यही शूरों का नियम है । जो वीर और बड़भागी हैं वे मुख से बड़ी-बड़ी बातें न कहकर

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः ।
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वा प्राहरत्तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः ।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत ।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ९ ॥
तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमर्दयत् ॥ १० ॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलं पपुः॥ ११ ॥
अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥ १२ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥ १३ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः ।
आजघ्ने प्रहसन्वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥ १४ ॥
कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष ।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥ १५ ॥
अथान्यद्धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १६ ॥
तत्रस्थैरथ तैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यशोभत ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन्प्रभाम् ॥ १७ ॥

यथाशक्ति युद्ध करते हैं । अस्तु, तुम अपनी शक्ति के अनुसार मुझसे युद्ध करो । मैं तुम्हारे प्राण तो नहीं लूँगा किन्तु तुम्हारे इस दर्प को दूर अवश्य कर दूँगा ॥५।७॥ अब महावीर कर्ण ने स्फूर्ति के साथ तिहत्तर बाण मारकर नकुल को पीड़ित किया । कर्ण के बाणों से घायल नकुल ने भी कुपित होकर, विषैले नाग के समान, अस्सी बाण कर्ण को मारे । उन्होंने सुवर्ण पुङ्ख युक्त बाणों से कर्ण का धनुष काट डाला और उन्हें तीस बाण मारे । उन बाणों ने नकुल के कवच को तोड़कर उनके शरीर का रुधिर पान कर लिया (अर्थात् बहुत गहरे घुस गये), जैसे कि विषैले सर्प पृथ्वी को फाड़कर जल पान करें॥८।११॥ नकुल ने और एक सुवर्ण-मण्डित धनुष हाथ में लेकर सत्तर बाण कर्ण को और तीन बाण उनके सारथी को मारे । फिर कुपित होकर एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से कर्ण का धनुष भी काट डाला और हँसते हँसते तीन सौ बाण कर्ण को और मारे । अब सब योद्धा और युद्ध देखने को आये हुए ऋषिगण और देवगण नकुल के बाणों से श्रेष्ठ महारथी कर्ण को पीड़ित देखकर बहुत ही विस्मित हुए॥१२।१५॥ इसी मध्य में महारथी कर्ण ने दूसरा

नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥ १८ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् ।
नकुलस्य ततो बाणैः समन्ताच्छादयद्दिशः ॥ १९ ॥
सञ्छाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः ।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥ २० ॥
ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते ।
खद्योतानामिव व्रातैः सम्पतद्भिर्यथा नभः ॥ २१ ॥
तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा ।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद्विशाम्पते ॥ २२ ॥
ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः ।
श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव ॥ २३ ॥
बाणजालावृते व्योम्नि च्छादिते च दिवाकरे ।
न स्म सम्पतते भूम्यां किञ्चिदप्यन्तरिक्षगम् ॥ २४ ॥
निरुद्धे तत्र मार्गे च शरसङ्घैः समन्ततः ।
व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ २५ ॥
कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः ।
अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्त्ता भृशार्दिताः ॥ २६ ॥
नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव ।
व्यशीर्यत दिशो राजन्वातनुन्ना इवाम्बुदाः ॥ २७ ॥

धनुष लेकर नकुल के कन्धे में पाँच बाण मारे। विश्व को प्रकाशित करनेवाले सूर्यदेव जैसे अपनी किरणों से शोभित होते हैं, वैसे ही वीरवर नकुल कन्धे में लगे हुए कर्ण के बाणों से शोभायमान हुए। नकुल ने विचलित न होकर स्फूर्ति के साथ कर्ण को सात तीखे बाण मारे। और फिर उनके धनुष की कोटि काट डाली॥१६।१८॥तब महावीर कर्ण ने दूसरा सुदृढ़ धनुष लेकर इतने बाण बरसाये कि उन असंख्य बाणों से महारथी नकुल आच्छादित से हो गये। किन्तु उन्होंने शीघ्रता के साथ बाण बरसाकर कर्ण के सब बाणों को काट डाला। उस समय आकाश में बाणों का जाल सा फैल गया। जैसे आकाश में चारों ओर जुगनू ही जुगनू छा जायँ वैसे ही चारों ओर बाण ही बाण देख पड़ने लगे॥१९।२१॥जिस प्रकार टीड़ी-दल निकलने पर आकाश छिप सा जाता है उसी प्रकार बाणों से आकाश व्याप्त हो गया। वे पंक्ति-बद्ध सुवर्णभूषित बाण आकाश से होकर, क्रौञ्च पक्षियों के समूह के समान, पृथ्वी पर गिर रहे थे। बाणों से आकाश व्याप्त हो गया और सूर्य-बिम्ब अदृश्य सा हो गया। उस समय आकाशचारी कोई भी प्राणी आकाश से पृथ्वी पर नहीं उतर सकता था॥२२।२४॥ इस प्रकार बाणों से आकाशमार्ग के चारों ओर रुँध जाने पर महारथ ने बड़ा विकट रूप धारण किया। दोनों वीर उदय हुए प्रलयकाल के दो सूर्यों के समान देख

ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः ।
शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥ २८ ॥
प्रोत्सारितजने तस्मिन्कर्णपाण्डवयोः शरैः ।
अविध्येतां महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥
विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि ।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥ ३० ॥
नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः ।
सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाम्बरे ॥ ३१ ॥
तथैव सूतपुत्रेण प्रेषिताः परमाहवे ।
पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥ ३२ ॥
शरवेश्म प्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन ।
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव ॥ ३३ ॥
ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः ।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥
सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न चकार व्यथां राजन्भास्करो जलदैर्यथा ॥ ३५ ॥
ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष ।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३६ ॥

पड़ रहे थे। कर्ण के धनुष से छूटे हुए बाणों से मारे जा रहे, अत्यन्त पीड़ित और वेदना से आर्त मामकगण इधर उधर छिपने और मरने लगे। वैसे ही नकुल के बाणों से मृत्यु को प्राप्त हो रहे आपके योद्धा भी, वायु के झोंकों से छिन्न-भिन्न मेघों के समान भागने लगे॥२५। २७॥दोनों दलों के सैनिकगण उन महारथियों के दिव्य बाणों की चोट न सह सकने के कारण प्राण बचाने के निमित्त दूर जा स्थित हुए। जहाँ बाण नहीं पहुँचते थे उस स्थान पर जाकर दोनों ओर के लोग उस महायुद्ध को देखने लगे। हे महाराज! कर्ण और नकुल के बाणों से सब लोग भाग गये। दोनों महारथी योद्धा, एक दूसरे को मार डालने के निमित्त, बाणवर्षा करके एक दूसरे को पीड़ित करने लगे। दोनों ही वीर उस महायुद्ध में अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते और रण-कौशल दिखाते हुए एक दूसरे पर असंख्य बाण छोड़ रहे थे॥२८।३०॥कङ्क और मयूर के पंखों से शोभित बाण नकुल के धनुष से निरन्तर निकलकर कर्ण को आच्छादित कर रहे थे। वैसे ही कर्ण के धनुष से छूटे हुए असंख्य बाण आकाश में छाये हुए थे और नकुल को आच्छादित कर रहे थे। बाणों के जाल में छिपे हुए वे दोनों वीर किसी को दिखाई नहीं देते थे, जिस प्रकार कि मेघों से आच्छादित हुए सूर्य और चन्द्र को कोई नहीं देख पाता॥३१। ३३॥हे राजेन्द्र! तब महारथी कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठे; उनका रूप बहुत ही भयानक हो गया। उन्होंने और भी स्फूर्ति के साथ इतने बाण छोड़े कि नकुल चारों ओर से उनसे आच्छादित हो गये। मेघों से आच्छादित हुए सूर्य के समान कर्ण के बाणों से आच्छा

एकच्छायमभूत्तत्र तस्य बाणैर्महात्मनः ।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे सम्पतद्भिः शरोत्तमैः ॥ ३७ ॥
ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः ।
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ३८ ॥
ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ३९ ॥
अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः ।
पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष ॥ ४० ॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च ।
हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते ॥ ४१ ॥
अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः ।
तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ॥ ४२ ॥
व्यहनत्सायकै राजन्स तीक्ष्णैर्भारसाधनैः ।
व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
आर्पयद्बहुभिः कर्णो न चैनं समपीडयत् ।
स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ॥ ४४ ॥
प्राद्रवत्सहसा राजन्नकुलो व्याकुलेन्द्रियः ।
तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन्वै पुनः पुनः ॥ ४५ ॥
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत ।
ततः स शुशुभे राजन्कण्ठासक्तमहाधनुः ॥ ४६ ॥

दित हो जाने पर भी वीरवर नकुल व्यथित नहीं हुए। तब कर्ण ने हँसकर फिर नकुल के ऊपर सैकड़ों-सहस्रों बाण बरसाये। कर्ण के धनुष से निरन्तर निकल रहे बाणों से रणभूमि में घनघटा की सी छाया हो गई॥३४।३७॥इसी मध्य में महारथी कर्ण ने नकुल का धनुष काट डाला, सारथी को मारकर गिरा दिया, चार तीक्ष्ण बाणों से चारों घोड़ों को मार डाला और उनके रथ को तीक्ष्ण बाणों से काट डाला। इसी प्रकार नकुल के रथ की पताका, चक्ररक्षक योद्धा आदि को नष्ट करके गदा, खड्ग, शत चन्द्र-बिम्बों से शोभित ढाल और अन्य सब शस्त्रों को भी काट डाला॥३८।४१॥ रथ, घोड़े, कवच आदि के न रहने पर वीरश्रेष्ठ नकुल एक लोहे का बेलन हाथ में लेकर प्रहार करने को उद्यत हुए। रथ से उतरकर बेलन हाथ में लिये प्रहार करने के निमित्त स्थित नकुल को देखकर महारथी कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से उस बेलन को भी काट डाला। इस प्रकार शस्त्र-हीन नकुल को कर्ण ने कई बाण मारे, किन्तु अत्यन्त पीड़ित नहीं किया और न मार डालने का ही यत्न किया॥४१।४४॥अस्त्र-विद्या में निपुण महाबली कर्ण के बाणों की चोट से व्याकुल होकर नकुल एकाएक प्राण बचाने के निमित्त भाग खड़े हुए। कर्ण हँसते हुए नकुल के पीछे दौड़े और प्रत्यञ्चा सहित धनुष उनके कण्ठ में डालकर उन्हें रोक लिया। उस समय कण्ठ में धनुष की प्रत्यञ्चा पड़ने

परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद्व्योम्नि चन्द्रमाः ।
यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥ ४७ ॥
तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि ।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८ ॥
मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव ।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव ॥ ४९ ॥
गृहे वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ ।
एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥ ५० ॥
वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद्धर्मवित्तदा ।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥
विसृष्टः पाण्डवो राजन्सूतपुत्रेण धन्विना ।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ५२ ॥
आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः ।
निःश्वसन्दुःखसन्तप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः ॥ ५३ ॥
तं विजित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च ॥ ५४ ॥
तत्राक्रन्दो महानासीत्पाण्डवानां विशाम्पते ।
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पाञ्चालानां रथव्रजान् ॥ ५५ ॥

से नकुल की वैसी ही शोभा हुई, जैसी शोभा 'मण्डल' पड़ने पर चन्द्रमा की होती है॥४४।४७॥बारम्बार हँस रहे कर्ण ने कहा—हे नकुल ! उस समय तुम व्यर्थ ही डींग हाँक रहे थे ! मैं इस समय तुमको बारम्बार पीड़ित और परास्त कर चुका हूँ । अब क्या तुम फिर वैसी ही बातें कहोगे ? हे पाण्डव ! तुम लज्जित न होना । मैं तुमको समझाता हूँ कि अब अपने से प्रबल कौरवों से युद्ध करने का साहस न करना, इसी में तुम्हारा कल्याण है । जो लोग तुम्हारे समान हैं, उनसे जाकर युद्ध करो । अथवा घर को लौट जाओ, या जहाँ पर कृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ पर चले जाओ। हे महाराज ! धर्मात्मा कर्ण ने इतना कहकर नकुल को छोड़ दिया । कर्ण चाहते तो अपने हस्तगत नकुल को मार डालते; किन्तु उन्होंने कुन्ती से जो प्रतिज्ञा की थी, उसका विचार करके नहीं मारा॥४८।५०॥ परास्त और सूतपुत्र की कृपा से छुटकारा पाये हुए नकुल बहुत ही लज्जित हुए और युधिष्ठिर के समीप चले गये। कर्ण के पराक्रम से पीड़ित नकुल युधिष्ठिर के रथ पर सवार हो गये । घड़े में बन्द कर दिये गये सर्प के समान वे बारम्बार दीर्घ श्वास छोड़ रहे थे। दुःख और लज्जा के कारण उनकी दुर्दशा हो गई । महापराक्रमी कर्ण भी नकुल को पराजित कर स्फूर्ति के साथ, ऊँची पताका और श्वेत घोड़ों से शोभित, श्रेष्ठ रथ हाँककर पाञ्चाल-सेना का संहार करने के निमित्त उधर चल दिये॥५१।५४॥उस समय सेनापति कर्ण को पाञ्चाल सेना पर आक्रमण करने को जाते देखकर पाण्डवों की सेना में घोर कोलाहल होने लगा। महावीर कर्ण चक्राकार गति से रथ को घुमाते हुए अपने बाणों से

तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः ।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद्विचरन्प्रभुः ॥ ५६ ॥
भग्नचक्रै रथैः कैश्चिच्छिन्नध्वजपताकिभिः ।
तथाश्वैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष ॥ ५७ ॥
ह्रियमाणानपश्याम पाञ्चालानां रथव्रजान् ।
तत्र तत्र च सम्भ्रान्ता विचेरुरथ कुञ्जराः ॥ ५८ ॥
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने ।
भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः ॥ ५९ ॥
छिन्नगात्रवराश्चैव च्छिन्नवालधयोऽपरे ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुर्हन्यमाना महात्मना ॥ ६० ॥
अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः ।
तमेवाभिमुखं जग्मुः शलभा इव पावकम् ॥ ६१ ॥
अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः ।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलप्लवाः ॥ ६२ ॥
उरश्छदैर्वियुक्तांश्च वालबन्धैश्च वाजिनः ।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥ ६३ ॥
हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान् ।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥ ६४ ॥
निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः ।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान्हयोत्तमान् ॥ ६५ ॥
प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत ।
हयसादीनपश्याम कंचुकोष्णीषधारिणः ॥ ६६ ॥

पाञ्चालसेना को विमर्दित करने लगे । पाण्डव पक्ष के रथ, हाथी आदि सब दावानल में जल रहे जीवों के समान विकल होकर भागने लगे। रथों की बड़ी दुर्दशा हो रही थी । रथों के पहिये, जुए, धुरे आदि अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये। किसी रथ की ध्वजा और पताका कट गई, किसी रथ के घोड़े मर गये और किसी रथ का सारथी मर गया॥५६।५७॥कुछ छिन्न-भिन्न रथों को सारथी घबराकर भगाये लिये जा रहे थे।हाथियों के मस्तक फट गये, वे रक्त से नहा गये। किसी की सूँड़ और किसी की पूँछ कट गई। वे वायु से छिन्न-भिन्न होकर मेघखण्डों के समान पृथ्वी पर गिर रहे थे॥५८।६०॥कर्ण के बाणों और तोमरों के प्रहार से भयविह्वल और भ्रान्त होकर कुछ हाथी, अग्नि में गिरनेवाले पतङ्गों के समान, कर्ण की ही ओर दौड़कर जाने लगे । कुछ हाथियों के शरीर से रक्त बह रहा था और वे पीड़ित होकर आर्तनाद कर रहे थे। जैसे पर्वतों से झरने बह रहे हों, वैसी ही शोभा उन हाथियों की हो रही थी॥६१।६२॥कर्ण ने बाण मारकर श्रेष्ठ घोड़ों की भी दुर्दशा कर दी। उनके सुवर्णमय कवच, चाँदी सुवर्ण और काँसे के आभूषण, साज,

निहतान्वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्रतत्रैव भारत ॥ ६७ ॥
रथान्हेमपरिष्कारान्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम् ॥ ६८ ॥
भग्नाक्षकूबरान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
विपताकध्वजांश्चान्याञ्छिन्नेषादण्डबन्धुरान् ॥ ६९ ॥
विहतान्रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः ।
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान्विशाम्पते ॥ ७० ॥
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान्सशस्त्रांश्च हतान्बहून् ।
तारकाजालसंच्छन्नान्वरघण्टाविशोभितान् ॥ ७१ ॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान् ।
वारणाननुपश्याम धावमानान्समन्ततः ॥ ७२ ॥
शिरांसि बाहूनूरूंश्च च्छिन्नानन्यांस्तथैव च ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः ॥ ७३ ॥
महान्व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत ।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः ॥ ७४ ॥
ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥ ७५ ॥

चामर, आसन, लगाम आदि सब कट गये थे, सवार भी मारे जा चुके थे और वे घबराकर इधर उधर भाग रहे थे॥६३।६५॥हे महाराज ! हमने देखा कि समर की शोभा बढ़ानेवाले वीर घोड़ों के सवार—कञ्चुक और पगड़ी पहने— हाथों में प्रास, खड्ग, ऋष्टि आदि शस्त्र लिये कर्ण पर आक्रमण कर रहे थे और वीर कर्ण उनके शस्त्रोंको काटकर उनका संहार कर रहे थे। कुछ तो मृत्यु को प्राप्त हो गये थे, कुछ मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे और कुछ काँप रहे थे। रथी योद्धाओं के मृत्यु को प्राप्त होने पर, वेगगामी घोड़ों से युक्त और सुवर्ण मण्डित बड़े बड़े रथ अक्ष, कूबर, चक्र, ध्वजा, पताका, ईषा, दण्ड, बन्धन आदि से हीन होकर इधर-उधर मारे मारे फिर रहे थे॥६६।६८॥बहुत से रथी योद्धा रथ न रहने पर पैदल ही दौड़कर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते थे, और कर्ण के तीक्ष्ण बाण उनका पीछा नहीं छोड़ते थे। बहुत से वीर शस्त्र-हीन होकर और बहुत से योद्धा शस्त्र हाथों में लिये मर मरकर गिर रहे थे॥६९।७१॥तारकाजालों से सुशोभित, सुन्दर भारी घण्टों से अलकृत, रङ्ग बिरङ्गी विचित्र पताकाओं से भूषित बड़े बड़े हाथी कर्ण के बाणप्रहार की वेदना से विह्वल होकर इधर उधर भाग रहे थे। कर्ण के धनुष से छूटे हुए बाणों से कट कटकर वीरों के सिर, हाथ, जङ्घा आदि अङ्गों का चारों ओर ढेर लग रहा था। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार कर्ण पर तीक्ष्ण बाणों और शस्त्रों से प्रहार करनेवाले असंख्य योद्धागण कर्ण के बाणों से मरते और घबरा-कर भागते दिखाई पड़ते थे। उस समय का दृश्य बड़ा भयानक था और योद्धाओं की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। सृञ्जयगण यद्यपि कर्ण के बाणों से मारे जा रहे थे फिर भी, पतङ्गे जैसे अग्नि की ओर दौड़ते

तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम् ।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ ७६ ॥
हतशेषास्तु ये वीराः पाञ्चालानां महारथाः ।
तान्प्रभग्नान्द्रुतान्वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः ॥ ७७ ॥
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान् ।
तापयामास तान्बाणैः सूतपुत्रो महाबलः ।
मध्यन्दिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः ॥ ७८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४ ॥

हैं वैसे ही,कर्ण की ओर जा रहे थे॥७१।७५॥प्रलय काल की प्रचण्ड अग्नि के समान सेनाओं को सर्वत्र भस्म कर रहे महारथी कर्ण के सम्मुख से पाञ्चाल सैनिक दूर भागने लगे। पाञ्चालसेना के जो महारथी मरने से बचे थे और प्राण लेकर भागे जा रहे थे उनको वीर कर्ण पीछे से बाण मारकर मारने लगे। कवच और ध्वजाएँ जिनकी कट गई हैं, ऐसे भाग रहे वीरों का तेजस्वी कर्ण ने पीछा किया। मध्याह्नकाल के समय सूर्यदेव जैसे सब प्राणियों को पीड़ित करते हैं, वैसे ही कर्ण भी शत्रु-सेना को विकट बाणों की वर्षा से पीड़ा पहुँचाने लगे॥७६।७८॥

—०—

कर्ण पर्व का चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्याय ॥ २५ ॥

सञ्जय उवाच—युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत् ।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥
युयुत्सुश्च ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा ।
उलूकं ताडयामास वज्रेणेव महाबलम् ॥ २ ॥
उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे ।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ताडयामास कर्णिना ॥ ३ ॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम् ।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४ ॥
शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
सारथिं त्रिभिरानर्छत्तं च भूयो व्यविध्यत ॥ ५ ॥

पचीसवाँ अध्याय ॥ २५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! उधर पाण्डवों की ओर से आपके पुत्र वीर युयुत्सु कौरव सेना के वीरों को मारकर भगा रहे थे, इसी समय महावीर उलूक "ठहर जाओ, खड़े रहो" कहते हुए उनकी ओर दौड़े। तब युयुत्सु ने वज्रतुल्य तीक्ष्ण बाण उलूक को मारा। महावीर उलूक ने भी क्रोध से विह्वल होकर तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उनका धनुष काट डाला और उनको एक विकट कर्णिक बाण मारा। युयुत्सु ने वह कटा हुआ धनुष फेंककर अन्य दृढ़ धनुष हाथ में लिया और कोप से नेत्र रक्त (लाल) करके॥१।४॥

उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः ।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ६ ॥
स च्छिन्नयष्टिः सुमहाञ्शीर्यमाणो महाध्वजः ।
पपात प्रमुखे राजन्युयुत्सोः काञ्चनध्वजः ॥ ७ ॥
ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः ।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८ ॥
उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९ ॥
तच्छिन्नमपतद्भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा ।
तारारूपं यथा चित्रं निपपात महीतले ॥ १० ॥
जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः ।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥ ११ ॥
तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ ।
पञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥
शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसम्भ्रमः ॥ १३ ॥
हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महारथः ।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ १४ ॥
सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन् ।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १५ ॥

साठ बाण उलूक को और तीन बाण उनके सारथी को मारे। पराक्रमी युयुत्सु फिर तीक्ष्ण बाण मारकर उलूक को पीड़ित करने लगे। उन्होंने क्रुद्ध होकर सुवर्ण-भूषित बीस बाणों से युयुत्सु को घायल करके उनकी सुवर्ण-मण्डित ध्वजा काट डाली जो उनके सम्मुख ही गिर पड़ी॥४।७॥युयुत्सु अपनी ध्वजा का कटना न सह सके। उन्होंने क्रोध से अधीर होकर उलूक के वक्षःस्थल में पाँच बाण मारे। तब उलूक ने, तेल से निर्मल तथा तीक्ष्ण किये गये, एक भल्ल बाण से युयुत्सु के सारथी का सिर काट डाला। आकाश से गिरे हुए विचित्र तारा के समान युयुत्सु के सारथी का सिर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥७।१०॥उलूक ने युयुत्सु के चारों घोड़ों को भी मार डाला और उनको पाँच बाण मारे। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र युयुत्सु बाणों की चोट से अत्यन्त व्याकुल होकर,अन्य रथ पर जाने के निमित्त,सामने से हट गये।उनको जीत कर उलूक भी पाञ्चालों तथा सृञ्जयों को तीक्ष्ण बाणों से मारते हुए स्फूर्ति से दूसरी ओर चले॥११।१२॥ हे महाराज! इधर आपके पुत्र श्रुतकर्मा ने क्षण भर में शतानीक के रथ, घोड़े,सारथी आदि को नष्ट कर दिया। महारथी शतानीक ने उस बिना घोड़ों के रथ पर से ही कुपित होकर श्रुतकर्मा के ऊपर एक गदा फेंकी। वह गदा घोड़े, सारथी सहित रथ को चूर्ण करके मानों पृथ्वी को फाड़ती हुई गिर पड़ी॥

तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ ।
व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥ १६ ॥
पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विविंशो रथमारुहत् ।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥ १७ ॥
सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः ।
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १८ ॥
सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १९ ॥
ताञ्शराञ्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः ।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥ २० ॥
निवार्य समरे चापि शरांस्तान्निशितैः शरैः ।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥ २१ ॥
तस्याश्वान्केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः ।
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २२ ॥
हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिष ।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद्भूमावतिष्ठत ॥ २३ ॥
व्यसृजत्सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
छादयामास समरे तव स्यालस्य तं रथम् ॥ २४ ॥
शलभानामिव व्रातान्शरव्रातान्महारथः ।
रथोपगान्समीक्ष्यैव विव्यथे नैव सौबलः ॥ २५ ॥

१३।१५॥कुरुवंश की कीर्ति को बढानेवाले वे दोनों वीर रथ हीन होकर, एक दूसरे को देखते हुए, संग्राम से हट गये, श्रुतकर्मा विविंशु के रथ पर और शतानीक प्रतिविन्ध्य के रथ पर चले गये॥१६।१७॥ हे भरतकुल-तिलक! वीरवर शकुनि अत्यन्त कुपित होकर सुतसोम को बहुत ही तीक्ष्ण बाण मारने लगे। किन्तु जल का वेग जैसे पर्वत को नहीं हिला सकता, वैसे ही वे उनको तिल भर विचलित नहीं कर सके। हे महाराज! सुतसोम ने अपने पिता के परम शत्रु शकुनि को देखकर उनपर निरन्तर सहस्रों बाण छोडे, तब अस्त्र शस्त्र चलाने में चतुर, विचित्र युद्ध करनेवाले शकुनि ने अपने बाणों से सुतसोम के सब बाण काट डाले॥१८।२०॥ और उनको तीन बाण मारकर उनकी ध्वजा, सारथी और घोड़ों को करके काट डाला। यह देखकर उस स्थान के सब लोग चिल्लाने लगे। हे आर्य! घोड़े, सारथी, ध्वजा आदि के यों नष्ट होने पर महाबली सुतसोम ने उत्तम धनुष हाथ में लिया। वे उस अकर्मण्य (बेकाम) रथ पर से उतर पड़े और पृथ्वी पर से ही शकुनि के ऊपर असंख्य सुवर्ण पुंखित तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उन बाणों से शकुनि का रथ आच्छादित हो गया॥२१।२४॥ टिड्डी दल के समान आ रहे उन असंख्य बाणों के द्वारा आच्छादित होकर भी शकुनि व्यथित नहीं हुए। उन्होंने अनेक बाणों से उन असंख्य बाणों को काट डाला। वहाँ पर स्थित पैदल और

प्रममाथ शरांस्तस्य शरव्रातैर्महायशाः ।
तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः॥ २६ ॥
सुतसोमस्य तत्कर्म दृष्ट्वा श्रद्धेयमद्भुतम् ।
रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥ २७ ॥
तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
व्यहनत्कार्मुकं राजन्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥ २८ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत् ।
वैदूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम् ॥ २९ ॥
भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम् ।
कालदण्डोपमं मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥ ३० ॥
सोऽचरत्सहसा खड्गी मण्डलानि सहस्रशः ।
चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥ ३१ ॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं स्रुतम् ।
सम्पातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥ ३२ ॥
सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान् ।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥ ३३ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा ।
प्राहिणोत्सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान् ॥ ३४ ॥
चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च ।
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥
तस्य सञ्चरतो राजन्मण्डलावर्तने तदा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥ ३६ ॥

स्वर्ग में स्थित सिद्धगण पैदल सुतसोम को रथ पर सवार शकुनि से युद्ध करते देखकर सन्तुष्ट और विस्मित हुए॥२५।२७॥शकुनि ने तीक्ष्ण भल्ल बाणों से सुतसोम के धनुष और तरकसों को काट डाला। रथ हीन सुतसोम का धनुष भी जब कट गया तब वे वैदूर्य और कमल के समान आभा तथा हाथीदाँत की मूँठ से सुशोभित तीक्ष्ण खड्ग को तानकर सिंहनाद करने लगे। नीले आकाश के समान चमकीला और सुतसोम के द्वारा घुमाया जा रहा वह खड्ग शकुनि को काल-दण्ड के समान जान पड़ने लगा॥२८।३०॥खड्गयुद्ध की शिक्षा प्राप्त किये हुए वीर सुतसोम वह खड्ग हाथ में लेकर सहस्रों प्रकार के पैंतरे और चौदह प्रकार के हाथ दिखाने लगे। भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, सम्पात, समुदीर्ण आदि पैंतरे दिखाते हुए सुतसोम रणभूमि में विचरने लगे।शकुनि ने उस समय अनेकों विषैले सर्प सदृश बाण सुतसोम के ऊपर चलाये,किन्तु सुतसोम ने उस खड्ग से ही उन बाणों को काट डाला॥३१।३३॥गरुड़ के समान वेगशाली बली सुतसोम ने स्फूर्ति और हस्तलाघव दिखाकर जब उस खड्ग से ही सब बाण काट डाले तब शत्रुदलन

स च्छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः ।
अर्धमस्य स्थितं हस्ते सुतसोमस्य भारत ॥ ३७ ॥
छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥ ३८ ॥
तच्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः ।
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥ ३९ ॥
सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम् ।
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत्सुदुर्जयम् ॥ ४० ॥
अभ्ययात्पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान्बहून् ।
तत्र नादो महानासीत्पाण्डवानां विशाम्पते ॥ ४१ ॥
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत् ।
तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ४२ ॥
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना ।
यथा दैत्यचमूं राजन्देवराजो ममर्द ह ।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥ ४३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

शकुनि ने क्रुद्ध होकर और भी कई बाण लक्ष्य-लक्ष्य कर मारे; परन्तु उन्हें भी सुतसोम ने काट डाला। अब शकुनि ने पैंतरे दिखा रहे सुतसोम के हाथ को उस खड्गको एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणसे काट डाला॥३४। ३६॥उस महा खड्ग का अर्ध भाग कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, और मूठकी ओरका अर्धभाग सुतसोमके हाथ में रह गया। वह खड्ग कट जाने पर महावीर सुतसोम ने एकाएक छः पग उछलकर वह अर्धभग्न खड्ग शकुनि के ऊपर खींचकर फेंका। वह खड्ग शकुनि के सुवर्ण-हीरे आदि से अलङ्कृत धनुष को काटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥३७।३९॥अब महावीर सुतसोम स्फूर्ति के साथ श्रुतकीर्ति के रथ पर चले गये। शकुनि भी अन्य दृढ़ धनुष लेकर शत्रुओं को पीड़ित करते हुए पाण्डव-सेना की ओर दौड़े। हे महाराज! उस समय महावीर शकुनि निर्भय होकर संग्रामभूमि में शत्रु सेना का संहार करते हुए विचरने लगे। पाण्डवों की सेना में खलबली मच गई। योद्धा लोग घोर कोलाहल करने लगे। इन्द्र जैसे दानवों की सेना का संहार करता है वैसे ही वीर शकुनि पाण्डवों की सेना को मारने और भगाने लगे॥४०।४३॥

कर्ण पर्व का पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सञ्जय उवाच—धृष्टद्युम्नं कृपो राजन्वारयामास संयुगे ।
यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद्युधि ॥ १ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! वन में शरभ* जैसे सिंह पर आक्रमण करता है वैसे ही कृपाचार्य

*यह आठ पाँवोंवाला जीव सिंह का शत्रु होता है। इसका आधा धड़ पशु का सा और आधा पक्षी का सा होता है, जिससे यह उड़ता भी है।

निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा ।
पदात्पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत ॥ २ ॥
गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥ ३ ॥
तत्रावोचन्विमनसो रथिनः सादिनस्तथा ।
द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥ ४ ॥
शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः ।
अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥ ५ ॥
अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात् ।
अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान्न नो हन्यात्समागतान् ॥ ६ ॥
यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम् ।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः ॥ ७ ॥
आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि ।
अस्त्रवान्वीर्यसम्पन्नः क्रोधेन च समन्वितः ॥ ८ ॥
पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते ।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ॥ ९ ॥
व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे ।
विनिःश्वस्य ततः क्रोधात्कृपः शारद्वतो नृप ॥ १० ॥
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु ।
स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ॥ ११ ॥

ने धृष्टद्युम्न का सामना किया। महाबली कृपाचार्य ने इस प्रकार धृष्टद्युम्न को रोका कि वे अपने स्थान से एक पग भी आगे न बढ़ सके। वहाँ पर जो लोग विद्यमान् थे वे धृष्टद्युम्न के रथ के सम्मुख कृपाचार्य के रथ को देखकर बहुत भयभीत हुए और सोचने लगे कि धृष्टद्युम्न अब जीवित नहीं बच सकते॥१।३॥ उस समय रथों, हाथियों और घोड़ों पर स्थित पाण्डव दल के योद्धा लोग उदास से होकर कहने लगे—जान पड़ता है, ये दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता तेजस्वी उदारबुद्धि वीरवर कृपाचार्य अवश्य ही द्रोणाचार्य के मारे जाने से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे हैं। धृष्टद्युम्न इनसे युद्ध कर रहे हैं, ईश्वर ही धृष्टद्युम्न की रक्षा करे। इस सम्पूर्ण सेना के निमित्त यह महाभय का कारण उपस्थित है, ईश्वर ही इस सेना को इस विपत्ति से सुरक्षित करे। युद्ध करने के निमित्त उपस्थित हम लोगों को कहीं ये आचार्य नष्ट न कर दें॥४।६॥इस समय इनका यह काल का सा भयङ्कर रूप देखकर हमें तो जान पड़ता है कि ये अवश्य महात्मा द्रोणाचार्य के समान ही पराक्रम दिखावेंगे और शत्रु सेना का संहार करेंगे। ये आचार्य स्फूर्तिशाली युद्ध में सदा विजय प्राप्त करने वाले, अस्त्रबल सम्पन्न, वीर्यशाली और विशेषकर इस समय क्रुद्ध हो रहे हैं। उधर धृष्टद्युम्न महायुद्ध में इनके आगे विमुख से होते दिखाई पड़ रहे हैं। हे महाराज! कृपाचार्य और धृष्टद्युम्न के युद्ध

कर्त्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महता वृतः ।
तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित्क्षेमं तु पार्षत ॥ १२ ॥
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया कचित् ।
दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन्मर्मभेदिनः ॥ १३ ॥
प्रेपिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः ।
व्यवर्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवार्णवात् ॥ १४ ॥
अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः ।
धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद्वचः ॥ १५ ॥
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे ॥ १६ ॥
वर्जयन्ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः ।
अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे ॥ १७ ॥
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्टिकी मतिः ।
ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन्हयान् ॥ १८ ॥
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः ।
प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ १९ ॥
किरञ्शरशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा ।
शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिन्दमः ॥ २० ॥

के समय आपके पक्ष के और पाण्डवों के पक्ष के भान्ति-भान्ति के वचन सुनाई पड़ने लगे॥७।१०॥ क्रोध से दीर्घ श्वास लेकर कृपाचार्य ने, निश्चेष्ट होकर स्थित हुए, धृष्टद्युम्न के मर्मस्थलों में फिर अनेक बाण मारना प्रारम्भ किया। महारथी धृष्टद्युम्न कृपाचार्य के बाणों से पीड़ित हो व्याकुलता के मारे अपना कुछ कर्त्तव्य न निश्चित कर सके। यह दशा देखकर सारथी ने उन से कहा —हे राजकुमार! कुशल तो है! मैंने युद्ध में कभी आपको इस प्रकार शिथिल और व्याकुल होते नहीं देखा। बात क्या है? महात्मा कृपाचार्य ने मर्मस्थलों को लक्ष्यकर आपके ऊपर जितने बाण छोड़े, वे सब दैवयोग से आपको नहीं लगे, यही कुशल हुई। समुद्र से नदी के वेग के समान मैं आपके रथ को रणभूमि से शीघ्र हटाये लिये चलता हूँ। मैं समझता हूँ कि आपके पराक्रम को नष्ट करनेवाले ये ब्राह्मण अवध्य हैं॥१०।१५॥ हे राजेन्द्र! सारथी के ये वचन सुनकर वीर धृष्टद्युम्न धीरे से कहने लगे—हे सूत! इस समय मैं घबरा गया हूँ, शरीर से स्वेद निकल रहा है, अङ्ग काँप रहे हैं, रोम खड़े हो आये हैं; मेरी विचित्र दशा हो रही है। तुम इस ब्राह्मण से बचते हुए शनैः शनैः मेरे रथ को अर्जुन के समीप ले चलो। मुझे जान पड़ता है कि इस समय अर्जुन अथवा भीमसेन के समीप जाने से ही मेरा कल्याण होगा॥१५।१८॥ हे महाराज! सारथी ने धृष्टद्युम्न के वचन सुनकर, जहाँ पर भीमसेन आपकी सेना के साथ युद्ध कर रहे थे वहाँ रथ ले जाने के निमित्त द्रुतगति से घोड़ों को हाँक दिया। धृष्टद्युम्न के रथ को आगे अग्रभाग से हटते देखकर वीर कृपाचार्य

पार्षतं त्रासयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा ।
शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम् ॥ २१ ॥
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः ।
शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम् ॥ २२ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत् ।
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः ॥ २३ ॥
धनुरेकेन चिच्छेद हसन्राजन्महारथः ।
अथान्यद्धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥ २४ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ।
ततोऽस्य नवतिं बाणान्रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ॥ २५ ॥
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मतः ।
वितथांस्तान्समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥ २६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम् ।
अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम् ॥ २७ ॥
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ २८ ॥
ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रादिवोदकम् ।
रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा व्यराजत ॥ २९ ॥
वर्षेण क्लेदितो राजन्यथा गैरिकपर्वतः ।
अथान्यद्धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः ॥ ३० ॥

भी सैकड़ों तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए पीछे पीछे चले। शत्रुदमन कृपाचार्य बारम्बार शङ्ख बजाकर, सिंहनाद करके, नमुचि दानव को इन्द्र के समान धृष्टद्युम्न को भयभीत कराने लगे॥१८।२१॥भीष्म पितामह को मारनेवाले दुर्द्धर्ष शिखण्डी उधर कौरव-सेना का संहार कर रहे थे। वीरवर कृतवर्मा बारम्बार हँसकर उनको रोकने की चेष्टा करने लगे। वीर शिखण्डी ने कृतवर्मा के कन्धे में पाँच तीक्ष्ण भल्ल बाण मारे। कृतवर्मा ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर पहले साठ बाणों से शिखण्डी को पीड़ित किया, और फिर एक बाण से उनका दृढ़ धनुष काट डाला। शिखण्डी क्रोध से विह्वल हो उठे। वे अन्य धनुष लेकर "ठहर तो जाओ—ठहर तो जाओ" कहकर कृतवर्मा पर आक्रमण करने को उद्यत हुए। उन्होंने सुवर्णपुङ्खयुक्त अत्यन्त तीक्ष्ण नब्बे बाण कृतवर्मा को मारे, परन्तु वे बाण कृतवर्मा के कवच से टकराकर गिर पड़े॥२१।२६॥शिखण्डी ने तब एक क्षुरप्र बाण से कृतवर्मा का धनुष काट डाला। जिसके सींग टूट जायँ उस बैल के समान, धनुष कट जाने पर, अपना बल और पौरुष प्रकट करने में असमर्थ कृतवर्मा का वक्षःस्थल और भुजाओं में शिखण्डी ने फिर अत्यन्त तीक्ष्ण अस्सी बाण मारे। महावीर कृतवर्मा का शरीर इस प्रकार शिखण्डी के बाणों से कट-फट गया। तब वे क्रोध से अत्यन्त अधीर हो उठे। घड़े के मुख से जैसे जल की धारा निकले, वैसे ही

शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत् ।
स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत ॥ ३१ ॥
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान्पादपो यथा ।
तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ॥ ३२ ॥
अन्योन्यशृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव ।
अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ॥ ३३ ॥
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः ।
कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ॥ ३४ ॥
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ॥ ३५ ॥
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः ।
स तेनाभिहतो राजन्मूर्च्छामाशु समाविशत् ॥ ३६ ॥
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः ।
अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ॥ ३७ ॥
हार्दिक्यशरसन्तप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो ।
व्यद्रवत्पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः ॥ ३८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सङ्कुलयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

कृतवर्मा के शरीर से निरन्तर रक्त बहने लगा। रक्त से नहा जाने के कारण वे गेरू से रँगे हुए पर्वत के समान शोभायमान हुए॥२६।३०॥ इसके उपरान्त अन्य एक श्रेष्ठ धनुष लेकर कृतवर्मा ने शिखण्डी के कन्धों में कई बाण मारे। कन्धों में लगे हुए बाणों से वीर शिखण्डी शाखा-प्रशाखा युक्त किसी बड़े वृक्ष के समान जान पड़ने लगे। दोनों वीर परस्पर के प्रहार से घायल और रक्त से तर होकर परस्पर के सींगों की चोट से घायल दो बड़े साँड़ों के समान शोभायमान हुए। हे महाराज! इस प्रकार एक दूसरे को मार डालने का यत्न करते हुए वे दोनों महारथी वीर सहस्रों मण्डलों और गतियों से रथों को चलाते हुए रणभूमि में विचर रहे थे॥३०।३४॥ श्रेष्ठ योद्धा कृत-वर्मा ने सुवर्णपुङ्ख-युक्त सुतीक्ष्ण सत्तर बाण शिखण्डी को मारे और उसके पश्चात् स्फूर्ति के साथ जीवन को हरनेवाला एक विकट बाण उनके वक्षःस्थल को लक्ष्य कर छोड़ा। वह बाण लगते ही शिखण्डी को मूर्छा आ गई। वे ध्वजा का दण्ड पकड़कर आसन पर बैठ गये। सारथी ने जब देखा कि कृतवर्मा के बाण की गहरी चोट खाकर शिखण्डी मूर्च्छित हो गये हैं और पीड़ा के मारे बारम्बार साँस छोड़ रहे हैं, तब वह स्फूर्ति के साथ रथ को रणभूमि से हटा ले गया। शूर शिखण्डी के यों परास्त होने पर कृतवर्मा के बाणों से मारी जा रही पाण्डवों की सेना चारों ओर भागने लगी॥३५।३८॥

—०—

कर्ण पर्व का छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

सञ्जय उवाच—श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम् ।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः ॥ १ ॥
प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्त्तास्तं शिवयः कौरवैः सह ।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत् ॥ २ ॥
सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः सुतञ्जयः ।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत ॥ ३ ॥
त्रिगर्त्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः ।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः ॥ ४ ॥
व्यसृजन्त शरव्रातान्किरन्तोऽर्जुनमाहवे ।
अभ्यवर्त्तन्त सहसा वायोर्घा इव सागरम् ॥ ५ ॥
ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः ।
अगच्छन्विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः ॥ ६ ॥
ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे ।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम् ॥ ७ ॥
सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम् ।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रसेनस्तु सप्तभिः ॥ ८ ॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः ।
शत्रुञ्जयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः ॥ ९ ॥
स विद्धो बहुभिः सङ्ख्ये प्रतिविव्याध तान्नृपान् ।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः ॥ १० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! दूसरी ओर, वायु जैसे रुई के ढेर को इधर उधर उड़ा देता है वैसे ही, वीरश्रेष्ठ अर्जुन भी आपकी सेना को मार मारकर चारों ओर भगाने लगे । कौरव, शिवि, त्रिगर्त, शाल्व, नारायणी सेना और अन्य अनेक देशों के राजाओं की सेनाएँ अर्जुन को रोकने के निमित्त चारों ओर से चलीं । जलराशि जैसे समुद्र की ओर जाती है वैसे ही ऊपर कही गई सेनाएँ और सत्यसेन, चित्रसेन, मित्रदेव, शत्रुञ्जय, सौश्रुति, चन्द्रदेव, मित्रवर्मा आदि भाइयों सहित त्रिगर्तराज भी अर्जुन की ओर चले॥ १।४॥त्रिगर्तराज के साथ उनके पुत्र भी थे, जो कि महाधनुर्द्धर और सब प्रकार के शस्त्रों के युद्ध में निपुण थे । ये लोग चारों ओर से अर्जुन के ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे।गरुड़ को देखते ही जैसे सर्प बिल में प्रवेश हो जाते हैं वैसे ही सैंकड़ों हजारों योद्धा अर्जुन के सम्मुख आते ही उनके अस्त्रबल से नष्ट होने लगे । अर्जुन के बाणों से मारे जाने पर भी वे सब सेनाएँ उन्हीं की ओर बढ़ी जा रही थीं, जैसे पतङ्गों के समूह के समूह अपने साथियों को जलते देखकर भी अग्नि में कूदते हैं॥५।७॥हे महाराज ! वीरश्रेष्ठ सत्यसेन ने अर्जुन को तीन बाण मारे । इसी प्रकार मित्रदेव ने तिरसठ, चन्द्रदेव ने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर, सौश्रुति ने सात, शत्रुञ्जय ने बीस और सुशर्मा ने नव बाण अर्जुन को मारे।महारथी अर्जुन इस प्रकार अनेक

शत्रुञ्जयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः ।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ११ ॥
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः ।
शत्रुञ्जयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः ॥ १२ ॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १३ ॥
तथेतरान्महाराज यतमानान्महारथान् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत् ॥ १४ ॥
सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत् ।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च ॥ १५ ॥
स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः ।
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा ॥ १६ ॥
माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे ।
प्रतोदः प्रापतद्धस्तादश्मयश्च विशाम्पते ॥ १७ ॥
वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥
प्रापयाश्वान्महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो ।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥
प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा ।
वाहयामास तानश्वान्सत्यसेनरथं प्रति ॥ २० ॥

शत्रुओं के अनेक बाणों के प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुए। हे राजेन्द्र! अर्जुन ने भी सौश्रुति के सात, सत्यसेन को तीन, शत्रुञ्जय को बीस, चन्द्रदेव को आठ, मित्रदेव को सौ, ॥८।११॥ श्रुतसेन को तीन, मित्रवर्मा को नव और सुशर्मा को आठ बाण मारे। फिर शिला पर घिसकर तीक्ष्ण किये गये बाणों से शत्रुञ्जय को मारकर अर्जुन ने सौश्रुति के शिरस्त्राण सहित सिर को धड़ से काटकर पृथक् कर दिया। अब स्फूर्ति के साथ बाणों से चन्द्रदेव को भी मार डाला। अन्य महारथियों को, जो कि बाण-प्रहार कर रहे थे, अर्जुन ने पाँच-पाँच बाण मारे॥१२।१४॥ इसी मध्य में सत्यसेन ने अत्यन्त कुपित होकर श्रीकृष्ण को बहुत तीक्ष्ण एक तोमर मारा और घोर सिंहनाद किया। वह सुवर्ण की दण्डीवाला लोहे का तीक्ष्ण तोमर महात्मा श्रीकृष्ण की बाईं भुजा को चीरता हुआ पृथ्वी में गिर पड़ा। उसकी चोट से पीड़ित श्रीकृष्ण के हाथ से घोड़ों की लगाम छूट गई और कोड़ा भी गिर पड़ा॥१५।१७॥ महात्मा श्रीकृष्ण को घायल देखकर अर्जुन क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—हे महाबाहो! मेरे घोड़ों को सत्यसेन के रथ के समीप ले चलिए; मैं इसे अभी तीक्ष्ण बाणों से यमपुर भेजना चाहता हूँ॥१८।१९॥ हे महाराज! श्रीकृष्ण ने घोड़ों की रास और चाबुक उठाकर अर्जुन के रथ को सत्यसेन के रथ के समीप पहुँचा दिया।

विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः ।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥ २१ ॥
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः ।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त्त पृतनान्तरे ॥ २२ ॥
तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत् ।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥ २३ ॥
ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान्बली ।
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २४ ॥
ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः ।
मित्रसेनस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः ॥ २५ ॥
सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत् ।
ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ २६ ॥
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश ।
अभ्यर्दितस्तु तज्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २७ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः ।
ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्विशाम्पते ॥ २८ ॥
ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष ।
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥ २९ ॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह ।
कूबराणां वरूथानां पृषत्कानां च संयुगे ॥ ३० ॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह ।
गदानां परिघाणां च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ३१ ॥

महारथी अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से सत्यसेन को पीड़ित करके सब सेना के सम्मुख उसके कुण्डल-मण्डित भारी सिर को भल्ल बाणों से काटकर गिरा दिया। अब उन्होंने मित्रवर्मा को कई तीक्ष्ण बाण मारे और एक वत्सदन्त बाण से उसके सारथी को मार गिराया। इसके पश्चात् महाबली वीर अर्जुन अत्यन्त कुपित होकर सैकड़ों बाणों से सहस्रों संशप्तकों को मार-मारकर गिराने लगे॥२०।२४॥चाँदी के पुङ्ख से शोभित एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से उन्होंने मित्रदेव का सिर काट डाला और कुपित होकर सुशर्मा के कन्धे में कई बाण मारे। तब सब संशप्तकगण कुपित हो उठे। वे अर्जुन को चारों ओर से घेरकर उन पर अनेक शस्त्र बरसाने लगे। उनके सिंहनाद से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। इन्द्र के समान पराक्रमी महारथी अर्जुन ने शत्रुओं के आक्रमण से पीड़ित होकर, उनके नाश के निमित्त इन्द्रास्त्र का प्रयोग किया। हे महाराज! उस दिव्य अस्त्र के प्रभाव से अर्जुन के धनुष से सहस्रों बाण स्वयमेव प्रकट होने लगे॥२५।२८॥उन बाणों से असंख्य ध्वजा, पताका, धनुष, रथ, तरकस, युग, जुए, पहिये, जोत, घोड़ों की रासें, कूबर, वरूथ,

शतघ्नीनां सचक्रानां भुजानां चोरुभिः सह ।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥ ३२ ॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत ।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥ ३३ ॥
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते ।
सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥ ३४ ॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे ।
सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ॥ ३५ ॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले ।
गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥ ३६ ॥
निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः ।
हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही ॥ ३७ ॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः ।
नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
निघ्नतः शात्रवान्भल्लैर्हस्त्यश्वं चास्यतो महत् ।
त्रासानुगा इव सीदन्ति रथचक्राणि मारिष ॥ ३९ ॥
चरंतस्तस्य संग्रामे तस्मिँल्लोहितकर्दमे ।
सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥ ४० ॥
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ।
वध्यमानं तु तत्सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥ ४१ ॥

पृषत्क, घोड़े, प्रास, ऋष्टि, गदा, बेलन, शक्ति, तोमर, पट्टिश, शतघ्नी, और उनके चक्र, बाहु, ऊरु, जङ्घा, कण्ठसूत्र, केयूर, हार, निष्क, कवच, छत्र, चमर, सिर, मुकुट आदि से अलकृत, पूर्ण चन्द्रमा के समान, वीरों के कटे हुए सिर, आकाश में तारागण के समान, रणभूमिमें दिखाई पड़ने लगे। मृत्यु को प्राप्त हुए वीरों के चन्दन-चर्चित, सुन्दर माला और वस्त्रों से शोभित, शरीर पृथ्वी पर पड़े हुए थे॥३४।३६॥मारे गये महाबली राजपुत्रों और क्षत्रियों के शरीरों से परिपूर्ण रणभूमि भयङ्कर दिखाई पड़ने लगी। फटे हुए पर्वतों के समान, गिर पड़े हुए हाथियों और घोड़ों के कारण वह भूमि अत्यन्त दुर्गम हो उठी। वीर अर्जुन ने भल्ल बाणों से शत्रुपक्ष के इतने हाथी, घोड़े और मनुष्य मार मारकर गिरा दिये थे कि उनके रथ को आगे बढ़ने के निमित्त भी मार्ग नहीं मिलता था। कौरव दल के समान ही अर्जुन के रथ के पहिये वहाँ रक्त के कीचड़ में धँस धँस जाते थे॥३७।३९॥अर्जुन के, मन और वायु के समान वेग से चलनेवाले श्रेष्ठ घोड़े बड़ा बल लगाकर रथ के फँसे हुए पहियों को खींचते और आगे बढ़ते थे। धनुर्धर अर्जुन के बाणों से नष्ट हो रही हमारी वह सेना रण छोड़कर भाग खड़ी हुई; कोई भी वीर अर्जुन के सम्मुख स्थित होने का साहस नहीं कर सका।

प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत ।
तांञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान्बहून् ।
विरराज तदा पार्थो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संशप्तकजये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

हे महाराज ! इस प्रकार बहुत से संशप्तकगणों को जीतकर वीरवर अर्जुन बिना धुएँ की प्रज्वलित अग्नि के समान शोभा को प्राप्त हुए॥४०।४२॥

—०—

कर्ण पर्व का सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

सञ्जय उवाच—युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान्बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥
तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥
स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥ ३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजन्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलीमुखान् ।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ४ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात्सारथेश्च समाक्षिपत् ॥ ५ ॥
षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥ ६ ॥
पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद्भृशम् ।
हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ॥ ७ ॥
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥ ८ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय ॥ २८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! युद्धभूमि में असख्य बाण बरसा रहे राजा युधिष्ठिर से युद्ध करने निमित्त स्वयं राजा दुर्योधन आगे बढ़े और निर्भय होकर उन्हें रोकने लगे । आपके महारथी पुत्र दुर्योधन को एकाएक आक्रमण करने के निमित्त आते देखकर धर्मराज ने उनको कई बाण मारे और "ठहर ठहर" कहकर सिंहनाद किया । दुर्योधन ने भी युधिष्ठिर को तीक्ष्ण नव बाण मारकर एक भल्ल बाण से उनके सारथी को पीड़ित किया॥१।३॥हे राजेन्द्र ! तब महारथी युधिष्ठिर ने सुवर्णपुङ्खयुक्त तेरह बाण दुर्योधन के ऊपर छोड़े । उनमें चार बाणों से दुर्योधन के चारों घोड़े मार डाले, पाँचवें बाण से सारथी का सिर काट डाला, छठे बाण से ध्वजा और सातवें से धनुष काट डाला, आठवें में दुर्योधन के हाथ का खड्ग काटकर

अभ्यवर्त्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम् ।
अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ९ ॥
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ।
ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥ १० ॥
ततः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन्महीपते ।
यत्राभ्यगच्छन्समरे पञ्चालाः कौरवैः सह ॥ ११ ॥
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥ १२ ॥
द्वन्द्वान्यासन्महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ १३ ॥
ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ॥ १४ ॥
अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
नहि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन ॥ १५ ॥
मुहूर्त्तमेव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्त्तत ॥ १६ ॥
रथी नागं समासाद्य दारयन्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास कालाय शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १७ ॥

शेष पाँच बाणों से दुर्योधन को अत्यन्त पीड़ित किया। हे महाराज ! इस प्रकार सङ्कट में पड़े हुए आपके पुत्र दुर्योधन उस बिना घोड़ों के रथ से कूदकर नीचे स्थित हो गये॥४।८॥राजा को इस प्रकार सङ्कट में देखकर कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि कौरव दल के वीरगण उनकी रक्षा और सहायता करने के निमित्त अकस्मात् वहाँ पर आ गये। इधर पाण्डव लोग भी युधिष्ठिर को चारों ओर से घेरकर, उनकी रक्षा करते हुए, शत्रुओं पर आक्रमण करने को प्रस्तुत हुए। इस प्रकार दोनों ओर के योद्धा एकत्रित हो गये और घोर युद्ध होने लगा। दोनों ओर सहस्रों तुरही और नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। हे महाराज ! जहाँ पाञ्चालगण और कौरव पक्ष के लोग युद्ध करने के निमित्त एकत्र हुए वहाँ पर वीर लोग किलकारियाँ मारने लगे॥८।११॥मनुष्य मनुष्यों से, हाथी हाथियों से, रथी रथियों से और घोड़ों के सवार घुड़सवारों से भिड़ गये। वाहनों पर सवार योद्धा और पैदल सैनिक भिड़कर घोर युद्ध करने लगे। वीरों का परस्पर द्वन्द्व-युद्ध देखने ही योग्य था। उस समय होनेवाले श्रेष्ठ और भान्ति भान्ति के शस्त्रों के द्वन्द्व-युद्ध ऐसे थे कि मनुष्य उनकी कल्पना भी नहीं कर सकता। बड़े वेगशाली और एक दूसरे को मार डालने की इच्छा रखनेवाले वे वीरगण हस्त-लाघवता और स्फूर्ति के साथ विचित्र युद्ध करने लगे॥१२।१४॥योद्धा लोग युद्धनीति के अनुसार परस्पर सामने से प्रहार कर रहे थे। घड़ी दो घड़ी तक तो मन्द गति से युद्ध हुआ, किन्तु उसके पश्चात् सब लोग उन्मत्त से हो उठे और मर्यादा छोड़कर भयङ्कर युद्ध करने लगे। रथ पर सवार कोई योद्धा हाथी और

नागा हयान्समासाद्य विक्षिपन्तो बहून्रणे ।
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥ १८ ॥
हयारोहाश्च बहवः परिवार्य हयोत्तमान् ।
तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥ १९ ॥
धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान्महागजान् ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥ २० ॥
विद्राव्य च बहूनश्वान्नागा राजन्मदोत्कटाः ।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ २१ ॥
साश्वारोहांश्च तुरगान्विषाणैर्विव्यधू रुषा ।
अपरे चिक्षिपुर्वेगात्प्रगृह्यातिबलास्तदा ॥ २२ ॥
पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्त्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २३ ॥
पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमवव्रू रणाजिरे ॥ २४ ॥
निमित्तं मन्यमानास्तु परिणाम्य महागजाः ।
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च ॥ २५ ॥
तांस्तु तत्र प्रसक्तान्वै परिवार्य पदातयः ।
हस्त्यारोहान्निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः ॥ २६ ॥

उसके सवार को तीक्ष्ण बाणों से चीर करके मार डालता था। बड़े-बड़े हाथी जहाँ-तहाँ घोड़ों पर आक्रमण करके उग्र भाव से उन्हें चीरते फाड़ते और मारते थे॥१५।१८॥श्रेष्ठ घोड़ों पर सवारवीर लोग ताल ठोंकते और आक्रमण करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। दौड़ रहे और भाग रहे बड़े-बड़े हाथियों पर घोड़ों के सवार आसपास से और पीछे से प्रहार कर रहे थे। बहुत से मतवाले हाथी घोड़ों को भगाकर उन पर दाँतों से चोट करते थे और जो गिर पड़ते थे उन्हें पाँव से रौंद डालते थे। महाबली अन्य हाथी कुपित होकर सवार सहित घोड़ों को दाँतों के प्रहार से मारते, गिराते और फेंक देते थे॥१९।२२॥पैदल सैनिक भी हाथियों के मर्मस्थलों में प्रहार करते थे, जिससे पीड़ित होकर वे चिल्लाते हुए इधर-उधर भाग रहे थे। महायुद्ध में प्रहार से पीड़ित पैदल सैनिक अपने शस्त्रों को छोड़-छाड़कर भाग खड़े हुए। उन्हें भागते देखकर परपक्ष के हाथी शीघ्रता के साथ घेरने लगे। अपनी विजय देखकर बड़े-बड़े हाथियों के सवार योद्धा लोग अपने हाथियों को झुकाकर शत्रुदल के भागते हुए पैदलों को पकड़वाने, फड़वाने और रौंदवाने लगे। भागते हुए पैदलों के विचित्र आभूषणों और शस्त्रों को विपक्षी वीर उठा लेते थे। यह देखकर महाबली पैदलों के समूह भी स्थित हो गये और हाथियों के सवारों को घेरकर उन पर बड़े वेग से आक्रमण करने लगे॥२३।२६॥बहुत से सुशिक्षित हाथी शत्रुओं को सूँड से पकड़कर ऊपर उछाल देते थे और जब वे नीचे गिरते थे तब उन्हें दाँतों पर रोककर छेदकर मार डालते थे। कुछ महागज सेना के मध्य घुसकर, दाँतों के प्रहार से ही शत्रुओं

अपरे हस्तिभिर्हस्तैः खं विक्षिप्ता महाहवे ।
निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं विद्धाः सुशिक्षितैः ॥ २७ ॥
अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः ।
सेनान्तरं समासाद्य केचित्तत्र महागजैः ॥ २८ ॥
क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः ।
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥ २९ ॥
पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशाम्पते ।
शरीराण्यतिविद्धानि तत्र तत्र रणाजिरे ॥ ३० ॥
प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ॥ ३१ ॥
निगृह्य च गजाः केचित्पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः ।
रथाश्वसादिभिस्तत्र सम्भिन्ना न्यपतन्भुवि ॥ ३२ ॥
सहयाः सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे ।
भूमावमृद्नन्वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥ ३३ ॥
तथा सावरणान्कांश्चित्तत्र तत्र विशाम्पते ।
रथान्नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥ ३४ ॥
व्याक्षिपन्सहसा तत्र घोररूपे भयानके ।
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः ॥ ३५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले ।
योधा योधान्समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन्युधि ॥ ३६ ॥

के प्राण ले लेते थे। कुछ घायल लोगों को हाथियों ने आगे पाकर पंखे के समान बारम्बार घुमाकर (उछालकर) ही मार डाला। हे महाराज! हाथियों की सेना के अग्रवर्ती अनेक वीरों के शरीर अत्यन्त छिन्न भिन्न हो गये और उनके प्राण निकल गये। पैदलों और घुड़सवारों ने भी हाथियों को—उनके दाँतों की सन्धियों, मस्तकों और दन्तवेष्टनों में—प्रास, तोमर और शक्ति के उग्र प्रहारों से पीड़ित और नष्ट कर दिया॥२७।३१॥ कोई-कोई हाथी, अपने समीप स्थित हुए, रथी वीरों के दारुण प्रहार से पीड़ित और घुड़सवारों के प्रहार से छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। घुड़सवार योद्धा लोग तोमर मारकर, ढाल धारण किये हुए, पैदलों को पृथ्वी पर गिराकर घोड़ों की टापों से रौंदने लगे। हाथियों के समूह क्रुद्ध होकर किसी किसी रथी के रथ को सामान के सहित सूँड़ में पकड़कर एकाएक उलट देते और तोड़-फोड़ डालते थे॥३२।३५॥ उस महाभयानक रण में बड़े-बड़े बली हाथी नाराच बाणों के प्रहार से मर-मरकर, वज्र से फटे हुए पर्वतों के शिखरों के समान, पृथ्वी पर गिर रहे थे। योद्धा लोग परस्पर भिड़कर एक दूसरे को घूँसे मारने केश पकड़कर पटकने और मार डालने में लगे हुए थे। कोई-कोई दोनों हाथों से किसी को पृथ्वी पर पटककर हृदय पर पाँव रखकर उसका सिर काट रहे थे। किसी-किसी गिरे हुए शत्रु का सिर खड्ग से काट

केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिक्षिपुर्बिभिदुश्च ह ।
उद्यम्य च भुजानन्ये निक्षिप्य च महीतले ॥ ३७ ॥
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः ।
पततश्चापरो राजन्विजहारासिना शिरः ॥ ३८ ॥
जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् ।
मुष्टियुद्धं महच्चासीद्योधानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।
समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ॥ ४० ॥
जहार समरे प्राणान्नानाशस्त्रैरनेकधा ।
संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥ ४१ ॥
कबन्धान्युत्थितानि स्युः शतशोऽथ सहस्रशः ।
शोणितैः सिच्यमानानि शस्त्राणि कवचानि च॥ ४२ ॥
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।
एवमेतन्महद्युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥ ४३ ॥
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।
नैव स्वे न परे राजन्विज्ञायन्ते शरातुराः ॥ ४४ ॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।
स्वान्स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान् ॥ ४५ ॥
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।
रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥ ४६ ॥

डाला॥३६।३८॥कोई-कोई अर्धमृत शत्रु की देह में शस्त्र भोंक रहे थे। इसके पश्चात् योद्धा लोग निर्दयता से मुष्टियुद्ध और उग्र बाहुयुद्ध करने तथा केश खींचने लगे। कहीं-कहीं ऐसा हुआ था कि एक दूसरे से युद्ध कर रहा था, इसी मध्य में तीसरे ने उसका सिर काट डाला। हे महाराज! योद्धा लोग इस प्रकार भिड़कर जब वीर संग्राम करने लगे तब युद्ध में मारे गये बड़े-बड़े शूर-वीरों के सहस्रों कबन्ध जहाँ तहाँ उठने और लड़ने लगे। वीरों के रक्त से तर शस्त्र और कवच लाल रङ्ग में रङ्गे वस्त्रों के समान जान पड़ने लगे। ॥३९।४३॥बढ़ी हुई गङ्गा के से शब्द से जगत् को व्याप्त करता हुआ वीर युद्ध उस समय हो रहा था। सहस्रों प्रकार के असंख्य शस्त्र चल रहे थे। उस युद्ध में अपने या दूसरे की कोई पहचान नहीं रह गई थी। बाणों से घायल राजा लोग, विजय पाने के निमित्त उन्मत्त से होकर, युद्ध कर रहे थे। जो सम्मुख पड़ता था उसी पर प्रहार करते थे। हे महाराज! ऐसी हलचल मच गई कि लोग अपने ही पक्ष के लोगों को मार डालते थे। दोनों पक्षों के वीर उस तुमुल युद्ध में सम्मुख आये हुए अपने और पराये दोनों को, समान रूप से, मार काट रहे थे। क्षण भर में असंख्य टूटे हुए रथों, मरे हुए हाथी घोड़ों और मनुष्यों की लाशों के ढेर चारों

हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७ ॥
क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।
पञ्चालानहनत्कर्णस्त्रिगर्त्तांश्च धनञ्जयः ॥ ४८ ॥
भीमसेनः कुरून्राजन्हस्त्यनीकं च सर्वशः ।
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये कांक्षतां विपुलं यशः ॥ ४९ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ओर लग गये। किसी ओर जाने या चलने का मार्ग नहीं रहा॥४३।४७॥चारों ओर रक्तके प्रवाह बह चले। एक ओर कर्ण पाञ्चालों की सेना को मार रहे थे और दूसरी ओर अर्जुन त्रिगर्तों (संशप्तकों) को मार रहे थे। भीमसेन भी कौरवसेना को और विशेष रूप से गजसेना को नष्ट कर रहे थे। हे महाराज! महायश चाहनेवाले कौरवों और पाण्डवों ने दिन के तीसरे पहर इस प्रकार भयङ्कर युद्ध करके घोर जनसंहार कर डाला॥४८।४९॥

कर्ण पर्व का अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २८ ॥

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च ।
त्वत्तोऽहं सञ्जयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम् ॥ १ ॥
यथा त्वं मे कथयसे यथा युद्धमवर्त्तत ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः ॥ २ ॥
दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥ ३ ॥
अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच—संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा ।
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥

उनतीसवाँ अध्याय ॥ २९ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मैंने तुम्हारे मुख से बहुत सी घोर दुःसहदायिनी घटनाओं और अपने पुत्रों की मृत्यु के समाचार सुने हैं। हे सूत! मुझे निश्चय से जान पड़ता है कि कौरव नहीं बच सकते। मेरे महारथी पुत्र दुर्योधन को धर्म-पुत्र युधिष्ठिर ने जब रथहीन कर दिया तब फिर क्या हुआ? दुर्योधन ने युधिष्ठिर से और युधिष्ठिर ने दुर्योधन से फिर कैसा युद्ध किया? तीसरे पहर के समय कैसा रोमहर्षण संग्राम हुआ? यह वृत्तान्त कहो। तुम वर्णन करने में बड़े निपुण हो॥१।४॥सञ्जय ने कहा कि हे राजेन्द्र!

प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत ।
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ॥ ७ ॥
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।
स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९ ॥
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।
तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥ १० ॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥
ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष ।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥ १२ ॥
तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥
अन्यत्कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ १४ ॥
अथान्यद्धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम् ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥ १५ ॥
सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥ १६ ॥

दोनों ओर की सेनाएँ जब दल बनाकर भिड़ गईं और वीर योद्धा लोग परस्पर मरने और मारने लगे तब वीर राजा दुर्योधन दूसरे रथ पर बैठकर, कुपित विषैले नाग के समान, धर्मराज को क्रोधभरी दृष्टि से देखकर अपने सारथी से कहने लगे—हे सूत ! जहाँ पर राजा युधिष्ठिर कवच और छत्र धारण किये विराजमान हैं, वहीं पर तुम शीघ्र मेरा रथ ले चलो॥५।८॥सारथी ने राजा दुर्योधन की आज्ञा से उनका रथ युधिष्ठिर के रथ के समीप पहुँचा दिया। उधर धर्मराज ने भी मदोन्मत्त हाथी के समान निर्भयता से अपने सारथीको दुर्योधन के समीप रथ ले चलने की आज्ञा दी। अब राजा युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों आमने-सामने होकर, भारी धनुष लेकर, एक दूसरे पर बाण बरसाने लगे॥८।११॥ हे आर्य ! राजा दुर्योधन ने एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से युधिष्ठिर का धनुष काट डाला। उस अपमान को युधिष्ठिर नहीं सह सके। उनको क्रोध चढ़ आया। लाल नेत्र करके, अन्य धनुष लेकर, उन्होंने भी दुर्योधन के धनुष और ध्वजा को काट डाला। हे राजेन्द्र! आपके पुत्र ने अन्य धनुष लेकर युधिष्ठिर के ऊपर विषैले बाण बरसाना आरम्भ कर दिया॥१२।१५॥ कुपित दो सिंहों के समान, परस्पर जय प्राप्त करने का यत्न कर रहे, दोनों राजा शस्त्रों की वर्षा करने लगे। दोनों महारथी, साँड़ों के समान गरजकर एक दूसरे पर प्रहार करने का अवसर देखते और प्रहार करते हुए

अन्तरं मार्गमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैस्तौ तु कृतव्रणौ ॥ १७ ॥
विरेजतुर्महाराज किंशुकाविव पुष्पितौ ।
ततो राजन्विमुञ्चतौ सिंहनादान्मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
तलयोश्च तथा शब्दान्धनुषश्च महाहवे ।
शङ्खशब्दरवांश्चैव चक्रतुस्तौ नरेश्वरौ ॥ १९ ॥
अन्योन्यं तौ महाराज पीडयाञ्चक्रतुर्भृशम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः ॥ २० ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः ।
प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः ॥ २१ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ॥ २२ ॥
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा ।
तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः ॥ २३ ॥
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध पञ्चभिः ।
निपपात ततः साऽथ स्वर्णदण्डा महास्वना ॥ २४ ॥
निपतन्ती महोल्केव व्यराजच्छिखिसन्निभा ।
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २५ ॥
नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम् ।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ २६ ॥

विचर रहे थे। कानों तक तानकर छोड़े गये बाणों के लगने से दोनों ही घायल हो गये थे, अङ्ग-प्रत्यङ्ग से रक्त निकल रहा था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे दो फूले हुए ढाक के पेड़ खड़े हों। दोनों ही बारम्बार सिंहनाद करते, ताल ठोंकते और धनुष की प्रत्यञ्चा को शब्दित कर रहे थे। शङ्ख बजाकर दोनों महारथी परस्पर प्रहार कर रहे थे॥१५।२०॥राजा युधिष्ठिर ने क्रोध के वश होकर, वज्र के समान वेग से जानेवाले, दुःसह तीन बाण दुर्योधन के वक्षःस्थल में मारे। उन्होंने भी सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण पाँच बाण युधिष्ठिर को मारकर उनके ऊपर एक छुरे के समान तीक्ष्ण लोहे की शक्ति फेंकी। उस शक्ति को बड़ी उल्का के समान वेग से आते देखकर युधिष्ठिर ने तुरन्त तीन तीक्ष्ण बाणों से काट डाला और साथ ही दुर्योधन को पाँच बाण मारे ॥२०।२४॥सुवर्ण की दण्डीसे शोभित वह शक्ति अग्नि-पुञ्ज और उल्का के समान घोर शब्द करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। अपनी शक्ति को व्यर्थ होते देखकर दुर्योधन ने नव भल्ल बाण युधिष्ठिर को मारे। पराक्रमी शत्रुदमन युधिष्ठिर इस प्रकार बली शत्रु के बाणों से अत्यन्त घायल होने पर क्रोधित हो उठे। उन्होंने एक बड़ा विकट बाण धनुष पर चढ़ाकर दुर्योधन को लक्ष्य-कर मारा। उसकी चोट से राजा दुर्योधन मूर्छित हो गये। वह बाण उन्हें घायल करके पृथ्वी में प्रवेश हो गया ॥२४।२९॥क्षणभर में सचेत होकर, इस युद्ध

दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः ।
समाधत्त च तं बाणं धनुर्मध्ये महाबलः ॥ २७ ॥
चिक्षेप च महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी ।
स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम् ॥ २८ ॥
व्यामोहयत राजानं धरणीं च ददार ह ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ॥ २९ ॥
विधित्सुः कलहस्यान्तं धर्मराजमुपाद्रवत् ।
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥ ३० ॥
धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत्तव सूनवे ।
दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३१ ॥
रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्त्वा स्तनान्तरे ।
भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥ ३२ ॥
भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन् ।
नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः स न्यवर्तत ॥ ३३ ॥
ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम् ।
प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे ॥ ३४ ॥
गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम् ।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ॥ ३५ ॥
एवं तदभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ।
अपराह्णे महाराज काङ्क्षतां विजयं युधि ॥ ३६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

को समाप्त करने के विचार से,कुपित दुर्योधन ने भारी गदा उठाई और वेगसे युधिष्ठिर पर प्रहार करना चाहा। दण्डपाणि यमराज के समान दुर्योधन को गदा ताने देखकर धर्मराज ने एक भयावनी शक्ति आपके पुत्र के ऊपर चलाई। जलती हुई उल्का सी, महावेगशालिनी उस शक्ति ने कवच तोड़कर दुर्योधन के वक्षःस्थल पर चोट की। रथ पर स्थित दुर्योधन उस प्रहार से गिरकर मूर्च्छित हो गये॥२९।३२॥तब भीमसेन ने युधिष्ठिर से कहा—हे महाराज! इसकी मृत्यु आपके हाथ से न होनी चाहिए; इसको मारने की प्रतिज्ञा तो मैंने कर रक्खी है। यह सुनकर युधिष्ठिर ने दुर्योधन को मारने का विचार छोड़ दिया। इसी मध्य में कृतवर्माने शीघ्रता से आकर सङ्कट में पड़े हुए आपके पुत्र को सहायता दी। उधर भीमसेन भी सुवर्ण की पट्टियों से शोभित गदा हाथ में लेकर कृतवर्मा की ओर वेग से दौड़े। हे महाराज! विजय चाहनेवाले आपके पक्ष के लोगों ने इस प्रकार तीसरे पहर शत्रुओं से घोर युद्ध किया॥३३।३६॥

कर्णपर्व का उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सञ्जय उवाच—ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः ।
पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥ १ ॥
द्विरदनररथाश्वशङ्खशब्दैः परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः ।
द्विरदरथपदातिसादिसङ्घाः परिकुपिताभिमुखाः प्रजघ्निरे ते॥ २ ॥
शितपरश्वधसासिपट्टिशैरिषुभिरनेकविधैश्च सूदिताः ।
द्विरदरथहया महाहवे वरपुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥ ३ ॥
कमलदिनकरेन्दुसन्निभैः सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः ।
रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही पुरुषशिरोभिरुपस्तृता बभौ ॥ ४ ॥
परिघमुसलशक्तितोमरैर्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्हताः ।
द्विरदनरहयाः सहस्रशो रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥ ५ ॥
प्रहतरथनराश्वकुञ्जरं प्रतिभयदर्शनमुल्वणव्रणम् ।
तदहितहतमावभौ बलं पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥ ६ ॥
अथ तव नरदेव सैनिकास्तव च सुताः सुरसूनुसन्निभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे कुरुवृषभाः शिनिपुत्रमभ्ययुः ॥ ७ ॥
तदतिरुधिरभीममावभौ पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं बलमसुरामरसैन्यसप्रभम् ॥ ८ ॥
सुरपतिसमविक्रमस्ततस्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ९ ॥

तीसवाँ अध्याय ॥ ३० ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! अब आपके पक्ष के योद्धा लोग वीर कर्ण को आगे करके फिर लौटकर, देवासुर-संग्राम के समान, घोर युद्ध करने लगे। हाथियों और घोड़ों के सवार, रथी और पैदल योद्धा आदि सभी सैनिक हाथियों की चिंघार, मनुष्यों के कोलाहल, रथों की घरघराहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, और शङ्खनाद, सिंहनाद आदि से अत्यन्त पुलकित हो उठे। क्रोध से भरे हुए योद्धा लोग विविध शस्त्र चलाकर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। वीर पुरुषों के चलाये हुए धारदार फरसों, खड्गों, पट्टिशों और बहुत प्रकार के बाणों से हाथी, घोड़े और रथी मरने और गिरने लगे। वाहनों पर वाहन और योद्धाओं पर योद्धा चोट करते थे॥१। ३॥चन्द्र, सूर्य या कमल के समान, श्वेत दाँतों से युक्त, सुन्दर नासिका और मुख से सुशोभित, मनोहर नयन, रुचिर किरीट और कुण्डलों से अलंकृत वीरों के सिर पृथ्वी पर बिछ से गये। असंख्य परिघ, मूसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी, गदा आदि शस्त्रों से हाथी घोड़े और मनुष्य इतने मारे गये कि रक्त की नदी बह चली। बहुत से रथी, पैदल, हाथी, घोड़े आदि घायल होकर गिर पड़े। उनके रूप देखने में बहुत ही भयङ्कर जान पड़ते थे। उस समय समरभूमि प्रलयकाल में यमराज का राज्य सी प्रतीत होने लगी॥४।६॥हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् देवकुमार-सदृश आपके पुत्रगण और बहुत सी सेना साथ लिये कौरव पक्ष के और श्रेष्ठ योद्धा लोग सात्यकि पर आक्रमण करने चले। असंख्य हाथियों, रथों, घोड़ों और पैदलों से परिपूर्ण कौरव-सेना आगे

तमपि सरथवाजिसारथिं शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन्
भुजगविषसमप्रभै रणे पुरुषवरं समवास्तृणोत्तदा ॥ १० ॥
शिनिवृषभशरैर्निपीडितं तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११ ॥
तदुदधिनिभमाद्रवद्बलं त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतमुखैस्तदाभवत्पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥ १२ ॥
अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३ ॥
जलदनिनदनिःस्वनं रथं पवनविधूतपताककेतनम् ।
सितहयमुपयान्तमन्तिकं कृतमनसो ददृशुस्तदारयः ॥ १४ ॥
अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः ।
शरसम्बाधमकरोत्खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १५ ॥
रथान्विमानप्रतिमान्मजयन्सायुधध्वजान् ।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥ १६ ॥
गजान्गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान् ।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १७ ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम् ।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन्बाणैरजिह्मगैः ॥ १८ ॥

बढ़ते समय समुद्र के समान भयङ्कर शब्द करती हुई इन्द्रसेना के समान शोभायमान हुई। तब इन्द्र के समान पराक्रमी महारथी कर्ण ने सूर्य-किरण-से चमकीले तीक्ष्ण बाण उपेन्द्र-तुल्य सात्यकि को मारे॥७।९॥ महावीर सात्यकि ने भी तुरन्त रथ-घोड़े-सारथी सहित कर्ण को विषैले सर्प-सदृश विविध बाणों से आच्छादित कर दिया। हे आर्य! आप के पक्ष के महारथियों ने कर्ण को सात्यकि के बाणों से पीड़ित देखकर वेग से अपने-अपने रथ बढ़ाये। वे असंख्य चतुरङ्गिणी सेना लिये हुए कर्ण की सहायता करने को उनके समीप पहुँच गये। अब समुद्र तुल्य कौरव सेना को धृष्टद्युम्न आदि ने मारना आरम्भ किया। उस समय मनुष्य, रथ, हाथी और घोड़े असंख्य मारे गये॥१०।१२॥ इधर इसी समय श्रीकृष्ण और अर्जुन भी सन्ध्या आदि करके, भगवान् शङ्कर की यथाविधि पूजा करने के उपरान्त, शत्रुवध का निश्चय करके आपकी सेना के सम्मुख आये। वायु में फहरा रही पताका और श्रेष्ठ श्वेत घोड़ों से शोभित अर्जुन के, मेघ के समान शब्द करनेवाले, रथ को सम्मुख देखकर कौरवगण विस्मित, भीत और मोहित से हो गये। गाण्डीव धनुष को मण्डलाकार घुमाते हुए महावीर अर्जुन रथ पर नृत्य सा कर रहे थे। उनके बाण क्या आकाश और क्या दिशाओं-उपदिशाओं में, सर्वत्र फैल गये॥१३।१५॥ वायु जैसे मेघों के टुकड़े कर डाले, वैसे ही विमान-से सुसज्जित - आयुध, ध्वजा और सारथी सहित— बड़े बड़े रथों के अर्जुन ने बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥१६॥ पश्चात् महावीर अर्जुन बाणवर्षा करके ध्वजा-वैजयन्ती-शस्त्र आदि से शोभित हाथियों, उनके सवारों, घोड़ों, और पैदलों को मार मार कर गिराने लगे। काल के समान क्रुद्ध, अनिवार्य, महारथी अर्जुन से

तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान्केतुं च सायकैः ।
हत्वा सप्तभिरेकेन च्छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥ १९ ॥
नवमं च समाधाय व्यसृजत्प्राणघातिनम् ।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत् ॥ २० ॥
ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः ।
कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २१ ॥
हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं चाश्वांस्तदावधीत् ।
दुःशासनस्येष्वसनं छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥ २२ ॥
अथ सात्यकिमुत्सृज्य त्वरन्कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः ।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या कृष्णं पार्थं पुनः पुनः ॥ २३ ॥
न ग्लानिरासीत्कर्णस्य क्षिपतः सायकान्बहून् ।
रणे विनिघ्नतः शत्रून्क्रुद्धस्येव शतक्रतोः ॥ २४
अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥ २५ ॥
ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन् ।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २६ ॥
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च ।
चेदिकारूषमत्स्यानां केकयानां च यद्बलम् ॥ २७ ॥
चेकितानश्च बलवान्धर्मराजश्च सुव्रतः ।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः ॥ २८ ॥

युद्ध करने के निमित्त अकेले दुर्योधन ही बाण बरसाते हुए चले॥१६।१८॥महाधन्वी अर्जुन ने दुर्योधन को सम्मुख आते देखकर सात बाणों से उनके धनुष, घोड़े, ध्वजा और सारथी को नष्ट करके एक बाण से छत्र के दो टुकड़े कर डाले। फिर दुर्योधन को लक्ष्य कर और एक प्राण हरनेवाला बाण छोड़ा; किन्तु महावीर अश्वत्थामा ने उस बाण को सात स्थान से काट डाला। अर्जुन ने बाणों की वर्षा करके अश्वत्थामा का धनुष काट डाला और चारों घोड़े मार डाले। फिर कृपाचार्य के धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥१९।२१॥इसके पश्चात् कृतवर्मा का धनुष और ध्वजा काटकर घोड़े मार डाले। दुःशासन का भी धनुष काटकर वे कर्ण के सम्मुख चले। महावीर कर्ण, सात्यकि को छोड़कर, अर्जुन के सम्मुख आये। उन्होंने शीघ्रता से तीन बाण अर्जुन को और बीस बाण श्रीकृष्ण को मारे। इसके पश्चात् निरन्तर बाण बरसाकर वे अर्जुन को घायल करने लगे। कुपित इन्द्र के समान असंख्य बाण बरसाने और शत्रुओं का संहार करने पर भी कर्ण तनिक भी विश्रान्त नहीं हुए॥२२।२४॥इसी समय सात्यकि ने कर्ण के सम्मुख आकर पहले निन्यानबे और फिर तीक्ष्ण सौ बाण उनको मारे। उस समय युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्र, प्रभद्रकगण, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, चेकितान, बलवान् धर्मराज और चेदि,

परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः ॥ २९ ॥
तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः ।
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भंक्त्वेव मारुतः ॥ ३० ॥
रथिनः समहामात्रान्गजानश्वान्ससादिनः ।
पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन्कर्णो व्यदृश्यत ॥ ३१ ॥
तद्वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा ।
विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत्पराङ्मुखम् ॥ ३२ ॥
अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन् ।
दिशः खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः ॥ ३३ ॥
मुसलानीव सम्पेतुः परिघा इव चेषवः ।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे ॥ ३४ ॥
तैर्वध्यमानं तत्सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम् ।
निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च ॥ ३५ ॥
निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः ।
हन्यमानाः शरैरार्त्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥ ३६ ॥
त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम् ।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥ ३७ ॥

करूष, मत्स्य, कैकेय आदि के राजा और उनकी सम्पूर्ण सेना, ये सब मिलकर कर्ण को पीड़ित करने लगे॥२५।२७॥इस प्रकार पाण्डव दल की सम्पूर्ण सेना और सब योद्धा रण में कर्ण को रथों, हाथियों, घोड़ों और उग्र पराक्रमी पैदलों के द्वारा चारों ओर से घेरकर उनपर शस्त्रों की और रूक्ष उग्र वचनों की वर्षा करने लगे॥२८।२९॥महारथी कर्ण ने अस्त्र बल से और तीक्ष्ण बाणों से उनके सब शस्त्रों को वैसे ही काट डाला जैसे आँधी वृक्षों को तोड़ डालती है। कर्ण ने अपने को मार डालने का यत्न कर रहे शत्रुओं के दाँत खट्टे कर दिये। रथी वीरों को, योद्धाओं सहित बड़े-बड़े हाथियों को, सवारों सहित घोड़ों को और पैदलों को बाणों से मार रहे कुपित कर्ण युद्धभूमि में बहुत ही सुन्दर देख पड़ते थे। पाण्डव पक्ष के प्राय सभी लोग कर्ण के अस्त्र के तेज से पीड़ित, शस्त्रहीन और कवच रहित हो होकर भागने लगे। तब मुसकाते हुए अर्जुन ने अस्त्र के द्वारा कर्ण के अस्त्र को नष्ट कर दिया। वे सब दिशाओं सहित आकाश और पृथ्वी को अपने बाणों से व्याप्त करने लगे। अर्जुन के बाण, मूसल, बेलन, शतघ्नी और उग्र वज्र के समान सब ओर गिरकर कौरव सेना को नष्ट करने लगे॥३०।३४॥उन बाणों की मार से व्याकुल पैदल, हाथी, घोड़े, रथी आदि भाग भी नहीं सकते थे। वे नेत्र बन्द किये हुए इधर-उधर भटकते और चिल्लाते थे। अर्जुन के बाणों की चोट से मनुष्य,हाथी और घोड़े मर रहे थे। इससे व्याकुल होकर वह चतुरङ्गिणी सेना भाग खड़ी हुई।हे महाराज! जय की अभिलाषा से भिड़कर लड़ते-लड़ते आपके

तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः ।
न किञ्चित्प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वा शुभम् ॥ ३८ ॥
ते त्रस्यन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत ।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥ ३९ ॥
कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन्दिनक्षये ।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिविरं ययुः ॥ ४० ॥
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः ।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥ ४१ ॥
कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एत ते ।
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रयुञ्जन्त नरेश्वराः ॥ ४२ ॥
ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः ।
निशायां शिविरं गत्वा न्यवसन्त नरेश्वराः ॥ ४३ ॥
ततो रक्षःपिशाचाश्च श्वापदाश्चैव सङ्घशः ।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभम् ॥ ४४ ॥

इति श्री महभारते कर्णपर्वणि प्रथमे युद्धदिवसे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

पक्ष के लोगों ने देखा कि सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँच गये। उस समय धूलि तथा अन्धकार की अधिकता से हम लोगों को शुभ या अशुभ कुछ भी नहीं देख पड़ता था। कौरव पक्ष के महारथी योद्धा लोग रात्रि-युद्ध से बहुत भयभीत हुए थे, अतः इस भय से कि कहीं आज फिर रात्रि-युद्ध न हो, वे लोग अपनी-अपनी सेना लेकर रणभूमि से हट गये॥३५।३९॥ सन्ध्या के समय कौरवों के हट जाने पर पाण्डव लोग विजय-लक्ष्मी प्राप्त कर सिंहनाद करने लगे। पाण्डव पक्ष के लोग बाजों को बजाते, शत्रुओं को हँसते, श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करते, अपने शिविर को लौट गये॥४०।४२॥ हे महाराज! इस प्रकार युद्ध समाप्त होने पर पाण्डवगण और उनके साथी राजा लोग रात्रि को प्रसन्नता-पूर्वक अपने डेरों में जाकर विश्राम करने लगे। उधर रात्रि का समय पाकर राक्षस, पिशाच और मांसाहारी जीवों के समूह के समूह उस घोर रणभूमि में पहुँचे, जो कि श्मशान सी शून्य हो रही थी॥४३।४४॥

कर्ण पर्व का तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३० ॥

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—स्वेन च्छन्देन नः सर्वानवधीद्व्यक्तमर्जुनः ।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ॥ १ ॥
पार्थश्चैकोऽहरद्भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत् ।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे वलिभृतो नृपान् ॥ २ ॥

इकतीसवाँ अध्याय ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! यह स्पष्ट है कि अर्जुन ने मेरे पक्ष के सब लोगों को अपनी शक्ति भर मारा, उन्हें कोई रोक नहीं सका। मुझे निश्चय हो गया है कि शस्त्र हाथ में लिये अर्जुन के सम्मुख

तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः ।
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥
दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम् ।
पराक्रान्तान्पाण्डुसुतान्दृष्ट्वा चापि महारथः ॥ २१ ॥
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सपुत्रान्सहकेशवान् ॥ २२ ॥
अहो बत महद्दुःखं यत्र पाण्डुसुतान्रणे ।
नातरद्रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम् ॥ २३ ॥
अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा सम्प्रति वर्तते ।
अहो तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ २४ ॥
सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि सञ्जय ।
सौवलं च तदा तात नीतिमानिति मन्यते ॥ २५ ॥
कर्णश्च रभसो नित्यं राजा तं चाप्यनुव्रतः ।
यदेवं वर्तमानेषु महायुद्धेषु सञ्जय ॥ २६ ॥
अश्रौषं निहतान्पुत्रान्नित्यमेव विनिर्जितान् ।
न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः ॥ २७ ॥
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते दैवं तु बलवत्तरम् ।
सञ्जय उवाच—राजन्पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय ॥ २८ ॥
अतिक्रान्तं हि यत्कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः ।
तच्चास्य न भवेत्कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥ २९ ॥

बाहुबल युद्ध में इन्द्र और विष्णु के समान हो जाता है। कर्ण के शस्त्र घोर और श्रेष्ठ हैं, वे पराक्रमी भी अद्वितीय हैं। उनका आश्रय पाकर ही राजा दुर्योधन ने पाण्डवों से युद्ध करने का साहस किया है। महारथी कर्ण पहले दिन दुर्योधन को पाण्डवों के पराक्रम से अत्यन्त पीड़ित और पाण्डवों को अत्यन्त प्रबल होकर पराक्रम प्रकट करते देखकर युद्ध में प्रवृत्त हुए थे॥१९। २१॥हे सूत! मन्दमति दुर्योधन कर्ण के आश्रय से युद्ध में श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों और उनके पुत्रों को जीतने का उत्साह बारम्बार प्रकट करता था। किन्तु हाय! कैसे दुःख की बात है कि महारथी अद्वितीय वीर कर्ण युद्ध में पाण्डवों को नहीं जीत सके! अवश्य ही इसका कारण दैव का प्रतिकूल होना है। अहो! उस कपटद्यूत का ही यह घोर परिणाम है॥२२।२४॥हे सञ्जय! इसमें सन्देह नहीं कि मैं दुर्योधन की दुर्बुद्धि के कारण जीवन भर काँटे के समान, खटकनेवाले अनेक तीव्र दुःख सहूँगा। दुर्योधन उस समय कर्ण और शकुनि के ही कहे में था, और कर्ण तथा शकुनि को सब से बढ़कर पराक्रमी एवं नीतिज्ञ समझता था। इस समय उसकी मूर्खता कहो या दैव की प्रतिकूलता, जिसके कारण मैं प्रतिदिन सुनता हूँ कि मेरे ही पुत्र मारे जाते हैं, मेरे ही पुत्र हारते हैं। पाण्डवों में से किसी का मरना नहीं सुन पड़ता। स्त्रियों के समूह के समान मेरी सेना में प्रवेश होकर पाण्डव लोग बड़े-बड़े

तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता ।
न कृतं यत्त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥ ३० ॥
उक्तोऽसि बहुधा राजन्मा युध्यस्वेति पाण्डवैः ।
गृह्णीषे न च तन्मोहाद्वचनं च विशाम्पते ॥ ३१ ॥
त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पाण्डुषु ।
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥ ३२ ॥
तत्त्विदानीमतिक्रान्तं मा शुचो भरतर्षभ ।
शृणु सर्वं यथा वृत्तं घोरं वैशसमुच्यते ॥ ३३ ॥
प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात् ।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥
कर्ण उवाच—अद्य राजन्समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना ।
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ ३५ ॥
बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत ।
नाभूत्समागमो राजन्मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३६ ॥
इदं तु मे यथाप्रज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते ।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ३७ ॥
हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन्मयि चावस्थिते युधि ।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम् ॥ ३८ ॥

शूर-वीरों को मार डालते हैं । इसी से कहना पड़ता है कि दैव बड़ा बली है॥२४।२८॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र!पहले की द्यूतक्रीडा आदि का विचार कीजिए, जिन्हें उस समय आप धर्म समझ रहे थे और जिनका फल यह सत्यानाश है । सत्य तो यह है कि बीती हुई बात को पीछे से सोचना ही व्यर्थ है; क्योंकि जो हो चुका वह मिट नहीं सकता, उलटे चिन्ता करने से मनुष्य की बुद्धि और शक्ति नष्ट होती है । उचित-अनुचित का विचार आपको पहले ही कर लेना था, सो आपने नहीं किया । आप समझते सब थे । अब तो जो हो गया उसे आप परिवर्तन नहीं कर सकते; उसका फल भोगना ही पड़ेगा । मैंने [illegible] कई बार आप से कहा था कि पाण्डवों से मत युद्ध कीजिए; किन्तु पाण्डवों पर द्वेष-बुद्धि रखने के कारण आपने मेरी बात नहीं मानी॥२८।३१॥हे महाराज! आपने पाण्डवों के साथ पापपूर्ण व्यवहार किये हैं और आपके ही कारण इस समय क्षत्रियों का नाश और सत्यानाश हो रहा है । हे भरतश्रेष्ठ! इसलिए जो बीत गया उसके निमित्त शोक न कीजिए । मैं युद्ध का वर्णन करता हूँ, सुनिए॥३२।३३॥प्रातःकाल होने पर महारथी कर्ण ने राजा दुर्योधन से मिलकर कहा—हे राजन्! आज मैं यशस्वी अर्जुन से युद्ध करूँगा । आज या तो मैं अर्जुन को मारूँगा और या वे मुझे मारेंगे । अर्जुन को और मुझे बहुत से कार्य थे, इसी कारण आज तक हम दोनों का सामना नहीं हुआ । मैं अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ आप से कहता हूँ, उसे सुनिए । हे भारत! आज मैं समर में अर्जुन को मारे बिना नहीं लौटूँगा॥३४।३७॥हमारे मुख्य और श्रेष्ठ वीर मारे जा चुके हैं और मेरे समीप भी अब इन्द्र की दी हुई शक्ति नहीं रही है।मैं ही सेनापति

ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर ।
आयुधानां च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च ॥ ३९ ॥
कार्यस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने ।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४० ॥
प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत ।
निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४१ ॥
सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः ।
इन्द्रार्थं प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥
येन दैत्यगणान्राजञ्जितवान्वै शतक्रतुः ।
यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश ॥ ४३ ॥
तद्भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसम्मतम् ।
तद्दिव्यं भार्गवो मह्यमददद्धनुरुत्तमम् ॥ ४४ ॥
तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम् ।
यथेन्द्रः समरे सर्वान्दैतेयान्वै समागतान् ॥ ४५ ॥
धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात्तद्विशिष्यते ।
त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता ॥ ४६ ॥
धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः ।
तद्रामो ह्यददन्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥
अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम् ।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम् ॥ ४८ ॥

हूँ। आज अवश्य अर्जुन मुझ से युद्ध करने आवेंगे। अब मैं आपके निमित्त श्रेय देनेवाला गुप्त विषय कहता हूँ, सुनिए। हम दोनों के—अर्जुन के और मेरे—शस्त्र दिव्य हैं और पराक्रम भी समान है। किन्तु शत्रु का उपाय नष्ट करने में, स्फूर्ति में, दूर तक लक्ष्य मारने में, कौशल में और अस्त्र के प्रयोग में अर्जुन मेरे समान नहीं हैं। शारीरिक और मानसिक बल में, अस्त्र-शिक्षा में, पराक्रम में और लक्ष्य स्थिर करने में अर्जुन मेरे समान नहीं है॥३८।४१॥ हे महाराज! मेरा यह विजय नाम का धनुष साधारण नहीं है, जिसे लेकर मैं अर्जुन से युद्ध करूँगा। इन्द्र का प्रिय करने के निमित्त इस धनुष को विश्वकर्मा ने बनाया था। इसी धनुष से इन्द्र ने दैत्यों को मारा था और इसके शब्द से दैत्य ऐसे मोहित हुए थे कि उन्हें दिशाओं का भ्रम होगया था। यह श्रेष्ठ धनुष इन्द्र ने परशुराम को दिया और उन से मैंने प्राप्त किया॥४२।४४॥ इन्द्र ने जैसे एकत्र हुए सब दानवों से युद्ध किया था वैसे ही मैं यह धनुष लेकर, विजय प्राप्त करनेवालों में श्रेष्ठ, अर्जुन से युद्ध करूँगा। यह मेरा घोर धनुष अर्जुन के गाण्डीव से भी श्रेष्ठ है। परशुराम ने इसी धनुष से इक्कीस बार पृथ्वी भर के क्षत्रियों को परास्त किया था। परशुराम ने इस धनुष के दिव्य कार्यों का वर्णन किया था॥४५।४७॥ हे दुर्योधन! आज समर में वीरश्रेष्ठ अर्जुन को मारकर

सपर्वतवनद्वीपा हतवीरा ससागरा ।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव ॥ ४९ ॥
नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः ।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा ॥ ५० ॥
नहि मां समरे सोढुं संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा ।
अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात् ॥ ५१ ॥
ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्ये महेषुधी ।
सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते ॥ ५२ ॥
तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि ।
विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम् ॥ ५३ ॥
तत्राहमधिकः पार्थाद्धनुषा तेन पार्थिव ।
येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे ॥ ५४ ॥
रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः ।
अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः ॥ ५५ ॥
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः ।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान्वानरो विस्मयङ्करः ॥ ५६ ॥
कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति ।
एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम् ॥ ५७ ॥

मैं तुमको और तुम्हारे बन्धुओं को प्रसन्न करूँगा। आज यह सारी पृथ्वी, तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी वीर से शून्य होकर, तुम्हारी हो जायगी और तुम्हारे पुत्र-पौत्रादिक निष्कण्टक राज्य करेंगे। जिस प्रकार जितेन्द्रिय और धर्म में अनुरक्त पुरुष के निमित्त सिद्धि (मोक्ष) अशक्य नहीं होती उसी प्रकार आज मैं तुम्हारे हित के निमित्त विशेष रूप से सब कुछ कर सकता हूँ॥४८।५०॥अग्नि के तेज को वृक्ष जैसे नहीं सह सकता वैसे ही आज अर्जुन मेरे पराक्रम को नहीं सह सकेंगे। हे राजन्! अब मुझे वह बात भी अवश्य तुमसे कह देनी चाहिए, जिसमें कि मैं अर्जुन से न्यून हूँ। अर्जुन के धनुष की प्रत्यञ्चा दिव्य है और तरकस भी अक्षय हैं। विशेषकर उनके सारथी श्रीकृष्ण हैं। मेरा सारथी वैसा नहीं है। युद्ध में अजेय 'गाण्डीव' धनुष अर्जुन के समीप है और मेरे समीप भी दिव्य महान् 'विजय' धनुष है जो कि अर्जुन के धनुष से भी श्रेष्ठ है। अपने उक्त धनुष के बल से मैं अर्जुन से अधिक हूँ॥५१।५४॥परन्तु सब लोग जिनको सिर झुकाते हैं उन श्रीकृष्ण के सारथी होने के कारण इस विषय में अर्जुन मुझसे श्रेष्ठ हैं। यही नहीं, अर्जुन के समीप अग्निदेव का दिया हुआ सुवर्ण-भूषित ऐसा दिव्य रथ है जो शस्त्र-प्रहार से काटा नहीं जा सकता। हे वीर! उनके घोड़े भी बड़े शीघ्रगति से युक्त हैं। उनकी ध्वजा दिव्य और प्रकाशयुक्त है। उस ध्वजा में भयङ्कर वानर स्थित है। इसके अतिरिक्त जगत् की सृष्टि करनेवाले कृष्णचन्द्र स्वयं उनके रथ की रक्षा करते हैं। मैं इन्हीं तीन बातों में अर्जुन से हीन

अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः ।
सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत् ॥ ५८ ॥
तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः ।
नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे ॥ ५९ ॥
रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः ।
आयान्तु पश्चात्सततं मामेव भरतर्षभ ॥ ६० ॥
एवमभ्यधिकः पार्थाद्भविष्यामि गुणैरहम् ।
शल्योऽप्यभ्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम् ॥ ६१ ॥
यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा ।
तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः ॥ ६२ ॥
बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन ।
तथास्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः ॥ ६३ ॥
तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन ।
सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद्भविष्यति रथो मम ॥ ६४ ॥
एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात् ।
भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥ ६५ ॥
समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः ।
एतत्कृतं महाराज त्वयेच्छामि परन्तप ॥ ६६ ॥
क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम् ।
एवं कृते कृतं सह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ६७ ॥

हूँ। मेरा धनुष ही श्रेष्ठ है। इस पर भी मैं अर्जुन से युद्ध करने को प्रस्तुत हूँ॥५५।५७॥ हे राजन्! तुम्हारे पक्ष में ये जो पुरुषश्रेष्ठ शल्य हैं वे यदि मेरे सारथी बन जायँ तो तुम्हारी विजय निश्चित है। ये शल्य श्रीकृष्ण के समान वीर और घोड़े हाँकने की कला में निपुण हैं। मैं चाहता हूँ कि शल्य मेरे सारथी हों। गृद्धपक्ष-शोभित नाराच बाणों के छकड़े बराबर मेरे पीछे चलें और प्रधान-प्रधान धनुर्द्धर वीर भी, श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथों पर बैठकर, मेरे साथ ही रहें। ऐसा होने पर मैं गुण, सामान और सारथी, सब बातों में अर्जुन से बढ़कर हो जाऊँगा। महावीर शल्य श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ सारथी हैं और मैं अर्जुन से श्रेष्ठ रथी हूँ॥५८।६१॥ शत्रुदमन श्रीकृष्ण जैसे अश्वविज्ञान के ज्ञाता हैं वैसे ही महारथी शल्य भी अश्वविज्ञान में निपुण हैं। बाहुबल में कोई मद्रराज शल्य के समान नहीं है; वैसे ही कोई धनुर्द्धर अस्त्र-विद्या में मेरी समता नहीं कर सकता। यदि शल्य मेरा रथ हाँकना स्वीकार कर लें तो फिर मैं रथ पर बैठकर युद्ध में अवश्य अर्जुन को परास्त कर दूँगा, क्योंकि मैं स्वयं गुण में अर्जुन से श्रेष्ठ हूँ॥६२।६५॥ हे महाराज! मेरी यह इच्छा है और यह इच्छापूर्ण होने पर इन्द्र सहित सब देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे। इसका शीघ्र प्रबन्ध कीजिए। इतना कर देने से ही मानो आप सब कर चुके। फिर मैं युद्ध में जो कुछ करूँगा सो

ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत्करिष्यामि भारत ।
सर्वथा पाण्डवान्सङ्ख्ये विजेष्ये वै समागतान् ॥ ६८ ॥
न हि मे समरे शक्ताः समुद्यातुं सुरासुराः ।
किमु पाण्डुसुता राजन्रणे मानुषयोनयः ॥ ६९ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना ।
सम्पूज्य सम्प्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥ ७० ॥
दुर्योधन उवाच—एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे ।
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥ ७१ ॥
नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते ।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥ ७२ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान् ।
अभिगम्याब्रवीद्राजा मद्रराजमिदं वचः ॥ ७३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

तब आप देखेंगे ही। सम्मुख आये हुए सब पाण्डवों को मैं जीत ही लूँगा। उस समय मनुष्य-योनि पाण्डव तो कोई वस्तु ही नहीं, समरभूमि में सब देवता और दानव मिलकर भी मुझसे युद्ध नहीं कर सकेंगे॥६८। ६९॥सञ्जय कहते हैं कि वीर कर्ण के यों कहने पर दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कर्ण की प्रशंसा करके कहा—हे कर्ण! तुम जो चाहते हो वही मैं करूँगा। उत्तम घोड़ों से युक्त, बाण भरे तरकसों से परिपूर्ण, छकड़े तुम्हारे पीछे चलेंगे, जिनमें गृद्धपक्ष-युक्त नाराच आदि बाण रक्खे होंगे। श्रेष्ठ योद्धा लोग भी सहायता करने के निमित्त तुम्हारे साथ ही रहेंगे। मैं, मेरे भाई,सब राजा लोग तुम्हारे साथ रहेंगे। हे महाराज! आपके प्रतापी पुत्र दुर्योधन,कर्ण से यों कहकर,मद्रराज शल्य के समीप गये और उनसे यों कहने लगे॥७०।७३॥

कर्ण पर्व का इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

सञ्जय उवाच—पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम् ।
विनयेनोपसङ्गम्य प्रणयाद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन ।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयङ्कर ॥ २ ॥
श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर ।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरये स्वयम् ॥ ३ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय ॥ ३२ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! आपके पुत्र दुर्योधन ने मद्रराज शल्य के समीप जाकर वही किया जो कर्ण ने कहा था। दुर्योधन ने महारथी शल्य को पहले प्रणाम किया, फिर विनयपूर्वक स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—हे सज्जन! हे महाभाग! हे मद्रराज! आप शत्रुओं के सन्ताप को बढ़ानेवाले, शत्रुसेना के

तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह ।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥ ४ ॥
तस्मात्पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि ।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात्कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते ।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते ॥ ६ ॥
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि ।
स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥ ७ ॥
यथा च सर्वथापत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ ८ ॥
भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान्भोजश्च वीर्यवान् ।
शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ॥ ९ ॥
एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते ।
न च भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १० ॥
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शत्रवः ।
वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ छलेन निहतौ युधि ॥ ११ ॥
कृत्वा न सुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ ।
तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥ १२ ॥
अस्मदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे ।
त्यक्त्वा प्राणान्यथाशक्ति चेष्टां कृत्वा च पुष्कलाम् ॥ १३ ॥

निमित्त भयङ्कर और रण में शूर सुने जाते हैं। बोलनेवालों में श्रेष्ठ हे महाराज ! आपने कर्ण की बातें सुनी ही हैं। उनका कहना है कि सब राजाओं के मध्य में स्वयं आपसे प्रार्थना करूँ। हे अप्रतिम पराक्रमी ! हे शत्रुपक्ष का नाश करनेवाले मद्रराज! मैं सिर झुकाकर विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ॥१।४॥कि आप अर्जुन के मारने और मेरे हित के निमित्त सब प्रकार कर्ण की रक्षा करें; जैसे कि ब्रह्मा ने सारथी होकर शङ्कर की सहायता की थी।हे सुव्रत! आप स्नेहवश कर्ण के रथ पर सारथी होकर विराजिए। हे श्रेष्ठ महारथी! आपको सारथी के रूप में प्राप्त कर कर्ण अवश्य मेरे शत्रुओं को जीत लेंगे। हे महाभाग ! आप श्रीकृष्ण के समान रथी और सारथी हैं। आपके अतिरिक्त और कोई कर्ण का सारथी नहीं हो सकता। जैसे सब आपत्तियों के समय श्रीकृष्ण अर्जुन की रक्षा करते हैं, वैसे ही आज आप युद्ध में कर्ण की रक्षा और सहायता कीजिए॥५।८॥भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, आप, कृतवर्मा, शकुनि, अश्वत्थामा और मैं, ये ही नव महारथी हमारी सेना के रक्षक और बल थे। युद्ध में इस प्रकार नव भागों की कल्पना हुई थी। उनमें महात्मा भीष्म और द्रोण अब नहीं रहे, इसलिये उनका भाग भी नहीं है। और, वे दोनों भाग्यवान् वास्तव में अपने भाग से अधिक शत्रुओं को मारकर दुष्कर कर्म करके मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। वे दोनों

तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप ।
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम् ॥ १४ ॥
बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः ।
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत्कुरु पार्थिव ॥ १५ ॥
हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो ।
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥ १६ ॥
भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः ।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे ॥ १७ ॥
तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप ।
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ॥ १८ ॥
पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव ॥ १९ ॥
तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव ।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत् ॥ २० ॥
पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून् ।
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥ २१ ॥
कृष्णेन सहितः पार्थो धार्त्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन्दृश्यते युधि ॥ २२ ॥

युद्ध भी थे और शत्रुओं ने उन्हें कपट से मारा भी। इस प्रकार कठिन कर्म करके वे दोनों महात्मा स्वर्गगामी हुए। शत्रुओं ने हमारे भी अनेक वीरों को मारा है। मेरी ओर के बहुतेरे योद्धा, यथाशक्ति विजय प्राप्त करने की सारी चेष्टा करके, शत्रुओं के हाथ से मर कर स्वर्ग सिधारे हैं। हे नरेश! इस समय मेरी सेना थोड़ी रह गई है और चुने हुए वीर बहुत से मारे जा चुके हैं॥९।१४॥पहले ही थोड़े शत्रुओं ने जब अधिकांश वीरों को मारने में सफलता पाई, तब अब तो वे सुगमता से ही सबको नष्ट कर सकते हैं। हे महाराज! कुन्ती के पुत्र बली, महात्मा और सत्यविक्रमी हैं। अब ऐसा कीजिए, जिसमें वे मेरी शेष सेना को न मार सकें। हे मद्रेश्वर! महाबाहु कर्ण और आप, दोनों ही अलौकिक पुरुष, महारथी और मेरे हित-चिन्तक हैं। आज महावीर कर्ण अर्जुन से युद्ध का निर्णय करना चाहते हैं॥१४।१७॥उन्हीं से हमारी विजय की आशा भी प्रबल है। किन्तु कर्ण के रथ के घोड़ों की रास पकड़नेवाला पृथ्वी पर आपके समान योग्य अन्य कोई नहीं है। इसलिए महात्मा श्रीकृष्ण जैसे अर्जुन का रथ हाँकते हैं वैसे ही प्रेम-भाव से आप भी कर्ण के घोड़ों की रास पकड़िए। महावीर अर्जुन, श्रीकृष्ण की सहायता से सुरक्षित रहकर, जिन अद्भुत कार्यों को करते हैं उन्हें आप देख ही रहे हैं॥१८।२०॥अर्जुन पहले अन्य शत्रुओं से युद्ध करते समय इस प्रकार चमत्कार नहीं कर सके. इस समय केवल श्रीकृष्ण की सहायता के बल से वे अधिकतर पराक्रम करके नित्य कौरवसेना को मार भगाते हैं। हे मद्रेश्वर! [पाण्डवों के पास थोड़ी

भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते ।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥ २३ ॥
अरुणेन यथा सार्द्धं तमः सूर्यो व्यपोहति ।
तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥ २४ ॥
उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ ।
कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥ २५ ॥
सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाः ससृञ्जयाः ॥ २६ ॥
रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् ।
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥ २७ ॥
यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा भवान्परित्रातु कर्णं वैकर्त्तनं रणे ॥ २८ ॥
त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति ।
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते ।
किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशङ्कीर्वचो मम ॥ २९ ॥
सञ्जय उवाच—दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन्हस्तौ पुनः पुनः ॥ ३० ॥
क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः ।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३१ ॥
शल्य उवाच—अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशङ्कसे ।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ ३२ ॥

ही सेना रह गई है,] आपके और कर्ण के भाग की जो शत्रुसेना रह गई है उसे आप लोग नष्ट कीजिए। सूर्यदेव जैसे अरुण के साथ उदय होकर अँधेरे को नष्ट करते हैं वैसे ही आप भी कर्ण का साथ देकर अर्जुन को यमपुर भेजिए॥२१२४॥पाण्डव पक्ष के महारथी लोग दो बाल-सूर्यों के समान उदय हुए कर्ण और आपके तेज को देखकर भाग खड़े हों। अँधेरा जैसे अरुण और सूर्य को देखते ही दूर हो जाता है वैसे ही पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जयगण आप दोनों को देखते ही नष्ट हो जायँगे। महावीर कर्ण श्रेष्ठ रथी हैं और आप भी श्रेष्ठ सारथी हैं॥२५।२७॥इस-लिए श्रीकृष्ण जैसे सदा सब अवस्थाओं में अर्जुन की रक्षा करते हैं,वैसे ही आप सदा कर्ण की रक्षा करते रहें,समयोचित सम्मति देते रहें, कर्तव्य बतलाते रहें। मुझे विश्वास है कि आप यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे तो साधारण मनुष्य पाण्डव क्या चीज़ हैं, वीर कर्ण इन्द्र सहित देवताओं को भी परास्त कर सकेंगे॥२८।२९॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! कुल, ऐश्वर्य, शास्त्रज्ञान और बल का गर्व रखनेवाले मानी मद्रराज शल्य, दुर्योधन के वाक्य सुनकर, कुपित हो उठे। उनके मस्तक में बल पड़ गये। वे त्योरी तानकर बारम्बार क्रोध से लाल नेत्र इधर-उधर डालते

अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि ।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥ ३३ ॥
आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥ ३४ ॥
अथवाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन ।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥ ३५ ॥
यथाभिमानं कौरव्य निधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्त्तेत मा मां त्वमभिशङ्कियाः ॥ ३६ ॥
युधि वाऽप्यवमानो मे न कर्त्तव्यः कथञ्चन ।
पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननोपमौ ॥ ३७ ॥
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान् ।
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥ ३८ ॥
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम् ।
दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान् ॥ ३९ ॥
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ।
तं मामेवंविधं राजन्समर्थमरिनिग्रहे ॥ ४० ॥
कस्माद्युनक्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे ।
न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ४१ ॥

और हाथ कँपाते हुए कहने लगे—हे दुर्योधन! तुम निर्भय होकर मुझसे कर्ण का सारथी बनने का अनुरोध करके मेरा अपमान कर रहे हो। तुम कर्ण को मुझ से अधिक बली समझकर उसकी प्रशंसा करते हो; किन्तु मैं तो उसे अपने समान भी नहीं गिनता॥३०।३३॥ हे राजन्! सेना को मारने में मेरा जितना भाग लगाया गया हो, उससे अधिक सेना मेरे निमित्त छोड़ दो। मैं सहज ही उतनी सेना को मारकर अपने राज्य को चला जाऊँ। अथवा मैं अकेला ही युद्ध करके समस्त सेना मारे डालता हूँ, तुम आज्ञा दे दो। तुम अभी मेरी भुजाओं का बल देख लो। हे राजन्! तुम विश्वास रक्खो, मुझ सा आत्माभिमानी पुरुष कोई अनुचित कार्य नहीं कर सकता। मेरी ओर से तुम शङ्का न करो॥३४। ३६॥ इसलिये युद्धसभा में तुम मुझे अपमानित करने की चेष्टा मत करो। हे दुर्योधन! मेरी ये मोटी वज्र सी दृढ़ भुजाएँ, विचित्र धनुष, विषैले साँप-से भयङ्कर बाण, वायु के वेग से जानेवाले घोड़ोंवाला सजा हुआ रथ और सुवर्ण-पट्ट-विभूषित गदा देखो। हे राजन्! मैं चाहूँ तो अपने तेज से पृथ्वीतल को फाड़ सकता हूँ, पर्वतों को गिरा सकता हूँ॥३७।३९॥ और सागरों को सुखा सकता हूँ। हे राजन्! तुम मुझको इस प्रकार का महापराक्रमी और शत्रुसंहार के निमित्त सर्वथा समर्थ जानकर भी, मगर मेरी अपेक्षा हीन-वीर्य और नीच कुल में उत्पन्न, कर्ण का सारथी बनने के निमित्त मुझसे अनुरोध कर रहे हो। मुझे इस प्रकार के नीच कार्य में लगाना कदापि तुम्हें उचित नहीं। मैं श्रेष्ठ होकर कभी नीच व्यक्ति का आज्ञा-पालन करने को तत्पर नहीं हो सकता। प्रीतिपूर्वक आये हुए शरणागत

नहि पापीयसः श्रेयान्भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे ।
यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम् ॥ ४२ ॥
वशे पापीयसो धत्ते तत्पापमधरोत्तरम् ।
ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात्क्षत्रं च बाहुतः ॥ ४३ ॥
ऊरुभ्यामसृजद्वैश्याञ्शूद्रान्पद्भ्यामिति श्रुतिः ।
तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ४४ ॥
अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत ।
गोप्तारः संग्रहीतारो दातारः क्षत्रियाः स्मृताः ॥ ४५ ॥
याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः ।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्राह्मणा भुवि ॥ ४६ ॥
कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥ ४७ ॥
ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः ।
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥ ४८ ॥
अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः ।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च बन्दिनाम् ॥ ४९ ॥
सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ५० ॥

श्रेष्ठ व्यक्ति को किसी नीच प्रकृति या नीच जाति के पुरुष को वश कर देनेवाला पुरुष, श्रेष्ठ और नीच का परिवर्तन करने के कारण, बड़े भारी पाप का भागी होता है। वेद में लिखा है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, ऊरुओं से वैश्य और पाँवों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं॥४०।४४॥ इन चारों वर्णों के संयोग से, अनुलोम (जैसे क्षत्रिय की स्त्री में ब्राह्मण से या वैश्य की स्त्री में क्षत्रिय से) प्रतिलोम (जैसे ब्राह्मण की स्त्री में क्षत्रिय से या क्षत्रिय की स्त्री में वैश्य से) क्रम से, बहुत सी वर्ण-सङ्कर जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। प्रजा का पालन और रक्षा, कर लेना और दान देना, यही क्षत्रियों के कर्म हैं। इसी प्रकार लोकों पर कृपा करने के निमित्त पृथ्वी पर ब्राह्मणों की स्थापना हुई है और यज्ञ कराना, पढ़ाना तथा विशुद्ध दान लेना ही उनके कर्म हैं। कृषिकर्म, पशुपालन और धर्मानुसार दान करना वैश्यों के कर्म हैं। रह गये शूद्र सो वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा करने के निमित्त हैं॥४५।४७॥ सूत जाति वर्ण-सङ्कर है, और शास्त्र में उसका धर्म ब्राह्मणों और क्षत्रियों की सेवा करना ही लिखा है। क्षत्रिय को सूत की सेवा करते कभी किसी ने न देखा-सुना होगा। मैं राजर्षि-कुल में उत्पन्न और मूर्द्धाभिषिक्त हूँ, अर्थात् राजसिंहासन पर विधिपूर्वक मेरा अभिषेक हुआ है। मैं महारथी कहलाता हूँ। बन्दीजन मेरी सेवा और स्तुति करते हैं। हे दुर्योधन! मैं स्वयं शत्रुसेना का नाश कर सकता हूँ। इस प्रकार का पूज्य प्रतापी प्रशंसित होकर मैं रण में सूतपुत्र कर्ण का सारथी नहीं बन सकता। इस अपमान को सहकर मैं युद्ध नहीं कर सकता। मैं तुम से कहता हूँ कि यह कार्य करने के निमित्त

अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथञ्चन ।
आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः ।
उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ५२ ॥
प्रणयाद्बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥ ५३ ॥
यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥ ५४ ॥
न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वां च पार्थिव ।
नहि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद्यदनृतं भवेत् ॥ ५५ ॥
ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ५६ ॥
शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले ॥ ५७ ॥
यदेतद्व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थं यद्यदुच्यते ॥ ५८ ॥
न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् ।
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥ ५९ ॥
मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनञ्जयात् ।
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते ॥ ६० ॥

कहकर मेरा अपमान न करना । हे दुर्योधन ! मैं तुम से घर जाने के निमित्त अनुमति माँगता हूँ॥४८।५१॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! सभा को शोभित करनेवाले शल्य इतना कहकर, क्रोध के मारे, राजमण्डली के मध्य से उठकर शीघ्रता के साथ चल दिये । तब आपके पुत्र ने प्रेमपूर्वक बहुत सम्मान के साथ, हाथ पकड़कर, उनको रोक लिया । दुर्योधन ने सामनीति से पूर्ण,सब प्रकार कार्य को सिद्ध करने वाले, मधुर वचन कहना आरम्भ किया—हे मद्रेश्वर शल्य ! आपने जो कुछ कहा वह युक्त है, इसमें तनिक भी संशय नहीं । किन्तु मैं आप से कर्ण का सारथी होने के निमित्त कहकर आपका अपमान नहीं कर रहा हूँ । उसमें मेरा जो अभिप्राय है सो सुनिए ॥५२।५४॥हे मद्रनरेश ! न तो कर्ण आप से बढ़कर बली या योद्धा हैं और न मुझे आप से किसी प्रकार की शङ्का है । आपका नाम इसी लिए आर्तायनि है कि आपके वंश के सब पूर्वज ऋत अर्थात् सत्य के अनन्य उपासक रहे हैं । आप युद्ध में शत्रुओं के हृदय में शल्य के समान चुभते हैं,इसी से आप शल्य नाम से प्रसिद्ध हैं॥५५।५७॥हे धर्मज्ञ ! आप पहले सब प्रकार से मेरी सहायता करना स्वीकार कर चुके हैं, अतः अब मेरा कथन मानकर अपने उस प्रण को पूर्ण कीजिये । हे महाराज ! मैं या कर्ण, कोई भी आपसे अधिक वीर्यशाली नहीं है । मैं कर्ण को

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥ ६१ ॥
यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥ ६२ ॥
शल्य उवाच—यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात्प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ६३ ॥
एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ ६४ ॥
समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य सन्निधौ ॥ ६५ ॥
सञ्जय उवाच—तथेति राजन्पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत ।
अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥ ६६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

गुण (युद्धकला) में अर्जुन से श्रेष्ठ मानता हूँ । इसी प्रकार ये सब लोग आपको भी अश्वविज्ञान और पौरुष आदि में श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ समझते हैं । हे नरश्रेष्ठ ! कर्ण तो केवल अस्त्र-विद्या में अर्जुन से श्रेष्ठ हैं; किन्तु आप अश्वविज्ञान, सारथी के कार्य और बल विक्रम में भी श्रीकृष्ण से बढ़कर हैं । हे मद्रराज ! श्रीकृष्ण को जितनी घोड़ों की पहचान और जितना अश्वविज्ञान का ज्ञान है, उससे कहीं अधिक आपकी जानकारी है॥५८।६२॥यह सुनकर महावीर शल्य ने कहा—हे दुर्योधन ! तुमने सब सेना के मध्य मुझे देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ कहा, इससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । मैं यशस्वी कर्ण का रथ हाँकूँगा, जिससे वे पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन से इच्छानुसार युद्ध कर सकेंगे। किन्तु मैं वैकर्तन कर्ण से एक प्रतिज्ञा कराना चाहता हूँ। वह यह कि रथ हाँकते समय मैं कर्ण के सम्मुख चाहे जैसी बातें करूँगा।इन्हें उसमें कुछ आक्षेप न होना चाहिए। सञ्जय कहते है—हे महाराज।दुर्योधन और कर्ण दोनोंने शल्य की यह प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली॥६३।६६॥

कर्ण पर्व का बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्याय. ॥ ३३ ॥

दुर्योधन उवाच—भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरा वृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥ १ ॥
यदुक्तवान्पितुर्मह्यं मार्कण्डेयो महानृषिः ।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥ २ ॥

तेंतीसवाँ अध्याय ॥ ३३ ॥

दुर्योधन ने कहा—हे राजेन्द्र ! शल्य ! महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने पिताजी के सम्मुख मुझे देवासुर-युद्ध का जो इतिहास सुनाया था उसी का वर्णन, हे राजर्षि-श्रेष्ठ ! मैं आपके सम्मुख करता हूँ । आप उसे सुनकर अपने मन में विचारिए और कर्ण का रथ हाँकने में आगा-पीछा न कीजिए । पूर्व समय में

निवोध मनसा चात्र न ते कार्या विचारणा ।
देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ॥ ३ ॥
बभूव प्रथमो राजन्संग्रामस्तारकामयः ।
निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥
निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः ।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥ ५ ॥
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।
तपसा कर्षयामासुर्देहान्स्वाञ्शत्रुतापन ॥ ६ ॥
दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना ।
तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥ ७ ॥
अवध्यत्वं च ते राजन्सर्वभूतस्य सर्वदा ।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥ ८ ॥
तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमितोऽसुराः ॥ ९ ॥
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते ।
ततस्ते सहिता राजन्सम्प्रधार्यासकृत्प्रभुम् ॥ १० ॥
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदमथाब्रुवन् ।
अस्मभ्यं त्वं वरं देव संप्रयच्छ पितामह ॥ ११ ॥
वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेऽस्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः ॥ १२ ॥

देवताओं और दैत्यों ने परस्पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से घोर युद्ध किया था। वह युद्ध तारकामय-संग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय महापराक्रमी तारकासुर दैत्यों का स्वामी और नेता था। देवताओं ने उस संग्राम में दैत्यों को जीत लिया। [तारकासुर के मारे जाने पर दैत्यों का दर्प चूर्ण हो गया और उत्साह जाता रहा। वे लोग प्राण लेकर भाग गये और पाताल में घुसकर रहने लगे]॥ १।४॥ दैत्यों के पराजित होने पर तारकासुर के तीनों पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली कठिन नियम के साथ तीव्र तप करने लगे। उन शत्रुदमन दानवों ने ऐसा उग्र तप किया कि उनके शरीर सूखकर काँटा हो गये। वरदानी ब्रह्मा कुछ समय के पश्चात् उनके दम, नियम, तप और समाधि से प्रसन्न होकर प्रकट हुए। सब लोकों के पितामह ब्रह्मा ने जब उनसे वर माँगने को कहा, तब दानवों ने यह वर माँगा कि संसार के सभी प्राणी कभी उन सबको न मार सकें॥ ५।८॥ ब्रह्मा ने कहा—हे असुरो! संसार में कोई भी प्राणी अमर नहीं है। यह असम्भव है कि कोई प्राणी किसी प्राणी के हाथ से न मारा जा सके। इसलिये यह अभिप्राय छोड़कर और कोई वर माँगो, जो कि तुमको उचित जान पड़े। उनके वचन सुनकर तीनों भाइयों ने परस्पर में अच्छी प्रकार सम्मति करके सब लोकों के ईश्वर ब्रह्मा को प्रणाम किया और कहा—हे पितामह! हम तीनों

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥ १३ ॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा ।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ १४ ॥
एवमस्त्विति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ।
ते तु लब्धवराः प्रीताः संप्रधार्य परस्परम् ॥ १५ ॥
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम् ।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १६ ॥
ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान्पुराणि च ।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥ १७ ॥
काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥ १८ ॥
एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम् ।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम् ॥ १९ ॥
गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम् ।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम् ॥ २० ॥
पुरेषु चाभवन्राजन्राजानो वै पृथक् पृथक् ।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥ २१ ॥

भाई पृथक्-पृथक् एक नगर बनाकर उसमें निवास करना चाहते हैं॥९।१२॥वह शुभ नगर ऐसा हो कि सब जगह आकाशमार्ग होकर जा सके। [आप यह वर दीजिए कि वे तीनों पुर सब कामनाओं की वस्तुओं और समृद्धियों से पूर्ण हों, और देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, नाग, नाना जाति के जीव और ब्रह्मवादी ब्राह्मण आदि कोई भी उन्हें नष्ट न कर सके। शस्त्र, कृत्या (जादू) और शाप से भी उनका नाश न हो। आपकी कृपा के पात्र होकर] हम तीनों भाई उन तीनों नगरों में रहकर पृथ्वी-मण्डल में विचरेंगे। इस प्रकार सहस्रों वर्षों तक पृथक् पृथक् सब स्थानों में भ्रमण करके अन्त को हम तीनों भाई फिर एक स्थान पर मिलेंगे और वे तीनों पुर एक में मिल जायँगे। हे भगवन्! जो प्रतापी पुरुष उस समय एक में मिले हुए उन तीनों पुरों को एक ही बाण मारकर नष्ट कर देगा, उसी के हाथ से हमारी मृत्यु होगी। हम यही वर माँगते हैं। हे राजन्! पितामह उन दानवों के वचन सुनकर 'तथास्तु' कहकर अपने लोक को चले गये। इधर तारकासुर के तीनों पुत्र,ब्रह्मा से वरदान प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने सम्मति करके तीन पुर बनाने के निमित्त दैत्य-दानव-पूजित, निरामय, दैत्यों के विश्वकर्मा मयासुर से कहा ॥१३।१६॥बुद्धिमान् मय दानव ने अपने तप के प्रभाव से स्वर्ग में सुवर्ण का, अन्तरिक्ष में चाँदी का और मनुष्य-लोक में लोहे का श्रेष्ठ पुर बना दिया। वे तीनों पुर सौ सौ योजन लम्बे चौड़े थे। उनकी चहारदीवारी खूब चौड़ी, ऊँची और दृढ़ थी। उनमें बड़े-बड़े दर्वाजे और शोभित हुए सुन्दर महल बने हुए थे। उनमें चौड़ी सड़कें, बहुत से मन्दिर, अट्टालिकाएँ और अनेक प्रकार के द्वार सर्वत्र थे॥१७।२०॥हे महाराज! तारकासुर के

राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ।
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रींल्लोकानस्त्रतेजसा ॥ २२ ॥
आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः ।
तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ २३ ॥
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः ।
मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा ॥ २४ ॥
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः ।
सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः ॥ २५ ॥
तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः ।
यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥ २६ ॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा ।
तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः ॥ २७ ॥
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत्पितामहः ।
सन्तुष्टमवृणोद्देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८ ॥
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः ।
स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः ॥ २९ ॥
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो ।
येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥ ३० ॥
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ।
तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु लोकान्सर्वान्बबाधिरे ॥ ३१ ॥

तीनों पुत्रों में से प्रतापी तारकाक्ष सुवर्ण के पुर का, कमलाक्ष चाँदी के पुर का और विद्युन्माली लोहे के पुर का स्वामी हुआ। इस प्रकार विनाश के भय से निवृत्ति प्राप्त कर उन तीनों दानवों ने अस्त्रबल से तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया। वे दानव गर्वित होकर कहने लगे—हमारे सम्मुख प्रजापति क्या वस्तु हैं? हमीं त्रिलोकी और सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। पहले जिन मांसाहारी अभिमानी दानवों को देवताओं ने जीतकर मार भगाया था वे जहाँ तहाँ से, करोड़ों और अर्बुदों की संख्या में, त्रिपुर में आकर निवास करने और निर्भयता से ऐश्वर्य भोगने लगे ॥२१।२४॥ क्रमशः सभी प्रधान दानव त्रिपुर दुर्ग में आ गये। वे फिर निर्भय होकर संसार को सताने लगे। त्रिपुरवासी दानवों में से जो जब जैसी इच्छा करता था उसकी उस इच्छा को मय दानव मायाबल से तत्काल पूर्ण कर देता था॥२५।२७॥ हे महेश्वर! इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर तारकाक्ष के के पुत्र महापराक्रमी हरि नाम के दानव ने कठोर तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। उन्होंने आकर वर माँगने को कहा। दानव ने हाथ जोड़कर कहा—हे देव! मैं अपने पुर में ऐसी बावली बनवाना चाहता हूँ जिसके जल में डालने से अस्त्र-शस्त्र से मरे हुए दैत्य फिर जीवित हो उठें, तथा पहले से अधिक बलवान् हो जायँ। आपके वरदान के प्रभाव से मैं यह

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥ १३ ॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा ।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ १४ ॥
एवमस्त्विति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ।
ते तु लब्धवराः प्रीताः संप्रधार्य परस्परम् ॥ १५ ॥
पुरत्रयविसृष्टयर्थं मयं वव्रुर्महासुरम् ।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १६ ॥
ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान्पुराणि च ।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥ १७ ॥
काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥ १८ ॥
एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम् ।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम् ॥ १९ ॥
गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम् ।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम् ॥ २० ॥
पुरेषु चाभवन्राजन्राजानो वै पृथक् पृथक् ।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥ २१ ॥

भाई पृथक्-पृथक् एक नगर बनाकर उसमें निवास करना चाहते हैं॥९।१२॥वह शुभ नगर ऐसा हो कि सब जगह आकाशमार्ग होकर जा सके। [आप यह वर दीजिए कि वे तीनों पुर सब कामनाओं की वस्तुओं और समृद्धियों से पूर्ण हों, और देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, नाग, नाना जाति के जीव और ब्रह्मवादी ब्राह्मण आदि कोई भी उन्हें नष्ट न कर सके। शस्त्र, कृत्या (जादू) और शाप से भी उनका नाश न हो। आपकी कृपा के पात्र होकर] हम तीनों भाई उन तीनों नगरों में रहकर पृथ्वी-मण्डल में विचरेंगे। इस प्रकार सहस्रों वर्षों तक पृथक् पृथक् सब स्थानों में भ्रमण करके अन्त को हम तीनों भाई फिर एक स्थान पर मिलेंगे और वे तीनों पुर एक में मिल जायँगे। हे भगवन्! जो प्रतापी पुरुष उस समय एक में मिले हुए उन तीनों पुरों को एक ही बाण मारकर नष्ट कर देगा, उसी के हाथ से हमारी मृत्यु होगी। हम यही वर माँगते हैं। हे राजन्! पितामह उन दानवों के वचन सुनकर 'तथास्तु' कहकर अपने लोक को चले गये। इधर तारकासुर के तीनों पुत्र,ब्रह्मा से वरदान प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने सम्मति करके तीन पुर बनाने के निमित्त दैत्य दानव पूजित, निरामय, दैत्यों के विश्वकर्मा मयासुर से कहा ॥१३।१६॥बुद्धिमान् मय दानव ने अपने तप के प्रभाव से स्वर्ग में सुवर्ण का, अन्तरिक्ष में चाँदी का और मनुष्य-लोक में लोहे का श्रेष्ठ पुर बना दिया। वे तीनों पुर सौ सौ योजन लम्बे चौड़े थे। उनकी चहारदीवारी खूब चौड़ी, ऊँची और दृढ़ थी। उनमें बड़े-बड़े दर्वाजे और शोभित हुए सुन्दर महल बने हुए थे। उनमें चौड़ी सड़कें, बहुत से मन्दिर, अट्टालिकाएँ और अनेक प्रकार के द्वार सर्वत्र थे॥१७।२०॥हे महाराज! तारकासुर के

राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ।
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रीँल्लोकानस्त्रतेजसा ॥ २२ ॥
आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः ।
तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ २३ ॥
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः ।
मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा ॥ २४ ॥
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः ।
सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः ॥ २५ ॥
तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः ।
यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥ २६ ॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा ।
तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः ॥ २७ ॥
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत्पितामहः ।
सन्तुष्टमवृणोद्देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८ ॥
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः ।
स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः ॥ २९ ॥
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो ।
येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥ ३० ॥
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ।
तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु लोकान्सर्वान्बबाधिरे ॥ ३१ ॥

तीनों पुत्रों में से प्रतापी तारकाक्ष सुवर्ण के पुर का, कमलाक्ष चाँदी के पुर का और विद्युन्माली लोहे के पुर का स्वामी हुआ। इस प्रकार विनाश के भय से निवृत्ति प्राप्त कर उन तीनों दानवों ने अस्त्रबल से तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया। वे दानव गर्वित होकर कहने लगे—हमारे सम्मुख प्रजापति क्या वस्तु है ? हमीं त्रिलोकी और सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। पहले जिन मांसाहारी अभिमानी दानवों को देवताओं ने जीतकर मार भगाया था वे जहाँ तहाँ से, करोड़ों और अर्बुदों की संख्या में, त्रिपुर में आकर निवास करने और निर्भयता से ऐश्वर्य भोगने लगे ॥२१।२४॥ क्रमशः सभी प्रधान दानव त्रिपुर दुर्ग में आ गये। वे फिर निर्भय होकर संसार को सताने लगे। त्रिपुरवासी दानवों में से जो जब जैसी इच्छा करता था उसकी उस इच्छा को मय दानव मायाबल से तत्काल पूर्ण कर देता था॥२५।२७॥ हे महेश्वर ! इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर तारकाक्ष के पुत्र महापराक्रमी हरि नाम के दानव ने कठोर तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। उन्होंने आकर वर माँगने को कहा। दानव ने हाथ जोड़कर कहा—हे देव ! मैं अपने पुर में ऐसी बावड़ी बनवाना चाहता हूँ जिसके जल में डालने से अस्त्र-शस्त्र से मरे हुए दैत्य फिर जीवित हो उठें, तथा पहले से अधिक बलशाली हो जायँ। आपके वरदान के प्रभाव से मैं यह

महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः ।
न तेषामभवद्राजन्क्षयो युद्धे कदाचन ॥ ३२ ॥
ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः ।
निर्ह्रीकाः संस्थिताः सर्वे स्थापिताः समलूलुपन् ॥ ३३ ॥
विद्राव्य सगणान्देवांस्तत्र तत्र तदा तदा ।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ॥ ३४ ॥
देवोद्यानानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकसाम् ।
ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्रम्याञ्जनपदांस्तथा ॥ ३५ ॥
व्यनाशयन्नमर्यादा दानवा दुष्टचारिणः ।
पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्वृतः ॥ ३६ ॥
पुराण्यायोधयाञ्चक्रे वज्रपातैः समन्ततः ।
नाशकत्तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरन्दरः ॥ ३७ ॥
पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप ।
तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ ॥ ३८ ॥
तैरेव विबुधैः सार्धं पितामहमरिन्दम ।
जगामाथ तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥ ३९ ॥
ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः सम्प्रणम्य च ।
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥ ४० ॥

कठिन कार्य करना चाहता हूँ। कृपा करके मुझे यही वर दीजिये । हे महाराज! ब्रह्मा ने उस दानव को, उसकी इच्छा के अनुसार, वर दे दिया । तारकाक्ष के पुत्र बड़े वीर हरि दानव ने इस प्रकार दुर्लभ वर प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक अपने पुर में वैसी ही मृतसञ्जीविनी बावली बनवा ली। जिस वेश और जिस रूप में जो दैत्य मारा जाता था वह, उस बावली के जल में डाले जाते ही, वैसे ही रूप और वेश में फिर जीवित हो उठता था। उसका बल-वीर्य-वीरता आदि सब कुछ फिर वैसा ही हो जाता था । हे राजन्! इस प्रकार मृत्यु का भय न रहने के कारण त्रिपुर-निवासी दानव सब लोकों को कष्ट पहुँचाने लगे॥२७। ३१॥दुष्कर तप के प्रभाव से दानवगण संग्राम में अक्षय और अमर से हो उठे। देवता भी उनसे भयभीत और नम्र होने लगे। हे महाबाहु शल्य! निर्लज्ज दानवगण इस प्रकार ब्रह्मा के वरदान से दर्प, लोभ और मोह के एकदम वश में हो गये । उन्होंने देवताओं को तो मार भगाया और उनके रमणीक उपवनों, स्थानों तथा महर्षियों के पवित्र आश्रमों आदि में वे अपनी इच्छा के अनुसार विचरने और पुरातन मर्यादा को दुष्ट आचरणों से नष्ट करने लगे। दानवों ने देवताओं, ऋषियों और पितरों के स्थान तथा अधिकार छीन लिये ॥३२।३६॥इस प्रकार असुरों को त्रिभुवन पर अधिकार और अत्याचार करते देखकर इन्द्र से नहीं रहा गया। लोकपीड़न देखकर देवताओं की सेना साथ लेकर, वज्र हाथ में लिये, इन्द्र चारों ओर से उन पुरों पर आक्रमण करने लगे । किन्तु विधाता के वरदान से उन अभेद्य पुरों को वज्र-प्रहार के द्वारा भी इन्द्र नहीं तोड़ सके । तब वे बहुत भयभीत हुए और पुरों को छोड़कर सब देवताओं सहित विधाता के समीप पहुँचे।

श्रुत्वा तद्भगवान्देवो देवानिदमुवाच ह ।
ममापि सोऽपराध्नोति यो युष्माकमसौम्यकृत् ॥ ४१ ॥
असुरा हि दुरात्मानः सर्व एव सुरद्विषः ।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान्पीडयन्त्युत ॥ ४२ ॥
अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः ।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम् ॥ ४३ ॥
एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा ।
न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा पुरः ॥ ४४ ॥
ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः स तान्हन्ता सुरेतरान् ॥ ४५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ४६ ॥
तपोनियममास्थाय गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम् ।
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥ ४७ ॥
तुष्टुवुर्वाग्भिरुग्राभिर्भयेष्वभयदं नृप ।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥ ४८ ॥
तपोविशेषैर्विविधैर्योगं यो वेद चात्मनः ।
यः साङ्ख्यमात्मनो वेत्ति यस्य चात्मा वशे सदा॥ ४९ ॥

वहाँ जाकर इन्द्र ने दानवों की दुष्टता और दुराचार का वर्णन किया॥३६।३९॥इन्द्र सहित देवताओं ने सिर झुकाकर विधाता को प्रणाम किया और सब दशा सुनाकर उन दानवों के नाश का उपाय पूछा। ब्रह्मा ने कहा—हे देवताओ! जो कोई तुम्हारा अनिष्ट करता है वह मेरा अपराधी होता है। दुर्मति दुष्ट दैत्यगण तुम लोगों को पीड़ित करके मेरे अपराधी हुए हैं। वैसे मेरे लिए तो सभी प्राणी समान हैं;मैं समान रूप से सम्पूर्ण सृष्टि का पितामह हूँ,इसलिए तुम लोग और दानवगण दोनों मेरी दृष्टि में समान हैं,तथापि जो लोग दुष्ट और अधर्मी हैं, उनका संहार करना मेरा कर्तव्य है॥४०।४३॥परन्तु मैंने उन असुरों को वर दे रक्खा है;उनके अनुसार एक ही बाण से उन पुरों का और साथ ही दानवों का नाश हो सकता है। दूसरा उपाय नहीं है। मेरे विचारमें यह दुष्कर कार्य केवल शङ्कर ही कर सकते हैं। इसलिए तुम लोग स्थाणु,ईशान,देवदेव,विजयशील, महायोद्धा और कठिन से कठिन कार्य को सुगमता से करने की शक्ति रखनेवाले महादेव की शरण में जाओ। त्रिपुर-संहार के निमित्त उनसे प्रार्थना करो। वही उन दानवों को मारेंगे॥४४।४५॥हे राजन्! धर्मनिरत इन्द्र आदि देवता ब्रह्मा के वचन सुनकर, उन्हें आगे करके, ऋषियों के साथ शङ्कर की शरण में गये और वहाँ प्रणत होकर ब्रह्माके कथनानुसार उग्र तप करने लगे।शरणागत ब्रह्मा सहित देवगण शरणागतरक्षक महादेव को सनातन वेद के पाठ और स्तुति से प्रसन्न करने लगे। भगवान् शङ्कर की स्तुति कर रहे देवगण अपने भय को दूर करने के निमित्त तन्मय होकर स्तुति करने लगे॥४६। ४८॥सर्वरूप, महत्मा, अपने रूप से विश्व को व्याप

तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् ।
अनन्यसदृशं लोके भगवन्तमकल्मषम् ॥ ५० ॥
एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥ ५१ ॥
परस्परस्य चापश्यन्सर्वे परमविस्मिताः ।
सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः पतिम् ॥ ५२ ॥
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ।
तान्स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः ॥ ५३ ॥
ब्रूत ब्रूतेति भगवान्स्मयमानोऽभ्यभाषत ।
त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः ॥ ५४ ॥
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन्वचः ।
नमो देवाधिदेवाय धन्विने वनमालिने ॥ ५५ ॥
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यते ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शम्भवे ॥ ५६ ॥
विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ।
अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ॥ ५७ ॥
अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च ।
दुर्वारणाय काथाय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥ ५८ ॥
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे ।
तपोरथाय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥ ५९ ॥

करने वाले, विविध और विशेष रूप के तपोबल से स्वय आत्मतत्व और साङ्ख्य योग को जाननेवाले, जितेंद्रिय, तेजोराशि, ईशान, उमापति, अद्वितीय, निष्पाप, तजस्वी शङ्कर ने वहाँ पर प्रकट होकर देवताओं को दर्शन दिये। एक भगवान् ने देवताओं को अनेक रूप दिखाये अर्थात् जिस देवता ने जैसे रूप की कल्पना कर रक्खी थी उसको वैसा ही रूप देख पड़ा। महात्मा शङ्कर की यह महिमा देखकर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ। देवता और महर्षि लोग सर्वभूतमय जगत्पति अज शङ्कर को देखकर पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम करने लगे॥४८।५३॥ भगवान् रुद्र ने उनको उठाया, उनका सत्कार किया, कुशल पूछी और मुसकाते हुए पूछा—कहो कहो, तुम लोग कैसे आये? उनके इस प्रकार पूछने और आज्ञा देने से देवताओं के चित्त स्वस्थ हुए। वे बारम्बार नमोनमः कहकर इस प्रकार शङ्कर की स्तुति करने लगे—हे प्रभो! आप देवताओं के भी पूज्य देवता और दक्ष प्रजापति के यज्ञ को नष्ट करनेवाले हैं। प्रजापति लोग आपकी स्तुति करते हैं। आप सब लोगों की स्तुति के पात्र हैं। हम लोग आपकी ही स्तुति कर रहे हैं। हे शम्भो! सब लोग आपकी स्तुति करते हैं॥५४।५६॥ आप नीललोहित, रुद्र, नील-ग्रीव, शूलपाणि, अमोघ, मृगनयन, श्रेष्ठ शस्त्र से युद्ध करनेवाले, पूजनीय, शुद्ध, संहार करनेवाले कालरूप, क्रथन, दुर्निवार्य, काथ, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ईशान, अप्रमेय,

कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्सङ्घघातिने ॥ ६० ॥
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ६१ ॥
नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे ।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान्भजस्व नः ॥ ६२ ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्स्वागतेनाभिनन्द्य च ।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः ॥ ६३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

नियन्ता, व्याघ्र-चर्म-धारी, तपोनिरत, पिङ्ग, व्रतधारी, कृत्तिवासा,॥५७।५९॥कुमार के पिता, त्रिलोचन, श्रेष्ठ शस्त्र धारण करनेवाले, शरणागत के दुःख को दूर करनेवाले, ब्राह्मणद्रोही असुरों को मारनेवाले, वनस्पतियों के पति, नरों के पति, गोपति, यज्ञपति, अमितौजा और सैन्यसहित हैं। आपको बारम्बार प्रणाम है। हे देव! हम लोग मन, वाणी और काया से आपकी शरण में आये हैं। आप हम पर प्रसन्न हों, हमारी रक्षा करें॥६०।६२॥हे राजन्! भगवान् भवानीपति यह स्तुति सुनकर सब देवताओं और ऋषियों पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वागत और अभिनन्दन के साथ देवताओं से कहा—तुम लोग अपने हृदय मे भय को दूर करो। बतलाओ, तुम क्या चाहते हो! मैं तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ॥६३॥

कर्ण पर्व का तेंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

दुर्योधन उवाच—पितृदेवर्षिसङ्घेभ्योऽभये दत्ते महात्मना ।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥ १ ॥
तवातिसर्गाद्देवेश प्राजापत्यमिदं पदम् ।
मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान्वरः ॥ २ ॥
तानतिक्रान्तमर्यादान्नान्यः संहर्तुमर्हति ।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ॥ ३ ॥
स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम् ।
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शङ्कर ॥ ४ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय ॥ ३४ ॥

दुर्योधन कहते हैं—हे महेश्वर! महेश्वर जब इस प्रकार पितरों, देवताओं और ऋषियों को अभय दे चुके तब लोकपितामह ब्रह्मा ने प्रणाम और सत्कार करके शङ्कर से कहा कि हे देवदेव! [ये तीनों प्रतापी असुर, दुर्ग-स्वरूप पुरों में रहकर तीनों लोकों पर आक्रमण करते हैं और कहते हैं कि हमारे अतिरिक्त और कौन प्रजापति या ईश्वर है! इसलिए हे रुद्र! उनको शीघ्र मारिए।] आपके अनुग्रह से ही मुझे यह प्रजापति की श्रेष्ठ पदवी मिली है। उन दुष्टों पर प्रसन्न होकर मैंने उन्हें ऐसा महान् वर दिया है। हे शङ्कर! विश्व की मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाले उन दुष्ट दानवों को आपके अतिरिक्त और कोई युद्ध में नहीं मार सकता। हे सब प्राणियों के ईश्वर! युद्ध में आपके अतिरिक्त और कोई उन दुष्टों के सम्मुख

त्वत्प्रसाज्जगत्सर्वं सुखमेधत मानद ।
शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥ ५ ॥

स्थाणुरुवाच—हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः ।
न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुरद्विषः ॥ ६ ॥
ते यूयं संहताः सर्वे मदीयेनार्धतेजसा ।
जयध्वं युधि ताञ्शत्रून्संहता हि महाबलाः ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः—अस्मत्तेजोबलं यावत्तावद्द्विगुणमाहवे ।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच—वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः ।
मम तेजोबलार्धेन सर्वान्निघ्नत शात्रवान् ॥ ९ ॥

देवा ऊचु—बिभर्तुं भवतोऽर्धं तु न शक्ष्यामो महेश्वर ।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच—यदि शक्तिर्न वः काचिद्बिभर्तुं मामकं बलम् ।
अहमेतान्हनिष्यामि युष्मत्तेजोर्धबृंहितः ॥ ११ ॥
ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम ।
अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाभ्यधिकोऽभवत् ॥ १२ ॥
स तु देवो बलेनासीत्सर्वेभ्यो बलवत्तरः ।
महादेव इति ख्यातस्ततःप्रभृति शङ्करः ॥ १३ ॥

नहीं स्थित हो सकता। हे देव! ये देवता आपकी शरण में आये हैं और उन असुरों को मारने के निमित्त आपसे प्रार्थना कर रहे हैं। हे वर देनेवाले! इन सबपर कृपा करके संग्राम में उन दानवों को नष्ट कीजिये। आपकी कृपा से यह सम्पूर्ण जगत् सुखी हो। आप सबकी रक्षा करनेवाले शरण्य हैं, इसी से हम लोग आपकी शरण में आये हैं॥१।५॥ईश्वर ने कहा—हे देवताओ! मैं समझता हूँ कि तुम्हारे शत्रुओं का नाश अवश्य होना चाहिए। किन्तु उन बली देव-द्रोही दानवों को मैं अकेला नहीं मार सकता। इस-लिए तुमको मैं अपना आधा तेज दूँगा। तुम सब लोग मिलकर युद्ध में महाबली शत्रुओं को मार डालो। सङ्घशक्ति या एकता में बड़ा बल होता है॥६।७॥ देवताओं ने कहा—हे महेश्वर! उनके तेज और बल को हम देख चुके हैं। हमारे विचार में उनका तेज और बल हम सबके तेज तथा बल से दुगुना होगा॥८॥महादेव ने कहा—एक तो वे पापी हैं, दूसरे तुम सबको सताते हैं, इसलिए सर्वथा मारे जाने के योग्य हैं। तुम लोग मेरा आधा तेज और बल लेकर अपने शत्रुओं का संहार करो॥९॥तब फिर देवताओं ने कहा—हे भूतनाथ! हे सुरेश्वर! यह तो युक्त है; किन्तु हम लोग आपके तेज और बल के आधे अंश को धारण नहीं कर सकेंगे। इस कारण आप ही हम सबका आधा तेज और बल लेकर शत्रुओं को मारिए। शङ्कर ने कहा—हे देवताओ! तुम लोग यदि मेरे आधे तेज को नहीं धारण कर सकते तो फिर मैं ही तुम लोगों का आधा तेज लेकर उन असुरों को मारूँगा॥१०।११॥हे महेश्वर! भगवान् शूलपाणि ने इतना कहकर देवताओं से उनका आधा तेज और बल ले लिया और पहले की अपेक्षा वे अधिक तेजस्वी और

ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरो ह्यहम् ।
हनिष्यामि रथेनाजौ तान्रिपून्वो दिवौकसः ॥ १४ ॥
ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च ।
पश्यध्वं यावदद्यैतान्पातयामि महीतले ॥ १५ ॥
देवा ऊचु —मूर्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः ।
रथं ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम् ॥ १६ ॥
तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम् ।
ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन् ॥ १७ ॥
विष्णुं सोमं हुताशं च तस्येषुं समकल्पयन् ।
शृङ्गमग्निर्बभूवास्य भल्लः सोमो विशाम्पते ॥ १८ ॥
कुड्मलश्चाभवद्विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा ॥ १९ ॥
रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम् ।
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा ।
मन्दरः पर्वतश्चाक्षो जङ्घा तस्य महानदी ॥ २० ॥
दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य तु ।
ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥ २१ ॥
कूबरश्च रथस्यासीद्वासुकिर्भुजगोत्तमः ।
अपस्करमधिष्ठाने हिमवान्विन्ध्यपर्वतः ।
उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रुः सुरोत्तमाः ॥ २२ ॥
समुद्रमक्षमसृजन्दानवालयमुत्तमम् ।
सप्तर्षिमण्डलं चैव रथस्यासीत्परिष्करः ॥ २३ ॥
गङ्गा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च ।
उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः ॥ २४ ॥

महादेव हो उठे। तभी से शङ्कर महादेव के नाम से प्रसिद्ध हुए। शङ्कर ने कहा—हे देवताओ! मेरे निमित्त एक दिव्य रथ, रथ के घोड़े, धनुष, बाण और सारथी चाहिए। इन वस्तुओं का प्रबन्ध करो तो मैं शीघ्र ही तुम्हारे शत्रु दानवों को मारूँ॥१२।१५॥सब देवताओं ने 'बहुत अच्छा' कहकर, सोचकर, संसार की सब श्रेष्ठ वस्तुओं को एकत्र करके वैसा दिव्य रथ कल्पित किया जैसा कि विश्वकर्मा बना सकते हैं। उन्होंने पर्वत, वन, द्वीप, पुर सहित और सब प्राणियों से पूर्ण इस पृथ्वीमण्डल को ही महादेव के निमित्त दिव्य रथ कल्पित किया॥१६।१९॥मन्दराचल और दानवों का घर समुद्र इस रथ का अक्ष हुआ, महानदी भागीरथी जङ्घा हुई, रथ का सामान (परिवार) दिशा विदिशाएँ हुईं, नक्षत्र-पुञ्ज और धृतराष्ट्र प्रमुख दस दिग्गज ईषा हुए, सत्ययुग और स्वर्ग युगकाष्ठ हुए, भुजगराज वासुकि इस रथ के कूबर और अपस्कर हुए, हिमालय, विन्ध्याचल, सूर्य-चन्द्र और उदयाचल-अस्ताचल पहिये तथा चक्राधार हुए, चक्र-रक्षक सप्तर्षिमण्डल हुआ, गङ्गा, सरस्वती

अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा ।
अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः ॥ २५ ॥
धर्मार्थकामसंयुक्तं त्रिवेणुं दारु बन्धुरम् ।
ओषधीर्वीरुधश्चैव घण्टाः पुष्पफलोपगाः ॥ २६ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे ।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते रात्र्यहनी शुभे ॥ २७ ॥
दशनागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखांस्तदा ।
योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसन्तो महोरगान् ॥ २८ ॥
द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान् ।
कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ २९ ॥
इतरे चाभवन्नागा हयानां वालबन्धनाः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम् ॥ ३० ॥
सन्ध्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं सन्नतिमेव च ।
ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥ ३१ ॥
सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतींल्लोकेश्वरान्हयान् ।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम् ॥ ३२ ॥
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांस्तत्र कण्टकान् ।
धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ॥ ३३ ॥
अधिष्ठानं मनश्चासीत्परिरथ्या सरस्वती ।
नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ॥ ३४ ॥
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन् ।
वषट्कारः प्रतोदोऽभूद्गायत्री शीर्षबन्धना ॥ ३५ ॥

और यमुना से युक्त आकाश धुर हुआ, जल और नदियाँ बन्धन-सामग्री हुईं॥२०।२४॥ दिन रात्रि, कला काष्ठा, ऋतुएँ और दीप्त ग्रह अनुकर्ष (रथ के नीचे की लकड़ी) हुए; तारागण रथ के रक्षक हुए; धर्म-अर्थ काम त्रिवेणु (रथतल्प) हुए, फल-पुष्प शोभित ओषधि और लताएँ घण्टा हुईं, दिन और रात्रि रथ के पूर्वापर अङ्ग हुए, महोरग(बड़े बड़े सर्प)योक्त्र हुए, सवर्त्तक (मेघ) दूसरा युग और चर्म हुए, कालपृष्ठ, नहुष, कर्कोटक, धनञ्जय और अन्यान्य नाग घोड़ों की अयाल के बन्धन हुए॥२५।

३०॥ दिशा प्रदिशा, धर्म, सत्य, तप और अर्थ घोड़ों की लगामें हुईं, सन्ध्या, धृति, मेधा, स्थिति, सन्नति और ग्रह-नक्षत्र आदि से शोभित नभोमण्डल बाह्य (बाहर) का आवरण हुआ, लोकपाल इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर घोड़े हुए, पूर्व अमावास्या और पूर्व पौर्णिमा, उत्तर अमावास्या और उत्तर पौर्णिमा घोड़ों की योक्त्र (साज) हुईं, पूर्व अमावास्या में अधिष्ठित पितृगण युगकीलक हुए, मन रथ का उपस्थ (अधिष्ठान) हुआ, सरस्वती रथ का पिछला भाग हुई,॥३०।३४॥ वषट्कार

यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः ।
संवत्सरो धनुस्तद्वै सावित्री ज्या महास्वना ॥ ३६ ॥
दिव्यं च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम् ।
अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रबहिष्कृतम् ॥ ३७ ॥
ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान्कनकपर्वतः ।
पताकाश्चाभवन्मेघास्तडिद्भिः समलंकृताः ॥ ३८ ॥
रेजुरध्वर्युमध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः ।
क्लृप्तं तु रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताभवन् ॥ ३९ ॥
सर्वलोकस्य तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिष ।
युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महात्मने ॥ ४० ॥
एवं तस्मिन्महाराज कल्पिते रथसत्तमे ।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विषतामभिमर्दने ॥ ४१ ॥
स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छङ्करो रथे ।
ध्वजयष्टिं वियत्कृत्वा स्थापयामास गोवृषम् ॥ ४२ ॥
ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः ।
परिस्कन्दा रथस्यासन्सर्वतोदिशमुद्यताः ॥ ४३ ॥
अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥ ४४ ॥
इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः ।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिताः ॥ ४५ ॥
स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च ।
ओङ्कारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ॥ ४६ ॥

चाबुक हुआ और गायत्री शीर्ष बन्धन हुई। अब विष्णु, सोम और अग्नि इन तीन महात्माओं के योग से महेश्वर का बाण कल्पित हुआ। अग्नि उस बाण का शृङ्ग (डण्डा), सोम फलक और विष्णु उसकी तीक्ष्ण धार हुए। प्राचीन समय में महात्मा ईशान के यज्ञ में जो सम्वत्सर कल्पित हुआ था वही इस समय महादेव जी का धनुष हुआ और सावित्री प्रत्यञ्चा हुई। कालचक्र से मूल्यवान् रत्न-भूषित अभेद्य दिव्य वर्म निकला। मैनाक और मेरु पर्वत ध्वजयष्टि हुए और इन्द्रधनुष तथा बिजली समेत मेघमाला वायु में फहरा रही रत्न विरञ्जि पताकाएं होकर ऋत्विजों के मध्य प्रज्वलित अग्नि की भाँति सुशोभित हुईं ॥३४।३९॥ इस प्रकार उस अपूर्व रथ और धनुष आदि के कल्पित होने पर देवता लोग समस्त तेज को एकत्र देखकर विस्मित हुए। उन्होंने महादेव जी को इसकी सूचना दी। हे पुरुषसिंह! शत्रुओं के निमित्त भय को बढ़ाने वाला वह दिव्य रथ जब बन चुका तब शङ्कर ने उस रथ पर अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्र रक्खे। उन्होंने आकाश को ध्वजा का दण्ड बनाकर उसमें अपने नान्दी बैल को स्थापित किया॥३९।४२॥ उसरूप ब्रह्मदण्ड, काल-दण्ड, रुद्रदण्ड, और सब ज्वर चारों ओर उस रथ की

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः ।
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥ ४७ ॥
कालो हि भगवान्रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः ।
तस्माद्रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥ ४८ ॥
इषुश्चाप्यभवद्विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च ।
अग्नीषोमौ जगत्कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ४९ ॥
विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ५०
तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः ।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ५१
स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासा भयङ्करः ।
आदित्यायुतसङ्काशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ५
दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः ।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान्नरान्
प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः
विभाति भगवान्स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः

रक्षा करने वाले नियुक्त हुए। पुराण और इतिहास सहित ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक हुए, समस्त स्तोत्र आदि, दिव्य वाक्य, विद्या और वषट्कार पार्श्वचर हुए। ॐकार रथ के सम्मुख शोभित हुआ॥४३।४६॥ छहों ऋतुओं से विचित्र संवत्सर को दिव्य धनुष बनाकर शङ्कर ने अपनी अक्षय ध्रुव छाया को ही उस धनुष की अक्षय प्रत्यञ्चा (डोरी) कल्पित किया। भगवान् रुद्र स्वय कालरूप हैं, संवत्सर उनका धनुष हुआ और रुद्र की कालरात्रि ही उस धनुष की सुदृढ़ प्रत्यञ्चा बनी। *अथर्व और अङ्गिरा इस रथ के चक्ररक्षक हुए। दिव्य रथ की कल्पना हो चुकने पर अव्यय यज्ञवाहन हरि विष्णु भगवान् ही वह बाण बने। बाण की गाँसी अग्नि और चन्द्रमा कल्पित हुए। हे राजेन्द्र! यह सम्पूर्ण जगत् अग्नी-

सोम (अग्नि-चन्द्र) मय कहा जगत् भर में व्याप्त हैं। महातेजस्वी शङ्कर का ही धनुष और प्रत्यञ्चा के स्पर्श ॥४७।५०॥ शङ्कर ने उस अत्यन्त दु सह क्रोध स्थापित के मन्यु से उत्पन्न अत्यन्त दु प्रज्वलित हो उठी। नीललोहित, अभयदाता, तेज की ज्वालाओं सूर्यों के समान प्रज्वलित, दुर्द्धर्ष वेद के और ब्राह्मणों के द्रोहियों अङ्गों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को दर्शन शङ्कर ने चराचर जगत्

*मन्त्रों के ज्ञाता ऋषियों ने आगे दाहनी ओर ऋग्वेद को, बाईं ओर सामवेद को, पीछे को ओर बाईं ओर अथर्ववेद को स्थापित किया। यज्ञ की विधि जाननेवाले ऋषियों ने इस को घोड़ों के स्थान पर कल्पित किया और वे यज्ञभूमि में शोभित से दिखाई पड़ने लगे।

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् ।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५५ ॥
दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची सशरासनी ।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसम्भवम् ॥ ५६ ॥
तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो ।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥ ५७ ॥
तमास्थाय महादेवस्त्रासयन्दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ५८ ॥
तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५९ ॥
ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥ ६० ॥
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद्देवान्सारथिः को भविष्यति ॥ ६१ ॥
तमब्रुवन्देवगणा यं भवान्संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥
तानब्रवीत्पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं संचिन्त्य मा चिरम् ॥ ६३ ॥
एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥
यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥ ६५ ॥

शोभायमान कर दिया॥५२।५४॥कवच और धनुष धारण किये हुए महात्मा भीमबल, भीमरूप शङ्कर ने दिव्य रथ सुसज्जित देखकर अपने हाथ में वह चन्द्र-अग्नि विष्णुमय दिव्य बाण लिया । भगवान् महादेव वह बाण हाथ में लेकर दैत्य दानवों को भयविह्वल और पृथ्वी एवं आकाश को कम्पित सा करते हुए युद्ध के वेग से उस रथ पर सवार हुए॥५५।५८॥ उस समय महर्षिगण उनकी स्तुति और बन्दीजन वन्दना करने लगे। नृत्य-निपुण अप्सराएँ नाचने लगीं। खड्ग, धनुष और बाण से शोभित, वरदानी देवदेव शङ्कर हँसकर कहने लगे—हे देवताओ ! अब मेरा सारथी कौन होगा ?॥५९।६१॥हे राजेन्द्र ! तब देवताओं ने कहा—हे महादेव ! आप जिसे कहेंगे वही आपका सारथी होगा । तब महादेव ने उन लोगों से कहा—तुम लोग आपही विचारकर शीघ्र ऐसे पुरुष को मेरा सारथी बनाओ, जो मुझसे श्रेष्ठ हो॥६२।६३॥ यह सुनकर पितामह ब्रह्मा के निकट जाकर, प्रणाम करके, महर्षियों सहित देवताओं ने उन्हें प्रसन्न किया

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः ।
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥ ४७ ॥
कालो हि भगवान्रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः ।
तस्माद्रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥ ४८ ॥
इषुश्चाप्यभवद्विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च ।
अग्नीषोमौ जगत्कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ४९ ॥
विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ५० ॥
तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः ।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ५१ ॥
स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासा भयङ्करः ।
आदित्यायुतसङ्काशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ५२ ॥
दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः ।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान्नरान् ॥ ५३ ॥
प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः ।
विभाति भगवान्स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥ ५४ ॥

रक्षा करने वाले नियुक्त हुए।पुराण और इतिहास सहित ऋग्वेद,सामवेद और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक हुए,समस्त स्तोत्र आदि,दिव्य वाक्य, विद्या और वषट्कार पार्श्वचर हुए। ॐकार रथ के सम्मुख शोभित हुआ॥४३।४६॥छहों ऋतुओं से विचित्र संवत्सर को दिव्य धनुष बनाकर शङ्कर ने अपनी अक्षय ध्रुव छाया को ही उस धनुष की अक्षय प्रत्यञ्चा(डोरी)कल्पित किया। भगवान् रुद्र स्वयं कालरूप हैं, संवत्सर उनका धनुष हुआ और रुद्र की कालरात्रि ही उस धनुष की सुदृढ़ प्रत्यञ्चा बनी।*अथर्व और अङ्गिरा इस रथ के चक्ररक्षक हुए। दिव्य रथ की कल्पना हो चुकने पर अव्यय यज्ञवाहन हरि विष्णु भगवान् ही वह बाण बने। बाण की गाँसी अग्नि और चन्द्रमा कल्पित हुए।हे राजेन्द्र!यह सम्पूर्ण जगत् अग्नी षोम(अग्नि-चन्द्र) मय कहा गया है।भगवान् विष्णु इस जगत् भर में व्याप्त हैं। भगवान् विष्णु कोई और नहीं, महातेजस्वी शङ्कर का ही स्वरूप हैं। इसी कारण असह्य धनुष और प्रत्यञ्चा के स्पर्श को असुर नहीं सह सके॥४७।५०॥शङ्कर ने उस बाण में अपना तीक्ष्ण, उग्र, अत्यन्त दुःसह क्रोध स्थापित किया। भृगु और अङ्गिरा के मन्यु से उत्पन्न अत्यन्त दुःसह क्रोधाग्नि उस बाण में प्रज्वलित हो उठी। नीललोहित, धूम्रवर्ण, कृत्तिवासा, अभयदाता, तेज की ज्वालाओं से मण्डित, भव,सहस्रों सूर्यों के समान प्रज्वलित, दुर्द्धर्ष, संहारकर्त्ता, विजेता, वेद के और ब्राह्मणों के द्रोहियों को मारनेवाले, अपने अङ्गों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाले, अद्भुत दर्शन शङ्कर ने चराचर जगत् को प्रकाशित और

*मन्त्रों के ज्ञाता ऋषियों ने आगे दाहनी ओर ऋग्वेद को, बाईं ओर सामवेद को, पीछे दाहनी ओर यजुर्वेद को और बाईं ओर अथर्ववेद को स्थापित किया। यज्ञ की विधि जाननेवाले ऋषियों ने इस स्थान पर उन वेदों को घोड़ों के स्थान पर कल्पित किया और वे यज्ञभूमि में शोभित से दिखाई पड़ने लगे।

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् ।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५५ ॥
दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची सशरासनी ।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसम्भवम् ॥ ५६ ॥
तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो ।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥ ५७ ॥
तमास्थाय महादेवस्त्रासयन्दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ५८ ॥
तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५९ ॥
ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥ ६० ॥
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद्देवान्सारथिः को भविष्यति ॥ ६१ ॥
तमब्रुवन्देवगणा यं भवान्संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥
तानब्रवीत्पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं सञ्चिन्त्य मा चिरम् ॥ ६३ ॥
एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥
यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥ ६५ ॥

शोभायमान कर दिया॥५२।५४॥कवच और धनुष धारण किये हुए महात्मा भीमव्रत, भीमरूप शङ्कर ने दिव्य रथ सुसज्जित देखकर अपने हाथ में वह चन्द्र-अग्नि-विष्णुमय दिव्य बाण लिया। भगवान् महादेव वह बाण हाथ में लेकर दैत्य-दानवों को भयविह्वल और पृथ्वी एवं आकाश को कम्पित सा करते हुए युद्ध के वेग से उस रथ पर सवार हुए॥५५।५८॥ उस समय महर्षिगण उनकी स्तुति और बन्दीजन वन्दना करने लगे। नृत्य-निपुण अप्सराएँ नाचने लगीं। खड्ग, धनुष और बाण से शोभित, वरदानी देवदेव शङ्कर हँसकर कहने लगे—हे देवताओ! अब मेरा सारथी कौन होगा?॥५९।६१॥हे राजेन्द्र! तब देवताओं ने कहा—हे महादेव! आप जिसे कहेंगे वही आपका सारथी होगा। तब महादेव ने उन लोगों से कहा—तुम लोग आपही विचारकर शीघ्र ऐसे पुरुष को मेरा सारथी बनाओ, जो मुझसे श्रेष्ठ हो॥६२।६३॥ यह सुनकर पितामह ब्रह्मा के निकट जाकर, प्रणाम करके, महर्षियों सहित देवताओं ने उन्हें प्रसन्न किया

रथश्च विहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं च न जानीमः कः स्यात्तस्मिन्रथोत्तमे ॥ ६६ ॥
तस्माद्विधीयतां कश्चित्सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्त्तुमर्हसि नो विभो ॥ ६७ ॥
एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितकर्तास्मि भवतामिति तत्कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥
स देव युक्तो रथसत्तमो नो दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा विभीषयन्दानवानुद्यतोऽसौ ६९ ॥
तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या धरा सशैला च रथो महात्मनः ।
नक्षत्रवंशानुगतो वरूथी हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥ ७० ॥
तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ॥ ७१ ॥
कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ।
त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ॥ ७२ ॥
त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो ।
स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान्हयान् ॥ ७३ ॥
जयाय त्रिदिवेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम् ।
इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् ।
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम् ॥ ७४ ॥

और कहा—हे देव! आपने दानवों के नाश के निमित्त जो यत्न बताया था वही हमने किया। शङ्कर ने प्रसन्न होकर हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। हम लोगों ने विचित्र सामान और शस्त्रों सहित दिव्य रथ भी उनके निमित्त बना लिया है। हमें अब यह नहीं सूझता कि उस श्रेष्ठ रथ को चलानेवाला सारथी कौन हो। इसलिए हे देव श्रेष्ठ! कोई सारथी आप बताइए। हे देव! आप पहले जो हमारा उपकार और सहायता करने का वचन दे चुके हैं, उसे अब पूर्ण कीजिए॥६४।६७॥यह दुर्द्धर्ष श्रेष्ठ रथ सदा जुता हुआ प्रस्तुत रहनेवाला और शत्रुओं को भगानेवाला है। पिनाकपाणि शङ्कर उसके योद्धा बनाये गये हैं, जो कि दानवों को भयभीत करते हुए उनका नाश करने को उद्यत हैं। हे श्रेष्ठ रथी! यह पर्वतों सहित पृथ्वीमण्डल ही महात्मा शङ्कर का रथ है। उसके घोड़े चारों वेद हैं। नक्षत्रगण और वरूथ आदि अङ्ग उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। अब उसमें योद्धा की रक्षा और सहायता करनेवाले सारथी की ही न्यूनता (कमी) है॥६८।७०॥सब देवताओं से भी श्रेष्ठ महापुरुष ही उसमें सारथी का कार्य कर सकता है। सब देवता तो अपने-अपने तेज के द्वारा उस रथ में—रथ के योद्धा में—कवच, शस्त्र और धनुष आदि में प्रवेश कर चुके हैं। हमें तो उस रथ के उपयुक्त श्रेष्ठ सारथी आप ही देख पड़ते हैं। हे प्रभो! आप सब श्रेष्ठ गुणों से युक्त और सब देवताओं से श्रेष्ठ हैं। हे देव! आप ही इन वेद-उपनिषद्-रूपी घोड़ों के वेग को रोक सकते हैं।

पितामह उवाच—नात्र किञ्चिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः ।
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः ।
ततः स भगवान्देवो लोकस्रष्टा पितामहः ॥ ७५ ॥
सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः ।
तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते ॥ ७६ ॥
शिरोभिरगमन्भूमिं ते हया वातरंहसः ।
आरुह्य भगवान्देवो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ७७ ॥
अभीषून्हि प्रतोदं च सञ्जग्राह पितामहः ।
तत उत्थाप्य भगवांस्तान्हयाननिलोपमान् ॥ ७८ ॥
बभाषे च तदा स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः ।
ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्निसम्भवम् ॥ ७९ ॥
आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन्परान् ।
तमारूढं तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥ ८० ॥
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥ ८१ ॥
प्रदीपयन्रथे तस्थौ त्रींल्लोकान्स्वेन तेजसा ।
ततो भूयोऽब्रवीद्देवो देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ८२ ॥
न हन्यादिति कर्त्तव्यो न शोको वः कथञ्चन ।
हतानित्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥ ८३ ॥
ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन् ।
न च तद्वचनं मिथ्या यदाह भगवान्प्रभुः ॥ ८४ ॥
इति सञ्चिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन् ।
ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ८५ ॥

हे भगवन्! आपके प्रसाद से देवताओं के शत्रु नष्ट हो जायँगे। इस प्रकार कहकर देवताओं ने ब्रह्मा जी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सारथी बनने के लिए प्रार्थना की॥७१।७४॥ अपनी जय और शत्रुओं के पराजय के निमित्त प्रयत्न कर रहे देवताओं से ब्रह्मा ने कहा—हे देवताओ! तुम्हारा कहना युक्त है। मैं महात्मा शङ्कर का सारथी बनूँगा। भगवान् ब्रह्मा हाथ में चाबुक लेकर ज्योंही रथ पर सवार हुए त्योंही घोड़ों ने माथा झुका दिया। तब पितामह ने रास के सहित से बैठकर घोड़ों को उठाया और महादेवजी से बैठने को कहा। उस समय देवताओं ने शङ्कर की स्तुति की॥७४।७७॥ तब रथ पर सवार वरदानी शङ्कर ने मुसकराकर देवताओं से कहा कि अब तुम असुरों को मरा हुआ ही समझो। इसलिए शोक करना छोड़ो। महादेव की बात को सर्वथा सत्य मानकर देवता परम सन्तुष्ट हुए॥७८।८२॥ भगवान् नीलकण्ठ उस अनुपम रथ पर सवार होकर, देवताओं से घिर करके, आगे बढ़े। नीलकण्ठ के दुर्दर्ष गण—जो कि चिंघाड़ते, गरजते और दौड़ते और

रथेन महता राजन्नुपमा नास्ति यस्य ह ।
स्वैश्च पारिषदैर्देवः पूज्यमानो महायशाः ॥ ८६ ॥
नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्षैर्दुरासदैः ।
धावमानैः समन्ताच्च तर्जमानैः परस्परम् ॥ ८७ ॥
ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः ।
आशंसुर्वै जना देवा महादेवस्य सर्वशः ॥ ८८ ॥
एवं प्रयाते देवेशे लोकानामभयङ्करे ।
तुष्टमासीज्जगत्सर्वं देवताश्च नरोत्तम ॥ ८९ ॥
ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः ।
तेजश्चास्मै वर्धयन्तो राजन्नासन्पुनः पुनः ॥ ९० ॥
गन्धर्वाणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
वादयन्ति प्रयाणेऽस्य वाद्यानि विविधानि च ॥ ९१ ॥
ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान्प्रति ।
साधुसाध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ९२ ॥
याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः ।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान्रणे ॥ ९३ ॥
ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
येन तत्त्रिपुरं राजन्दैत्यदानवरक्षितम् ॥ ९४ ॥
पिबद्भिरिव चाकाशं तैर्हयैर्लोकपूजितैः ।
जगाम भगवान्क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम् ॥ ९५ ॥
प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे ।
ननाद सुमहानादं वृषभः पूरयन्दिशः ॥ ९६ ॥

नाचते थे—उनकी पूजा कर रहे थे। तपस्वी महर्षि और देवता लोग महादेवजी की विजय-कामना करने लगे। जब अभयदाता महादेव युद्ध करने को चले ॥८२।८६॥ तब सम्पूर्ण जगत् और देवता प्रसन्न हुए। ऋषि लोग महादेवजी का तेज बढ़ाते हुए उनकी स्तुति करने लगे। गन्धर्वगण भाँति-भाँति के बाजे बजाने लगे॥८७।९१॥ असुरों पर चढ़ाई करने को यात्रा करते ही महादेव ने ब्रह्मा की प्रशंसा करके कहा—"हे देव! घोड़ों को हाँककर रथ को वहाँ ले चलो जहाँ पर दानव हैं। आज मैं रण में शत्रुओं को मारूँगा। तुम मेरा बाहुबल देखो।" हे महाराज! तब ब्रह्मा जी ने आकाश में स्थित प्रबल प्रतापी दानवों के पुरों को लक्ष्य करके मन और वायु के समान वेग से चलनेवाले घोड़ों को हाँक दिया। बस, वे वेदरूप घोड़े चल खड़े हुए। क्षण भर में उन्होंने शिव को दैत्यों के त्रिपुर के समीप पहुँचा दिया। लोक-पूजित रथ पर सवार भगवानजी जब दानवों के जीतने को आगे बढ़े तब ध्वजा में स्थित बैल ने अपने शब्द से दिशाओं को गुँजा दिया

वृषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत् ।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः ॥ ९७ ॥
अपरेऽवस्थितास्तत्र युद्धायाभिमुखास्तदा ।
ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोधमूर्छितः ॥ ९८ ॥
त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते ।
निमित्तानि च घोराणि तत्र सन्दधतः शरम् ॥ ९९ ॥
तस्मिन्सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः ।
स रथो धनुषः क्षोभादतीव ह्यवसीदति ॥ १०० ॥
ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद्विनिःसृतः ।
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम् ॥ १०१ ॥
सीदमाने रथे चैव नर्दमानेषु शत्रुषु ।
स सम्भ्रमात्तु भगवान्नादं चक्रे महाबलः ॥ १०२ ॥
वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद ।
तदा स भगवान्रुद्रो निरैक्षद्दानवं पुरम् ॥ १०३ ॥
वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम ।
स्तनांस्तदाशातयत खुरांश्चैव द्विधाकरोत् ॥ १०४ ॥
ततः प्रभृति भद्रं ते गवां द्वैधीकृताः खुराः ।
हयानां च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन् ॥ १०५ ॥
पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा ।
अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः सन्धाय तं शरम् ॥ १०६ ॥
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ।
तस्मिंस्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ॥ १०७ ॥

॥९२।९६॥उस भयङ्कर शब्द को सुनकर बहुत से दैत्य तो मर गये और बहुत से युद्ध के निमित्त प्रस्तुत हो गये। महादेव को क्रोधित देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये;तीनों लोक कम्पित हो गये। बड़े भयङ्कर लक्षण प्रकट हुए। सोम, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र, के क्षोभ से तथा उस धनुष के सञ्चालन से वह रथ रुक गया॥९७।१००॥तब उस बाण से निकलकर नारायण ने, बैल का रूप रखकर, उस रथ का उद्धार किया। रथ के रुक जाने और शत्रुओं के गरजने से पराक्रमी महादेवजी घोड़ों की पीठ और बैल के माथे पर ठहरकर सिंहनाद करते-करते दानवों के पुर को देखने लगे। उन्होंने घोड़ों के स्तन पृथक् करके बैल के खुरों को मध्य से चीर दिया। तभी से घोड़ों के स्तन नहीं होते और बैलों (गोजाति) के खुर मध्य से फटे हुए होते हैं॥१०१।१०५॥शिव ने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उस पर, पाशुपत अस्त्र से युक्त करके, वह बाण चढ़ाया और त्रिपुर का स्मरण किया। रुद्र जिस समय इस प्रकार धनुष चढ़ाकर खड़े हुए उसी समय वे तीनों

पुराणि तानि कालेन जग्मुरेकैकतां तदा ।
एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते ॥१०८॥
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१०९॥
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महेश्वरम् ।
ततोऽग्रतः प्रादुरभूत्त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान् ॥११०॥
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ।
स तद्विकृष्य भगवान्दिव्यं लोकेश्वरो धनुः ॥१११॥
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।
उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिन्त्रिपुरवरे तदा ॥११२॥
महानार्तस्वरो ह्यासीत्पुराणां पततां भुवि ।
तान्सोऽसुरगणान्दग्ध्वा प्राक्षिपत्पश्चिमार्णवे ॥११३॥
एवं तु त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥११४॥
स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ॥११५॥
ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्तथर्षयः ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥११६॥
तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रयत्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः ॥११७॥

पुर, जो पृथक्-पृथक् थे, एक में मिल गये। तीनों पुरों के एक में मिल जाने पर देवगण बहुत हर्षित हुए। उस समय देवगण, सिद्धगण और ऋषि लोग महेश्वर की स्तुति और जय जयकार करने लगे॥१०६।११०॥ असह्य तेजवाले, अनिर्देश्य, श्रेष्ठ रूप धारण किये हुए और असुरों को मारने के निमित्त उद्यत शङ्कर के सम्मुख वे तीनों पुर उसी समय एकत्र स्थित होकर प्रकट हुए। पिनाकपाणि भगवान् ने त्रिपुर को सम्मुख देखकर अपना दिव्य धनुष खींचा और उस पर त्रैलोक्य का सारांश स्वरूप वह विष्णुमय बाण चढ़ाकर छोड़ दिया। हे राजन्! महेश्वर ने इस प्रकार एक ही बाण से दैत्यों सहित उस दुर्भेद्य त्रिपुर को नष्ट कर दिया। बाण के तेज की अग्नि से वह त्रिपुर दग्ध हो गया। दैत्यों के महान् आर्तनाद से गूँज रहा त्रिपुर पश्चिम सागर में गिरकर नष्ट हो गया॥११०।११३॥ हे महराज! त्रैलोक्य का हित चाहने वाले शङ्कर ने कुपित होकर इस प्रकार त्रिपुर सहित सब दानवों को नष्ट कर दिया। भगवान् रुद्र के क्रोध से उत्पन्न वह अग्नि शङ्कर के "भस्म कर" यों कहने के कारण त्रिपुर को भस्म करने के पश्चात् भी शान्त नहीं हुई और त्रिभुवन को भस्म करने लगी। प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रचण्ड उस अग्नि को फिर त्रिभुवन को भस्म करने के निमित्त प्रस्तुत देखकर शङ्कर ने कहा— "बस' अब लोकों को भस्म न करना।" शङ्कर के यों

एवं स भगवान्देवो लोकस्रष्टा महेश्वरः ।
देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम् ॥११८॥
यथैव भगवान्ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र रुद्रस्य परमोऽव्ययः ॥११९॥
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ।
संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥१२०॥
त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः ।
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा ॥१२१॥
युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमो नये ।
तस्माच्छक्तो भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान् ॥१२२॥
यथा शल्याद्य कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
प्रमथ्य हन्यात्कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥१२३॥
त्वयि मद्रेश राज्याशा जीविताशा तथैव च ।
विजयश्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः ॥१२४॥
त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः ।
विजयश्चैव संग्रामे संयच्छाद्य हयोत्तमान् ॥१२५॥
इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे ।
पितुर्मम सकाशे यद्ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥१२६॥
श्रुत्वा चैतद्वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम् ।
कुरु शल्य विनिश्चित्य मा भूदत्र विचारणा ॥१२७॥

कहते ही अग्नि शान्त हो गई। तब महर्षियों सहित सब लोक प्रकृतिस्थ हुए। देवता और ऋषि लोग श्रेष्ठ वचनों से शङ्कर की स्तुति करने लगे। इसके उपरान्त कामना पूर्ण हो जाने से ब्रह्मा सहित सब देवता और ऋषि आदि, प्रसन्नचित्त शङ्कर की आज्ञा प्राप्त कर, अपने-अपने लोक को चले गये॥११४।११७॥हे मद्र-राज! इस प्रकार लोक-पितामह ब्रह्मा ने देवदेव शङ्कर का रथ हाँका था। इसलिए आप भी वीर कर्ण के सारथी का कार्य कीजिए॥११८।१२०॥गुणों में, बल में, रूप में, अस्त्रज्ञान और अन्य सब बातों में आप न केवल कर्ण से ही, किन्तु कृष्ण और अर्जुन से भी बढ़-कर हैं। ये कर्ण युद्ध में शङ्कर के समान हैं, और आप भी नीतिज्ञान आदि सब विषयों में ब्रह्मा के तुल्य हैं। आप दोनों मिलकर मेरे शत्रुओं को सहज में परा-जित कर सकते हैं। हे शल्य! आप वही कीजिए जिसमें कृष्ण जिनके सारथी हैं उन अर्जुन को ये कर्ण संग्राम में बलपूर्वक नष्ट कर सकें॥१२१।१२३॥ हे महीपाल! मेरा राज्य, सुख, जीवन और कर्ण के द्वारा जय सब आपकी ही सहायता पर निर्भर है। आप मेरा हित कीजिये। हे शत्रुदमन! मेरा प्रिय करने के निमित्त आप कर्ण के सारथी बनिए। हे मद्रराज! मैं एक और इतिहास आपके आगे कहता हूँ। यह इतिहास एक धर्मज्ञ ब्राह्मण ने मेरे पिता के आगे कहा था। हे शल्य! आप कारण-कार्य-प्रयोजन

भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महायशाः ।
तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥१२८॥
स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान्भवम् ।
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥१२९॥
तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च ।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥१३०॥
महेश्वर उवाच—राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम् ।
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ॥१३१॥
दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि ।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥१३२॥
इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना ।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥१३३॥
यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे ।
तदा शुश्रूषतेऽस्त्राणि भवान्मे दातुमर्हति ॥१३४॥
दुर्योधन उवाच—ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च ।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥१३५॥
आराधयितवाञ्शर्वं बहून्वर्षगणांस्तदा ।
प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥१३६॥
अब्रवीत्तस्य बहुशो गुणान्देव्याः समीपतः ।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥१३७॥

के तत्त्व से युक्त यह विचित्र इतिहास सुनकर मेरा कथन मान लीजिए; अधिक सोच विचार न कीजिए ॥१२४।१२७॥भार्गव कुल में उत्पन्न महातपस्वी जमदग्नि ऋषि के राम (परशुराम) नाम के एक पुत्र महातेजस्वी और श्रेष्ठ गुणों से अलङ्कृत थे। उन्होंने अस्त्र प्राप्त करने के निमित्त शुद्धचित्त जितेन्द्रिय होकर नियमपूर्वक तीव्र तप करके महादेव को प्रसन्न किया। उनकी भक्ति और शान्ति से महादेव सन्तुष्ट हुए ॥१२८।१३०॥लोकों का कल्याण करनेवाले शङ्कर ने उनके हृदय का भाव जानकर उनके आगे प्रकट होकर कहा—हे राम! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ और मुझे तुम्हारी अभिलाषा अच्छी प्रकार मालूम है। तुम अपने चित्त को पवित्र बनाओ। पवित्र होते ही मैं तुम्हें, इच्छा के अनुसार, सब अस्त्र दे दूँगा। हे भार्गव! जो व्यक्ति अयोग्य और असमर्थ होता है उसे दिव्य अस्त्र अपने तेज से भस्म कर देते हैं॥१३१।१३२॥शूलपाणि महात्मा शङ्कर के यों कहने पर परशुराम ने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—हे देवेश! मैं आपका सेवक हूँ। जब आप मुझे अस्त्र ग्रहण करने के योग्य समझियेगा तभी अस्त्र देकर कृतार्थ कीजियेगा॥१३३।१३४॥राजा दुर्योधन शल्य से कहते हैं—अब महात्मा भार्गव फिर तप करने लगे। उन्होंने व्रत-नियम आदि का पालन करते हुए पूजा उपहार बलि-हवन-मन्त्रपाठ आदि के द्वारा

एवं तस्य गुणान्प्रीतो बहुशोऽकथयत्प्रभुः ।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदन ॥ १३८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या ह्यासन्महाबलाः ।
तैस्तदा दर्पमोहाद्यैर्बाध्यन्त दिवौकसः ॥ १३९ ॥
ततः सम्भूय विबुधास्तान्हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान् ॥ १४० ॥
अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमुमापतिम् ।
प्रासादयंस्तदा भक्त्या जहि शत्रुगणानिति ॥ १४१ ॥
प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शङ्करः ॥ १४२ ॥
रिपून्भार्गव देवानां जहि सर्वान्समागतान् ।
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ॥ १४३ ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यम्बकं वरदं प्रभुम् ।
राम उवाच—का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे ॥ १४४ ॥
निहन्तुं दानवान्सर्वान्कृतास्त्रान्युद्धदुर्मदान् ।
महेश्वर उवाच—गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान् ॥ १४५ ॥
विजित्य च रिपून्सर्वान्गुणान्प्राप्स्यसि पुष्कलान् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥ १४६ ॥
रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान्प्रति ।
अब्रवीद्देवशत्रूंस्तान्महादर्पबलान्वितान् ॥ १४७ ॥

कई वर्ष तक शङ्कर की आराधना की। तब महादेवजी परशुराम पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वतीजी के आगे बारम्बार परशुराम के गुणों का वर्णन करके कहा—"ये दृढ़-व्रतधारी परशुराम मेरे परम भक्त हैं।" हे शत्रुदमन शाम्ब! भगवान् शङ्कर ने इस प्रकार प्रसन्न होकर कई बार देवताओं और पितरों के आगे परशुराम के गुणों का वर्णन किया॥१३५। १३८॥ हे महाराज! इसी अवसर पर दैत्य महाबली हो उठे। दर्प और मोह के वश होकर वे देवताओं को सताने लगे। तब दैत्यों के संहार का निश्चय करके सब देवताओं ने शत्रुओं के विनाश का उद्योग किया; परन्तु किसी प्रकार वे दैत्यों को पराभ न कर सके। उस समय सब देवता उमापति महेश्वर के निकट गये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रसन्न करके कहने लगे—"हे देवदेव! आप हमारे शत्रुओं का नाश कीजिये" ॥१३९।१४१॥ शङ्कर ने देवताओं से उनके शत्रुओं का विनाश करने की प्रतिज्ञा की और परशुराम को बुलाकर कहा—"हे भार्गव! सब लोकों का कल्याण और मेरा प्रिय करने के निमित्त तुम सम्पूर्ण देवताओं के शत्रु दानवों का विनाश करो।" शिव की आज्ञा सुनकर परशुराम ने कहा—"हे देवेश! मैं तो अस्त्रविद्या नहीं जानता और दानवगण हैं अस्त्रविद्या में निपुण तथा प्रचण्ड योद्धा। फिर मैं किस प्रकार उन्हें मार सकूँगा!"॥ १४२।१४५॥ महादेव ने परशुराम से कहा—हे भार्गव!

मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः ।
प्रेषितो देवदेवेन वो विजेतुं महासुराः ॥ १४८ ॥
इत्युक्ता भार्गवेणाथ दैत्या युद्धं प्रचक्रमुः ।
स तान्निहत्य समरे दैत्यान्भार्गवनन्दनः ॥ १४९ ॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः ।
स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ॥ १५० ॥
संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ।
प्रीतश्च भगवान्देवः कर्मणा तेन तस्य वै ॥ १५१ ॥
वरान्प्रादाद्बहुविधान्भार्गवाय महात्मने ।
उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥ १५२ ॥
निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे या भवद्रुजा ।
तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥ १५३ ॥
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशाद्यथेप्सितम् ।
दुर्योधन उवाच—ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ॥ १५४ ॥
लब्ध्वा बहुविधान्रामः प्रणम्य शिरसा भवम् ।
अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः ॥ १५५ ॥
एवमेतत्पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः ।
भार्गवोऽपि ददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने ॥ १५६ ॥
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ।
वृजिनं हि भवेत्किञ्चिद्यदि कर्णस्य पार्थिव ॥ १५७ ॥

तुम मेरी आज्ञा से जाओ, मेरी कृपा से देवताओं के शत्रुओं को मार सकोगे। मैं कहता हूँ, सब शत्रुओं को जीतकर तुम सब अस्त्रों और गुणों के अधिकारी बनोगे। हे शल्य! शङ्कर के ये वचन सुनकर और उन्हें पूर्ण रूप से मान करके, स्वस्त्ययन आदि के उपरान्त,पराक्रमी परशुराम दानवों को मारने के निमित्त चल पड़े। अब भार्गव ने दर्प और बल से युक्त देव-द्रोही दानवों को युद्ध के निमित्त ललकारकर सूचना दी कि मुझे शङ्कर ने तुम्हारे नाश के निमित्त भेजा है॥१४५।१४८॥फिर उन्हें वज्र के समान असह्य बाणों के प्रहार से ही जीत लिया। युद्ध में दानवों के प्रहारों से परशुराम घायल हो गये थे; किन्तु शङ्कर के हाथ फेरते ही उनके सब घाव अच्छे हो गये॥१४९।१५१॥ भगवान् शङ्कर ने परशुराम के इस कार्य से प्रसन्न होकर उन्हें बहुत से वर दिये। देवदेव शूलपाणि ने प्रीतिपूर्वक परशुराम से कहा—हे भृगुनन्दन! तुमने निरन्तर शस्त्र-प्रहार से पीड़ित होकर भी दानवों के अस्त्रों को सहकर वह कार्य किया है जिसे मनुष्य नहीं कर सकते। तुम्हारे इस अलौकिक कार्य से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अब अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे सब दिव्य अस्त्र ले लो॥१५१।१५४॥दुर्योधन कहते हैं—इसके पश्चात् परशुराम ने अपनी अभिलाषा के अनुसार दिव्य अस्त्र और अन्य अनेक दुर्लभ वर शिव से प्राप्तकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनसे आज्ञा प्राप्तकर वे अपने

नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद्भृगुनन्दनः ।
नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथञ्चन ॥ १५८ ॥
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम् ।
विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मतिर्मम ॥ १५९ ॥
सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः ।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥ १६० ॥
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ।
यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ ॥ १६१ ॥
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
नत्वेष प्राकृतः कश्चित्कर्णो वैकर्त्तनो वृषः ॥ १६२ ॥
महात्मा ह्येष राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ १६३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

आश्रम को गये । हे महाराज ! महर्षि ने इस प्राचीन इतिहास का वर्णन मेरे पिता के आगे किया था । उन्हीं महा-तेजस्वी परशुराम ने प्रसन्न होकर वीर कर्ण को वे सब अस्त्र दिये और धनुर्वेद बता दिया॥१५४।१५७॥हे महाराज ! इन वीर कर्ण में किसी प्रकार का दोष नहीं है । इन्हें सूत ने पाला है, इसी से ये सूत-पुत्र कहलाते हैं । परशुराम ने इन्हें जन्म से विशुद्ध जानकर ही दिव्य अस्त्र दिये हैं । मुझे तो ये कोई क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न देवकुमार से प्रतीत होते हैं । अवश्य ही कोई देवबाला या क्षत्रिय-कन्या इन्हें इस प्रकार छोड़ गई होगी, जिसमें इनके कुल का पता न चले । हे शल्य ! चाहे जिस प्रकार देखो, ये कर्ण किसी प्रकार भी सूतकुल के लड़के नहीं जान पड़ते । आप ही सोचिए, कहीं मृगी के गर्भ से सिंह उत्पन्न होता है ? जन्म से ही कवच-कुण्डल धारण किये, विशालबाहु, सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुदमन कर्ण को एक साधारण सूत की स्त्री कैसे उत्पन्न कर सकती है?॥१५८।१६०॥ इनकी भुजाओं को तो देखिए, कैसी विशाल, मोटी, हाथी की सूँड के समान हैं । इनका विशाल वक्षःस्थल देखिए,जो संग्राम में सभी शस्त्रों के प्रहार सहने में समर्थ है । ये परशुराम के शिष्य, प्रतापी, वीरश्रेष्ठ, दानी, वैकर्तन कर्ण कोई साधारण पुरुष नहीं है॥१६१।१६३॥

कर्ण पर्व का चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दुर्योधन उवाच—एवं स भगवान्देवः सर्वलोकपितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद्रथी ॥ १ ॥
रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्त्तव्यो रथसारथिः ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान्युधि ॥ २ ॥
यथा देवगणैस्तत्र वृत्तो यत्नात्पितामहः ।
तथास्माभिर्भवान्यत्नात्कर्णाद्भ्यधिको वृतः ॥ ३ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३५ ॥

दुर्योधन ने कहा—हे वीर! इस प्रकार सब लोकों के पितामह ब्रह्मा ने रथी रुद्र के सारथी का कार्य किया

यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः ।
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ॥ ४ ॥
नियच्छ तुरगान्युद्धे राधेयस्य महाद्युते ।
मयाप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशो नरसिंहयोः ॥ ५ ॥
कथ्यमानं श्रुतं दिव्यमाख्यानमतिमानुषम् ।
यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः ॥ ६ ॥
यथासुराश्च निहता इषुणैकेन भारत ।
कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत्पुरा ह्यभूत् ॥ ७ ॥
यथा पितामहो जज्ञे भगवान्सारथिस्तदा ।
अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः ॥ ८ ॥
एतदर्थं विदित्वापि सारथ्यमुपजग्मिवान् ।
स्वयम्भूरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत ॥ ९ ॥
यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथञ्चन ।
दृष्ट्वा पार्थं हि निहतं स्वयं योत्स्यति केशवः ॥ १० ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम् ।
न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः ॥ ११ ॥
स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव ।
सञ्जय उवाच—तं तथा भाषमाणं तु मद्रराजमरिन्दमः ॥ १२ ॥
प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव ।
मावमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्त्तनं रणे ॥ १३ ॥

है। सारांश यह कि रथ का सारथी उसी को बनाना चाहिए जो रथी से अधिक हो।इसलिए हे वीर।आप सग्राम में कर्ण का रथ हाँकना स्वीकार कीजिए। देवताओं ने जैसे पितामह ब्रह्मा को शङ्कर से अधिक जानकर सारथी बनाया था, वैसे ही हम लोग आपको कर्ण की अपेक्षा अधिक वीर्यशाली समझकर आपसे कर्ण का रथ हाँकने की प्रार्थना करते हैं॥ १।५॥शल्य ने कहा—हे दुर्योधन ! जिस प्रकार ब्रह्मा शङ्कर के सारथी बने और जिस प्रकार शङ्कर ने एक ही बाण से त्रिपुर और दानवों को मारा, सो मैं भी कई बार सुन चुका हूँ। सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा और शङ्कर के सम्बन्ध का यह अलौकिक उपाख्यान मैं भी जानता हूँ और भूत-भविष्य के ज्ञाता महात्मा श्रीकृष्ण भी जानते हैं। पितामह ब्रह्मा रुद्र के सारथी बने थे और रथी की अपेक्षा श्रेष्ठ सारथी होना चाहिए, यह समझकर ही पितामह-तुल्य श्रीकृष्ण रुद्र-सदृश अर्जुन के सारथी बने हैं॥५।९॥किन्तु मैं सत्य कहता हूँ, यदि किसी प्रकार कर्ण अर्जुन को मार डालने में समर्थ भी हुए, तो श्रीकृष्ण स्वयं शङ्ख-चक्र-गदा हाथ में लेकर युद्ध करेंगे और तुम्हारी सम्पूर्ण सेना को भस्म कर देंगे। जब स्वयं कृष्णचन्द्र कुपित होकर आक्रमण करेंगे तब कौरव पक्ष में कोई भी राजा उनके सम्मुख स्थित नहीं हो सकेगा॥१०।१२॥सञ्जय कहते हैं कि हे नरनाथ ! इस प्रकार कह रहे शल्य से दुर्योधन ने फिर उत्साहपूर्ण स्वर में कहा—हे महाबाहो ! आप महाबाहु कर्ण

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ।
यस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥ १४ ॥
पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश ।
प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः ॥ १५ ॥
मायाशतानि कुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः ।
न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथञ्चन ॥ १६ ॥
एतांश्च दिवसान्सर्वान्भयेन महतावृतः ।
भीमसेनश्च बलवान्धनुष्कोट्याभिचोदितः ॥ १७ ॥
उक्तश्च संज्ञया राजन्मूढ औदरिको यथा ।
माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥ १८ ॥
कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतौ युधि मारिष ।
येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ १९ ॥
निर्जित्य समरे शूरो विरथश्च बलात्कृतः ।
सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ २० ॥
असकृन्निर्जिताः सङ्ख्ये स्मयमानेन संयुगे ।
तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम् ॥ २१ ॥
यो हन्यात्समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरन्दरम् ।
त्वं च सर्वास्त्रविद्वीरः सर्वविद्यास्त्रपारगः ॥ २२ ॥
बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविषह्यः पराक्रमे ॥ २३ ॥

को किसी से न्यून न समझिए। शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ और शास्त्रों को अच्छी प्रकार जाननेवाले कर्ण का अनादर न कीजिए। उनकी प्रत्यञ्चा के भयङ्कर शब्द को सुनकर ही पाण्डवों की सेना इधर-उधर भागने लगती है। हे वीर! आपके सम्मुख ही उस दिन, रात्रि-युद्ध में सैकड़ों माया दिखा रहे, महामायावी घटोत्कच को कर्ण ने मारा है॥१३।१६॥ इतने दिनों तक भय के मारे अर्जुन ने कभी युद्ध में कर्ण का सामना नहीं किया; [क्योंकि वीर कर्ण के समीप अमोघ शक्ति थी।] महाबली भीमसेन एक महारथी योद्धा हैं। सो उन्हें रथहीन तथा शस्त्रहीन करके उनके कण्ठ में धनुष की प्रत्यञ्चा डालना और धनुष का कोंचा मारकर, मूढ़ पेटू कहकर, उन्हें लज्जित करना वीर कर्ण का ही कार्य था। शूर नकुल और सहदेव को महारण में जीतकर भी, किसी गूढ़ प्रयोजन से ही, कर्ण ने नहीं मारा। यादव-श्रेष्ठ वृष्णिवंश के वीर शूर सात्यकि को समर में परास्त करके कर्ण ने रथहीन कर दिया था। धृष्टद्युम्न आदि सभी पाञ्चालों को कर्ण ने युद्ध में सुगमता से ही बारम्बार पराजित कर दिया है। महारथी कर्ण कुपित होकर समर में वज्रपाणि इन्द्र को भी मार सकते हैं। उन्हीं कर्ण को युद्ध में पाण्डव कैसे जीत सकेंगे?॥१७।२१॥ हे वीर! आप भी सब अस्त्रों के जाननेवाले तथा सब विद्याओं के पारदर्शी हैं। पृथ्वी भर पर कोई वीर बाहुबल में आपके समान नहीं है।

यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित् ।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यं परन्तप ॥ ४२ ॥
यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये ।
मम तत्क्षमतां सर्वं भवान्कर्णश्च सर्वशः ॥ ४३ ॥
कर्ण उवाच—ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः ।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः ॥ ४४ ॥
शल्य उवाच—आत्मनिन्दात्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥
यत्तु विद्वन्प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव ।
आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥ ४६ ॥
अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत्प्रभो ।
अप्रमादात्प्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः ॥ ४७ ॥
ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ ।
वाहयिष्यामि तुरगान्विज्वरो भव सूतज ॥ ४८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्यस्वीकारे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

कार्य को करने के निमित्त प्रस्तुत हूँ। हे भरतश्रेष्ठ! मुझे आप जिस कार्य को करने के योग्य समझें, उस कार्य को मैं सब प्रकार मन लगाकर करने के निमित्त प्रस्तुत हूँ। किन्तु युद्ध में रथ हाँकते समय, हिताभिलाषी होकर, मैं प्रिय या अप्रिय जो कुछ कर्ण से कहूँ उसे आप और कर्ण दोनों ही सहन कर लें॥४०।४३॥कर्ण ने कहा—हे महाराज! लोकपितामह ब्रह्मा ने जैसे शङ्कर का हित किया था और श्रीकृष्ण जैसे अर्जुन के हितचिन्तक हैं वैसे ही आप भी हमारे हित चिन्तक रहें॥४४॥शल्य ने कहा—हे कर्ण! आर्य लोग दूसरे के द्वारा की गई अपनी निन्दा और स्तुति की भी अपेक्षा नहीं करते, तब पराई निन्दा और स्तुति के निमित्त तो कुछ कहना ही नहीं है। सज्जन आर्य पुरुष अपने मुख अपनी प्रशंसा और पर-निन्दा तो कभी करते ही नहीं। किन्तु हे विद्वन्! तुम्हारे विश्वास के निमित्त मैं इस समय अपनी प्रशंसा के युक्त यथार्थ वचन कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। मातलि सारथी के समान मैं इन्द्र का सारथी होने की योग्यता रखता हूँ। मैं एकाग्रता में, घोड़ों को हाँकने के कौशल में घोड़ों के भविष्य दोष को जानने में, उस दोष को दूर करने की जानकारी में तथा अश्वचिकित्सा और अश्वविज्ञान में अपने को अद्वितीय समझता हूँ। हे वीर! तुम जब अर्जुन से युद्ध करोगे तब मैं तुम्हारा रथ हाँकूँगा। अब तुम अपने हृदय से [illegible] चिन्ता को दूर कर दो॥४५।४८॥

—•—

कर्ण पर्व का पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दुर्योधन उवाच—अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति ।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः ॥ १ ॥

यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः ।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम् ॥ २ ॥
योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं सङ्ख्ये पार्थानभिभविष्यति ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम् ।
उवाच राजन्संग्रामेऽभ्युषिते पर्युपस्थिते ॥ ४ ॥
कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान् ।
त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनञ्जयम् ॥ ५ ॥
इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत ।
शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाब्रवीत् ॥ ६ ॥
त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत्त्वरन् ।
ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम् ॥ ७ ॥
विधिवत्कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत् ।
तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ८ ॥
सम्पादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा ।
कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम् ॥ ९ ॥
समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत् ।
ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् ॥ १० ॥
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम् ।
ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम् ॥ ११ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय ॥ ३६ ॥

दुर्योधन ने कहा—हे वीर कर्ण ! घोड़ों के चलाने में कृष्ण से भी श्रेष्ठ ये मद्रराज शल्य वैसे ही तुम्हारा रथ हाँकेंगे, जैसे मातलि इन्द्र का रथ हाँकते हैं। तुम रथी योद्धा और शल्य सारथी, दोनों वीर-श्रेष्ठ रथ पर बैठकर अवश्य ही पाण्डवों को परास्त कर सकोगे॥१।३॥सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! रात्रि के व्यतीत हो जाने पर राजा दुर्योधन ने महारथी शल्य से कहा-हे मद्रराज ! अब आप संग्राम में कर्ण के रथ को हाँकिए। आपके द्वारा सुरक्षित कर्ण अवश्य ही अर्जुनको जीत लेंगे। हे महाराज ! दुर्योधन की बात मानकर महावीर शल्य अपने रथ पर बैठकर कर्ण के समीप पहुँचे। उस समय महाबली कर्ण बहुत सन्तुष्ट होकर अपने पहले सारथी से बारम्बार कहने लगे—हे सूत ! तुम शीघ्र ही मेरा रथ तैयार करो॥४।७॥तब सारथी विजयदायक और गन्धर्वनगर के समान सुसज्जित महारथ को विधिपूर्वक सब सामग्री से सजा करके ले आया, और "आपका भला हो, जय हो" यों कहकर उनसे रथ तैयार होने की सूचना कर्ण को दी। वेदपाठी पुरोहित पहले ही स्वस्त्ययन, नीराजन आदि रथ के संस्कार कर चुके थे। इस समय श्रेष्ठ रथी कर्ण, सूर्यदेव की उपासना और रथ की पूजा-प्रदक्षिणा आदि करके, समीप ही स्थित मद्र-

अभ्यातिष्ठद्यथाम्भोदं विद्युद्वन्तं दिवाकरः ।
तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ ॥ १२ ॥
अभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि ।
संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ ॥ १३ ॥
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे ।
स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो वभौ ॥ १४ ॥
धनुर्विस्फारयन्घोरं परिवेषीव भास्करः ।
आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान् ॥ १५ ॥
प्रवभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्य इवांशुमान् ।
तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम् ॥ १६ ॥
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ।
अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे ॥ १७ ॥
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
मनोगतं मम ह्यासीद्भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥ १८ ॥
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम् ।
ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ॥ १९ ॥
तत्कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ।
गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनञ्जयम् ॥ २० ॥
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ।
जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥

राज शल्य से बोले—आप रथ पर सवार हों॥७।१०॥ तब सिंह जैसे पर्वत पर चढ़ता है वैसे ही महातेजस्वी शल्य कर्ण के उस दुर्धर्ष, श्रेष्ठ और विशाल रथ पर सवार हुए। उस रथ पर शल्य के सवार हो चुकने पर कर्ण भी, बिजली से शोभित मेघ के ऊपर सूर्य के समान, उस पर बैठ गये। सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी वे दोनों महापराक्रमी एक ही रथ पर बैठकर आकाशमण्डल में एक साथ मेघ पर स्थित सूर्य और अग्नि (बिजली) के समान शोभायमान हुए॥१०। १३॥यज्ञशाला में ऋत्विग्गण जैसे इन्द्र और अग्नि की स्तुति करते हैं वैसे ही वन्दीजन उन प्रभापुञ्ज पूजित दोनों वीरों की स्तुति करने लगे। घोर धनुष को खींच रहे और बाणरूप किरणों से परिपूर्ण कर्ण उस शल्ययुक्त रथ पर मन्दराचल पर विराजमान मण्डल-मण्डित सूर्यदेव के समान जान पड़ने लगे॥१४। १६॥युद्ध के निमित्त रथ पर आरूढ़ महातेजस्वी कर्ण से अब राजा दुर्योधन कहने लगे—हे वीरश्रेष्ठ कर्ण! महाबली भीष्म और द्रोण युद्ध में जो कार्य नहीं कर सके हैं वही कठिन कार्य तुम इस समय सब धनुर्धर वीरों के सम्मुख कर दिखाओ। मेरा विचार था कि महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य अवश्य ही भीम और अर्जुन को मार देंगे, किन्तु हे वीर! महासमर में इन दोनों ने वह वीर कर्म नहीं किया। अब तुम दूसरे वज्रपाणि इन्द्र के समान वही कार्य कर दिखाओ॥१७।२०॥

पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् ।
ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ॥ २२ ॥
वाद्यमानान्यरोचन्त मेघशब्दो यथा दिवि ।
प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ॥ २३ ॥
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ।
चोदयाश्वान्महाबाहो यावद्धन्मि धनञ्जयम् ॥ २४ ॥
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम् ।
अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनञ्जयः ॥ २५ ॥
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ।
अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान्परमतेजनान् ॥ २६ ॥
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ।
शल्य उवाच—सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥ २७ ॥
सर्वास्त्रज्ञान्महेष्वासान्सर्वानेव महाबलान् ।
अनिवर्तिनो महाभागानजय्यान्सत्यविक्रमान् ॥ २८ ॥
अपि सन्तनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः ।
यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि ।
यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे ॥ ३० ॥
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि ।
यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा ॥ ३१ ॥

या तो तुम धर्मराज युधिष्ठिर को जीते ही पकड़ लो, या अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव को मार डालो। हे पुरुषश्रेष्ठ ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम विजय प्राप्त करो। तुम युधिष्ठिर की सम्पूर्ण सेना का संहार कर डालो। हे राजेन्द्र ! दुर्योधन के यों कह चुकने पर कौरव दल में सहस्रों तुरही और नगाड़े बजने लगे। ऐसा जान पड़ा, मानों आकाश में मेघ गरज रहे हों ॥२०।२३॥ रथ पर स्थित श्रेष्ठ रथी वैकर्तन कर्ण ने दुर्योधन की बातों को स्वीकार करके युद्धनिपुण शल्य से कहा—हे महाबाहो ! मेरे घोड़ों को आगे बढ़ाकर शत्रुसेना में ले चलो। मैं अभी अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव (सब पाण्डवों) को मारना चाहता हूँ। आज मैं सैकड़ों-हजारों कङ्क-पत्रयुक्त विकट बाण निरन्तर बरसाऊँगा और अर्जुन मेरे बाहुबल को देखेंगे। हे शल्य ! आज मैं पाण्डवों के विनाश और दुर्योधन की जय के निमित्त अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चलाऊँगा॥२३।२७॥ हे राजेन्द्र ! कर्ण के वचन सुनकर शल्य ने कहा—हे सूतपुत्र ! तुम महावीर्यशाली, सब अस्त्रों के ज्ञाता, महाबली, महा-धनुर्द्धर, महाभाग, महाबाहु, रण से कभी न हटनेवाले, सत्यपराक्रमी, अजेय और साक्षात् इन्द्र के हृदय में भी भय का सञ्चार कर दे सकनेवाले असाधारण योद्धा पाण्डवों का अपमान कैसे कर रहे हो ! हे कर्ण ! तुम जिस समय वज्रपात की कड़क सा भयङ्कर, अर्जुन

शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्बरे ।
अस्यतः क्षिण्वतश्चारील्लँघुहस्तान्दुरासदान् ।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ३२ ॥
सञ्जय उवाच—अनादृत्य तु तद्वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
याहीत्येवाब्रवीत्कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥ ३३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि शल्यसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

के गाण्डीव धनुष का, शब्द सुनोगे उस समय ऐसी बातें न कहोगे। जब भीमसेन को युद्ध में गजसेना का संहार करते—हाथियों के दाँत तोड़-तोड़कर उन्हें मार-मारकर पृथ्वी पर गिराते—देखोगे तब ऐसी बातें मुख से न निकालोगे। जब देखोगे कि संग्राम में राजा युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव तीक्ष्ण बाण बरसा कर शत्रुओं को मारते हुए आकाश में मेघों की सी छाया फैला रहे हैं तब ऐसी बातें न करोगे। जब अन्य दुर्द्धर्ष स्फूर्तिशाली राजाओं को बाण बरसाकर कौरव-सेना का नाश करते देखोगे तब यों नहीं कहोगे॥२७। ३२॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! वीर कर्ण ने शल्य की इन बातों की अपेक्षा न करके कहा—अच्छा, अभी सब देख लेना॥३३॥

—o—

कर्ण पर्व का छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम् ।
चुक्रुशः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ १ ॥
ततो दुन्दुभिनिर्घोषैर्भेरीणां निनदेन च ।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम् ॥ २ ॥
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।
प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च ॥ ३ ॥
चचाल पृथिवी राजन्ववाश च सुविस्तरम् ।
निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात्सप्त महाग्रहाः ॥ ४ ॥
उल्कापाताश्च सञ्जज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च ।
शुष्काशन्यश्च सम्पेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः ॥ ५ ॥
मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव ।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम् ॥ ६ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय ॥ ३७ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! महावीर्यशाली कर्ण को युद्ध करने के निमित्त प्रस्तुत देखकर चारों ओर कौरव दल के लोग प्रसन्न होकर कोलाहल करने लगे। उसके पश्चात् दुन्दुभी भेरी आदि बाजे बजाते और गरजते हुए आपके दल के लोग मरने या मारने का निश्चय करके शिविर से निकले॥१।३॥कर्ण और अन्य रथी लोग प्रमन्नतापूर्वक जिस समय युद्ध के निमित्त चले उस समय भान्ति-भान्ति के उत्पात होने लगे। सम्पूर्ण पृथ्वी भयानक शब्द के साथ हिलने लगी। सूर्य आदि सातों महाग्रह युद्ध के निमित्त निकलते दिखाई पड़े

प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि ।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद्भयानकम् ॥ ७ ॥
जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे ।
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशाम्पते ॥ ८ ॥
एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः ।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः ॥ ९ ॥
न च तानगणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः ।
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
निर्जितान्पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १० ॥

ततो रथस्थः परवीरहन्ता भीष्मद्रोणावतिवीर्यौ समीक्ष्य ।
समुज्ज्वलन्भास्करपावकाभो वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप ॥ ११ ॥
स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य ।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च ॥ १२ ॥
नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः क्रुद्धाद्बिभेम्यायुधवान्रथस्थः ।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखाञ्शयानानतीव मां ह्यस्थिरता जहाति ॥ १३ ॥
महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दितौ रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परैस्ततो न मेऽप्यस्ति रणेऽद्य साध्वसम्॥ १४ ॥
समीक्ष्य सङ्ख्येऽतिबलान्नराधिपान्ससूतमातङ्गरथान्परैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान्रणेऽवधीन्महास्त्रविद्ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः ॥ १५ ॥

अर्थात् वे परस्पर युद्ध करने लगे। उल्कापात होने लगा। दारुण दिग्दाह दिखाई पड़ा। वज्र गिरने लगे। भयानक आँधी चलने लगी। बहुत से मृग और पक्षी, महाभय की सूचना देते हुए, आपकी सेना के वाम भाग में दिखाई पड़ने लगे॥३।६॥चलते समय कर्ण के रथ के घोड़े पृथ्वी पर गिर पड़े अन्तरिक्ष से हड्डियों की वर्षा होने लगी। सब शस्त्र आप ही आप प्रज्वलित अथवा गर्म हो उठे। आपकी सेना के सब वाहन रोने लगे। ये और अन्य बहुत से दारुण उत्पात कौरवों के विनाश की सूचना देते हुए दिखाई पड़ने लगे। किन्तु दैव-मोहित कौरवों और उनके दल के राजाओं ने इन उत्पातों का कुछ विचार न किया। वे लोग कर्ण की यात्रा के समय जयजयकार करने लगे। कौरवों ने समझ लिया कि हम अब पाण्डवों को जीत ही लिया॥७।१०॥हे राजेन्द्र! शत्रुदल के वीरों का संहार करनेवाले, महारथी, दानी, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी कर्ण ने उस समय अपने से अधिक वीर्यशाली भीष्म और द्रोण के परिणाम को सोचकर, अर्जुन का वह (भीष्म-द्रोण-वध रूप) अद्वितीय दुष्कर कर्म देखकर, मान और दर्प से जलकर, क्रोध से प्रज्वलित-से होकर, बारम्बार दीर्घ-श्वास लेते हुए इस प्रकार कहा—हे शल्य! रथ पर स्थित सशस्त्र मैं कुपित वज्रपाणि इन्द्र से भी नहीं डरता। भीष्म आदि प्रधान योद्धाओं को इस प्रकार रणभूमि में मृत्यु-शय्या पर पड़े देखकर भी मेरा धैर्य गिरनेवाला नहीं॥११।१३॥महेन्द्र और विष्णु के तुल्य, अनिन्दित, चतुरङ्गिणी सेना का संहार करनेवाले, एक प्रकार से मारे ही न जा सकनेवाले भीष्म और द्रोण को भी शत्रुओं ने मार डाला है, यह देखकर भी इस

स संस्मरन्द्रोणमहं महाहवे ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद्रणेऽर्जुनं समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ १६ ॥
शिक्षाप्रसादश्च बलं धृतिश्च द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ १७ ॥
नेह ध्रुवं किञ्चिदपि प्रचिन्तयन्विद्यां लोके कर्मणो दैवयोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥ १८ ॥
न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ १९ ॥
हुताशनादित्यसमानतेजसं पराक्रमे विष्णुपुरन्दरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनोः सदा समं न चैनमस्त्रं तदुपास्तदुःसहम् ॥ २० ॥
सम्प्राकुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य प्रयाहि तस्माद् द्विषतामनीकम् ॥ २१ ॥
यत्र राजा पाण्डवः सत्यसन्धो व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च यमौ च कस्तान्विषहेन्मदन्यः ॥ २२ ॥
तस्मात्क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि रणे पञ्चालान्पाण्डवान्सृञ्जयांश्च ।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य सङ्ख्ये यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय ॥ २३ ॥

समय में रण से नहीं डरता । हाँ, जय-पराजय तो ईश्वर के हाथ है । दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य युद्ध में बली राजाओं को, सारथी-रथ हाथी आदि सहित शत्रुओं के हाथ से मरते देख कर भी, क्यों नहीं बचा सके और सब शत्रुओं को क्यों नहीं मार सके? महायुद्ध में द्रोणाचार्य के परिणाम को सोचकर मैं सत्य कहता हूँ कि हे कौरवो! मृत्यु के समान उग्र रूपवाले अर्जुन को मेरे अतिरिक्त तुममें से कोई भी नहीं रोक सकता॥१४।१६॥ अस्त्रों के अभ्यास, एकाग्रता, बल, धैर्य, श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञान और प्रयोग, स्फूर्ति तथा श्रेष्ठ नीति के ज्ञान, सभी बातों में महावीर द्रोणाचार्य श्रेष्ठ थे । वे महात्मा भी जब मृत्यु से न बच सके तब, मुझे समझ पड़ता है कि, बचे हुए हम सबकी मृत्यु निकट आ पहुँची है। इस संसार में कुछ भी नित्य रहनेवाला नहीं है, क्योंकि संसार का, अर्थात् संसारी जीवों का, कर्म से नित्य सम्बन्ध है । कर्म या दैव के वश मनुष्य मरते और जन्म लेते हैं । द्रोणाचार्य जैसे अद्वितीय अजेय योद्धा भी जब मार डाले गये तब कौन पुरुष निःसंशय होकर कह सकता है कि वह कल प्रातःकाल तक जीवित रहेगा । हे महाराज मद्रेश्वर ! शत्रुओं के हाथ से आचार्य की मृत्यु देखकर मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि दिव्य अस्त्र, बल, पराक्रम, सदाचार, सुनीति, श्रेष्ठ शस्त्र आदि का होना ही मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के निमित्त यथेष्ट नहीं है॥१७।१९॥ अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी विष्णु और इन्द्र के समान पराक्रमी, बृहस्पति और शुक्राचार्य के समान नीतिज्ञ, अत्यन्त असह्य योद्धा गुरु द्रोण की मृत्यु का समय जब आया तब उनके दिव्य अमोघ अस्त्र भी उनकी रक्षा नहीं कर सके । इससे कहना पड़ता है कि मृत्यु को रोकने का कोई उपाय नहीं है । कौरवों की और मेरे कुल की स्त्रियाँ तथा बालक शोक और दुःख से रोते और चिल्लाते हैं, राजा दुर्योधन की शक्ति और पौरुष पराभव को प्राप्त हो चुका है।

नत्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये तेषां शूराणामिति शल्य विद्धि ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम् ॥ २४ ॥
प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य ।
अतो विद्वन्नयास्यामि पार्थान्दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥ २५ ॥
कल्याणवृत्तः सततं हि राजा वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत् ।
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि प्रियान्भोगान्दुस्त्यजं जीवितं च ॥ २६ ॥
वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं हेमत्रिकोशं रजतत्रिवेणुम् ।
रथप्रवर्हं तुरगप्रवर्हैर्युक्तं प्रादान्मह्यमिमं हि रामः ॥ २७ ॥
धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य ध्वजान्गदाः सायकांश्चोग्ररूपान् ।
असिं च दीप्तं परमायुधं च शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ २८ ॥
पताकिनं वज्रनिपातनिःस्वनं सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् ।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ २९ ॥
तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् ।
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥ ३० ॥
यमवरुणकुबेरवासवा वा यदि युगपत्सगणा महाहवे ।
जुगुपिषव इहाद्य पाण्डवं किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥ ३१ ॥

हे शल्य ! इस समय युद्ध करने के अतिरिक्त और कुछ कर्तव्य मुझे नहीं सूझता । इसलिए तुम शीघ्र मुझे शत्रुसेना में [illegible] चलो । जहाँ सत्यवादी राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि सृञ्जयगण हैं, वहीं मेरा रथ ले चलो । इन वीरों के तेज और पराक्रम के आगे मेरे अतिरिक्त कौन स्थिर हो सकता है ?॥२०।२२॥ हे महराज ! शीघ्र युद्धभूमि में पाण्डव-पाञ्चाल सृञ्जय आदि के आगे मेरा रथ ले चलो । आज या तो मैं उन लोगों को मारूँगा और या, द्रोणाचार्य के समान उनके हाथ से मरकर यमलोक को जाऊँगा । हे शल्य ! यद्यपि मेरा मन यह कहता है कि मैं भी पितामह भीष्म और द्रोण के समान निःसन्देह मरूँगा, तथापि भाग-कर मित्र दुर्योधन के साथ विश्वासघात करना मुझे असह्य है । इसलिए मैं प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करूँगा और अन्त को द्रोणाचार्य के पीछे ही यमपुर को जाऊँगा । विद्वान् हो या मूर्ख, आयु की अवधि समाप्त होने पर, मृत्यु के हाथ से किसी का छुटकारा नहीं होता । इसलिए हे विज्ञ शल्य ! मैं अवश्य ही अर्जुन से युद्ध करूँगा । जो भाग्य में लिखा है वह अटल है॥२३।२५॥राजा दुर्योधन ने सदा मेरे साथ श्रेष्ठ व्यवहार किया है । मैं भी उनका प्रयोजन पूर्ण करने की चेष्टा में प्रिय सुख-भोग और जीवन तक का त्याग करने को प्रस्तुत हूँ । यह व्याघ्र-चर्म-मण्डित, सुवर्णमय आसन से युक्त, शब्द-विहीन पहियोंसे शोभित, चाँदी के त्रिवेणु से अलङ्कृत, तीन खण्ड का, उत्तम घोड़ों से युक्त दिव्य रथ मुझे परशुराम ने दिया है । हे शल्य ! मेरा विचित्र धनुष, ध्वजा, गदा, उग्र बाण, देदीप्यमान खड्ग, श्रेष्ठ अन्य शस्त्र और गम्भीर शब्द से युक्त श्वेत यह शङ्ख देखो॥२६।२८॥वज्रपात के समान दारुण शब्द करनेवाले, पताका और शुभ अक्षय तरकसों से शोभित, श्वेत घोड़ों से युक्त इस श्रेष्ठ रथ पर बैठ-कर मैं अर्जुन के ऊपर दृढ़ प्रहार करूँगा । सबका नाश करनेवाला मृत्यु भी सावधान होकर यदि समर

सञ्जय उवाच—इति रणरभसस्य कत्थतस्तदुत निशम्य वचः स मद्रराट्।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥ ३२ ॥
शल्य उवाच—विरम विरम कर्ण कत्थनादतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान् ।
क्क च हि नरवरो धनञ्जयः क्क पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥ ३३ ॥
यदुसदनमुपेन्द्रपालितं त्रिदशमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत्पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥ ३४ ॥
त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं क इह पुमान्भवमाह्वयेद्युधि ।
मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात्सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥ ३५ ॥
असुरसुरमहोरगान्नरान्गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥ ३६ ॥
स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः ।
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधि कुरुषु बहून्विनिहत्य तानरीन् ॥ ३७ ॥
प्रथममपि पलायिते त्वयि प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ३८ ॥
समुदितबलवाहनाः पुनः पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ॥ ३९ ॥

में अर्जुन की रक्षा करेगा, तो भी युद्धभूमि में सम्मुख जाकर मैं अर्जुन को मारूँगा और या पितामह भीष्म के समान मृत्यु को प्राप्त होकर यमपुर को जाऊँगा। अधिक क्या कहूँ, यदि यमराज, वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि सब लोकपाल भी अपने गणों के साथ मिलकर एक साथ महायुद्ध में अर्जुन की रक्षा करेंगे तो भी मैं उन लोकपालों के सहित अर्जुन को परास्त करूँगा ॥२९।३१॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! रण में प्रचण्ड रूप धारण करनेवाले और युद्ध के निमित्त उद्यत कर्ण के, अपने मुख अपनी प्रशंसा से पूर्ण, वचन सुनकर उनके वाक्यों के प्रति अश्रद्धा दिखलाकर पराक्रमी शल्य ने हँसकर उन्हें रोका और इस प्रकार उत्तर दिया—॥३२॥हे कर्ण! बस बस, अब चुप रहो; बढ़-बढ़कर बातें और अपने मुख अपनी प्रशंसा न करो। कहाँ पुरुष-श्रेष्ठ अर्जुन, और कहाँ नराधम तुम! उनके साथ तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती। इन्द्र के द्वारा सुरक्षित स्वर्ग के समान श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित द्वारका पुरी में प्रवेश होकर यादव-वीरों को हराकर, श्रीकृष्ण की छोटी बहन सुभद्रा को अर्जुन के अतिरिक्त और कौन हर ला सकता था? मृगया (शिकार) के झगड़े में अर्जुन ने त्रिभुवन की सृष्टि करनेवाले और ईश्वरों के ईश्वर किरातरूप शङ्कर से घोर युद्ध किया और इन्द्र के समान बलवीर्य तथा प्रभाव दिखलाया। इस दुष्कर कार्य को अर्जुन के अतिरिक्त और कौन कर सकता था?॥३३।३५॥जलाने के निमित्त अग्नि को खाण्डव वन देते समय अग्नि को सुर, महानाग, मनुष्य, गरुड, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि को तीक्ष्ण बाणों से परास्त करना और इस उपलक्ष्य में "विजय" नाम प्राप्त करना अर्जुन का ही कार्य था। उन्होंने उस समय अग्नि को यथेष्ट हवि देकर सन्तुष्ट किया था। इस कार्य को अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था। हे अधिरथ के पुत्र! स्मरण करो, जिस समय घोषयात्रा के अवसर पर बड़ी गन्धर्वों ने कौरवों के श्रेष्ठ योद्धाओं को हराया

इदमपरमुपस्थितं पुनस्त्वत्र निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात्पलायसे समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥ ४० ॥
सञ्जय उवाच—इति बहुपरुषं प्रभाषति प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम्
भृशमभिरुषितः परन्तपः कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ४१ ॥
कर्ण उवाच—भवतु भवतु किं विकत्थसे ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम्
यदि स जयति मामिहाहवे तत इदमस्तु सुकथितं तव ॥ ४२ ॥
सञ्जय उवाच—एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान् ।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥ ४३ ॥
स रथः प्रययौ शत्रूञ्छ्वेताश्वः शल्यसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्समरे तमो घ्नन्सविता यथा ॥ ४४ ॥
ततः प्रायात्प्रीतिमान्वै रथेन वैयाघ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः ।*
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां धनञ्जयं त्वरया पर्यपृच्छत् ४५ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

था और वे दुर्योधन को पकड़कर ले चले थे उस समय उन शत्रुओं को परास्त करके दुर्योधन आदि को किसने छुड़ाया था ? वह दुष्कर कार्य अर्जुन के अतिरिक्त और कौन कर सकता था ? उस युद्ध में सबसे पहले तुम्हीं युद्ध छोड़कर भागे थे और कौरव-श्रेष्ठ भीष्म तथा द्रोणके सम्मुख ही गन्धर्वगण कलह-प्रिय दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों को पकड़ ले चले थे॥३६।३८॥ क्या तुमको स्मरण नहीं है कि उस समय गन्धर्वों को जीतकर पाण्डवों ने ही दुर्योधन आदि को छुड़ाया था। इसके उपरान्त कौरव लोग जब विराट के नगर में गो-हरण करने गये थे तब कौरवों के समीप श्रेष्ठ वाहन, सेना आदि सब कुछ था; परन्तु अकेले अर्जुन ने भीष्म, द्रोण और अश्वत्थामा सहित सब कौरवों को हरा दिया तथा विराट का गो-धन बचा लिया। यदि तुम उस समय अर्जुन को मार सकते हो तो उस समय क्यों नहीं उन्हें हराया ? उस समय तो और भी सुभीता था, क्योंकि अर्जुन अकेले ही थे। हे कर्ण! अब यह दुबारा युद्ध का अवसर उपस्थित हुआ है और इसमें तुम जीवित नहीं बच सकते। मैं सत्य कहता हूँ कि आज जो तुम शत्रु के भय से भाग नहीं खड़े हुए तो अवश्य ही मारे जाओगे॥३९।४०॥सञ्जय कहते हैं कि कर्ण के उत्साह को नष्ट करने के निमित्त मद्रराज शल्य जब इस प्रकार अत्यन्त कठोर अप्रिय वचन कहने और शत्रु की प्रशंसा करने लगे तब कौरव-सेना के सेनापति महावीर कर्ण अत्यन्त कुपित होकर कहने लगे—हे शल्य! होगा, बस चुप रहो। तुम मेरे आगे क्या अर्जुन की प्रशंसा करते हो ? अब तो मेरा और अर्जुन का युद्ध ही होनेवाला है, देख लेना। यदि आज अर्जुन संग्राम में मुझे जीत सके, तभी तुम्हारा यह कहना सत्य होगा॥४१।४२॥सञ्जय कहते हैं कि 'यही सही' कहकर शल्य चुप हो रहे। इधर कर्ण भी युद्ध करने के निमित्त बारम्बार शल्य से कहने लगे—चलो, शीघ्र युद्धभूमि में मुझे ले चलो। शल्य सारथी का हाँका हुआ वह श्रेष्ठ रथ वेग से आगे बढ़ा। कर्ण भी अँधेरे को नष्ट कर रहे सूर्य के समान समरभूमि में शत्रुओं को मारते हुए चले। प्रसन्नचित्त कर्ण व्याघ्र-चर्म-मण्डित और श्वेत घोड़ों से शोभित रथ पर बैठकर पाण्डवसेना के निकट पहुँच गये। वहाँ वे शीघ्रतापूर्वक पाण्डव पक्ष के प्रत्येक पुरुष से पूछने लगे कि अर्जुन कहाँ है॥४३।४५॥

कर्ण पर्व का सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच—प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन्वाहिनीं तव ।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान्पर्यपृच्छत ॥ १ ॥
यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम् ।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥ २ ॥
न चेत्तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः ।
शकटं रत्नसम्पूर्णं यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ ३ ॥
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यकं कांस्यदोहनम् ॥ ४ ॥
शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने ।
तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥ ५ ॥
युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ६ ॥
अन्यं वास्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ॥ ७ ॥
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ८ ॥
तस्मै दद्यां शतं नागाञ्शतं ग्रामाञ्शतं रथान् ।
सुवर्णस्य च मुख्यस्य हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥ ९ ॥
ऋद्ध्या गुणैः सुदान्तांश्च धुर्यवाहान्सुशिक्षितान् ।
तथा सुवर्णशृङ्गीणां गोधेनूनां चतुःशतम् ॥ १० ॥

अड़तीसवाँ अध्याय ॥ ३८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! कर्ण आपकी सेना को प्रसन्न करते हुए समर में देख पड़नेवाले, पाण्डव पक्ष के, प्रत्येक पुरुष से अर्जुन को पूछने लगे । वे कहने लगे कि हे वीरो ! इस समय तुममें से जो कोई मुझे अर्जुन को दिखा देगा, उसे मैं उसकी इच्छानुकूल धन दूँगा । यदि वह इस पुरस्कार को न उचित समझे तो मैं अर्जुन को दिखा देनेवाले व्यक्ति को छकड़े भर रत्न दूँगा । यदि उसे यह भी न मन भावे तो मैं काँसे की दोहनी समेत एक सौ दुधार गायें देने को प्रस्तुत हूँ॥१।४॥ अर्जुन को दिखा देनेवाले पुरुष को यदि इतने से सन्तोष न हो तो मैं उसे एक सौ श्रेष्ठ गाँव और काले केशोंवाली युवतियों सहित बहुमूल्य खच्चरों से युक्त श्रेष्ठ श्वेत रथ दूँगा॥५।७॥ इस पर भी यदि वह न प्रसन्न हो तो मैं अर्जुन को दिखा देनेवाले पुरुष को सुवर्णमय और छः हाथियों अथवा हाथी सरीखे छः बैलों से खींचा जानेवाला और रथ दूँगा । यह भी यदि उसे कम जँचे तो सोलह वर्ष की नई नवेली, गाने-बजाने में निपुण, सुवर्ण के भूषण कण्ठ में पहने, रूपवती सौ स्त्रियाँ दूँगा । इतना पुरस्कार भी यदि उसे सन्तुष्ट न

दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ११ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां श्वेतान्पञ्चशतान्हयान् ।
हेमभाण्डपरिच्छन्नान्सुमृष्टमणिभूषणान् ॥ १२ ॥
सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान् ।
रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ॥ १३ ॥
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १४ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट् ।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान्हेममालिनः ॥ १५ ॥
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान्हस्तिशिक्षकैः ।
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १६ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश ।
सुस्फीतान्धनसंयुक्तान्प्रत्यासन्नवनोदकान् ।
अकुतोभयान्सुसम्पन्नान्राजभोज्यांश्चतुर्दश ॥ १७ ॥
दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा ।
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥ १८ ॥
न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत्स्वयम् ॥ १९ ॥
पुत्रदारान्विहारांश्च यदन्यद्वित्तमस्ति मे ।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद्यच्च मनसेच्छति ॥ २० ॥

कर सके तो सौ हाथी, सौ गाँव, सौ रथ, सुन्दर रङ्ग के श्रेष्ठ पुष्ट गुणयुक्त विनीत (सीधे) सुशिक्षित रथ खींच सकनेवाले सहस्र घोड़े, सुवर्ण से मढ़े सींगों से शोभित और बछड़ेवाली चार सौ दुधार गायें देने को तैयार हूँ। अर्जुन का पता देनेवाले पुरुष को यदि यह भी स्वल्प जान पड़े तो मैं उसे सुवर्णभूषित, मणिमय आभूषणों से अलङ्कृत, नम्र, श्वेत वर्ण के पाँच सौ अठारह घोड़े, और श्रेष्ठ काम्बोज देश के घोड़ों से शोभित सुवर्णमय सुसज्जित एक बहुमूल्य रथ दूँगा॥८।१४॥ यदि वह पुरुष इतने पर भी प्रसन्न न हो तो मैं उसे सुवर्ण से अलङ्कृत, पश्चिम-कच्छ देश में उत्पन्न, सुवर्ण के अनेक प्रकार के हौदों से शोभित, सुवर्ण की सुन्दर मालाओं से सुशोभित और गज-शिक्षा देनेवाले प्रवीण महावतों से शिक्षित छः सौ श्रेष्ठ हाथी देने को तैयार हूँ॥१५।१६॥ अर्जुन को दिखानेवाला पुरुष यदि इस पर भी सन्तुष्ट न हो तो मैं उसको सुविस्तृत, धन-सम्पत्ति पूर्ण, वन और जल के निकटवर्ती, सुसम्पन्न, जिनमें किसी प्रकार का भय नहीं ऐसे, राजभोग्य, वैश्यों के रहने के चौदह गाँव और मगध देश की नवयौवना तथा सुवर्ण के अलङ्कारों से शोभित सौ श्रेष्ठ दासियाँ देने को तैयार हूँ। इतने पर भी यदि अर्जुन का पता देनेवाला पुरुष

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः ।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात्केशवार्जुनौ ॥ २१ ॥
एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन्युधि ।
दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शङ्खमुत्तमम् ॥ २२ ॥
ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु ।
दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥ २३ ॥
ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः ।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः ॥ २४ ॥
प्रादुरासीत्तदा राजन्सैन्येषु पुरुषर्षभ ।
योधानां सम्प्रहृष्टानां तथा समभवत्स्वनः ॥ २५ ॥
तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम् ।
विकत्थमानं च तदा राधेयमरिकर्षणम् ।
मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णविकत्थनेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सन्तुष्ट न होगा तो पुत्र और स्त्री के अतिरिक्त अपनी और सब सम्पत्ति उसे मैं, उसकी इच्छा के अनुसार, दे सकता हूँ । वह जो कुछ माँगेगा वही उसे दूँगा । जो कोई मुझे कृष्ण और अर्जुन का पता बता देगा उसे मैं, कृष्ण और अर्जुन के मारने के उपरान्त, उनका सब धन दे डालूँगा॥१७।२१॥हे महाराज ! इस प्रकार बहुत कुछ कहकर कर्ण ने समुद्र से उत्पन्न गम्भीर शब्दवाला श्रेष्ठ शङ्ख बजाया॥२२॥कर्ण के ऐसे उत्साह-पूर्ण वचन सुनकर भाइयों सहित राजा दुर्योधन बहुत ही प्रसन्न हुए । इसी समय रणभूमि में नगाड़े, मृदङ्ग आदि बहुत प्रकार के बाजे बजने लगे । आपकी सेना के लोग सिंहनाद करने लगे । हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं का प्रसन्नतापूर्ण कोलाहल चारों ओर व्याप्त हो गया । इस प्रकार सेना को उत्साहित करके आ रहे महारथी शत्रुदमन कर्ण के, अपनी प्रशंसा से पूर्ण, वचन सुनकर शल्य ने हँसकर यों कहा॥२३।२६॥

कर्ण पर्व का अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ३९ ॥

शल्य उवाच—मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनञ्जयम् ॥ १ ॥
बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा ।
अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनञ्जयम् ॥ २ ॥

उनतालीसवाँ अध्याय ॥ ३९ ॥

शल्य ने कहा—हे सूतपुत्र कर्ण ! तुम सुवर्ण-भूषित छः हाथियों या हाथियों के तुल्य बैलों से युक्त रथ आदि कुछ भी देने की प्रतिज्ञा मत करो। तुम्हें अभी-अभी अर्जुन देख पड़ेंगे । तुम अज्ञानवश वृथा ही कुबेर के समान धन देना चाहते हो।तुम्हें कुछ भी यत्न न करना पड़ेगा, आज अनायास ही अर्जुन

परान्सृजसि यद्वित्तं किञ्चित्त्वं वहु मूढवत् ।
अपात्रदाने ये दोषास्तान्मोहान्नाववुध्यसे ॥ ३ ॥
यत्त्वं प्रेरयसे वित्तं वहु तेन खलु त्वया ।
शक्यं वहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥ ४ ॥
यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहाद्वृथैव तत् ।
नहि शुश्रुम सम्मर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥ ५ ॥
अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो नहि सन्ति ते ।
ये त्वां निवारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥ ६ ॥
कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्वोऽस्यसंशयम् ।
वह्ववद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ ७ ॥
समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे वद्ध्वा यथा शिलाम् ।
गिर्यग्राद्वा निपतनं तादृक्तव चिकीर्षितम् ॥ ८ ॥
सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः ।
धनञ्जयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥
हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया ।
श्रद्धत्स्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा ॥ १० ॥
कर्ण उवाच—स्ववाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे ।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥ ११ ॥

को देख पाओगे। तुम मूर्खों के समान इस समय व्यर्थ ही वहुत सा धन दान करने को तत्पर हो। अपात्र अर्थात् अयोग्य पुरुष को धन देने में जो दोष उत्पन्न होते हैं उन्हें इस समय तुम समझ नहीं पाते। हे सूत! तुम इस समय जो अपार धन वृथा ही देने की प्रतिज्ञा कर रहे हो, उस धन से तुम अनेक प्रकार के वहुत से यज्ञ कर सकते हो। इसलिए अच्छा होगा कि तुम उस धन को, व्यर्थ नष्ट न करके, यज्ञ आदि सत्कार्यों में लगाओ॥१।४॥मोह के वश होकर तुम वृथा ही कृष्ण और अर्जुन को मार डालने की इच्छा करते हो। हमने आज तक युद्ध में गीदड़ के हाथों सिंहों का वध होना नहीं सुना। हे कर्ण! तुम वही चाहते हो जो हो नहीं सकता। मेरी समझ में तुम्हारा कोई हितैषी मित्र नहीं है। तुम अग्नि में कूद रहे हो; यदि तुम्हारे मित्र होते तो वे अवश्य तुमको रोकते। मुझे जान पड़ता है कि अब तुम्हारा अन्तकाल निकट आ गया है; क्योंकि अब तुम्हें यह ज्ञान नहीं रहा कि क्या करना चाहिए, और क्या नहीं करना चाहिए। जीवन की इच्छा रखनेवाला कौन पुरुष तुम्हारी तरह ऐसे असङ्गत वचन मुख से निकालेगा॥५।७॥गले में भारी शिला बाँधकर, दोनों हाथों से तैरकर, समुद्र के पार जाना या पर्वत की चोटी पर से कूदना और तुम्हारा यह मनोरथ एक सा ही है। तुम यदि कुशल चाहते हो तो व्यूह बनाकर, सारी सेना और सब श्रेष्ठ योद्धाओं से सुरक्षित रहकर, अर्जुन से युद्ध करो। हे कर्ण! मैं किसी प्रकार के द्रोह के मारे यह नहीं कहता। तुम्हारे और राजा दुर्योधन के हित के निमित्त कहता हूँ। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मेरी बात मान लो॥८।१०॥कर्ण ने कहा—हे शल्य! मैं अपने बाहुबल के

न मामस्माद्भिप्रायात्कश्चिदद्य निवर्तयेत् ।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथञ्चन ॥ १२ ॥

सञ्जय उवाच—इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः ।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ १३ ॥

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः ।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः शिताग्रास्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात् ॥ १४ ॥

यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः प्रतापयन्पृतनां सव्यसाची ।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कैस्तदा पश्चात्तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ १५ ॥

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो यथा कश्चित्प्रार्थयतेऽपहर्तुम् ।
तद्वन्मोहाद्द्योतमानं रथस्थं सम्प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥ १६ ॥

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम् ।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ १७ ॥

क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी ।
समाह्वयेत्तद्वदेतत्तवाद्य समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ १८ ॥

मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं महावीर्यं केसरिणं यथैव ।
वने श्रृगालः पिशितेन तृप्तो मा पार्थमासाद्य विनंक्ष्यसि त्वम् ॥ १९ ॥

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम् ।
शशकोऽऽह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥ २० ॥

आश्रय से युद्ध में अर्जुन को खोज रहा हूँ। तुम मित्र बने हुए शत्रु हो और इसी से यों कहकर मुझे डराना या दहलाना चाहते हो। किन्तु इस समय मनुष्य की कौन कहे, वज्र हाथ में लिये साक्षात् इन्द्र भी मुझे मेरे इस विचार से विचलित नहीं कर सकते॥११।१२॥ सञ्जय कहते हैं कि कर्ण के ये वचन सुनकर, उन्हें और भी कुपित करने के निमित्त, मद्रराज शल्य कहने लगे—हे कर्ण! जब अर्जुन की प्रत्यञ्चा से छूटे हुए वेगगामी तीक्ष्ण बाण तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे, जब वीर अर्जुन दिव्य धनुष लेकर कौरवसेना को सन्ताप पहुँचाते हुए तीक्ष्ण-तर बाणों से तुम्हें व्याकुल करने लगेंगे तब तुम्हें, अपनी इन बातों के निमित्त, पश्चात्ताप करना पड़ेगा। माता की गोद में लेटा हुआ बालक जैसे चन्द्रमा को पकड़ने के निमित्त मचलता है वैसे ही, हे सूतपुत्र! तुम भी मोह के वश होकर रथ पर स्थित तेजस्वी अर्जुन को जीतने की इच्छा प्रकट कर रहे हो॥१३।१६॥हे कर्ण! तुम मूढ़ हो, इसी से अर्जुन के साथ युद्ध करने को तैयार हो और वास्तव में तुम्हारी यह इच्छा मानों शङ्कर के त्रिशूल को सब अङ्गों पर फेरना, अर्थात् आप अपनी मृत्यु बुलाना, है। अर्जुन के शस्त्र बहुत ही तीक्ष्ण और कर्म अत्यन्त अद्भुत हैं। उनसे युद्ध करना सहज नहीं है। जैसे किसी क्रुद्ध सिंह को कोई मृग का बच्चा, चञ्चलतावश, धृष्टता के साथ युद्ध करने को ललकारे वैसे ही तुम इस समय अर्जुन को युद्ध के निमित्त खोज रहे हो। हे सूतपुत्र! तुम महावीर्यशाली राजकुमार सिंहसम पराक्रमी अर्जुन को युद्ध के निमित्त मत बुलाओ। उनको तुम्हारा बुलाना वैसा ही है जैसे कोई गीदड़ मांस खाकर, तृप्त होकर, युद्ध करने के निमित्त सिंह को ललकारे। उनके सम्मुख जाकर तुम अवश्य मारे जाओगे। तुम

बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात्काष्ठेन विध्यसि ।
महाविषं पूर्णकोपं यत्पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥ २१ ॥
सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे ।
श्रृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम् ॥ २२ ॥
सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम् ।
भोगी वाह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥ २३ ॥
सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम् ।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः संतितीर्षसि ॥ २४ ॥
ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णश्रृङ्गं प्रहारिणम् ।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥ २५ ॥
महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
कामतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ २६ ॥
यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥ २७ ॥
श्रृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत्सिंहं न पश्यति ॥ २८ ॥
तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥ २९ ॥
व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत्कृष्णौ न पश्यसि
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३० ॥

क्षुद्र शशक (खरगोश) होकर हल के समान दाँतोंवाले, बड़ी सूँड़ से शोभित, महागजराज के समान अर्जुन को युद्ध के निमित्त बुलाते हो॥१७।२०॥अथवा यों कहो कि तुम बाल-सुलभ चञ्चलता के मारे महाविषैले, क्रोधान्ध, बिल में पड़े हुए काले सर्प को लकड़ी से छेड़ रहे हो। हे कर्ण! तुम मूढ़ गीदड़ की भाँति कुपित केसरी-वीर अर्जुन पर आक्रमण करने की इच्छा से गरज रहे हो। जैसे साधारण सर्प पक्षिराज वेगशाली गरुड़ को लड़ने के निमित्त ललकारे वैसे ही तुम अर्जुन से युद्ध करना चाहते हो॥२१।२३॥महाजलाशय, जल-जन्तुओं से भयानक और चन्द्रोदय के समय उमड़ रहे महासागर को तुम नाव के बिना हाथों से ही तैरकर पारकर जाना चाहते हो। तुम छोटे से बछड़े के समान होकर उस भारी साँड़ से भिड़ना चाहते हो, जिसका स्वर नगाड़े के समान है, सींग बहुत तीक्ष्ण हैं और स्वभाव भी क्रूर है। महाशब्द करनेवाले महामेघ के समान बाणरूप जल बरसानेवाले नरश्रेष्ठ अर्जुन की स्पर्धा में तुम क्षुद्र मेंढक के समान टर-टर कर रहे हो॥२४।२६॥जैसे घर का पला हुआ कुत्ता वन में स्थित सिंह को देखकर भौंकता है, वैसे ही तुम पुरुषसिंह अर्जुन से लाग-डाँट प्रकट कर रहे हो। हे कर्ण! गीदड़ का यह नियम होता है कि वह खरगोशों के मध्य में बसकर तब तक अपने को ही सिंह समझता है जब तक सिंह को नहीं देख पाता। वैसे

यावद्गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥ ३१ ॥
रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥ ३२ ॥
नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनञ्जयः ।
वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात्क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥ ३३ ॥
यथाखुः स्याद्विडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥ ३४ ॥
यथानृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ ३५ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्याधिक्षेपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

ही हे राधेय ! तुम भी जब तक रणभूमि में शत्रु-दमन पुरुषसिंह अर्जुन को नहीं देख पाते तब तक अपने को सिंह सा समझ रहे हो । तुम जब तक श्रीकृष्ण और अर्जुन को सूर्य और चन्द्रमा के समान एक ही रथ पर स्थित नहीं देखते तभी तक अपने को सिंह समझते हो॥२७।३०॥जबतक युद्ध में तुमको गाण्डीव धनुष की ध्वनि नहीं सुन पड़ती तभी तक तुम जितना चाहे बक लो । रथ, शङ्ख और धनुष के शब्द से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित कर रहे और सिंह के समान गरज रहे अर्जुन को सम्मुख देखते ही तुम दुम दबाकर गीदड़ बन जाओगे। हे कर्ण ! तुम सदा के गीदड़ हो और अर्जुन सदा से सिंह रहे हैं। हे मूढ़ ! वीर से द्वेष रखने की प्रवृत्ति के कारण तुम गीदड़ जान पड़ रहे हो । चूहे और बिलाव में, कुत्ते और बाघ में, गीदड़ और सिंह में तथा खरगोश और हाथी में बल का जितना अन्तर है उतना ही अन्तर तुममें और अर्जुन में है। मिथ्या और सत्य, विष और अमृत जिस प्रकार ससार में प्रसिद्ध है, उसी प्रकार तुम और अर्जुन भी जगत् में अपने कर्मों से प्रसिद्ध हो ॥३१।३५॥

कर्णपर्व का उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

सञ्जय उवाच—अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा ।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥ १ ॥
कर्ण उवाच—गुणान्गुणवतां शल्य गुणवान्वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणम् ॥ २ ॥
अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः ॥ ३ ॥

चालीसवाँ अध्याय ॥ ४० ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! महातेजस्वी शल्य ने जब इस प्रकार कर्ण का तिरस्कार किया तब शल्य के वाक्य-बाणों से व्यथित कर्ण ने कुपित होकर कहा—हे शल्य ! गुणी पुरुष ही गुणी के गुणों को जान सकता है, गुणहीन पुरुष नहीं जानता । तुम सदा से गुणशून्य ठहरे, फिर कैसे दूसरे के गुणों को

तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम् ।
यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानासि तत्तथा ॥ ४ ॥
एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे ।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम् ॥ ५ ॥
अस्ति चायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः ।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ६ ॥
शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः समाः ।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसङ्घहा ॥ ७ ॥
घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः ।
निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥ ८ ॥
तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन्फाल्गुनादृते ।
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्सत्यं चापि शृणुष्व मे ॥ ९ ॥
तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनञ्जयौ ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत्कर्म सदृशं मम ॥ १० ॥
सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ।
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥ ११ ॥
उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति ।
तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ ॥ १२ ॥
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे ।
पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥ १३ ॥

जानोगे। हे शल्य! अर्जुन के दिव्य अस्त्र, क्रोध, वीर्य, धनुष, बाण आदि को जितना मैं जानता हूँ, उतना तुम नहीं जान सकते ॥१।३॥ ऐसे ही सब क्षत्रियों के शिरोमणि महात्मा कृष्ण के माहात्म्य को भी मैं तुमसे अधिक ही जानता हूँ। मैं अर्जुन के पराक्रम को जानता हूँ और अर्जुन मेरे पराक्रम को जानते हैं। अर्जुन के और अपने पराक्रम को जानकर ही मैं उनको युद्ध के निमित्त ललकार रहा हूँ। मेरे समीप तरकस में यह सुन्दर पुङ्ख से शोभित, रक्त पीनेवाला, महा तीक्ष्ण बाण है। इसे बहुत दिन से चन्दनचूर्ण में रखकर मैं पूजता आया हूँ। यह विषैला, उग्र, समूह के समूह मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों को मारनेवाला, कवच और हड्डी तक को तोड़ डालनेवाला और सर्पाकार है। मैं कुपित होकर इस घोर बाण से महापर्वत सुमेरु को भी तोड़ फोड़ सकता हूँ ॥४।८॥ मैं सत्य कहता हूँ कि अर्जुन अथवा कृष्ण के अतिरिक्त और किसी के ऊपर कभी मैं यह बाण नहीं छोड़ सकता। हे शल्य! मैं परम कुपित होकर कृष्ण और अर्जुन के ऊपर इसी बाण से प्रहार करूँगा और यह कार्य मेरे योग्य होगा। वृष्णि-वीरों की लक्ष्मी का आधार कृष्ण हैं और सब पाण्डवों की विजय का आधार वीर अर्जुन हैं। इन दोनों महारथियों के सम्मुख जाकर कौन वीर जीवित लौट सकता है? किन्तु मेरे अहोभाग्य देखो कि ये दोनों ही पुरुषसिंह एक रथ

मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया ।
अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपी ध्वजौ ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम ।
त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥ १५ ॥
भयावदीर्णः सन्त्रासादबद्धं बहु भाषसे ।
संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज ॥ १६ ॥
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम् ।
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥ १७ ॥
सुहृद्भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यां भीषयिष्यसि ।
तौ वा ममाद्य हन्तारौ हनिष्ये वापि तावहम् ॥ १८ ॥
नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम् ।
वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥ १९ ॥
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्व कुदेशज ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः ॥ २० ॥
या गाथाः सम्प्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥ २१ ॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद्राजसन्निधौ ।
श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम् ॥ २२ ॥
मित्रध्रुङ् मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः ।
मद्रके संगतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥ २३ ॥

पर स्थित होकर मुझ अकेले से युद्ध करेंगे । बुआ और मामा के लड़के अर्जुन और कृष्ण दोनों में ही सूत्र और मणि के समान मेल है॥९।१४॥तुम आज उन दोनों को मेरे हाथ से मरते देखोगे। हे शल्य ! अर्जुन का गाण्डीव धनुष और वानर की ध्वजा तथा कृष्ण का सुदर्शन चक्र और गरुड़ की ध्वजा कायरों के मन में त्रास उत्पन्न करती है; किन्तु मुझे उन्हें देखकर हर्ष ही होता है । तुम बड़े मूढ़, दुष्प्रकृति और महायुद्धों से अनभिज्ञ हो । इसी से इस समय भयभीत होकर ऐसी असङ्गत बातें कह रहे हो । हे कुदेश में उत्पन्न ! तुम किसी कारण से ही उन दोनों की इतनी प्रशंसा कर रहे हो॥१५।१६॥मैं आज समर में उन दोनों को मार करके तुम्हें भी भाई बन्धुओं सहित मारूँगा । हे पाप-देश में उत्पन्न ! दुर्मते ! क्षुद्र ! क्षत्रियाधम ! तुम मित्र होते हुए भी शत्रु के समान क्या बारम्बार कृष्ण और अर्जुन से मुझे डरा रहे हो ! मैं अपने बल को जानता हूँ और इसी लिए कृष्ण तथा अर्जुन से नहीं डरता । वे दोनों या तो आज मुझे मारेंगे और या मैं ही उनको मारूँगा । हे कुदेशी ! तुम चुप रहो। मैं अकेला ही ऐसे-ऐसे हजारों कृष्णों और सैकड़ों अर्जुनों से युद्ध कर सकता हूं॥१७।२०॥हे मूढ़ शल्य ! स्त्री, बालक,वृद्ध सब लोग प्रायः क्रीड़ा के अवसरों पर दुर्मति मद्रक जनों के विषय में जो विचार रखते और कहते हैं, और ब्राह्मणों ने राजाओं की सभाओं में उनके

दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः ।
यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम् ॥ २४ ॥
पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता नप्तान्ये ते च बान्धवाः ॥ २५ ॥
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च सङ्गतम् ।
पुम्भिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥ २६ ॥
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा ।
पीत्वा सीधुसगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥ २७ ॥
गायन्ति चाप्यबद्धानि प्रवर्त्तन्ते च कामतः ।
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥ २८ ॥
मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु ।
नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेण समाचरेत् ॥ २९ ॥
मद्रके सङ्गतं नास्ति मद्रको हि सदामलः ।
मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥ ३० ॥
राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत् ।
शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ॥ ३१ ॥
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ।
तथैव सङ्गतं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥ ३२ ॥

विषय में जो कुछ कहा है उन्हीं गाथाओं को मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ। उन्हें सुनकर या तो चुप रहो और या उत्तर दो। उनका कहना है कि मद्र देश का निवासी मित्रद्रोही होता है, अन्य प्रदेश के लोगों से अलग है, इसकी बात का तो क्या ठिकाना ॥२१।२३॥ मद्रक नराधम, नीच, दुरात्मा, मिथ्यावादी और कुटिल होता है। हमने सुना है कि मद्रकों में सभी प्रकार के दोष होते हैं। वे लोग जन्म से ही दुष्कर्मों में लिप्त रहते हैं। मद्र देश में पिता, पुत्र, माता, मामा, सास, ससुर, दामाद, बेटी, भाई, नाती, बन्धु बान्धव, दास, दासी, वयस्य, अभ्यागत आदि सब छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष परस्पर जान-बूझकर, अनजान की तरह, इच्छानुसार रमण करते हैं। अनन्य मद्रदेशवासियों के घरों में सत्तू और मछली खाई जाती है और मद्य माँस खाते हैं। वे निषिद्ध मद्य पीकर गाते, रोदन करते हैं, हँसते हैं, व्यर्थ गीत गाते हैं और काम के वश होकर रमण करते हैं। कुछ लोग काम-भोग के सम्बन्ध में अनाप-शनाप बकते हैं। भला उनमें धर्म की स्थिति कहाँ से हो सकती है! ॥२४।२८॥ मद्र देश के लोग घमण्डी और शास्त्र-विरुद्ध अशुभ कर्म करने में प्रसिद्ध हुआ करते हैं। मद्रक से न तो मित्रता ही करे और न शत्रुता ही। उस देशवालों में मित्रभाव नहीं होता। मद्र-देश-निवासी सदा मलिन और अशुचि रहता है। मद्र देशवालों में मैत्री और गान्धार देशवालों में पवित्रता का अत्यन्त अभाव होता है। हे स्वामिन! जिस यज्ञ करानेवाले लोग विष्णु के (या और किसी के) लिए से दूषित व्यक्ति को छूते समय जिन शब्दों को कहते हैं वे बहुत ही सत्य देखे पड़ते हैं। जिस यज्ञ करानेवाले लोग शाइन समय कहते हैं कि "जैसे, राजा जिस यज्ञ का याजक (अर्थात्) हो उसमें दी हुई आहुतियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, जैसे मद्र

मद्रके सङ्गतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम् ।
आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया ॥ ३३ ॥
इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च ।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते ॥ ३४ ॥
एवं विद्वञ्जोषमास्व शृणु चात्रोत्तरं वचः ।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ॥ ३५ ॥
मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामवराश्च ताः ।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥ ३६ ॥
यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः ।
तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥ ३७ ॥
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि ।
सुवीरकं याच्यमाना मद्रिका कर्षति स्फिचौ ॥ ३८ ॥
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम् ।
मा मां सुवीरकं कश्चिद्याचतां दयितं मम ॥ ३९ ॥
पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम् ।
गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रिकाः कम्बलावृताः ॥ ४० ॥
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम ।
एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद्बहु ॥ ४१ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु ।
मद्रकाः सिंधुसौवीरा धर्मं विद्युः कथन्विह ॥ ४२ ॥

को पढानेवाला ब्राह्मण पराभव को प्राप्त होता है, जैसे ब्रह्मद्रोही लोग संसार में नीचा देखते हैं और जैसे मद्र देश के निवासी की सङ्गति और मैत्री से मनुष्य पतित होता है॥२९।३२॥यदि ये बातें सत्य हैं तो, वैसे ही हे वृश्चिक ! तेरा भी विष नष्ट हो जाय।"हे शल्य ! मैंने स्वय इस आथर्वण मन्त्रसे विष को शान्त करके मन्त्र की सत्यता की परीक्षा की है । (इससे यही सिद्ध है कि मद्र देश के लोग बड़े नीच और कुकर्मी होते हैं,उनमे मित्रता करना या उनका साथ करना अत्यन्त हानिकारक है ।) यदि इसका कुछ उत्तर हो तो दो, नहीं तो मेरी बात सुनो । हे मद्रराज ! तुम्हारे देश की स्त्रियाँ मदिरा के नशे में चूर हो नग्न होकर नाचती हैं । वे व्यभिचार करती हैं और अपनी इच्छानुसार पुरुष से रमण करती हैं । उन्हीं मद्रकों की सन्तान के मुख से धर्म की बात कैसे निकल सकती है॥३३।३६॥वे ऊँट और गधे के समान खड़े खड़े पेशाब करती हैं । उन धर्मभ्रष्ट निर्लज्ज स्त्रियों के पुत्र होकर तुम कैसे धर्म का वर्णन कर रहे हो ? मद्र देश की स्त्री से सुवीरक (काञ्जिक) कोई माँगता है तो वह नहीं देना चाहती और नितम्बों में हाथ मारकर कहती है कि सुवीरक मुझे अत्यन्त प्रिय है, उसे मुझसे कोई न माँगे । मैं पुत्र अथवा पति दे सकती हूँ, परन्तु काञ्जिक मदिरा नहीं दे सकती । मद्र देश की स्त्रियाँ गौरवर्ण, निर्लज्ज, बहुत भोजन करनेवाली, लम्बी-चौड़ी, कम्बल ओढ़नेवाली और प्रायः

पाददेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः ।
एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ॥ ४३ ॥
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः ।
आयुधानां साम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः ॥ ४४ ॥
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः ।
सोऽयं प्रियः सखा चास्मि धार्त्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥ ४५ ॥
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु ।
व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ॥ ४६ ॥
यथा चामित्रवत्सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्त्तसे ।
कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ॥ ४७ ॥
संग्रामाद्विमुखः कर्त्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः ।
सारङ्ग इव घर्मार्त्तः कामं विलप शुष्य च ॥ ४८ ॥
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः ।
तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४९ ॥
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे ।
तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थं द्विषतामपि ॥ ५० ॥
विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम् ।
नतद्भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ॥ ५१ ॥

दूषित होती हैं। वे नित्य अशुद्ध रहती हैं॥३७।४१॥ मद्र देश के नर-नारी एँड़ी से चोटी तक कुकर्म से भरपूर होते हैं। उनके इस प्रकार के अनेक दोषों को मैं बता सकता हूँ। मैं या अन्य लोग तुम मद्र-देश-वासियों के दोषों को जानते हैं। पापमय देशों में उत्पन्न मद्रक और सिन्धु-सौवीर देश के लोग म्लेच्छ हैं; वे धर्म के विषय में अनभिज्ञ होते हैं। वे धर्म को कैसे जान सकते हैं? क्षत्रिय का मुख्य धर्म हमने यही सुना है कि युद्ध में लड़ता हुआ मारा जाय। सज्जन लोग ऐसे ही क्षत्रिय की प्रशंसा करते हैं। मैं रण में मर-कर स्वर्ग की इच्छा करता हूँ। अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा के मध्य मरना ही मुझे इष्ट है॥४२।४५॥ मैं बुद्धिमान् राजा दुर्योधन का प्रिय और माननीय मित्र हूँ। मेरे प्राण और धन सब उन्हीं के निमित्त हैं। हे पाप देश में उत्पन्न! यह स्पष्ट है कि तुमको पाण्डवों ने फोड़ लिया है; इसी से तुम शत्रु के समान ऐसी बातें कहकर मुझे उत्साहहीन करना चाहते हो। किन्तु याद रक्खो, तुम सरीखे सैंकड़ों पुरुष भी ऐसी बातें करके मुझे संग्राम से विमुख नहीं कर सकते, जिस प्रकार धर्मात्मा पुरुष को नास्तिक लोग धर्मपथ से विचलित नहीं कर सकते। गर्मी से पीड़ित मृग के समान तुम खूब विलाप कर लो और भय के मारे सूख जाओ॥४५।४९॥ मैं क्षत्रियधर्म को दृढ़ रूप से ग्रहण किये हुए हूँ, मुझे तुम डरा नहीं सकते। मेरे गुरु परशुराम ने युद्ध से न लौटनेवाले वीरों की जो गति मुझ से कही है उसे स्मरण करके मैं दृढ़ होकर युद्ध करूँगा। मैं पुरूरवा के उत्तम वंश में उत्पन्न और श्रेष्ठ क्षत्रियों के समान आचरण करने को उद्यत हूँ। मैं अवश्य अपने मित्रों

यो मामस्मादभिप्रायाद्वारयेदिति मे मतिः ।
एवं विद्वञ्जोषमास्व त्रासात्किं बहु भाषसे ॥ ५२ ॥
न त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भयो मद्रकाधम ।
मित्रप्रतीक्षया शल्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ॥ ५३ ॥
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि ।
पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ॥ ५४ ॥
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।
श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ॥ ५५ ॥
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ ।
एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशाम्पते ।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहियाहीत्यसम्भ्रमम् ॥ ५६ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णमद्राधिपसंवादे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४०

की रक्षा और शत्रुओं का नाश करूँगा । हे शल्य ! त्रिलोकी में मुझे ऐसा कोई नहीं देख पड़ता जो मेरे इस विचार को परिवर्तन कर सके।इसलिए यह जानकर तुम चुप रहो।भय के मारे क्यों वृथा बहुत बक रहे हो?॥४९। ५२॥हे अधम मद्रका!मैं अब तक तुमको मारकर मांसाहारी जीवों को खिला देता;किन्तु तीन कारणों से ऐसा नहीं करता।एक तो मुझे मित्र दुर्योधन का कार्य सिद्ध करना है, दूसरे क्षमा करने का वचन दे चुका हूँ, तीसरे ऐसा करने में निन्दा होगी। इन्हीं तीन कारणों से तुम अब तक जीवित हो।किन्तु हे शल्य! अब फिर जो ऐसे वचन मुख से निकालोगे तो मैं अभी इस वज्रतुल्य गदा से तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।हे कुदेश के राजा ! वीरगण आज देखेंगे और सुनेंगे कि कृष्ण और अर्जुन को मैंने मार डाला या उन्होंने मुझे मार गिराया । हे महाराज ! वीर कर्ण इस प्रकार कहकर शल्य से निःशङ्क हो फिर कहने लगे कि अर्जुन के समीप मेरा रथ ले चलो॥५२।५६॥

—•—

कर्णपर्व का चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

सञ्जय उवाच—मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः ।
शल्योऽब्रवीत्पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः ॥ १ ॥
जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः ॥ २ ॥
यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष ।
तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया ॥ ३ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय ॥ ४१ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! युद्ध के निमित्त उद्यत कर्ण के ये वचन सुनकर, उनका उपहास करने के निमित्त, मद्रराज शल्य (हंस और कौए के उपाख्यान की कल्पना करके, हंस से अर्जुन की और कौए से कर्ण की तुलना करते हुए) कहने लगे—हे सूतपुत्र ! मैं धर्मात्मा, समर से न हटनेवाले,

इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे ।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीनकुलपांसन ॥ ४ ॥
नाहमात्मनि किञ्चिद्वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे ।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ५ ॥
अवश्यं तु मया वाच्यं बुध्यता त्वद्धिताहितम् ।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ६ ॥
समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम् ।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥ ७ ॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम् ।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया ॥ ८ ॥
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च ।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ॥ ९ ॥
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः ।
वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १० ॥
यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः ।
बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ११ ॥
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः ।
पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ॥ १२ ॥

यज्ञतत्पर, मूर्द्धाभिषिक्त नरेशों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं भी धर्म-परायण हूँ। इस समय तुम्हारी दशा मद्यप की सी देख पड़ती है। मैं मित्रभाव से तुम्हें आज होश में लाना चाहता हूँ। सब प्रकार से तुम्हारे ऊपर घटित होनेवाला यह हंस-काक का उपाख्यान मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ। हे कुलाधम कर्ण! उसे सुनकर फिर जो समझ में आवे सो करना ॥१।४॥ हे कर्ण! मुझे स्मरण नहीं आता कि मैंने तुम्हारे साथ क्या दुर्व्यवहार किया है, जिसके निमित्त तुम मुझे निरपराध को मारना चाहते हो। देखो, मैं इस समय तुम्हारा सारथी हूँ, विशेषकर राजा दुर्योधन का जिसमें हित हो वही करना और सुझाना मेरा कर्तव्य है। इसी कारण तुम्हारे हित और हानि की मैं तुम्हें बतलाऊँगा। अब तक मैंने जो कुछ कहा है सो भी इसी विचार से। जब मैं इस रथ का रक्षक हूँ तब मेरा कर्तव्य है कि पृथ्वी के सम और विषम स्थलों पर दृष्टि रक्खूँ, अपने रथी के सबल या निर्बल होने पर ध्यान दूँ तथा रथी और घोड़ों का विश्रान्त होना और खेद का विचार रक्खूँ। इन बातों के अतिरिक्त शस्त्रों का ज्ञान, पशु और पक्षी आदि के शब्दों से सूचित होनेवाले शुभाशुभ शकुनों की पहचान, भारी या हलके बोझ की जानकारी, शल्य (घाव आदि) की प्रतिक्रिया अर्थात् चिकित्सा, अस्त्रयोग, युद्ध और शुभाशुभ निमित्तों का ज्ञान आदि सब आवश्यक बातों पर ध्यान देना मेरा कर्तव्य है। हे कर्ण! इसी लिए मैं तुमको बारम्बार समझा रहा हूँ। अब मैं एक और दृष्टान्त कहता हूँ, जिससे तुमको मालूम हो जायगा कि तुम अर्जुन का सामना नहीं कर सकते ॥५।१०॥ हे कर्ण! समुद्र के तट पर किसी धर्मात्मा राजा के राज्य में एक धन-धान्य-सम्पन्न, यज्ञनिरत, दानी,

काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः ।
तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ॥ १३ ॥
मांसोदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी ।
स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः ॥ १४ ॥
सदृशान्पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चाधिचिक्षिपे ।
अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः ॥ १५ ॥
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः ।
कुमारकास्तदा हंसान्दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ॥ १६ ॥
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहङ्गम ।
प्रतार्यमाणस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥ १७ ॥
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद्दर्पाच्च मन्यते ।
तान्सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ॥ १८ ॥
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम् ।
तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥ १९ ॥
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम् ।
तच्छ्रुत्वा प्राहसन्हंसा ये तत्रासन्समागताः ॥ २० ॥
भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः ।
इदमूचुः स्म चक्राङ्गा वचः काकं विहङ्गमाः ॥ २१ ॥

क्षमाशील, अपने धर्म का प्रतिपालक, पवित्रहृदय और सब प्राणियों पर दया रखनेवाला वैश्य रहता था। उस वैश्य के बहुत पुत्र थे। वे उसे बहुत प्रिय थे। उन बहुत से यशस्वी कुमारों के यहाँ एक कौआ भी पला हुआ था, जो उन्हीं की जूठन खाता था। वे वैश्य के लड़के अपनी जूठन का मांस, भात, दही, दूध, खीर, शहद, घी आदि उत्तम पदार्थ खिलाकर उस कौए को पालने लगे। जूठन खानेवाला वह कौआ उन वैश्यकुमारों के समीप रहते रहते धीरे-धीरे मोटा ताजा हो गया। उसको गर्व भी हो आया। वह अपने समान और अपने से श्रेष्ठ पक्षियों को भी तुच्छ समझने और उनका अपमान करने लगा॥१०।१५॥ इसी मध्य में समुद्र के तट पर बहुत से प्रसन्नचित्त दूरगामी, गरुड़ के समान उड़नेवाले, मानस-सरोवर में रहनेवाले पक्षिराज हंस आये। उस समय हंसों को देखकर वे वैश्य बालक उस कौए से कहने लगे—हे काक! तुम्हीं सब पक्षियों में श्रेष्ठ हो। देखो, ये हंस आकाशमार्ग में बहुत दूर पर उड़ते चले आ रहे हैं तुम इतनी दूर उड़ सकते हो तो क्यों नहीं उड़ते? हे कर्ण! उन अल्प बुद्धिवाले वैश्य-कुमारों ने इस प्रकार मिथ्यात्व प्रशंसा की तो मूर्खता और दर्प के कारण कौए ने उसे सत्य ही समझ लिया। जूठन खाकर गर्वित हुआ वह कौआ उन श्रेष्ठ गति से जानेवाले हंसों के समीप जाकर मूर्खतावश यह जानने की चेष्टा करने लगा कि उनमें कौन प्रधान हंस है। उस दुर्बुद्धि पक्षी ने उन दूर उड़नेवाले हंसों में जिसे श्रेष्ठ समझा उसे ललकारकर वह कहने लगा कि हे हंसश्रेष्ठ! आओ, मैं तुम्हारे साथ उड़ना चाहता हूँ॥१५।२०॥ हे सूतपुत्र! वे सब हंस काक के ये वचन सुनकर हँसने लगे।

हंसा ऊचुः—वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः ।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥ २२ ॥
कथं हंसं नु वलिनं चक्राङ्गं दूरपातिनम् ।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ॥ २३ ॥
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत् ।
अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः ।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात् ॥ २४ ॥

काक उवाच—शतमेकं च पातानां पतितास्मि न संशयः ।
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा ॥ २५ ॥
उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च ।
निडीनमथ सण्डीनं तिर्यग्डीनगतानि च ॥ २६ ॥
विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम् ।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम् ॥ २७ ॥
अवडीनं प्रडीनं च सण्डीनं डीनडीनकम् ।
सण्डीनोड्डीनडीनं च पुनर्डीनविडीनकम् ॥ २८ ॥
सम्पातं समुदीपं च ततोऽन्यद्व्यतिरिक्तकम् ।
गतागतं प्रतिगतं वह्वीश्च निकुलीनकाः ॥ २९ ॥
कर्त्तास्मि मिपतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे वलम् ।
तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहायसम् ॥ ३० ॥
प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम् ।
ते वै ध्रुवं विनिश्चित्य पतध्वं न मया सह ॥ ३१ ॥

मूर्खतावश बहुत बककर अपनी प्रशंसा कर रहे काक से वे हंस कहने लगे—अरे कौए! तू बड़ा मूर्ख है जो हमारी समता करना चाहता है। हम मानस-सरोवर के निवासी हंस, अपनी इच्छा के अनुसार, सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल में विचरते हैं। बहुत दूर तक उड़कर जा सकने के कारण हम पक्षियों में पूज्य माने जाते हैं। अरे तू क्षुद्र काक होकर दूर उड़ने की शक्ति रखनेवाले बली चक्राङ्ग हंस को, उड़ने के निमित्त, क्या समझकर ललकारता है? तू ही बता, तू हंसों के साथ कैसे उड़ेगा? तब क्षुद्र जाति होने के कारण अधिक बकबक और अपनी प्रशंसा करनेवाले मूढ़ कौए ने बारम्बार हंसों की निन्दा करके इस प्रकार उत्तर दिया—हे हंसो! मैं सौ प्रकार की विचित्र गतियाँ जानता हूँ और प्रत्येक गति से सौ योजन तक जा सकता हूँ। मैं तुम्हारे सम्मुख ही उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन, निडीन, सण्डीन, तिर्यग्डीन, विडीन, परिडीन, पराडीन, सुडीन, अभिडीन, अभिडीन, महाडीन, निर्डीन, डीनडीन, सण्डीनोड्डीनडीन, डीनविडीन, सम्पात, समुदीर्ण, व्यतिरिक्तक, बहुत सी निकुलीनका (पल्टे), गतागत और प्रतिगत आदि अनेक प्रकार की गतियों से उड़कर तुमको अपना बल दिखाऊँगा॥२४।२९॥ बतलाओ? इनमें से किस गति से मैं आकाश में

पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये ।
एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहङ्गमः ॥ ३२ ॥
उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे ।
हंस उवाच—शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ॥ ३३ ॥
एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहङ्गमाः ।
तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन ॥ ३४ ॥
पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे ।
अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन्समागताः ॥ ३५ ॥
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् ।
एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिपतिष्यति ॥ ३६ ॥
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः ।
प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ॥ ३७ ॥
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च ।
पतिता वाथ चक्राङ्गः पतिता वाथ वायसः ॥ ३८ ॥
विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः ।
अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः ।
हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥ ४० ॥
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च ।
वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ ४१ ॥

उड़ूँ ! निराधार आकाशमार्ग में जिन गतियों से पक्षी उड़ते हैं उनमें से किस गति से तुम मेरे साथ उड़ोगे—आपस में निश्चय करके शीघ्र कहो॥३०।३२॥कौए की धृष्टता पर हँसकर एक हंस ने जो कुछ कहा वह सुनो। हे कर्ण! उस हंस ने कहा—हे काक! तुम तो बड़े चतुर हो, सौ गतियाँ जानते हो और उन्हीं गतियों से उड़ोगे। परन्तु मैं तो वही एक गति जानता हूँ जिसे सब पक्षी जानते हैं और उसी गति से उड़ूँगा। यह सुनकर गर्वित कौए ने कहा—अच्छी बात है, तुम जो एक गति जानते हो उसी से उड़ो ॥३२।३५॥हे सूतपुत्र! इसी मध्य में वहाँ और भी कुछ पक्षी आकर एकत्र हो गये थे। वे सब कौए का उपहास करते हुए कहने लगे—यह हंस केवल एक गति जानता है और तुम सौ गतियाँ जानते हो! फिर यह तुमको कैसे जीत सकेगा, तुम्हीं इसको हरा दोगे। इसके पश्चात् वह स्फूर्तिशाली और बली कौआ तथा हंस दोनों पक्षी परस्पर लाग-डाँट के साथ आकाशमार्ग में उड़ने लगे॥३५।३९॥समुद्र के ऊपर आकाश में काक तो शीघ्रता से अपनी सैकड़ों गतियाँ दिखाता हुआ उड़ने लगा, किन्तु हंस अपनी उसी एक धीमी गति से उड़ रहा था। कौए की विचित्र गतियों को देखकर अन्य कौए बहुत प्रसन्न हुए। वे काँव-काँव करके हर्ष प्रकट करने लगे। हंस और कौए अपनी-अपनी जय मनाते हुए अप्रिय शब्द करते और एक

कुर्वाणा विविधान्रावानाशंसन्तो जयं यथा ।
हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२ ॥
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष ।
अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४३ ॥
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते ।
अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापयत्पश्चिमां दिशम् ॥ ४४ ॥
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम् ।
ततो भीः प्राविशत्काकं तदा तत्र विचेतसम् ॥ ४५ ॥
द्वीपद्रुमानमपश्यन्तं निपातार्थं श्रमान्वितम् ।
निपतेयं क्व नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे ॥ ४६ ॥
अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः ।
महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते ॥ ४७ ॥
गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज ।
दिगम्बराम्भसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः ॥ ४८ ॥
विदूरपातात्तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः ।
अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ॥ ४९ ॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद्व्यपसर्पितुम् ।
अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥ ५० ॥
यावद्गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन् ।
ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा ॥ ५१ ॥

दूसरे को हँसते थे। सब पक्षी वृक्षों के ऊपर से और खड से उड़कर देखते और शाखाओं पर बैठ जाते थे॥३९।४२॥थोड़ी देर के निमित्त कौए की अपेक्षा हंस की गति धीमी पड़ गई। इसलिये हंसों को हँसते हुए कौए कहने लगे—देखो, जो प्रधान हंस कौए के साथ उड़ा था वह पिछड़ा जा रहा है। कौओं के मुख से अपनी निन्दा सुनकर वह हंस, समुद्र के ऊपर होकर, पश्चिम दिशा की ओर वेग से आगे बढ़ा। हे कर्ण! इधर वह काक पहले ही तेजी दिखाने के कारण विश्रान्त हो गया था। अनेक जल-जन्तुओं से पूर्ण भयानक सागर के ऊपर पहुँचकर वह कौआ अचेत सा हो गया और भय के मारे व्याकुल हो उठा॥४२।४६॥थका हुआ कौआ विश्राम के निमित्त सागर के भीतर वृक्षयुक्त द्वीपों को खोजने लगा। वह सोचने लगा कि विश्रान्त हो जाने के कारण मैं इस सागर में न जाने कहाँ गिर पड़ूँगा और डूब मरूँगा। हे कर्ण! महासागर तो बड़े-बड़े जलजन्तुओं का निवास-स्थान और भयानक है। वह आकाश के ही समान अपार है। वह इतना गहरा और विस्तृत है कि बुद्धिमान् और बली मनुष्य भी यों सागर के पार नहीं जा सकते और उसका अगाध (अथाह) या तट नहीं प्राप्त कर सकते, तब उस क्षुद्र काक में इतनी शक्ति कहाँ! हंस ने वेग से दूर पहुँचकर, मुड़कर, उस कौए की ओर देखा। वह विश्रान्त हो जाने के कारण प्राण-

पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये ।
एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहङ्गमः ॥ ३२ ॥
उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे ।
हंस उवाच—शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ॥ ३३ ॥
एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहङ्गमाः ।
तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन ॥ ३४ ॥
पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे ।
अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन्समागताः ॥ ३५ ॥
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् ।
एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिपतिष्यति ॥ ३६ ॥
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः ।
प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ॥ ३७ ॥
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च ।
पतिता वाथ चक्राङ्गः पतिता वाथ वायसः ॥ ३८ ॥
विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः ।
अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः ।
हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥ ४० ॥
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च ।
वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ ४१ ॥

उड़ूँ ? निराधार आकाशमार्ग में जिन गतियों से पक्षी उड़ते हैं उनमें से किस गति से तुम मेरे साथ उड़ोगे— आपस में निश्चय करके शीघ्र कहो॥३०।३२॥कौए की धृष्टता पर हँसकर एक हंस ने जो कुछ कहा वह सुनो । हे कर्ण ! उस हंस ने कहा—हे काक ! तुम तो बड़े चतुर हो, सौ गतियाँ जानते हो और उन्हीं गतियों से उड़ोगे। परन्तु मैं तो वही एक गति जानता हूँ जिसे सब पक्षी जानते हैं और उसी गति से उड़ूँगा। यह सुनकर गर्वित कौए ने कहा—अच्छी बात है, तुम जो एक गति जानते हो उसी से उड़ो ॥३२।३५॥हे सूतपुत्र ! इसी मध्य में वहाँ और भी कुछ पक्षी आकर एकत्र हो गये थे। वे सब कौए का उपहास करते हुए कहने लगे—यह हंस केवल एक गति जानता है और तुम सौ गतियाँ जानते हो ! फिर यह तुमको कैसे जीत सकेगा, तुम्हीं इसको हरा दोगे । इसके पश्चात् वह स्फूर्तिशाली और बली कौआ तथा हंस दोनों पक्षी परस्पर लाग डाँट के साथ आकाश-मार्ग में उड़ने लगे॥३५।३९॥समुद्र के ऊपर आकाश में काक तो शीघ्रता से अपनी सैकड़ों गतियाँ दिखाता हुआ उड़ने लगा, किन्तु हंस अपनी उसी एक धीमी गति से उड़ रहा था। कौए की विचित्र गतियों को देखकर अन्य कौए बहुत प्रसन्न हुए । वे काँव-काँव करके हर्ष प्रकट करने लगे। हंस और कौए अपनी-अपनी जय मनाते हुए अप्रिय शब्द करते और एक

कुर्वाणा विविधान्रावानाशंसन्तो जयं यथा ।
हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२ ॥
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष ।
अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४३ ॥
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते ।
अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापयत्पश्चिमां दिशम् ॥ ४४ ॥
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम् ।
ततो भीः प्राविशत्काकं तदा तत्र विचेतसम् ॥ ४५ ॥
द्वीपद्रुमानमपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम् ।
निपतेयं क्व नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे ॥ ४६ ॥
अविपह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः ।
महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपिविशिष्यते ॥ ४७ ॥
गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज ।
दिगम्बराम्भसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः ॥ ४८ ॥
विदूरपातात्तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः ।
अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ॥ ४९ ॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद्व्यपसर्पितुम् ।
अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥ ५० ॥
यावद्गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन् ।
ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा ॥ ५१ ॥

दूसरे को हँसते थे। सब पक्षी वृक्षों के ऊपर से और स्थल से उड़कर देखने और शाखाओं पर बैठ जाते थे॥३९।४२॥थोड़ी देर के निमित्त कौए की अपेक्षा हंस की गति धीमी पड़ गई। इसलिये हंसों को हँसते हुए कौए कहने लगे—देखो, जो प्रधान हंस कौए के साथ उड़ा था वह पिछड़ा जा रहा है। कौओं के मुख से अपनी निन्दा सुनकर वह हँस, समुद्र के ऊपर होकर, पश्चिम दिशा की ओर वेग से आगे बढ़ा। हे कर्ण! इधर वह काक पहले ही तेजी दिखाने के कारण विश्रान्त हो गया था। अनेक जल-जन्तुओं से पूर्ण भयानक सागर के ऊपर पहुँचकर वह कौआ अचेत सा हो गया और भय के मारे व्याकुल हो उठा॥४३।

४६॥थका हुआ कौआ विश्राम के निमित्त सागर के भीतर वृक्षयुक्त द्वीपों को खोजने लगा। वह सोचने लगा कि विश्रान्त हो जाने के कारण मैं इस सागर में न जाने कहाँ गिर पड़ूँगा और डूब मरूँगा। हे कर्ण! महासागर तो बड़े-बड़े जलजन्तुओं का निवास-स्थान और भयानक है। वह आकाश के ही समान अपार है। वह इतना गहरा और विस्तृत है कि बुद्धिमान् और बली मनुष्य भी यों सागर के पार नहीं जा सकते और उसका अगाध (अथाह) या तट नहीं प्राप्त कर सकते, तब उस क्षुद्र काक में इतनी शक्ति कहाँ! हंस ने वेग से दूर पहुँचकर, मुड़कर, उस कौए की ओर देखा। वह विश्रान्त हो जाने के कारण प्राण-

तं तथा हीयमानं तु हंसो दृष्ट्वाब्रवीदिदम् ।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन्सत्पुरुषव्रतम् ॥ ५२ ॥

हंस उवाच—बहूनि पतितानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः ।
पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ॥ ५३ ॥
किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि साम्प्रतम् ।
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥
प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते पतसि वायस ।
एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालये ॥ ५५ ॥

शल्य उवाच—स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च जलं तदा ।
दृष्टो हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
अपश्यन्नम्भसः पारं निपतंश्च श्रमान्वितः ।
पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदिदम् ॥ ५७ ॥
वयं काकाः कुतो नाम चरामः काकवाशिकाः ।
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम् ॥ ५८ ॥
स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च महार्णवे ।
काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निपपात ह ॥ ५९ ॥
सागराम्भसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम् ।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह ॥ ६० ॥
शतमेकं च पातानां पतास्यहमनुस्मर ।
श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषितवानसि ॥ ६१ ॥

शून्य हो रहा था॥४६।४९॥जान पड़ता था कि अब गिरा तब गिरा। आगे बढ़ने की शक्ति रहने पर भी हँस ठहर गया और कौए के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा॥हँस ने देखा कि कौए की चाल बिलकुल धीमी पड़ गई है,वह किसी प्रकार उड़ नहीं सकता और बेदम होकर गिरा पड़ता है। तब सज्जनों के आचरण को स्मरण करके, डूब रहे कौए को उबारने के निमित्त हँस ने कहा—हे काक ! तुम बारम्बार अपनी बहुत सी गतियों का वर्णन करके मेरी निन्दा करते हुए उड़े थे। तुम कह रहे थे कि किसी प्रकार तुम विश्रान्त नहीं हो सकते। किन्तु इस समय तुम्हारे पङ्ख और चोंच बार-बार जल में डूब रही है। बताओ तो सही, यह कौन सी गति है ? हे काक ! आओ, शीघ्र आओ, मैं तुम्हारे आने का मार्ग देख रहा हूँ॥४९।५५॥शल्य कहते हैं—हे कर्ण ! हँस के व्यंग्य वचन सुनकर वह उड़ने से विश्रान्त हुआ, जल में डूब रहा, कौआ हँस से अपने प्राण बचाने के निमित्त शरणागत होकर कहने लगा—हे हँस ! हम कौए तो काँव-काँव किया करते हैं, हम भला विचित्र गतियों को क्या जानें ! मुझे बचा लो, यह कहकर कौआ जल में डूबने लगा ॥५६।५९॥समुद्र में डूबते हुए कौए को देखकर हँस बोला—तुम तो सैंकड़ों गतियाँ जानने की डींग मारते

'स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्यधिको मया ।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे ॥ ६२ ॥
प्रत्युवाच ततः काकः सीदमान इदं वचः ।
उपरिष्टं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसादयन् ॥ ६३ ॥
काक उवाच—उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽऽत्मानं सुपर्णवत् ।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः ॥ ६४ ॥
प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम् ।
यद्यहं स्वस्तिमान्हंस स्वं देशं प्राप्नुयां विभो ॥ ६५ ॥
न कञ्चिदवमन्येऽहमापदो मां समुद्धर ।
तमेवंवादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम् ॥ ६६ ॥
काककाकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे ।
कृपयादाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम् ॥ ६७ ॥
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः ।
आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम् ॥ ६८ ॥
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः ।
संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम् ॥ ६९ ॥
गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः ।
एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः ॥ ७० ॥
बलं वीर्यं महत्कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः ।
उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा ॥ ७१ ॥

थे,उसको स्मरण करो।इतनी गतियों के ज्ञाता होकर तुम समुद्र में कैसे गिर गये?यह आश्चर्य की बात है ॥६०।६२॥इस पर कौए ने दुःखित होकर उड़ते हुए हँस से कहा—हे हँस!मैं जूठन खाकर पुष्ट हुआ था और [कुजाति होने के कारण]दर्प के वश होकर[बालकों के बहकाने में]अपने को गरुड़ के समान बली समझने लगा था । मैं अहङ्कार के मारे सब पक्षियों को अपने से हीन समझता था, उसी का यह फल आज मिल गया । अब मैं तुम्हारी शरण में हूँ । [थक जाने के कारण न तो मैं उड़ सकता हूँ और न अपने प्राण बचा सकता हूँ ।]कृपा कर इस आपत्ति में मुझे उबारो। यदि मैं जीवित रहकर अपने घर पहुँच सकूँगा तो, सत्य कहता हूँ कि, फिर कभी किसी साधारण पक्षी का भी अपमान न करूँगा॥६३।६६॥इस प्रकार अचेत होकर कौआ जब करुण और दीन स्वर से विलाप करने लगा और काँ-काँ शब्द करके विवशता के साथ समुद्र में डूबने लगा तब दुरात्मा पर हंस को दया आ गई । जल से भीगे, अचेत, अर्धमृत,काँप रहे कौए को हंस ने कृपापूर्वक पाँवों से उठाकर अपनी पीठ पर बिठा लिया । कौए को लादे हुए हंस वहीं पर लौट आया जहाँ से दोनों पक्षी, सङ्केत लगा करके, उड़े थे ।(हंस को अपनी विजय के कारण तनिक भी गर्व नहीं हुआ।) वह उस कौए को उसके स्थान पर छोड़कर कहने लगा—हे काक ! अब कभी इस प्रकार का साहस न करना।

एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्त्तराष्ट्रैर्न संशयः ।
सदृशाञ्छ्रेयसश्चापि सर्वान्कर्णातिमन्यसे ॥ ७२ ॥
द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥ ७३ ॥
यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
शृगाला इव सिंहेन क ते वीर्यमभूत्तदा ॥ ७४ ॥
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७५ ॥
तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून्समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७६ ॥
हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान्रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत् ॥ ७७ ॥
पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥ ७८ ॥
सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
अवध्यौ वदतः कृष्णौ सन्निधौ च महीक्षिताम् ॥ ७९ ॥
कियत्तत्प्रवक्ष्यामि येन येन धनञ्जयः ।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा ॥ ८० ॥

यों उपदेश देकर शीघ्रगामी हंस यथेष्ट स्थान को चले गये॥६६।७०॥हे सूतपुत्र ! जूठन खाकर पले हुए अभिमानी कौए ने इस प्रकार हंस से हार जाने पर बल और वीर्य का घमण्ड छोड़ दिया और शान्त भाव धारण कर लिया। वैश्य-बालकों के मध्य जूठन खाकर पले हुए उस मूर्ख कौए के समान तुम भी दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों के टुकड़े खाकर पले हो। भीष्म आदि कौरवों और द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि महारथियों के बल से तुम अब तक सुरक्षित रहे । अपने समान और अपने से श्रेष्ठ बली पराक्रमी योद्धाओं का अपमान करने की तुम्हारी आदत है, किन्तु यह तुम्हारी मूर्खता है । यदि तुम ऐसे ही बली थे तो विराट नगर में जब अर्जुन अकेले ही थे तब तुमने क्यों नहीं जीत लिया॥७०।७३॥ उस समय तो अर्जुन ने, सिंह जैसे गीदड़ों को मार भगाते वैसे ही, तुम सबमें से एक एक को और एक साथ सबको हरा दिया था। उस समय तुम्हारी यह सब वीरता और पराक्रम कहाँ चला गया था ? समर में जब अर्जुन ने तुम्हारे भाई को तुम्हारे सम्मुख ही मार डाला तब कौरवों के सम्मुख ही सबसे पहले तुम भाग खड़े हुए थे। द्वैतवन में गन्धर्वों ने जब आक्रमण किया था तब स्त्रियों सहित कौरवों को छोड़कर तुम्हीं पहले भागे थे । उस समय अर्जुन ने ही रण में चित्र- सेन आदि गन्धर्वों को मारकर, हराकर, भाइयों सहित दुर्योधन को बन्धन से छुड़ाया था॥७४।७७॥उसके पश्चात् कौरवों की भरी सभा में परशुराम और व्यासदेव ने अर्जुन और श्रीकृष्ण के प्रभाव का वर्णन किया था,सो भी तुम सुन चुके हो। भीष्म और द्रोण तुम्हारे और सब राजाओं के सम्मुख बारम्बार कहते रहे हैं कि श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई भी नहीं मार सकता। हे कर्ण !

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ ।
पुत्रं च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रं च पाण्डवम् ॥ ८१ ॥
यथाश्रयत चक्राङ्गं वायसो बुद्धिमास्थितः ।
तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥ ८२ ॥
यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ८३ ॥
यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति ।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ॥ ८४ ॥
देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ ।
तौ मावमंस्था मौर्ख्यात्त्वं खद्योत इव रोचनौ ॥ ८५ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत्तद्वदर्जुनकेशवौ ।
प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु ॥ ८६ ॥
एवंविद्वन्मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ ।
नृसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे हंसकाकीयोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

मैं किन-किन बातों में अर्जुन को तुमसे श्रेष्ठ बताऊँ? ब्राह्मण जैसे सभी बातों में अन्य वर्णों से श्रेष्ठ होते हैं वैसे ही अर्जुन भी सभी बातों में तुमसे श्रेष्ठ हैं। तुम अभी श्रेष्ठ रथ पर स्थित पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखोगे॥७८।८१॥मैं मित्र भाव से तुमको समझाता हूँ कि जैसे हंस की शरण में जाकर कौए ने अपने प्राण बचाये थे वैसे ही तुम भी अर्जुन और श्रीकृष्ण के शरणागत होकर अपनी रक्षा करो। हे कर्ण! जब तुम एक ही रथ पर स्थित पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखोगे तब ऐसी घमण्ड की बातें मुख से न निकालोगे। जब अर्जुन अपने सैकड़ों तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारे इस दर्प को चूर्ण करेंगे तब तुम्हें मालूम होगा कि तुममें और अर्जुन में कितना अन्तर है॥८२।८४॥हे कर्ण! मैं फिर कहता हूँ कि तुम मूर्खतावश उन पुरुषसिंह अर्जुन और श्रीकृष्ण को तुच्छ मत समझो जो अपने बल और पराक्रम के कारण देवताओं, असुरों और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। वे चन्द्र और सूर्य के समान हैं, और तुम जुगनू के समान हो। यह मैं ही नहीं कहता, किन्तु पृथ्वी भर पर वे चन्द्र-सूर्य समझे जाते हैं और तुम जुगनू। हे सूतपुत्र! यह जानकर तुम श्रीकृष्ण और अर्जुन का अपमान न करो, चुप रहो। तुम अपनी अधिक प्रशंसा व्यर्थ कर रहे हो॥८५।८७॥

कर्णपर्व का इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

सञ्जय उवाच—मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः ।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥ १ ॥

बयालीसवाँ अध्याय ॥ ४२ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! शल्य के ऐसे अप्रिय वचन सुनकर वीर कर्ण क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने कहा—हे शल्य! कृष्ण और अर्जुन जैसे और जितने हैं सो मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ।

शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य ।
अहं विजानामि यथावदद्य परोक्षभूतं तव तत्तु शल्य ॥ २ ॥
तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ ।
सन्तापयत्यभ्यधिकं नु रामाच्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥ ३ ॥
अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः ।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥ ४ ॥
कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम् ।
ममोरुमेत्य प्रबिभेद कीटः सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥ ५ ॥
ऊरुप्रभेदाच्च महान्बभूव शरीरतो मे घनशोणितौघः ।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलिवानहं ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ६ ॥
स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति ।
तस्मै तदात्मानमहं यथावदाख्यातवान्सूतवदेत्य शल्य ॥ ७ ॥
स मां निशम्याथ महातपस्वी संशप्तवान्रोषपरीतचेताः ।
सूतोपधावाप्तमिदं तवास्त्रं न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ८ ॥
अन्यत्र तस्मात्तव मृत्युकालादब्राह्मणे ब्रह्म नहि ध्रुवं स्यात् ।
तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्रमस्मिन्संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥ ९ ॥
योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः ।
सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान्प्रतापिता बलवान्वै विमर्दः ॥ १० ॥

अर्जुन के रथ को हाँकनेवाले कृष्ण के बल-विक्रम और सारथी के कार्य में उनकी निपुणता को तथा अर्जुन के बल और दिव्य अस्त्रों को मैं बहुत अच्छी प्रकार जानता हूँ। इस सम्बन्ध में मुझे जितना ज्ञान है उतना तुमको नहीं। मैं उन श्रेष्ठ योद्धा कृष्ण और अर्जुन से निर्भय होकर युद्ध करूँगा; किन्तु गुरु महात्मा परशुराम और अन्य एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे जो शाप दे रक्खे हैं उनको स्मरण कर इस समय मैं बहुत ही व्यथित हो रहा हूँ॥१।३॥पहले मैं दिव्य अस्त्र सीखने के निमित्त ब्राह्मण ब्रह्मचारी के वेष से, गुरु परशुराम के समीप रहकर अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करने लगा था। हे शल्य! (एक दिन महात्मा परशुराम जी मेरी जाँघ पर सिर रखकर सो गये।) इन्द्र ने अर्जुन का हित करने के निमित्त मेरी शिक्षा में विघ्न डालने के अभिप्राय से, एक उग्र कीड़े का रूप रखकर मेरी जाँघ में काट खाया। फल यह हुआ कि मेरी जाँघ से रक्त बह चला। गुरु की निद्रा में बाधा पड़ेगी तो वे कोप करके शाप दे देंगे, इस भय के मारे मैं चुपचाप वैसा ही बैठा रहा, तनिक भी नहीं हिला-डुला। क्षण भर में गुरु की आँख खुली। उन्होंने मेरी जाँघ से रक्त निकलते देखा ॥४।६॥ऐसी व्यथा में भी मुझे धैर्य के साथ बैठा हुआ देखकर गुरु को, मेरे ब्राह्मण होने में, सन्देह हुआ। उन्होंने मुझसे कहा—तू ब्राह्मण तो है नहीं। सत्य बता, कौन है? हे मद्रराज! तब मैंने सत्य सत्य कह दिया कि मैं सूत के यहाँ पला हूँ और सूत ही हूँ। यह सुनकर महात्मा परशुराम ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया। उन्होंने कहा—हे सूत! तूने ब्राह्मण बनकर मुझे धोखा देकर, मुझसे जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया है उसको, कार्य पड़ने पर, मृत्यु के समय तू भूल जायगा हे मूढ़! ब्राह्मण और क्षत्रिय के अतिरिक्त इस ब्रह्मास्त्र

शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम् ।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं धनञ्जयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥ ११ ॥
अस्त्रं ततोऽन्यत्प्रतिपन्नमद्य येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान् ।
प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं तमुग्रधन्वानममितौजसं च ॥ १२ ॥
क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं धनञ्जयं संयुगेऽहं हनिष्ये ।
अपाम्पतिर्वेगवानप्रमेयो निमज्जयिष्यन्बहुलाः प्रजाश्च ॥ १३ ॥
महावेगं संकुरुते समुद्रो वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम् ।
प्रमुञ्चन्तं बाणसङ्घानमेयान्मर्मच्छिदो वीरहणः सुपत्रान् ॥ १४ ॥
कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे ज्याकर्षतामुत्तममद्य लोके ।
एवं बलेनातिबलं महास्त्रं समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ॥ १५ ॥
शरौघिणं पार्थिवान्मज्जयन्तं वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये ।
अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ १६ ॥
सुरासुरान्युधि वै यो जयेत तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम् ।
अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ॥ १७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य सङ्ख्ये बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम् ।
सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥ १८ ॥
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं धनञ्जयं छादयिष्यामि बाणैः ।
वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं तेजस्विनं लोकमिमं दहन्तम् ॥ १९ ॥

का अधिकारी दूसरा नहीं हो सकता॥७।९॥ हे शल्य ! इस घोर युद्ध के समय उस अस्त्र को मैं भूल गया हूँ और भरतवंशियों का यह भयङ्कर युद्ध हो रहा है जिसमें बड़े बड़े वीर मारे जायँगे। श्रेष्ठ धनुर्धारी, स्फूर्तिशाली, भयङ्कर, असह्य पराक्रमी, सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन को मैं युद्ध में जीवित न छोड़ूँगा। हे शल्य ! माना कि परशुराम का दिया हुआ वह अस्त्र कार्य न देगा तो भी कोई चिन्ता नहीं। मेरे समीप एक और बड़ा उग्र अस्त्र (सर्पमुख बाण) है। उसी अस्त्र से मैं युद्धभूमि में असंख्य शत्रुओं का नाश करूँगा। प्रतापी, बलवान्, अस्त्रविद्या में निपुण, उग्र धनुर्धर, अमित वेगशाली, क्रूर, शूर, रौद्ररूप, शत्रुनाशन वीरवर अर्जुन को मैं उसी अस्त्र से युद्ध में मारूँगा॥१०।१३॥महाजलराशि,वेगशाली,अप्रमेय, अपार और मानों सब पृथ्वीवासियों को डुबा देने के निमित्त घोर शब्द से गरज रहे सागर के समान आगे बढ़ रहे अर्जुन को मैं तट-भूमि के समान आज रोकूँगा। मनुष्यों में श्रेष्ठ और वीरों के प्राण हरनेवाले मर्मभेदी असंख्य तीक्ष्ण बाण बरसा रहे श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन से आज मैं घोर युद्ध करूँगा। महाबली, श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता, समुद्र के समान दुर्द्धर्ष, उग्र और बाणवर्षा के जल में वीर राजाओं को डुबा रहे अर्जुन को आज मैं तटभूमि के समान अपने बाणों से निरुद्ध कर दूँगा ॥१३।१६॥इसमें सन्देह नहीं कि अर्जुन दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता तथा शत्रुसेना का संहार करनेवाले हैं और सब देवता तथा दैत्य भी यदि मिलकर आवें तो वे भी अर्जुन को पराजित नहीं कर सकते।देखना,उन्हीं अर्जुन से मैं आज घोर युद्ध करूँगा। निर्भय, मानी अर्जुन आज युद्ध की इच्छा से मेरे सम्मुख आवेंगे और मेरे ऊपर दिव्य अस्त्रों की वर्षा करेंगे। उनके अस्त्र-शस्त्रों को मैं अपने अस्त्रों से नष्ट करके, श्रेष्ठ बाणों से उन्हें

पर्जन्यभूतः शरवर्षैर्यथाग्निं तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ।
आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥ २० ॥
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः ।
प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥ २१ ॥
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो धनञ्जयं क्रुद्धममृष्यमाणम् ।
विशारदं रथमार्गेषु शक्तं धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥ २२ ॥
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां धनञ्जयं संयुगे संसहिष्ये ।
अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ २३ ॥
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये तेन प्रयोद्धास्मि समेत्य संख्ये ।
यः सर्वभूतानि सदैवकानि प्रस्थेऽजयत्खाण्डवे सव्यसाची ॥ २४ ॥
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन युयुत्सेद्वै मानुषो मामृतेऽन्यः ।
मानी कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥ २५ ॥
तस्याहमद्यातिरथस्य कायाच्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।
योत्स्याम्येनं शल्य धनञ्जयं वै मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥ २६ ॥
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् ।
तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् ॥ २७ ॥

मारकर, रथ से नीचे गिरा दूँगा। आज युद्ध में अर्जुन सूर्य के समान प्रचण्ड होकर सब ओर शत्रुसेना का संहार करेंगे और मैं मेघ के समान बाण बरसाकर उन्हें आच्छादित कर दूँगा। धुएँ की ध्वजावाले प्रज्वलित अग्नि के समान राजाओं को अपने पराक्रम की ज्वाला में भस्म कर रहे तेजस्वी अर्जुन को आज मैं, मेघ के समान बाणवर्षा के जल से शान्त कर दूँगा॥१७।२०॥ जिसकी दृष्टि में विष होता है और जो देखकर ही भस्म कर देता है उस तीक्ष्ण दाँतवाले अग्नितुल्य घोर विषैले सर्प के समान कौरवसेना को भस्म कर रहे महानाग अर्जुन को मैं आज अपने भयानक भल्ल बाणों से मार डालूँगा। प्रबल वेग से चल रही उग्र आँधी की तरह वीरों का नाश करते हुए आगे बढ़ रहे असहनशील क्रुद्ध अर्जुन को आज मैं हिमालय के समान अटल होकर रोकूँगा। युद्ध में निपुण, विचित्र गतियों से रथ चलाकर युद्ध कर रहे, श्रेष्ठ वीर, पृथ्वी भर के धनुर्धरों में अद्वितीय अर्जुन को आज मैं युद्ध में मारूँगा। जिन महावीर ने धनुष हाथ में लेकर अपने बाहुबल से सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर दिग्विजय किया था, जिनके समान योद्धा और कोई नहीं है, जो पृथ्वी भर के योद्धाओं को अकेले ही नष्ट कर सकते हैं, उन्हीं वीर शिरोमणि अर्जुन से आज मैं युद्ध करूँगा। जिन वीर अर्जुन ने खाण्डव दहन के समय देवगण सहित सभी प्राणियों को परास्त किया था॥२०।२४॥ उनसे मेरे बिना और कौन मनुष्य युद्ध की इच्छा और युद्ध करके अपने प्राणों की रक्षा कर सकता है? अर्जुन मानी, अस्त्रनिपुण, निरन्तर युद्ध करके भी न विश्रान्त होने वाले, स्फूर्तिशाली, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता और शत्रुसेना का संहार करने वाले हैं। उन अतिरथी अर्जुन के सिर को आज मैं तीक्ष्ण बाणों से काटकर पृथ्वी पर गिरा दूँगा। हे शल्य! आज मैं अर्जुन से अवश्य युद्ध करूँगा, फल चाहे जो हो। या तो अर्जुन मुझे मारेंगे और या मैं विजय प्राप्त करूँगा। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन्द्र सदृश अर्जुन से मेरे बिना और कोई मनुष्य अकेला नहीं युद्ध कर

किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य ।
अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान्॥ २८ ॥
हन्यामहं त्वादृशानां शतानि क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् ।
अवोचस्त्वं पाण्डवार्थे प्रियाणि प्रधर्षयन्मां मूढवत्पापकर्मन् ॥ २९ ॥
मयार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम् ।
कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो दुर्योधनो युद्धमुपागमद्यत् ॥ ३० ॥
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकांक्षमाणस्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति ।
मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा मन्त्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा ॥ ३१ ॥
ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा ।
शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा शृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा ॥ ३२ ॥
उपसर्गाद्बहुधा सूदतेश्च प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् ।
दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं यशोर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ॥ ३३ ॥
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ योत्स्ये यत्नात्कर्म तत्पश्य मेऽद्य ।
अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि॥ ३४ ॥

सकता। क्षत्रियों की सभा में मैं ही अर्जुन के पौरुष का वर्णन कर सकता हूँ॥२५।२७॥हे मूर्ख ! तुम क्या हँस-हँसकर मेरे आगे अर्जुन के पौरुष का वर्णन कर रहे हो ! तुम अत्यन्त अप्रिय वचन कहनेवाले,निष्ठुर, क्षुद्र, क्षमारहित और क्षमा करनेवाले पर आक्षेप करनेवाले मूढ़ हो। यद्यपि मैं तुम ऐसे सैकड़ों को मार सकता हूँ तो भी अपने कार्य और प्रतिज्ञा के अनुरोध से क्षमा करता हूँ। यह क्षमा करने का ही समय है। हे पापकर्मा शल्य ! मूढ़ के समान तुम मुझे विचलित करने के निमित्त अर्जुन की प्रशंसा और मेरा अपमान कर रहे हो। मैं तुमसे सरल भाव रखता हूँ और तुम मुझसे कुटिल व्यवहार करते हो। तुम मित्रद्रोही हो; क्योंकि सात पग एक साथ चलनेसे ही सज्जनों में मित्रता हो जाती है। यह बहुत ही दारुण समय उपस्थित है। मेरा परम मित्र राजा दुर्योधन स्वयं युद्धभूमि में उपस्थित है। मैं उन्हीं का कार्य सिद्ध करने के निमित्त उन अर्जुन से युद्ध करूँगा जिनके ऊपर जय-पराजय निर्भर है। अथवा यों कहो कि मैं तो दुर्योधन का कार्य सिद्ध करना चाहता हूँ और तुम उन अर्जुन की प्रशंसा करके मुझे भयभीत करवाना चाहते हो, जो कि तुम्हारे अत्यन्त स्नेही नहीं है, अर्थात् तुम हमारे पक्ष में रहकर भी शत्रुपक्ष के साथ सहानुभूति और स्नेह दिखा रहे हो। मित्र शब्द जिन धातुओं से बन सकता है॥२८।३१॥उन धातुओं के सब अर्थ राजा दुर्योधन के प्रति मुझमें विद्यमान हैं अर्थात् स्नेह,अभिनन्दन, प्रीति, हित की अभिलाषा,रक्षा करना, मान करना और देखकर हर्ष होना, यही मित्रता के कार्य हैं; और दुर्योधन के साथ मेरे व्यवहार में ये सब कार्य प्रकट हैं। ऐसे ही शत्रु शब्द जिन धातुओं से बन सकता है, उन धातुओं के सब अर्थ मेरे प्रति तुम में विद्यमान हैं। काटना,शासन करना,दुर्बल करना या तुच्छ समझना, हिंसा, विषाद-वैर आदि शत्रु के कार्य हैं और तुम मेरे प्रति व्यवहार में इन सब भावों को प्रकट कर रहे हो। हे शल्य ! दुर्योधन के हित के निमित्त, तुम्हारे सन्तोष के निमित्त,अपने यश, विजय और धर्म की प्राप्ति के निमित्त मैं यत्नपूर्वक कृष्ण और अर्जुन से युद्ध करूँगा। तुम आज मेरे अद्भुत कर्म और ब्रह्म, ऐन्द्र, वारुण आदि दिव्य अस्त्रों के

आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः ।
अस्त्रं ब्राह्मं मनसा युद्धजेयं क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय ।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे न चेत्पतेद्विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥ ३५ ॥
वैवस्वताद्दण्डहस्ताद्वरुणाद्वापि पाशिनः ।
सगदाद्वा धनपतेः सवज्राद्वापि वासवात् ।
अन्यस्मादपि कस्मांचिदमित्रादाततायिनः ॥ ३६ ॥
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः ।
तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ॥ ३७ ॥
सह युद्धं हि मे ताभ्यां साम्पराये भविष्यति ।
कदाचिद्विजयस्याहमस्त्रहेतोरटन्नृप ॥ ३८ ॥
अज्ञानाद्धि क्षिपन्बाणान्घोररूपान्भयानकान् ।
होमधेन्वा वत्समस्य प्रमत्त इषुणाहनम् ॥ ३९ ॥
चरन्तं विजने शल्य ततोऽनुव्याजहार माम् ।
यस्मात्त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ॥ ४० ॥
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ॥ ४१ ॥
तस्माद्बिभेमि बलवद्ब्राह्मणव्याहृतादहम् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ४२ ॥

प्रभाव को देखना॥३२।३४॥जैसे हाथी से हाथी भिड़ता है वैसे ही आज मैं उग्र वीर्यवाले अर्जुन से युद्ध करूँगा और उनके ब्राह्म, दिव्य, मानुष, आदि अस्त्रों को अपने अस्त्रों से व्यर्थ करूँगा । यदि युद्ध के समय विषम भूमि में मेरे रथ का पहिया न धँस जायगा तो मैं अवश्य आज अर्जुन को जीवित न छोडूँगा। वे मन में दिव्य ब्रह्मास्त्र को जपते हुए कुपित होकर चाहे जितने बाण बरसावें पर मेरी कुछ हानि नहीं कर सकते । मैं दण्डपाणि यमराज,पाशपाणि वरुण, गदापाणि कुबेर, वज्रपाणि इन्द्र और अन्य कोई भी शस्त्र हाथ में लेकर शत्रुभाव से आक्रमण करने को आ रहे देवता से नहीं डरता। हे शल्य ! सत्य जानो, मैं अर्जुन या कृष्ण किसी वैरी से नहीं डरता । आज उन दोनों से मेरा घोर युद्ध होगा॥३५।३८॥हे मद्र राज ! मुझे केवल उस ब्राह्मण के शाप का भय है जिसने कहा था कि युद्ध में, प्राण सङ्कट के समय, पृथ्वी में तेरे रथ का पहिया धँस जायगा । ये ब्राह्मण सर्वथा सुख या दुःख देने की सामर्थ्य रखते हैं, इसी लिए ब्राह्मण के इस शाप का मुझे बड़ा भय है। बात यह हुई थी कि मैं एक समय निर्जन वन में बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था । वहीं (योगहेति) ब्राह्मण की, अग्निहोत्र की, गाय का बछड़ा चर रहा था । मेरा घोर बाण,बिना जाने, उस बछड़े को लग गया और उससे वह मर गया । यह देख उस ब्राह्मण ने कुपित होकर शाप देते हुए कहा—तुमने यहाँ मेरी, अग्निहोत्र की,गाय का बछड़ा मार डाला है इसलिए जब तुम शत्रु से युद्ध कर रहे होगे, प्राण-सङ्कट का समय उपस्थित होगा,तब तुम्हारे रथ का पहिया गड्ढे में गिरकर फँस जायगा। (तुम जिससे युद्ध करने के निमित्त लाग-डाँट रखते हो और जिसे जीतने के

अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान् ।
प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ॥ ४३ ॥
ईषादन्तान्सप्तशतान्दासीदासशतानि च ।
ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ॥ ४४ ॥
कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
आहरं न लभे तस्मात्प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥ ४५ ॥
ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किञ्चन ।
तत्सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥ ४६ ॥
ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः ।
व्याहृतं यन्मया सूत तत्तथा न तदन्यथा ॥ ४७ ॥
अनृतोक्तं प्रजां हन्यात्ततः पापमवाप्नुयाम् ।
तस्माद्धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥ ४८ ॥
मा त्वं ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया ।
मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित्कुर्यात्समाप्नुहि ॥ ४९ ॥
इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया ।
जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु ॥ ५० ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

निमित्त यह सब अभ्यास करते हो, उसी शत्रु के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी ।)॥३८।४१॥ हे शल्य ! तब मैंने अनेक प्रकार से उस ब्राह्मण को प्रसन्न करने का यत्न किया। मैंने उसको एक सहस्र गायें, छः सौ बैल, एक सौ दासियाँ, बड़े-बड़े दाँतोंवाले सात सौ गजराज, सैकड़ों दास-दासी, चौदह सहस्र श्वेत बछड़ेवाली कपिला गायें आदि बहुत कुछ देना चाहा, पर वह किसी प्रकार प्रसन्न न हुआ॥४२।४५॥ मैंने हाथ जोड़कर अन्त को उससे कहा कि हे महानुभाव ! आपको मैं अपना सर्वस्व देने को तैयार हूँ, प्रसन्न होकर अपने शाप से क्षमा कर दीजिए । इस पर मुझे रोककर उस ब्राह्मण ने कहा कि हे सूत ! मैं जो कह चुका सो कह चुका, मेरी बात किसी प्रकार मिथ्या नहीं हो सकती । मेरे मिथ्या कथन का दुष्परिणाम सब प्रजा को भोगना पड़ेगा, उससे प्रजा का नाश होगा और मुझे पाप लगेगा । धर्म की रक्षा के विचार से मैं लोभ में पड़कर, अपने वचन को मिथ्या नहीं कर सकता॥४६।४८॥ तुम मुझसे मिथ्या बुलवाकर सद्गति को नष्ट करने का यत्न न करो । यह मेरा शाप तुम्हारे इस पाप का प्रायश्चित्त होगा । मेरे शाप को तीनों लोकों में कोई टाल नहीं सकता । हे शल्य ! तुमने बार-बार आक्षेप करके मुझे तुच्छ ठहराया, इसी से मैंने मित्र-भाव से यह अपने शाप का वृत्तान्त तुमसे कह दिया । मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मैं अर्जुन से नहीं डरता । हाँ, इस शाप के कारण मुझे भय लग रहा है । अब चुप रहकर उत्तर अपने दोषों को सुनो॥४९।५०॥

—•—

कर्णपर्व का बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सञ्जय उवाच—ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिन्दमः ।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥ १ ॥
यत्त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि ।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा विभीषयितुमाहवे ॥ २ ॥
यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः ।
तथापि मे भयं न स्यात्किमु पार्थात्सकेशवात् ॥ ३ ॥
नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथञ्चन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे ॥ ४ ॥
नीचस्य वलमेतावत्पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तो मद्गुणान्वक्तुं वल्गसे वहु दुर्मते ॥ ५ ॥
नहि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथात्मनः ॥ ६ ॥
सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि ।
कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं शल्य जीवसि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
राज्ञश्च धार्तराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम् ।
मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम् ॥ ८ ॥
कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं तव ।

तैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४३ ॥

सञ्जय कहते हैं कि शत्रुदलदलन कर्ण ने शल्य को रोककर फिर उनसे कहा—हे शल्य ! मुझे डराने और धमकाने के निमित्त तुमने उपहासपूर्वक जो हँस-कौए का किस्सा पढ़कर सुनाया है, उसे मैं तुम्हारा प्रलाप ही समझता हूँ तुम इस प्रकार की बातें कहकर केवल वाणी से मुझे डरा नहीं सकते। कहता तो हूँ कि यदि इन्द्र सहित सब देवता भी युद्ध करने के निमित्त मेरे सम्मुख आवें और युद्ध करें तो भी मैं डर नहीं सकता, फिर अर्जुन और कृष्ण हैं क्या चीज़, जिनसे मैं डरूँगा ?॥१।३॥ मैं महायुद्ध में विशुद्ध क्षत्रियोचित कर्म अर्थात् युद्ध करनेवाला हूँ । तुम और किसी को इस प्रकार भले ही डरा दो, किन्तु मैं नहीं विचलित हो सकता । नीच का बल यही कटु तथा कठोर वचन कहना है, जैसे वचन तुम मुझसे कह रहे हो । हे दुर्मते ! तुम मेरे गुणों का वर्णन नहीं कर सकते, इसी से, इस प्रकार निन्दा कर रहे हो। किन्तु अच्छी प्रकार स्मरण रक्खो, कर्ण इस संसार में डरने के निमित्त नहीं उत्पन्न हुआ, यश, विजय और पराक्रम के निमित्त ही कर्ण का जन्म हुआ है॥४।६॥ हे शल्य ! सत्य समझो, तुम जो ऐसे दुर्वचन कहने पर भी मेरे हाथ से नहीं मारे गये उसके तीन कारण हैं—मेरी सहनशीलता, सौहार्द और मित्र राजा दुर्योधन के अभीष्ट-साधन का विचार। इस समय राजा दुर्योधन का बहुत बड़ा कार्य आ पड़ा है, वह मुझे करना है, और उसमें तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है, इसी लिए अब तक तुम जीवित रहे हो। दूसरे, पहले मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि तुम जो कुछ अप्रिय भी कहोगे तो उसे मैं क्षमा करूँगा; इस कारण भी तुम अब तक जीवित रहे हो। तीसरे, एक साथ रहने

ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयमहं परान् ।
मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

के कारण तुम मेरे मित्र भी हो चुके हो। तुम्हें मारना मित्रद्रोह होगा, जो कि महापातक है। इस कारण भी तुम अब तक जीवित हो। यदि तुम ऐसे सहस्र शल्य भी मेरे विरुद्ध हों, तो भी मैं अकेला ही शत्रुओं को जीतने का दावा रखता हूँ॥७।९॥

—०—

कर्ण पर्व का तेंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय. ॥ ४४ ॥

शल्य उवाच—ननु प्रलापाः कर्णैते यान्ब्रवीषि परान्प्रति ।
ऋते कर्णसहस्रेण शक्या जेतुं परे युधि ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा ।
परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥ २ ॥

कर्ण उवाच—इदं तु मे त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
सन्निधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥
देशांश्च विविधांश्चित्रान्पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान् ।
ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥ ४ ॥
तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद् द्विजोत्तमः ।
वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
वहिष्कृता हिमवता गङ्गया च वहिष्कृताः ।
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥ ६ ॥
पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान्धर्मबाह्यानशुचीन्वाहीकानपि वर्जयेत् ॥ ७ ॥

चवालीसवाँ अध्याय ॥ ४४ ॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण! मर रहा मनुष्य जैसे अण्ट-शण्ट बकता है वैसे ही तुम अपने शत्रुओं के विषय में बक रहे हो। तुम ऐसे सहस्र कर्ण भी युद्ध में उनको नहीं जीत सकते॥१॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! इस प्रकार कठोर वचन कह रहे शल्य की बातों के उत्तर में कर्ण ने दूने कठोर वचन कहना प्रारम्भ किया—हे मूढ़ शल्य! महाराज धृतराष्ट्र के आगे ब्राह्मणों के मुख से मद्र देश के लोगों के विषय में जो कुछ मैंने सुना है सो मैं तुमसे कहता हूँ, एकाग्र होकर सुनो। धृतराष्ट्र की सभा में ब्राह्मण लोग अनेक देशों के वृत्तान्त, प्राचीन राजाओं के इतिहास और विविध विचित्र कथाएँ कहा करते थे। एक वृद्ध ब्राह्मण ने अनेक प्राचीन कथाएँ कहते-कहते वाहीक और मद्र देश के रहनेवालों की निन्दा करते हुए यह कहा था ॥२।५॥हे महाराज! हिमालय, गङ्गा, यमुना, सरस्वती और कुरुक्षेत्र के बाहर तथा सिन्धु नद और उसकी पाँच शाखा-नदियों के मध्य में बसनेवाले जो धर्म-बहिष्कृत अपवित्र वाहीकगण हैं उन्हें दूर से ही छोड़

गोवर्धनो नाम वटः सुभद्रं नाम चत्वरम् ।
एतद्राजकुलद्वारमाकुमारात्स्मराम्यहम् ॥ ८ ॥
कार्येणात्यर्थगूढेन वाहीकेषूषितं मया ।
तत एषां समाचारः संवासाद्विदितो मम ॥ ९ ॥
शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा ।
जर्त्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम् ॥ १० ॥
धानागौड्यासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह ।
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥ ११ ॥
गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियो मत्ता विवाससः ।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥
मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः ।
अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ॥ १३ ॥
आहुरन्योन्यसूक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः ।
हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृहतेति च ॥ १४ ॥
आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः ।
तासां किलावलिप्तानां निवसन्कुरुजाङ्गले ॥ १५ ॥
कश्चिद्वाहीकदुष्टानां नातिहृष्टमना जगौ ।
सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी ॥ १६ ॥

देना चाहिए। उनका सङ्ग करना या उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना अनुचित है। गोवर्द्धन (जहाँ गायें कटती हैं) नामक वटवृक्ष और सुभद्र नाम का चत्वर कलियुग का द्वार या निवासस्थान है। हे राजेन्द्र! मैं इन दोनों को याद रक्खे हुए हूँ॥६।८॥एक गूढ़ और आवश्यक कार्य के कारण मुझे, कुछ दिन, वाहीक देश में रहना पड़ा था। वहाँ उनके साथ रहने से ही उनका सब आचार-विचार मुझे मालूम हुआ है। शाकल (सियालकोट[1]) नाम का नगर (मद्र देश की राजधानी), आपगा नाम की नदी और जर्तिका नाम के वाहीकगण, इनके आचरण निन्दित हैं। वे गुड़ की बनी मदिरा पीते हैं, लहसुन में पका हुआ निषिद्ध मांस, भुने जव के सत्तू और अपूप (पूड़े) खाते हैं॥१०।११॥स्त्रियाँ मदिरा के नशे में चूर होकर, नगर के बाजार आदि खुले स्थानों में, नग्न होकर नाचती और गाती हैं। वे माला-चन्दन आदि नहीं धारण करतीं। गधे और ऊँट के समान चिल्लाकर असभ्य गीत गाती हैं। वहाँ की प्रायः सभी स्त्रियाँ इच्छानुसार व्यभिचार करती हैं;इस कार्य में वे अपने-पराये पुरुष का विचार नहीं रखतीं। पुरुषों से आनन्दपूर्वक कामोद्दीपक बातें करती हैं। वे पतित स्त्रियाँ उत्सवों में मदिरा पी-पीकर—परस्पर कुत्सित शब्द कहकर—गाती,नाचती और गालियाँ देती हैं॥१२।१५॥हे शल्य! वाहीक देश की किसी दुष्ट स्त्री का पति एक समय कुरुजाङ्गल देश में था। उसने विदेश-वास से कुछ उदास और अपने देश को जाने के निमित्त उत्सुक होकर जो कहा था सो मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। उसने कहा—अवश्य ही वह गोरी सुन्दरी, सूक्ष्म कम्बल पहने हुए प्रिया गुप्त

मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले ।
शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम् ॥ १७ ॥
गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशङ्खाः शुभाः स्त्रियः ।
मनःशिलोज्ज्वलापाङ्ग्यो गौर्यस्त्रिककुदाञ्जनाः ॥ १८ ॥
कम्बलाजिनसंवीताः क्रन्दन्त्यः प्रियदर्शनाः ।
मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥ १९ ॥
खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् ।
शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥ २० ॥
अपूपान्सक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान् ।
पथिषु प्रबला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥ २१ ॥
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः ।
एवंशीलेषु व्रात्येषु वाहिकेषु दुरात्मसु ॥ २२ ॥
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्त्तमपि मानवः ।
ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाहीका मोघचारिणः ॥ २३ ॥
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ॥ २४ ॥
वाहीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत् ।
तत्र स्म राक्षसी गीतिः सदा कृष्णचतुर्दशीम् ॥ २५ ॥
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम् ।
कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले ॥ २६ ॥

परदेशी को स्मरण करती हुई शयन कर रही होगी और मैं यहाँ कुरुजाङ्गल में पड़ा हुआ हूँ। हाय ! मैं कब शतद्रु और रमणीय इरावती नदी के पार जाकर अपने देश में पहुँचूंगा और कम्बल-मृगचर्म-धारिणी, माथे की ऊँची हड्डीवाली, गोरी, मैनसिल के समान उज्ज्वल आँख के कोयोंवाली, माथा गाल और ठुड्डी में काजल लगानेवाली, प्यारी प्यारी सुन्दरी स्त्रियों को देखूँगा। मैं अपने देश में गधे, ऊँट और खच्चर आदि की सवारियों पर जानेवाले नर-नारियों को देखूँगा और मृदङ्ग-ढाल शङ्ख मर्दल आदि बाजोंके शब्द सुनूँगा। शमी, पीलू और करीर वृक्षों के वनों के सुखदायक मार्गों में हम सब यात्री लोग पूवे, सत्तू और मट्ठा आदि को खाकर सुखी होंगे॥१६।२०॥ मार्ग में मदिरा आदि पीने से कामवश होकर हम लोग स्त्रियों को नग्न करके उनसे रमण करेंगे। हे महाराज ! वाहीकगण ऐसे दुराचारी और दुरात्मा होते हैं। कौन सहृदय धर्मात्मा पुरुष उनके मध्य में, क्षण भर भी, रह सकता है ! हे शल्य ! तुम उन्हीं वाहीकों के राजा हो और इसी कारण उनके पुण्य-पाप के छठे अंश के भागी हो। उस ब्राह्मण ने कुरु-सभा में वाहीक देश के लोगों का ऐसा ही चरित्र बतलाया था। इतना ही नहीं, उस ब्राह्मण ने और जो कुछ कहा था, वह भी मैं तुमको सुनाता हूँ॥२१। २४॥ उसने कहा कि हे महाराज ! वाहीक देश में शाकल(स्यालकोट)नाम के बड़े नगर में एक राक्षसी

गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवम् ।
गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृता ॥ २७ ॥
पलाण्डुगण्डूषयुतान्खादन्ती चैडकान्बहून् ।
वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम् ॥ २८ ॥
ऐडं च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ।
इति गायन्ति ये मत्ताः सीधुना शाकलाश्च ये ॥ २९ ॥
सबालवृद्धाः कन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत् ।
इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान्ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।
पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ॥ ३१ ॥
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा ।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः ॥ ३२ ॥
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान्व्रजेत् ।
व्रात्यानां दासमीयानां वाहीकानामयज्वनाम् ॥ ३३ ॥
न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा ।
तेषां प्रनष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ॥ ३४ ॥
ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधु संसदि ।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ॥ ३५ ॥
सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः ।
आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥ ३६ ॥

प्रत्येक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को दुन्दुभी बजाकर इस प्रकार गाती है कि अहा! अब मैं फिर कब शाकल नगर में सुसज्जित होकर, निषिद्ध मांस और गौड़ी मदिरा से तृप्त होकर, बृहती गोरी नारियों के साथ वाहेयिक सङ्गीत गाऊँगी? कब प्याज डालकर पकाये गये मेष-मांस को खाऊँगी? जिन लोगों ने सूअर, मुर्गे,...गधे, भेड़ और ऊँट का मांस नहीं खाया उनका जन्म ही वृथा है॥२४।२९॥हे शल्य! शाकल नगर में बालक-बूढ़े-जवान सभी मदिरा-पान से मत्त होकर पीलुका वनों में इसी प्रकार के गीत गाते हैं। तब फिर उनमें धर्म कहाँ से हो सकता है? हे शल्य! कौरवों की सभा में अन्य एक ब्राह्मण ने आकर जो कुछ तुम लोगों के सम्बन्ध में कहा था, वह भी सुन लो। उसने कहा कि हिमालय के बाहर जहाँ अनेक पीलु-वन हैं और शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता और सिन्धु, ये छः महानदियाँ बहती हैं वह आरट्ट नाम का वाह्लीक स्थान है। वहाँ की बस्तियों में आर्य पुरुषों को न बसना चाहिए॥२९।३३॥सुना जाता है कि ब्राह्मण, देवता और पितर उन धर्मभ्रष्ट, सत्कार हीन आरट्ट-देश-निवासी वाहीकों की दी हुई पूजा आदि को नहीं ग्रहण करते, क्योंकि वे पतित, दासतुल्य और यज्ञ न करनेवाले होते हैं। कुरुसभा में उस विद्वान् ब्राह्मण ने यह भी कहा था कि ये घृणाशून्य वाहीक देश के निवासी कुत्तों के चाटे हुए लकड़ी और मिट्टी

तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति पिबन्ति च ।
पुत्रसङ्करिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥ ३७ ॥
आरट्टा नाम वाहीकाः वर्जनीया विपश्चिताः ।
हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥
यदन्योऽप्युक्तवान्मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।
युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥ ३९ ॥
तद्वद्भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ।
पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ॥ ४० ॥
आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ।
वहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ॥ ४१ ॥
तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ।
ते कथं विविधान्धर्माञ्ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥ ४२ ॥
कारस्करान्माहिषकान्कालिङ्गान्केरलांस्तथा ।
कर्कोटकान्वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥
इति तीर्थानुसर्त्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥ ४४ ॥
आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् ।
ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥
वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च ।
व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ॥ ४६ ॥

के पात्रों में सत्तू और मदिरा खाते पीते हैं। वे लोग भेड़, ऊँट, गधी आदि का दूध दही आदि भी खाते हैं। वे किसी के अन्न और दूध को नहीं छोड़ते। उनमें किसी के पिता का पता नहीं है। इसलिए विद्वान् पुरुष को आरट्ट देश के निवासी वाहीकों का संसर्ग कभी न रखना चाहिए॥३३।३८॥ हे शल्य! कुरुसभा में उस ब्राह्मण ने वाहीकों के सम्बन्ध में और जो कुछ मेरे आगे कहा था वह भी मैं तुमसे कहता हूँ। उसने कहा था कि जो मनुष्य 'युगन्धर' स्थान में ऊँट आदि का अपेय दूध पीता है, 'अच्युत स्थल' में रहता है और 'भूतिलय' में स्नान करता है, उसे कैसे स्वर्ग प्राप्त हो सकता है? जहाँ पर्वत से निकलकर पाँच नदियाँ बहती हैं, उन आरट्ट वाहीक देशों में आर्य पुरुष को दो दिन भी न रहना चाहिए; क्योंकि उतने ही समय में वह धर्मभ्रष्ट पतित हो जाता है। वहाँ की विपाशा नदी में 'वाह' और 'हीक' नाम के दो पिशाच रहते हैं। वाहीकगण उन्हीं की सन्तान हैं। उन्हें प्रजापति ने नहीं उत्पन्न किया। अतएव वे हीनयोनि पिशाचपुत्र कैसे विविध श्रेष्ठ धर्मों को जान सकते हैं॥३८।४२॥ धर्महीन कारस्कर, माहिषक, कालिङ्ग, केरल, कर्कोटक, वीरक आदि मदिरा पीकर उन्मत्त होनेवाली, वाहीक देश की जातियों से सर्वथा किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहिए। महोलूखलमेखला नाम की कोई राक्षसी तीर्थों में घूमती हुई वाहीक देश में पहुँची थी और वह

प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायोऽतिकुत्सिताः ॥ ४७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

उसी का कथन है। तीर्थ-यात्रा के प्रसङ्ग में उक्त ब्राह्मण एक रात्रि को आरट्ट देश में रहा था, वहीं उस राक्षसी से उसने यह समाचार सुना था। उस देश में जो निर्भाग्य ब्राह्मण रहते हैं वे न तो वेद ही पढ़ते हैं और न यज्ञ-हवन आदि करते हैं। आरट्ट देश है, वाह्लीक नाम के जन हैं, वहीं के लोगों का ऐसा आचरण है। वाह्लीकों के समान प्रस्थल, मद्र, गान्धार, खश, वसाति, सिन्धु और सौवीर देशों में भी म्लेच्छप्राय धर्मभ्रष्ट लोग रहते हैं और उनमें भी ये सब दुराचार प्रचलित हैं। ये सब अत्यन्त निन्दित हैं॥४३।४७॥

कर्ण पर्व का चवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

कर्ण उवाच—हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक्त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ १ ॥
ब्राह्मणः किल नो गेहमध्यगच्छत्पुरातिथिः ।
आचारं तत्र सम्प्रेक्ष्य प्रीतो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥ ३ ॥
न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वं हि तेऽब्रुवन्धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥ ४ ॥
अटता तु ततो देशान्नानाधर्मसमाकुलान् ।
आगच्छता महाराज वाहीकेषु निशामितम् ॥ ५ ॥
तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः ।
वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः ॥ ६ ॥
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते ॥ ७ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४५ ॥

कर्ण ने कहा—हे शल्य! तुम्हारे आगे जो कुछ मैंने कहा वह तुम सुन चुके, अब और जो कुछ कहता हूँ वह भी ध्यान देकर सुनो। कुछ दिन हुए, एक ब्राह्मण मेरे यहाँ अतिथि रूप से आकर ठहरे थे। उन्होंने हमारे यहाँ के सदाचार को देखकर सन्तुष्ट होकर कहा कि मैं अकेला बहुत समय तक हिमवान् पर्वत के शिखर पर रहा हूँ और मैंने घूम-फिरकर अनेक प्रकार के धर्मों का पालन करनेवाले बहुत से देशों का भ्रमण भी किया है। मैंने कहीं लोगों को धर्म और सनातन सदाचार के विरुद्ध आचरण करते नहीं देखा। वेद के ज्ञाता ऋषियों के बताये धर्म-मार्ग पर सभी लोग चलते हैं॥१।४॥इस प्रकार विविध धर्मों के अनुगामी और सत्य-सनातन वेदोक्त धर्म के माननेवाले देशों में घूमता फिरता मैं जब वाह्लीक देश में पहुँचा तब सुना कि वहाँ क्रमशः (दुष्कर्म और दुराचरण के कारण) पतित होते होते ब्राह्मण से क्षत्रिय, फिर वैश्य, फिर शूद्र

भवन्त्येककुले विप्राः प्रहृष्टाः कामचारिणः ।
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः ॥ ८ ॥
एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसङ्करकारकम् ।
कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः ॥ ९ ॥
हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदप्यन्योऽब्रवीद्वाक्यं वाहीकानां च कुत्सितम् ॥ १० ॥
सती पुरा हृता काचिदारट्टात्किल दस्युभिः ।
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत्ततः ॥ ११ ॥
बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलस्य च ॥ १२ ॥
न चैवास्मात्प्रमोक्ष्यध्वं घोरात्पापान्नराधमाः ।
तस्मात्तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः ॥ १३ ॥
कुरवः सहपाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः ।
कोसलाः काशपौण्ड्राश्च कालिङ्गा मागधास्तथा ॥ १४ ॥
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् ।
नानादेशेषु सन्तश्च प्रायो बाह्यालयादृते ॥ १५ ॥
आमत्स्येभ्यः कुरुपाञ्चालदेश्या आनैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः ।
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो मद्रानृते पाञ्चनदांश्च जिह्मान् ॥ १६ ॥

और फिर नापित (नाई) होता है। इसके पश्चात् फिर ब्राह्मण और द्विज होकर वहीं दास पद को प्राप्त होता है। वाहीक देश का यही उल्टा क्रम है। वहाँ ब्राह्मण के एक कुल में एक ही भाई ब्राह्मण होता है, अन्य भाई इच्छानुसार कर्म करते हैं और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि की श्रेणी में चले जाते हैं। गान्धार, मद्रक और वाहीक-गण तेज से हीन, दुराचारी, वर्णसङ्कर और नीच प्रकृति के होते हैं। मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमकर वाहीक देश में ही यह धर्मसङ्कर और वर्णसङ्कर का वृत्तान्त देखा-सुना है॥५।९॥हे शल्य ! इसके अतिरिक्त और एक मनुष्य से जो मैंने वाहीक देश के लोगों का कुत्सित वृत्तान्त सुना है वह भी तुमसे कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। पूर्व समय में आरट्ट देश के डाकू किसी सती कुमारी को पकड़ लाये और अधर्मपूर्वक उन्होंने उसका धर्म नष्ट किया। तब उस कुमारी ने उन्हें शाप दिया कि हे नराधम दुष्टो ! मैं बाला और भाइयोंवाली हूँ, तुम अधर्मपूर्वक मुझपर बलात्कार करते हो, इस कारण मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हारे घरों की स्त्रियाँ व्यभि-चारिणी हुआ करेंगी। मेरे इस घोर शाप से तुम्हारा कभी छुटकारा नहीं होगा। हे शल्य ! इसी कारण आरट्ट देशवालों में यह प्रथा है कि पुत्र धन का उत्तरा-धिकारी नहीं होता, भगिनीपुत्र(भानजा)ही होता है। (उन्हीं अधर्मी दुराचारी आरट्टदेशीयों के पुण्य पाप के छठे अंश के भागी तुम कैसे धर्म का वर्णन कर सकते हो !)॥१०।१३॥कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशि, अङ्ग, कलिङ्ग, मगध, चेदि आदि देशों के निवासी भाग्यशाली पुण्यात्मा पुरुष ही धर्म को जानते हैं। आर्यावर्त के बाहर और भारत के सीमा-प्रान्त में रहनेवाले वाहीक तथा मद्र आदि देशों के म्लेच्छप्राय लोगों को छोड़कर और-और देशों के

एवं विद्वान्धर्मकथासु राजंस्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयः ।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा षड्भागहर्त्ता शुभदुष्कृतस्य ॥ १७ ॥
अथवा दुष्कृतस्य त्वं हर्त्ता तेषामरक्षिता ।
रक्षिता पुण्यभाग्राजा प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक् ॥ १८ ॥
पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते ।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः ॥ १९ ॥
व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम् ।
ब्रह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः ॥ २० ॥
इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः ।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु सोऽप्येतान्नाभ्यपूजयत् ॥ २१ ॥
हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
कल्माषपादः सरसि निमज्जन्राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥
क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।
मलं पृथिव्या वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् ॥ २३ ॥
निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद्राजा निशाचरम् ।
अपृच्छत्तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे ॥ २४ ॥

निवासी आर्यों के सदाचार और धर्म को जानते हैं। मत्स्य, पाञ्चाल, कुरु, शाल्व,नैमिष, चेदि आदि देशों के असभ्य असाधु पुरुष भी प्राचीन धर्म के विषय को जानते हैं। केवल कुटिल हृदयवाले शठ मद्र और पञ्चनद देशों के लोग ही धर्मविरोधी तथा दुराचारी होते हैं॥१४।१६॥हे मद्रराज ! यह सब जानकर जहाँ धर्म की बातें हों वहाँ तुम सदा चुप रहा करो;क्योंकि तुम ऐसी ही दुराचारी प्रजा के रक्षक और राजा होने के कारण उसके पुण्य और पाप के षष्ठांश के भागी हो। अथवा तुम उन लोगों के केवल पाप के ही छठे भाग के भागी हो; क्योंकि उनकी रक्षा करने का—उनको अधर्म से बचाने का—तुम कुछ यत्न नहीं करते। जो राजा प्रजा की रक्षा करता है वही उसके छठे अंश का भागी होता है। पहले सत्ययुग में सब लोकों के पितामह ब्रह्मा अन्यान्य देशों में सनातन धर्म का सम्मान और सब वर्णों को अपने-अपने धर्म में स्थित देखकर बहुत प्रसन्न हुए;किन्तु पञ्चनद-आरट्ट-वाहीक आदि देशों के निवासियों का धर्म अर्थात् आचरण अत्यन्त कुत्सित देखकर उन्होंने बारम्बार उन्हें धिक्कार दिया। जब ब्रह्माजी ने पुण्यमय सत्ययुग में भी वाहीकों को कुकर्म में प्रवृत्त और दुराचारी देखकर उनके आचरण की निन्दा की तब तुम्हें इस समय चुप ही रहना चाहिए। धर्म के सम्बन्ध में व्यर्थ बक-बक करना तुम जैसे धर्महीन देश के राजा को नहीं सोहता॥१७।२१॥ हे शल्य ! मैं फिर जो तुमसे कहता हूँ वह एकाग्र होकर सुनो। पहले कल्माषपाद नामक राक्षस यह कहते-कहते कि "क्षत्रिय का मल भिक्षा माँगना है, ब्राह्मण का मल वेद न पढ़ना और ब्रह्मचर्य न रखना है, पृथ्वी का मल वाहीक देश है और स्त्रियों का मल मद्र देश की स्त्रियाँ हैं" एक सरोवर में डूब रहा था। इसी समय किसी राजा ने आकर उसे बाहर निकाला और उससे वही राक्षस-बाधा दूर करनेवाला मन्त्र पूछा। तब उस राक्षस ने कहा—हे राजन् ! किसी मनुष्य को राक्षस की बाधा हो या विष चढ़ा हो तो उसकी

मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानामौष्ट्रिका मलम्।
औष्ट्रिकाणां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः ॥ २५ ॥
राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम् ।
तद्भवेद्वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ २६ ॥
इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च ।
राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धवचनोत्तरम् ॥ २७ ॥
ब्राह्मं पाञ्चालाः कौरवेयास्तु धर्म्यं सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम्।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः स्तेना वाहीकाः सङ्करा वै सुराष्ट्राः २८ ॥
कृतघ्नता परवित्तापहारो मद्यपानं गुरुदारावमर्दः ।
वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः ॥ २९ ॥
येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्मो ह्यारट्टानां पञ्चनदान्धिगस्तु ।
अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च शिष्टान्धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥ ३० ॥
प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः ।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥ ३१ ॥
प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान्बली ।
उदीचीं भगवान्सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥ ३२ ॥

चिकित्सा उन मन्त्रों को पढ़कर करनी चाहिए, जिनका भाव यह है कि "पापी और धर्माधर्म का विचार न करनेवाले लोग मनुष्य जाति का मल हैं, औष्ट्रिक लोग उन म्लेच्छप्राय धर्माधर्म विचार-शून्यों का मल हैं, नपुंसक लोग उन औष्ट्रियों का मल हैं और यज्ञ कराने वाले क्षत्रिय उन बर्बरों (हिजड़ों) का मल हैं। इस समय तुम यदि इनको (या इस मनुष्य को) नहीं छोड़ोगे तो तुमको यज्ञ करानेवाले क्षत्रिय और मद्रक लोगों के पाप का भागी होना पड़ेगा।"॥२२।२६॥ हे शल्य! इस मन्त्र के सब वचन सत्य हैं। हे मद्रराज! पाञ्चाल गण ब्राह्म धर्म का और कौरवगण सत्य धर्म का अनुष्ठान करते हैं। मत्स्य और शूरसेन देशों के निवासी याग यज्ञ इत्यादि करते हैं। पूर्व दिशा के देशों के निवासी दासों (शूद्रों) के धर्म का आचरण करते हैं। दक्षिण दिशा के देशों के लोग धर्मद्रोही होते हैं। वाहीक देश के लोग चोर डाकू होते हैं और सुराष्ट्र देश के लोग वर्णसङ्कर (या धर्मसङ्कर) के दोष से दूषित होते हैं। कृतघ्नता, पराया धन हर लेना, मदिरापान, गुरु-स्त्री-गमन, भ्रूणहत्या, कठोर वचन बोलना, गो-वध करना, रात्रि को घर छोड़ कर पराई स्त्री और पराए धन की खोज में निकलना, पराये वस्त्र (अथवा वस्तु) का उपयोग, ये सब पाप जिनके नित्य के कर्म हैं उन आरट्ट देश में उत्पन्न पञ्चनदवासियों के निमित्त इससे बढ़कर और क्या अधर्म हो सकता है? उन्हें सैकड़ों बार धिक्कार है।।२७।३०॥ हे शल्य! कुरु, पाञ्चाल, नैमिष और मत्स्य देश के लोग सनातन वेदोक्त धर्म को जानते और मानते हैं। और, उत्तर दिशा में स्थित अङ्ग, मगध आदि देशों के वृद्ध लोग धर्म के स्वरूप को पूर्ण रूप से न जानने पर भी शिष्टाचार और सदाचार के अनुगामी होते हैं। हे शल्य! अग्नि आदि देवगण पूर्व दिशा में, पितृगण और पुण्यात्मा शुभ कर्म करनेवाले यमराज दक्षिण दिशा में, बली वरुणदेव सुरों का पालन करते हुए पश्चिम दिशा में और भगवान् सोम ब्राह्मणों सहित उत्तर दिशा में रहते और उक्त दिशाओं की रक्षा करते हैं। हे राजन्!

तथा रक्षःपिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम् ।
गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ३३ ॥
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः ।
इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ॥ ३४ ॥
अर्धोक्ताः कुरुपाञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः
पार्वतीयाश्च विषमा यथैव शिवयस्तथा ॥ ३५ ॥
सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः ।
म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः ॥ ३६ ॥
प्रतिरथास्तु वाहीका न च केचन मद्रकाः ।
स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरंवक्तुमर्हसि ।
पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते ॥ ३७ ॥
सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो भ्रूणहत्या परवित्तापहारः ।
येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्म आरट्टजान्पाञ्चनदान्धिगस्तु ॥ ३८ ॥
एतज्ज्ञात्वा जोषमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः ।
मा त्वं पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥
शल्य उवाच—आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः ।
अङ्गे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ४० ॥

राक्षस और पिशाच हिमालय की, यक्ष-गुह्यकगण गन्धमादन गिरि की और सनातन भगवान् विष्णु सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं। [साराश यह कि नैर्ऋत्य कोण के वाहीक आदि देशों की रक्षा विष्णु भगवान् साधारणतः वैसे ही करते हैं जैसे मेघ सर्वत्र बरसते हैं। जैसे अन्य देशों में विशिष्ट देवता का अनुग्रह है, वैसे वाहीक आदि उक्त देशों में विशेष रूप से देवानुग्रह नहीं देख पड़ता।] ॥३०।३४॥ मगध देश के लोग इशारे से बात समझ जाते हैं, कोशल देश के लोग देखने से बात समझ जाते हैं, कुरु-पाञ्चाल देश के लोग आधी बात कहने से सारी बात जान लेते हैं और शाल्व (दाक्षिणात्य) लोग पूरी बात कहने से उसे समझ सकते हैं। पर्वतों के विषम स्थानों में रहनेवाले पर्वतीय (पहाड़ी) लोग पाषाण के समान जड़ और अत्यन्त निर्बोध होते हैं। शिवि भी ऐसे ही मूर्ख होते हैं। तथा यवनगण सर्वज्ञ और विशेषकर शूर वीर होते हैं; किन्तु यवन और म्लेच्छ लोग सब जानने पर भी अपने पूर्वजों के बताये हुए धर्म-सङ्केत को ही मानते हैं, वैदिक धर्म को नहीं मानते। अन्य लोग बिना बताये अपने हित अर्थात् धर्म को नहीं जानते। वाहीकगण मोर-पीटे से समझते हैं अथवा यों कहो कि हित की बात बताने वाले के विरोधी अर्थात् गुरु-द्रोही होते हैं। और, मद्र देश के लोग ऐसे मूढ़ होते हैं कि किसी प्रकार नहीं समझते। हे शल्य! तुम वही मद्र देश के मूढ़ मनुष्य हो। इसलिए चुप रहो, उत्तर देने की चेष्टा न करो। मद्र देश पृथ्वी के सब देशों का मल है। तुम यदि चुप नहीं रहोगे तो मैं पहले सेना और पुत्रों सहित तुम्हीं को मारूँगा; कृष्ण और अर्जुन से पीछे निपटता रहूँगा॥३५।३९॥ कर्ण के ये कटु वचन सुनकर मद्रराज शल्य ने कहा—हे कर्ण! तुम जिनके राजा हो उन अङ्ग देश के लोगों में मर रहे पीड़ित व्यक्ति को छोड़ देने की और स्त्री पुत्र आदि को बेच डालने की चाल

रथातिरथसंख्यायां यत्त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत् ।
तान्विदित्वात्मनो दोषान्निर्मन्युर्भव मा क्रुधः ॥ ४१ ॥
सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः ।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः ४२ ॥
रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह ।
अन्योन्यमवरक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ४३ ॥
परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा ।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥ ४४ ॥
सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः ।
दुर्मनुष्यान्निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः ॥ ४५ ॥
न कर्ण देशसामान्यात्सर्वः पापं निषेवते ।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच—ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत् ।
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥ ४७ ॥
ततो निवारितः कर्णो धार्तराष्ट्रेण मारिष ।
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान् ।
ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

प्रचलित है। महापराक्रमी भीष्म ने रथी अतिरथी आदि की गणना के समय तुम्हारे जिन दोषों को बतलाया था उनका स्मरण करके क्रोध न करो, शान्त होओ। हे कर्ण! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सती साध्वी स्त्रियाँ सर्वत्र सभी देशों में होती हैं। मनुष्य मनुष्यों से सब जगह हँसी-दिल्लगी करके मनोरञ्जन करते हैं। कामी और लम्पट भी सब जगह होते हैं। मद्यप (शराबी) भी सर्वत्र देख पड़ते हैं। प्रत्येक देश में मैथुन और व्यभिचार भी होता है॥४०।४३॥हे कर्ण! पराये दोषों का वर्णन करने में सभी निपुण हुआ करते हैं; किन्तु प्रायः लोग अपने दोषों को नहीं जानते और यदि जानते भी हैं तो उनका विचार नहीं करते। अपने अपने धर्म का पालन, दुष्टों का दमन और शिष्टों की रक्षा करने-वाले राजा भी सर्वत्र हैं। धर्मात्मा पुरुष भी सर्वत्र हैं। हे कर्ण! यह नितान्त असम्भव है कि किसी एक देश के सभी मनुष्य पापी हों। यथार्थ बात यह है कि मनुष्य अपने आगे देवताओं को भी कुछ नहीं समझते॥४४। ४६॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! इसी समय राजा दुर्योधन ने उन दोनों को परस्पर झगड़ते देखकर मित्र भाव से समझाकर कर्ण को और नम्रता से शल्य को शान्त किया। इस प्रकार दुर्योधन के रोकने पर कर्ण और शल्य दोनों चुप होकर शत्रुओं का नाश करने के निमित्त तैयार हुए। कर्ण ने हँसकर शल्य से रथ आगे बढ़ाने के निमित्त कहा ॥४७।४८॥

कर्ण पर्व का पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच—ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम् ।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम् ॥ १ ॥
प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च ।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २ ॥
वेपमान इव क्रोधाद्युद्धशौण्डः परन्तपः ।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद्भरतर्षभ ॥ ३ ॥
व्यधमत्पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।
युधिष्ठिरं चाभ्यहनदपसव्यं चकार ह ॥ ४ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—कथं सञ्जय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान् ।
धृष्टद्युम्नमुखान्सर्वान्भीमसेनाभिरक्षितान् ॥ ५ ॥
सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि ।
के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य सञ्जय ॥ ६ ॥
प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः ।
कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान् ॥ ७ ॥
कथं चैव महद्युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
क्व च बीभत्सुरभवद्यत्कर्णोऽयाद्युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
को ह्यर्जुनस्य सान्निध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् ।
सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान्पुरा ।
कस्तमन्यस्तु राधेयात्प्रतियुद्ध्येज्जिजीविषुः ॥ ९ ॥

छियालीसवाँ अध्याय ॥ ४६ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! अब रणनिपुण महातेजस्वी कर्ण ने देखा कि पाण्डवों ने ऐसे व्यूह को बाँधा है जो दृढ़ता में अद्वितीय और शत्रुसेना के आक्रमण को व्यर्थ करनेवाला है। उस व्यूह के रक्षक वीर धृष्टद्युम्न हैं। तब कर्ण ने भी कुपित होकर अपनी सेना में व्यूह की रचना की। रथों के शब्द, सिंहनाद और बाजों के शब्द से पृथ्वीतल को कँपाते हुए वे शत्रु सेना की ओर बढ़े। इन्द्र जैसे असुरसेना का संहार करें वैसे ही वे पाण्डवसेना का नाश करते हुए युधिष्ठिर को पीड़ित करके उनके वाम भाग में पहुँचे॥१। ४॥धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! भीमसेन के बाहुबल से सुरक्षित, देवताओं से भी न जीते जा सकनेवाले धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्ष के महाधनुर्द्धर वीरों के विरुद्ध महावीर कर्ण ने किस प्रकार अपनी सेना का व्यूह रचा ? हे सञ्जय ! मेरी सेना के पक्ष और प्रपक्ष में कौन-कौन कवचधारी वीर विभागपूर्वक स्थित हुए ? पाण्डवों ने किस व्यूह की रचना की ? यह दारुण युद्ध किस प्रकार हुआ ? जिस समय कर्ण ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया उस समय वीरवर अर्जुन कहाँ थे ? क्योंकि अर्जुन के समीप रहते कोई भी युधिष्ठिर पर आक्रमण नहीं कर सकता। जिन अर्जुन ने पहले खाण्डव दाहके समय अकेले ही सब प्राणियों को परास्त कर दिया था उनके सम्मुख कर्ण के अतिरिक्त और कौन जीवन की इच्छा रखनेवाला योद्धा स्थित हो सकता

सञ्जय उवाच—शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथा गतः ।
परिवार्य नृपं स्वं स्वं संग्रामश्चाभवद्यथा ॥ १० ॥
कृपः शारद्वतो राजन्मागधाश्च तरस्विनः ।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ११ ॥
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः ।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् ॥ १२ ॥
गान्धारिभिरसम्भ्रान्तैः पार्वतीयैश्च दुर्जयैः ।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशः ॥ १३ ॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम् ।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १४ ॥
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः ।
तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह ॥ १५ ॥
निदेशात्सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम् ॥ १६ ॥
मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः ।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन्वाहिनीमुखम् ॥ १७ ॥
रक्ष्यमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः ।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत ॥ १८ ॥

है ॥५।९॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार व्यूहों की रचना हुई, युधिष्ठिर पर आक्रमण के समय अर्जुन जहाँ गये थे और अपने-अपने पक्ष में एकत्र होकर जिन जिन वीरोंने जिस प्रकार जैसा संग्राम किया, सो सब मैं आपसे कहता हूँ,सुनिए। महाबली कृपाचार्य, यादवश्रेष्ठ कृतवर्मा और मगध देश के योद्धा वीर आपके व्यूह में दक्षिण पक्ष में स्थित हुए। निर्मल प्रास हाथ में लिये घुडसवारों की सेना के साथ शकुनि और उलूक आदि महारथी उनके प्रपक्ष में स्थित होकर उनकी रक्षा करने लगे। गान्धार देश के निर्भय योद्धा, दुर्जय पर्वतीय वीर,जो कि टीडीदल के समान असंख्य और पिशाचों के समान भयानक आकार के थे, उनकी सहायता करने को उपस्थित थे। युद्धप्रिय संशप्तकगण की सेना के चौबीस हजार रथी योद्धा, जो युद्ध से हटना जानते ही नहीं, व्यूह के वाम भाग की रक्षा कर रहे थे॥१०।१४॥आपके पुत्रों के साथ रहकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारने की इच्छा रखनेवाले काम्बोज,शक और यवनगण अपने साथ रथ,घोड़े, आदि लिए हुए कर्ण की आज्ञा से वाम भाग के वीरों की रक्षा के निमित्त खड़े थे और अर्जुन सहित महाबली श्रीकृष्ण को युद्ध के निमित्त ललकार रहे थे। उसके पश्चात् सेना के पूर्व भाग में विचित्र कवच, अङ्गद आदि आभूषण और माला धारण किये हुए महारथी कर्ण स्थित थे और व्यूह के द्वार की रक्षा कर रहे थे। कुपित सुमजित वृषसेन आदि कर्ण के पुत्र, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ अपने पिता की सहायता करने के निमित्त, वहीं पर उपस्थित थे। इस प्रकार सेना का सञ्चालन और रक्षा कर रहे। वीर कर्ण अत्यन्त

अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः ॥ १९ ॥
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः ।
तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥
चित्रास्त्रैश्चित्रसन्नाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ।
रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः ॥ २१ ॥
अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ।
अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः ॥ २२ ॥
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः ।
अन्वयुस्तद्रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २३ ॥
ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।
सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥
तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः ॥ २५ ॥
सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलंकृतैः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥ २६ ॥
बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् ॥ २७ ॥
तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
हस्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २८ ॥

सुशोभित हो रहे थे॥१५।१८॥सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, महाबाहु, पिङ्गलोचन, प्रियदर्शन, दुःशासन सेना को साथ लेकर व्यूह के पिछले भाग की रक्षा करने लगे। उनकी सेना के मध्य स्वयं महाबाहु राजा दुर्योधन स्थित थे। विचित्र अस्त्र कवच आदि से सुशोभित सब भाई उनके चारों ओर उपस्थित थे। मद्र और कैकेय देश के सब शूर योद्धा उनकी रक्षा करने के निमित्त वहीं पर विद्यमान थे॥१९।२१॥ उनके मध्य में राजा दुर्योधन, देवमण्डली के मध्य में इन्द्र के समान, शोभित हो रहे थे। अश्वत्थामा, अन्य कौरव वीर और बरस रहे मेघों के समान मदोन्मत्त हाथियों पर सवार म्लेच्छगण उस रथसेना के पीछे-पीछे चले। ध्वजा, वैजयन्ती, चमकीले श्रेष्ठ शस्त्र आदि से शोभित सवारों से वे हाथी वृक्षयुक्त पर्वतों के समान शोभायमान हो रहे थे। समर से न हटनेवाले असंख्य वीर सैनिक हाथों में पट्टिश खड्ग आदि शस्त्र लिए हुए उन हाथियों के आसपास, चरणरक्षक के रूप में, जा रहे थे॥२२।२५॥इस प्रकार कर्ण का बनाया हुआ वह महाव्यूह सुसज्जित घुड़सवारों, हाथियों के सवारों और रथों से देवताओं तथा दैत्यों के व्यूह के समान शोभायमान हुआ। बृहस्पति की बताई हुई विधि से कर्ण ने उस व्यूह की रचना की थी। व्यूह के भीतर स्थित सेना उत्साह से नृत्य सा करती हुई शत्रुओं के मन में भय का सञ्चार कर रही थी। युद्ध करने की इच्छा रखनेवाले हाथी, घोड़े और रथ उस व्यूह के पक्ष और प्रपक्ष से निकल रहे थे॥२६।२८॥

ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २९ ॥
पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते ॥ ३० ॥
तदेतद्वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद्बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३१ ॥
एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।
यथा भवानाह तथा तत्सर्वं न तदन्यथा ॥ ३२ ॥
यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत ।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—तस्मात्त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् ।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ॥ ३४ ॥
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः ।
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेया धार्तराष्ट्राञ्शिष्टान्सह शिखण्डिना ।
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥ ३६ ॥

सञ्जय उवाच—इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनञ्जयः ।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम् ॥ ३७ ॥
अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मेन्दुः सतितां गतः ।
तस्माद्यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणा विदुः ॥ ३८ ॥

महाराज ! उधर राजा युधिष्ठिर ने सेना के पूर्व भाग में कर्ण को स्थित देखकर शत्रुनाशन अद्वितीय वीर अर्जुन से कहा—भाई ! वह देखो, पराक्रमी कर्ण ने युद्ध करने के निमित्त यह पक्ष-प्रपक्षयुक्त महाव्यूह बनाकर खड़ा किया है । उस व्यूह में सब शत्रुसेना के वीर युद्ध के निमित्त उपस्थित हैं । अब तुम ऐसा उपाय करो कि यह शत्रुओं की सेना हम लोगों को परास्त न कर सके॥२९।३१॥धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को जब यह आज्ञा दी तब उन महावीर ने हाथ जोड़कर नम्रता के साथ कहा—हे महाराज ! आप बहुत ठीक कह रहे हैं। मैं अभी इसका उचित उपाय करता हूँ। मैं वही उपाय करता हूँ जिससे यह शत्रुसेना मारी जाय और इसके प्रधान सेनापति कर्ण को भी मैं मारूँगा॥३२।३३॥युधिष्ठिर ने कहा—हे वीर अर्जुन ! तुम कर्ण को मारो और भीमसेन दुर्योधन का वध करें । इसी प्रकार वृषसेन से नकुल, शकुनि से सहदेव, दुःशासन से शतानीक, कृतवर्मा से सात्यकि, अश्वत्थामा से पाण्ड्य और शेष शत्रुसेना के वीरों से शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्र युद्ध करें। मैं स्वयं महात्मा कृपाचार्य से युद्ध करूँगा । सारांश यह कि मेरे पक्ष के ये सब योद्धा अपने प्रतिद्वन्द्वी शत्रु को मारने का यत्न करें॥३४।३६॥सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! वीरवर अर्जुन ने धर्मराज की बात मानकर अपने व्यूह की रचना की । सब वीरों को

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान्क्रमशो योऽवहत्पुरा ।
तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥
अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वात्यद्भुतदर्शनम् ।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥ ४० ॥
अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥ ४१ ॥
निघ्नन्नमित्रान्कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि ।
श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ॥ ४२ ॥
ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ४३ ॥
चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी ।
प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम् ।
पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥
कबन्धं मेघसङ्काशं भानुमावृत्य संस्थितम् ।
पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ॥ ४६ ॥
बलिभिर्दृप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ।
पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान्सहस्रशः ॥ ४७ ॥

यथास्थान भेजकर, स्वय सेना के पूर्व भाग में उपस्थित होकर. वे शत्रुओं के नाश का प्रयत्न करने लगे। [हे महाराज ! अर्जुन व्यूह के दक्षिण भाग में और भीमसेन वाम भाग में स्थित हुए। सात्यकि, द्रौपदी के पुत्र और स्वय महाराज युधिष्ठिर, ये लोग अपनी-अपनी सेना साथ लेकर व्यूह के पिछले भाग में स्थित हुए। इस प्रकार शत्रुसेना के मुकाबले में अपनी सेना का व्यूह बनाकर अर्जुन ने धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को उसकी रक्षा का भार सौंप दिया। वह चतुरङ्गिणी सेना से युक्त घोररूप महाव्यूह बहुत ही शोभायमान हुआ।] हे राजेन्द्र ! पहले ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न वैश्वानर अग्नि जिस रथ के घोड़े हुए थे, जिसे देवगण ब्रह्म से सम्बन्ध रखनेवाला जानते थे और जिस पर क्रमश. ब्रह्मा, ईशान, इन्द्र और वरुण सवार हुए थे, उसी रथ पर उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन सवार होकर शत्रुसेना का संहार करने के निमित्त युद्धभूमि में पहुँचे॥३७।३९॥मद्रराज शल्य ने उस अद्भुत रथ को देखकर [कौरव सेना के मध्य कर्ण का तिरस्कार करते हुए] कहा—हे कर्ण ! लो, वह रथ आ गया जिसमें श्वेत घोड़े जुते हुए हैं, तथा जिसके सारथी श्रीकृष्ण हैं और जिस रथ का सामना सम्पूर्ण सेना मिलकर भी नहीं कर सकती। उस रथ की घरघराहट मेघों के गर्जन के समान हो रही है। हे कर्ण ! जिन्हें तुम पूछते थे वही ये अर्जुन शत्रुओं को मारते काटते चले आ रहे हैं। ये अर्जुन और श्रीकृष्ण ही हैं। देखो, धूलि उड़कर आकाश तक छा गई है। रथ के पहियों की धमक से पृथ्वी काँपती सी है। तुम्हारी सेना की ओर घोर आँधी बढ़ती आ रही है॥४०।४४॥मांस-भक्षी प्राणी चिल्ला रहे हैं और मृग भयानक शब्द कर रहे हैं। यह अशुभ शकुन तो देखो कि

स्थितानभिमुखान्घोरानन्योन्यमभिभाषतः ।
रञ्जिताश्चामरायुक्तास्तव कर्ण महारथे ॥ ४८ ॥
प्रवराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ।
सवेपथून्हयान्पश्य महाकायान्महाजवान् ॥ ४९ ॥
प्लवमानान्दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ।
ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ॥ ५० ॥
स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।
शङ्खानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ ५१ ॥
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः ।
बाणशब्दान्बहुविधान्नराश्वगजवाजिनाम् ॥ ५२ ॥
ज्यातलत्रेषु शब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम् ।
हेमरूप्यप्रसृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः ॥ ५३ ॥
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः ।
सहेमचन्द्रताराकाः पताकाः किङ्किणीयुताः ॥ ५४ ॥
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामिन्य इवाम्बुदे ।
ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ॥ ५५ ॥
विभ्राजन्ति रथे कर्ण विमाने देवता यथा ।
सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ५६ ॥

मेघ जैसे भारी केतु ने सूर्य को आच्छादित कर लिया है। देखो, चारों ओर सहस्रों पशुओं के समूह, सूर्य के सम्मुख मुख करके, दारुण शब्द कर रहे हैं। सहस्रों कङ्क,गिद्ध आदि पक्षी एकत्र होकर सूर्य की ओर देखते और घोर शब्द से परस्पर भाषण करते हैं। यह अशकुन भी घोर अमङ्गल की सूचना दे रहा है॥४५। ४८॥हे कर्ण! श्वेत घोड़ों से युक्त तुम्हारे इस महारथ की पताकाएँ आप ही आप जल रही हैं और भारी ध्वजा काँप रही है। तुम्हारे रथ के, गरुड के समान वेग से जानेवाले, बड़े बली, भारी डीलडौल के घोड़े काँप रहे हैं, जो कि अभी आकाश में उड़ने के निमित्त प्रस्तुत से जान पड़ते थे। हे कर्ण! इन उपद्रवों से यह प्रतीत होता है कि आज के युद्ध में अवश्य ही सहस्रों वीर राजा लोग मारे जायँगे॥४८।५१॥उधर शत्रुदल में बजाये जा रहे असंख्य शङ्खों, मृदङ्गों और नगाड़ों का शब्द चारों ओर सुनाई पड़ रहा है, जिससे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हे कर्ण! उस ओर मनुष्यों, हाथियों, घोड़ों, रथों आदि के विविध शब्दों को और प्रत्यञ्चा,तलत्राण,बाण आदि के विचित्र स्वनों को सुनो। कारीगरों की बनाई,सुवर्ण और चाँदी से युक्त वस्त्रों से निर्मित, किङ्किणी-शोभित, सुवर्ण के चन्द्र तारागण की आभा से अलङ्कृत ये रङ्ग-बिरङ्गी पताकाएँ अर्जुन के रथ में वायु से हिलती हुई मेघमण्डल में बिजली के समान शोभित दिखाई पड़ रही हैं। शत्रुसेना में पाञ्चाल वीरों के, देवताओं के विमान से, रथों में शोभायमान भारी ध्वजाएँ प्रबल वायु के लगने से कण-कण शब्द कर रही हैं॥५१।५५॥वह देखो, वीर अपराजित अर्जुन हम लोगों पर प्रहार करने को आ रहे हैं। उनकी ध्वजा

पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् ।
प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥ ५७ ॥
एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो द्विषतामघवर्धनः ॥ ५८ ॥
एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शङ्खः कृष्णस्य धीमतः ।
अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः ॥ ५९ ॥
एष शार्ङ्गगदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् ।
वाहयन्नेति तुरगान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥ ६० ॥
एतत्कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः ॥ ६१ ॥
विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ ६२ ॥
एते सुपरिघाकाराः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥ ६३ ॥
निरस्तनेत्रजिह्वाश्च वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणाश्च शेरते ॥ ६४ ॥
एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः ।
संछिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रचरन्त्यद्रयो यथा ॥ ६५ ॥
गन्धर्वनगराकारा रथा हतनरेश्वराः ।
विमानानीव पुण्यानि स्वर्गिणां निपतन्त्यमी ॥ ६६ ॥
व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना ।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥ ६७ ॥

के पूर्व भाग में शत्रुओं के निमित्त भयानक वानर बैठा दिखाई पड़ रहा है॥५६।५८॥महापराक्रमी श्रीकृष्ण अर्जुन के शीघ्रगामी घोड़ों को हाँक रहे हैं; श्रीकृष्ण के शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और कौस्तुभ मणि की श्रेष्ठ शोभा दिखाई पड़ रही है। अर्जुन के श्रेष्ठ गाण्डीव धनुष का घोर शब्द हृदय को दहला रहा है और उस धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण असंख्य बाण तुम्हारी सेना को चौपट कर रहे हैं॥५९।६१॥वह देखो,युद्ध से न भागनेवाले वीर क्षत्रियों के, लाल-लाल नेत्रों से शोभित, पूर्णचन्द्र-सदृश मुख कट-कटकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं। विशुद्ध सुगन्ध तथा चन्दन से शोभित और शस्त्र ताने हुए वीरों के बेलन-से हाथ निरन्तर कट-कटकर गिर रहे हैं। घोड़े अपने सवारों समेत मर मरकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं। उनकी जिह्वा और नेत्र निकल आये हैं। पर्वत-शिखर सरीखे बड़े-बड़े हाथी अर्जुन के बाणों से बेतरह घायल होकर चल रहे पर्वतों के समान इधर-उधर भाग रहे हैं॥६२।६५॥ पुण्य क्षीण होने पर स्वर्गवासी जैसे विमानों सहित नीचे गिरते हैं वैसे ही रण में मारे गये राजाओं के गन्धर्वनगर सदृश बड़े-बड़े रथ समरभूमि में गिर रहे

घ्नन्त्येते पार्थिवान्वीराः पाण्डवाः समभिद्रुताः ।
नागाश्वरथपत्यौघांस्तावकान्समभिघ्नतः ॥ ६८ ॥
एष सूर्य इवाऽम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते ॥ ६९ ॥
अद्य द्रक्ष्यसि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
निघ्नन्तं शात्रवान्सङ्ख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ ७० ॥
अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परन्तपौ ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ ॥ ७१ ॥
सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् ।
तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि ॥ ७२ ॥
एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः ।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली ॥ ७३ ॥
इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना ।
पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः ॥ ७४ ॥
एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे ॥ ७५ ॥
शल्य उवाच—वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम् ।
को वानिलं निगृह्णीयात्पिबेद्वा को महार्णवम् ॥ ७६ ॥
ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि विग्रहम् ।
नहि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः॥ ७७ ॥

हैं। सिंह जैसे सहस्रों मृगों में हलचल मचा देता है वैसे ही महावीर अर्जुन कौरवसेना को अत्यन्त व्याकुल कर रहे हैं। यह देखो, महावीर पाण्डवगण और उनके योद्धा लोग समर-भूमि में दौड़ दौड़कर कौरव पक्ष के हाथी, घोड़े, रथों और पैदल आदि को व्याकुल करते हुए प्रधान प्रधान वीरों का सहार कर रहे हैं॥६६।६८॥ हे कर्ण! वह देखो, अर्जुन फिर अपने शत्रु वीर सशसकों की ओर जा रहे हैं और घोर रूप से उनका बण्टाढार कर रहे हैं। मेघों से छिपे हुए सूर्य के समान अर्जुन तो नहीं देख पड़ते; किन्तु उनकी ध्वजा का पूर्व भाग देख पड़ता है और प्रत्यञ्चा का शब्द सुनाई पड़ रहा है। हे कर्ण! आज तुम उन अर्जुन को देखोगे जिनके सारथी श्रीकृष्ण हैं और जो शत्रुओं को युद्ध में मार रहे होंगे। एक ही रथ पर सवार अर्जुन और श्रीकृष्ण को लाल-लाल नेत्र किये आज देखना। जिनके सारथी श्रीकृष्ण हैं और जिनका धनुष गाण्डीव है उन्हें तुम मार लोगे तो हमारे राजा हो जाओगे॥६९।७३॥ मद्रराज शल्य के ये वचन सुनकर महावीर कर्ण कुपित होकर कहने लगे—हे शल्य! वह देखो, वीर सशसकगण क्रोधान्ध होकर चारों ओर से अर्जुन को घेर रहे हैं और इस समय मेघों के मध्य आच्छादित हुए सूर्य के समान अर्जुन नहीं दिखाई पड़ते। अवश्य ही संशप्तकगण अर्जुन को मार डालेंगे॥७४।७५॥ शल्य ने कहा—हे कर्ण! वरुण को जल से अथवा अग्नि को ईंधन

अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव ।
न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम् ॥ ७८ ॥
बाहुभ्यामुद्धरेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।
पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥ ७९ ॥
पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् ।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवापरम् ॥ ८० ॥
अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन् ।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ८१ ॥
एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
तिष्ठत्यसुकरः सङ्ख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥ ८२ ॥
एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ८३ ॥
अमी स्थिता द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव ।
व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि ॥ ८४ ॥
एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
स्फीताः सत्यजितो वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ८५ ॥
असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः ।
युयुत्सुरुपयात्यस्मान्क्रुद्धान्तकसमः पुरः ॥ ८६ ॥

से कौन नष्ट कर सकता है ? वायु को हाथ से पकड़ना और समुद्र को पी जाना जैसे सर्वथा असम्भव है वैसे ही, मेरी समझ में, युद्ध में अर्जुन को जीतना भी है। युद्ध में इन्द्र आदि देवता और सब दानव भी मिलकर अर्जुन को नहीं जीत सकते। यदि तुम केवल मुख से अर्जुन के मारने की बात कहकर सन्तोष प्राप्त करना चाहते हो तो कर लो। मनोरथ चाहे जो करो, किन्तु स्मरण रक्खो, युद्ध में अर्जुन को कोई किसी प्रकार नहीं जीत सकता। चाहे कोई हाथों से पृथ्वी को उठा ले, चाहे क्रुद्ध होकर संसार के सब जीवों को भस्म कर डाले, और चाहे स्वर्ग से सब देवताओं को नीचे गिरा दे, परन्तु समर में अर्जुन को कोई किसी प्रकार नहीं जीत सकता ॥७८।७९॥ वह देखो, कुपित वीरश्रेष्ठ महाबाहु भीमसेन पुराने वैर को स्मरण करके जय प्राप्त करने के निमित्त संग्रामभूमि में, दूसरे सुमेरु के समान, खड़े हुए शत्रुओं पर प्रहार कर रहे हैं ॥८०।८१॥ वह धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध करने को खड़े हैं। ये शत्रुओं को जीतनेवाले हैं और इन्हें शत्रुगण सहज में नहीं परास्त कर सकते। वह अश्विनीकुमारों के अंश से उत्पन्न, महारथी, युद्ध में दुर्जय पुरुषसिंह नकुल और सहदेव सम्मुख खड़े हैं। ये पाँच पर्वतों के समान और भीमसेन तथा अर्जुन के तुल्य बली द्रौपदी के पाँचों पुत्र युद्ध के निमित्त तैयार खड़े हैं ॥८२।८४॥ ये धृष्टद्युम्न आदि महाबलशाली वीर द्रुपद के पुत्र युद्ध के निमित्त उद्यत हैं। इन्द्र-सदृश पराक्रमी यादवश्रेष्ठ सात्यकि युद्ध की इच्छा से, कुपित काल के समान,

इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः ।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद्भृशम् ॥ ८७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

हमारी ओर चले आ रहे हैं। हे महाराज! दोनों वीर इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि दोनों सेनाएँ उमड़ी हुई गङ्गा और यमुना के समान परस्पर भिड़ गईं॥८५।८७॥

कर्ण पर्व का छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च सञ्जय ।
संशप्तकान्कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥
एतद्विस्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि ।
नहि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान्रणे ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—तदास्थितमवज्ञाय प्रत्यमित्रबलं महत् ।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३ ॥
तत्सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद्बलम् ॥ ४ ॥
पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।
पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥ ५ ॥
पार्षतं जुगुपुः सर्वे द्रौपदेया युयुत्सवः ।
दिव्यवर्मायुधधराः शार्दूलसमविक्रमाः ॥ ६ ॥
सानुगा दीप्तवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव ।
अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तकान्रणे ॥ ७ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय ॥ ४७ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! दोनों पक्ष की सेनाएँ जब व्यूह बना करके परस्पर भिड़ गईं तब संशप्तकगण ने अर्जुन से और पाण्डवों ने कर्ण से किस प्रकार युद्ध किया! तुम वर्णन करने में निपुण हो, इसलिए सब वृत्तान्त विस्तार के साथ कहो। युद्ध में वीरों के पराक्रम को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं होती॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज! इधर आपके पुत्र के हित के निमित्त कर्ण ने शत्रुसेना का नाश करने को अपनी सेना का व्यूह बनाया और उधर, उसे देखकर, उसके प्रति अवज्ञा का भाव प्रकट करते हुए अर्जुन ने कौरवों का अनिष्ट करने को अपनी सेना में व्यूह की रचना की। चतुरङ्गिणी सेना का वह घोर व्यूह धृष्टद्युम्न सहित बहुत ही शोभायमान हुआ। चन्द्र और सूर्य के समान तेजस्वी, धनुष हाथ में लिये और कबूतर के रङ्ग के श्वेत घोड़ों से युक्त रथ पर विराजमान वीर धृष्टद्युम्न साक्षात् काल के समान जान पड़ने लगे। उनके समीप युद्ध के निमित्त उत्साहित द्रौपदी के पुत्र, सुदृढ़ कवच पहनकर, चन्द्रमा के आसपास तारागण के समान स्थित हुए। उनके साथ उनके अनुगामी और भी अनेक वीर तथा सैनिकगण थे॥३।७॥हे महाराज! इस प्रकार

क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ।
अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन्नवैषिणः ॥ ८ ॥
विजये धृतसङ्कल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ।
तन्नराश्वौघवहुलं मत्तनागरथाकुलम् ॥ ९ ॥
पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत् ।
स सम्प्रहारस्तुमुलस्तेषामासीत्किरीटिना ॥ १० ॥
तस्यैव नः श्रुतो यादृङ् निवातकवचैः सह ।
रथानश्वान्ध्वजान्नागान्पत्तीन्रणगतानपि ॥ ११ ॥
इषून्धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् ।
सायुधानुद्यतान्वाहून्विविधान्यायुधानि च ॥ १२ ॥
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः ।
तस्मिन्सैन्यमहावर्त्ते पातालतलसन्निभे ॥ १३ ॥
निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तकास्तथा ।
स पुनस्तानरीन्हत्वा पुनरुत्तरतोऽवधीत् ॥ १४ ॥
दक्षिणेन च पश्चाच्च क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।
अथ पञ्चालचेदीनां सृञ्जयानां च मारिष ॥ १५ ॥
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत्परमदारुणः ।
कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौवलः ॥ १६ ॥
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः ।
कोसलैः काश्यमत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि ॥ १७ ॥

सेना का व्यूह बन जाने पर रणभूमि में संशप्तकों को युद्ध के निमित्त तैयार देखकर कुपित अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष घुमाते हुए उन्हीं की ओर चले। अर्जुन को मारकर विजय प्राप्त करने और या मर जाने का निश्चय करके वीर संशप्तकगण, भारी सेना साथ लिये हुए, अर्जुन की ओर चले। असंख्य हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि से परिपूर्ण और अत्यन्त क्रुद्ध वह संशप्तकसेना अर्जुन की ओर वेग से बढ़ी॥७।९॥ वेग से बाणवर्षा करके पीड़ित कर रहे अर्जुन पर संशप्तकगण चारों ओर से घोर आक्रमण करने लगे। जैसे निवातकवच दानवों के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ था, वैसे ही उस समय संशप्तकगण के साथ उनका घोर संग्राम होने लगा। अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं के सहस्रों हाथियों, घोड़ों, रथों, ध्वजाओं, पैदलों, हाथियों के सवारों, धनुषों, बाणों, खड्गों, चक्रों, परश्वधों, शस्त्र सहित उठे हुए हाथों, विविध शस्त्रों और सिरों को काट काटकर गिराने लगे॥९।१३॥ पातालतल तुल्य सैन्यरूप महाभँवर में अर्जुन को डूबा हुआ समझकर संशप्तकगण आनन्द से सिंहनाद करने लगे। कुपित रुद्र जैसे पशुओं का संहार करें वैसे ही वीर अर्जुन ने अत्यन्त कुपित होकर पहले सामने के शत्रुओं को मारा, फिर दाहने-बायें और पीछे जाकर स्फूर्ति के साथ चारों ओर से उनका नाश करना आरम्भ किया। ॥१३।१५॥ इसी समय दूसरी ओर पाञ्चाल, चेदि, सृञ्जय

शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः ।
तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ १८ ॥
क्षत्रविट्शूद्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम् ।
दुर्योधनोऽथ सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ ॥ १९ ॥
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः ।
पाण्डवैः सह पाञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च ॥ २० ॥
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरोऽभ्यपालयत् ।
कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम् ॥ २१ ॥
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान्युधिष्ठिरमपीडयत् ।
विवस्त्रायुधदेहासून्कृत्वा शत्रून्सहस्रशः ॥ २२ ॥
युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत् ।
एवं मारिष संग्रामो नरवाजिगजक्षयः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च देवासुरसमोऽभवत् ॥ २३ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

आदि देशों के वीरों और सैनिकों से कौरवगण भी दारुण युद्ध करने लगे। असंख्य रथों पर एक साथ प्रहार करनेवाले कृपाचार्य,कृतवर्मा, शकुनि आदि वीर भी उत्साहित सेना को साथ लेकर कोसल, काशी, मत्स्य, करूप, कैकेय, शूरसेन आदि देशों के श्रेष्ठ शूरों से घोर युद्ध करने लगे। उनका वह भयङ्कर युद्ध पापों को दूर करनेवाला और क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र जातियों के वीरों के निमित्त धर्म,स्वर्ग तथा यश का देनेवाला था॥१५।१९॥उधर महाराज दुर्योधन भी अपने भाईयों सहित, मद्र देश के और कौरवदल के श्रेष्ठ वीरों से सुरक्षित होकर,आगे बढ़े और पाण्डव, पाञ्चाल, चेदिगण और सात्यकि के साथ युद्ध कर रहे महारथी कर्ण की रक्षा और सहायता करने लगे। महापराक्रमी कर्ण भी तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों और पाञ्चालों की महती सेना को मथकर और श्रेष्ठ वीरों को विमुख कर धर्मराज युधिष्ठिर को पीड़ित करने लगे। कर्ण ने सहस्रों शत्रुओं के शस्त्र,वस्त्र शरीर आदि छिन्न-भिन्न करके उन्हें यशस्वी और स्वर्गवासी बनाकर अपने पक्ष के लोगों को अत्यन्त आनन्दित किया। हे भरतकुलश्रेष्ठ! इस प्रकार कौरव और सृञ्जयगण हाथियों,घोड़ों और मनुष्यों का संहार करनेवाला,देवासुर-संग्राम के समान, घोर युद्ध करने लगे॥१९।२३॥

कर्णपर्व का सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—यत्तत्प्रविश्य पार्थानां सैन्यं कुर्वञ्जनक्षयम् ।
कर्णो राजानमभ्येत्य तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥
के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन् ।
कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय ॥ ४८ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! अपने सम्मुख धृष्टद्युम्न सहित सब पाण्डवा और पाञ्चालों को युद्ध के

सञ्जय उवाच—धृष्टद्युम्नमुखान्पार्थान्दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान् ।
समभ्यधावत्त्वरितः पाञ्चालाञ्छत्रुकर्षिणः ॥ ३ ॥
तं तूर्णमभिधावन्तं पाञ्चाला जितकाशिनः ।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम् ॥ ४ ॥
ततः शङ्खसहस्राणां निःस्वनो हृदयङ्गमः ।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥ ५ ॥
नानाबाणनिपाताश्च द्विपाश्वरथनिःस्वनः ।
सिंहनादश्च वीराणामभवद्दारुणस्तदा ॥ ६ ॥
साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम् ।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं विघूर्णिता ॥ ७ ॥
इति भूतानि तं शब्दं मेनिरे ते च विव्यथुः ।
यानि चाप्यल्पसत्त्वानि प्रायस्तानि मृतानि च ॥ ८ ॥
अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयत् ।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥ ९ ॥
स पाण्डवबलं कर्णः प्रविश्य विसृजञ्छरान् ।
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत्सप्तसप्ततिम् ॥ १० ॥
ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः ।
अवधीत्पञ्चविंशत्या पाञ्चालान्पञ्चविंशतिम् ॥ ११ ॥
सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः ।
चेदिकानवधीद्वीरः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १२ ॥

निमित्त उपस्थित देखकर शत्रुओं का नाश करनेवाले कर्ण पाञ्चाल-सेना की ओर वेग से बढ़े। विजयी पाञ्चाल-गण भी वेग से आ रहे कर्ण की ओर बढ़े, जैसे हंस मानस सर की ओर जाते हैं। उस समय दोनों ओर, हृदय को हिलानेवाला, सहस्रों शङ्खों का शब्द सुनाई पड़ा। दोनों ओर नगाड़े बजने लगे और उनका दारुण शब्द प्रतिध्वनित हो उठा॥३।५॥ अनेक प्रकार के बाणों के चलने का शब्द, हाथियों, घोड़ों और रथों का शब्द तथा वीरों का सिंहनाद चारों ओर गूँज उठा। वृक्ष-पर्वत-समुद्र-सहित पृथ्वी, वायुमण्डल और मेघों सहित आकाश-मण्डल तथा सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-तारागण-सहित अन्तरिक्ष स्पष्ट ही चक्कर खाता हुआ सा जान पड़ने लगा। उस भयङ्कर शब्द से सब प्राणी व्यथित हो गये और जो क्षुद्र जीव थे, वे सब तो प्रायः मर ही गये॥६।८॥ इसी मध्य में कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर, बारम्बार अस्त्रों का प्रयोग करके, बाण बरसाकर वैसे ही पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे जैसे इन्द्र दानव-सेना का संहार करें। कर्ण ने पाण्डवसेना के भीतर प्रवेश होकर बाण बरसाये और प्रभद्रकगण के श्रेष्ठ सत-हत्तर योद्धाओं को मार डाला। फिर श्रेष्ठ महारथी कर्ण ने तीक्ष्ण पचीस बाणों से पाञ्चालसेना के पचीस प्रधान योद्धाओं को मार गिराया। इसके उपरान्त शत्रुओं के शरीरों को चीरनेवाले सुवर्णपुङ्खयुक्त नाराच बाणों से चेदि-देश के सहस्रों वीरों का संहार कर डाला॥९।१२॥इस

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम् ।
परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालानां रथव्रजाः ॥ १३ ॥
ततः सन्धाय विशिखान्पञ्च भारत दुःसहान् ।
पाञ्चालानवधीत्पञ्च कर्णो वैकर्तनो नृपः ॥ १४ ॥
भानुदेवं चित्रसेनं सेनाबिन्दुं च भारत ।
तपनं शूरसेनं च पाञ्चालानहनद्रणे ॥ १५ ॥
पाञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः ।
हाहाकारो महानासीत्पाञ्चालानां महाहवे ॥ १६ ॥
परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालानां रथा दश ।
पुनरेव च तान्कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥ १७ ॥
चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥ १८ ॥
पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः ।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ १९ ॥
धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः ।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥ २० ॥
चेदिकेकयपञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः ।
समभ्यधावन्राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम् ॥ २१ ॥
त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च ।
अभ्यवर्षन्विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥ २२ ॥

प्रकार समर में अलौकिक कर्म कर रहे कर्ण को पाञ्चाल देश के अनेक रथी योद्धाओं ने चारों ओर से घेर लिया। महावीर कर्ण ने स्फूर्ति से धनुष पर पाँच दुःसह बाण चढ़ाकर उनसे भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिन्दु, तपन और शूरसेन नाम के पाञ्चाल देश के पाँच वीरों को मार डाला। इस प्रकार कर्ण जब पाञ्चाल देश की सेना का संहार करने लगे तब उक्त सेना में घोर हाहाकार मच गया॥१३।१६॥इसी समय हाहाकार कर रहे पाञ्चाल वीरों को कर्ण फिर तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। पाञ्चाल-सेना के दस महारथियों ने कर्ण को घेरा और कर्ण ने शीघ्र ही उन्हें भी यमपुर भेज दिया। कर्ण के प्रिय पुत्र, युद्ध में दुर्जय, सुषेण और सत्यसेन कर्ण के रथ के चक्ररक्षक थे। वे भी प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगे। कर्ण के बड़े पुत्र महारथी वृषसेन, पिता के पृष्ठभाग की रक्षा करते हुए, उनके पीछे जा रहे थे॥१७।१९॥तब महावीर धृष्टद्युम्न, सात्यकि, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, वीर प्रभद्रकगण, नकुल, सहदेव और चेदि, कैकेय, पाञ्चाल तथा मत्स्य देश के कवचधारी वीर योद्धा लोग कर्ण को मारने के निमित्त उनकी ओर दौड़े। वर्षा में पर्वत पर जैसे मेघ जल की धारा बरसाते हैं वैसे ही ये सब वीर पाण्डवसेना का संहार कर रहे कर्ण के ऊपर निरन्तर असंख्य शस्त्र और तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥२०।२२॥तब

पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः ।
त्वदीयाश्चापरे राजन्वीरा वीरानवारयन् ॥ २३ ॥
सुषेणो भीमसेनस्य च्छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम् ।
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥ २४ ॥
अथान्यद्धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः ।
सज्जं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद्धनुः ॥ २५ ॥
विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः ।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः ॥ २६ ॥
भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम् ।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ २७ ॥
क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् ।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ २८ ॥
हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान्पुनरार्दयत् ।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापौ तावप्यथार्दयत् ॥ २९ ॥
दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः ।
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ ॥ ३० ॥
सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम् ।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥ ३१ ॥

कर्ण के वीर पुत्र और आपके पक्ष के अन्य सब योद्धा, कर्ण की सहायता और रक्षा करने के निमित्त, आगे बढ़े और पाण्डवपक्ष के वीरों को रोकने लगे। महावीर सुषेण ने एक भल्ल बाण से भीमसेन का धनुष काट डाला और उनके वक्ष स्थल में सात नाराच बाण मारकर घोर सिंहनाद किया। तब महाबीर भीमसेन ने अत्यन्त कुपित होकर उसी समय दूसरा धनुष लेकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। फिर तीक्ष्ण बाण से सुषेण का धनुष काटकर उनको बड़े ही विकट दस बाण मारे। इसके पश्चात् अत्यन्त तीक्ष्ण तिहत्तर बाणों से कर्ण को घायल करके दस बाण कर्ण के पुत्र सत्यसेन को मारे॥२३।२७॥ फिर उनके सब इष्ट-मित्रों के सम्मुख ही सत्यसेन के घोड़े, रथ, शस्त्र, ध्वजा आदि को छिन्न भिन्न करके एक क्षुरप्र बाण से सत्यसेन का सिर काट डाला। सत्यसेन का वह पूर्ण चन्द्र के समान मुख से शोभित सिर, डण्डी से टूटे हुए कमल के समान, पृथ्वी पर गिर पड़ा और तब भी उसकी शोभा नष्ट नहीं हुई। हे महाराज! वीर भीमसेन इस प्रकार कर्ण के पुत्र को मारकर फिर आपकी सेना के वीरों को पीड़ित करने लगे। उन्होंने कृपाचार्य और कृतवर्मा का धनुष काट डाला और उन्हें भी तीक्ष्ण बाण मारे॥२७।२९॥ दुःशासन को तीन और शकुनि को छः बाण मारकर उलूक और उनके भाई पतत्रि को उन्होंने रथहीन कर दिया। इसके पश्चात् "हे सुषेण! तुम मरे" यों कहते हुए भीमसेन ने एक भयानक बाण छोड़ा; किन्तु कर्ण ने मार्ग में ही उस बाण को काटकर भीमसेन को तीन तीक्ष्ण बाण मारे। भीमसेन ने और एक अत्यन्त

अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम् ।
सुषेणायासृजद्भीमस्तमप्यस्याच्छिनद्वृषः ॥ ३२ ॥
पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः ।
पुत्रं परीप्सन्विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥ ३३ ॥
सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम् ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ३४ ॥
नकुलस्तं तु विंशत्या विध्वा भारसहैर्दृढैः ।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ३५ ॥
तं सुषेणो महाराज विध्वा दशभिराशुगैः ।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥ ३६ ॥
अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः ।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ३७ ॥
स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा ।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः ॥ ३८ ॥
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा ।
अथान्यद्धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ३९ ॥
आविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः ।
तद्युद्धं सुमहद्घोरमासीद्देवासुरोपमम् ॥ ४० ॥
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति ।
सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः ।
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥ ४२ ॥

तीक्ष्ण विकट बाण लेकर सुषेण के ऊपर छोड़ा। पुत्र की रक्षा करने के निमित्त कर्ण ने उस बाण को भी काट डाला॥३०।३२॥और फिर, शत्रु को मारने के अभिप्राय से, क्रुद्ध होकर भीमसेन को निरन्तर तिहत्तर बाण मारे। महावीर सुषेण ने दूसरा श्रेष्ठ दृढ़ धनुष लेकर नकुल के वक्ष स्थल और हाथों में पाँच बाण मारे। नकुल ने तीक्ष्ण बीस बाण सुषेण को मारकर ज़ोर से सिंहनाद किया,जिससे कर्ण का हृदय दहल गया॥३३।३५॥तब महारथी सुषेण ने नकुल को दस बाण मारकर एक क्षुरप्र बाण से उनका धनुष काट डाला। अत्यन्त क्रुद्ध नकुल ने दूसरा धनुष लेकर सुषेण को नव बाण मारे और बाणों से सब दिशाओं को पूर्ण करके तीन भल्ल बाणों से उनके दृढ़ धनुष के तीन टुकड़े कर डाले। फिर सुषेण के सारथी को मार डाला और सुषेण को और तीन बाण मारे॥३६।३९॥इससे सुषेण को भी क्रोध चढ़ आया। उन्होंने दूसरा धनुष लेकर नकुल को साठ और सहदेव को सात तीक्ष्ण बाण मारे। इस प्रकार एक दूसरे को मार डालने के निमित्त स्पर्धा के साथ बाण चला रहे थे और देवासुर युद्ध के समान घोर संग्राम करने

अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात्पुनरुत्थितः ।
स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥ ४३ ॥
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात् ।
तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ॥ ४४ ॥
वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ।
दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥ ४५ ॥
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम् ।
अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥ ४६ ॥
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं चतुःषष्ट्याः सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ४७ ॥
नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः ।
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥ ४८ ॥
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते ॥ ४९ ॥
कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत् ।
दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥ ५० ॥
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् ।
स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ॥ ५१ ॥
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन्बलम् ।
धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद्दशभिः शरैः ॥ ५२ ॥

लगे। सात्यकि ने वृषसेन के सारथी को तीन बाणों से मार डाला। इसके पश्चात् एक भल्ल बाण से उनका धनुष काटकर सात बाणों से घोड़ों को मार डाला। फिर एक बाण से ध्वजा काटकर उनके वक्ष-स्थल में तीन बाण मारे, जिससे वे मूर्च्छित हो गये। सात्यकि के बाणों से रथ, सारथी, घोड़े, ध्वजा और धनुष से रहित वृषसेन क्षण भर में होश में आ गये और ढाल-खड्ग लेकर सात्यकि को मारने के निमित्त दौड़े॥३९।४४॥ दौड़े आ रहे वृषसेन की ढाल-खड्ग को सात्यकि ने दस वाराहकर्ण बाणों से काट डाला। दुःशासन ने जब वृषसेन को रथ और शस्त्र से हीन देखा तब उन्हें रथ पर बैठाकर वे पृथक् हटा ले गये। वीर वृषसेन अन्य रथ पर बैठकर फिर युद्धस्थल में आ गये। महारथी वृषसेन ने द्रौपदी के पुत्रों को तिहत्तर, सात्यकि को पाँच, भीमसेन को चौंसठ, सहदेव को पाँच, नकुल को तीस, शतानीक को सात, शिखण्डी को दस और धर्मराज को सौ बाण मारे॥४४।४८॥ उन्होंने इस प्रकार इन सबको और विजय चाहनेवाले अन्य श्रेष्ठ वीरों को पीड़ित किया। इसके पश्चात् दुर्धर्ष वृषसेन युद्धभूमि में फिर कर्ण के पृष्ठ भाग की रक्षा करने लगे। इसी मध्य में सात्यकि ने नव नवीन लोहमय नाराच बाणों से दुःशासन के घोड़ों, सारथी और रथ को नष्ट कर दिया और उनके मस्तक में तीन तीक्ष्ण बाण मारे। दुःशासन विधिपूर्वक सुसज्जित अन्य रथ पर बैठकर

द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः ।
भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥ ५३ ॥
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः ।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥ ५४ ॥
एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन्महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥ ५५ ॥
तान्सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
रथेनानुचरन्वीरः प्रत्यविध्यदरिन्दमः ॥ ५६ ॥
तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः ।
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५७ ॥
नह्याददानं ददृशुः सन्दधानं च सायकान् ।
विमुञ्चन्तं च संरम्भादपश्यन्त हतानरीन् ॥ ५८ ॥
द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णा निशितैः शरैः ।
अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन्देशे बभौ वियत् ॥ ५९ ॥
नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान् ।
यैर्विद्धः प्रत्यविध्यत्तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः ॥ ६० ॥
शतैश्च दशभिश्चैतान्पुनर्विध्वा ननाद च ।
साश्वसूतरथाश्छन्नास्ततस्ते विवरं ददुः ॥ ६१ ॥
तान्प्रमथ्य महेष्वासान्राधेयः शरवृष्टिभिः ।
गजानीकमसम्बाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः ॥ ६२ ॥

पाण्डवों के साथ युद्ध करते हुए कर्ण की सेना को उत्पा-हित करने लगे॥४९।५२॥इसी मध्य में धृष्टद्युम्न ने दस, द्रौपदी के पुत्रों ने तिहत्तर, सात्यकि ने सात, भीमसेन ने चौंसठ, सहदेव ने सात, नकुल ने तीस, शतानीक ने सात, शिखण्डी ने दस, धर्मराज ने सौ और अन्य विजय चाहनेवाले श्रेष्ठ वीरों ने असंख्य वाण मारकर युद्धस्थल में कर्ण को पीडित किया॥५३।५५॥शत्रुदमन कर्ण ने भी अपने रथ से इधर-उधर घूमकर इनमें से प्रत्येक को दस-दस वाण मारे। हे महाराज! उस समय हम लोग कर्ण के अस्त्रबल और अद्भुत पराक्रम को देखकर चकित रह गये। कोई यह नहीं देख पाता था कि वे कब तरकस से वाण निकालते और कब छोड़ते हैं; केवल यही देख पड़ता था कि वे कुपित होकर वाण बरसा रहे हैं॥५६।५८॥उनके वाणों से शत्रुओं के झुण्ड मर मरकर पृथ्वी पर गिरते नजर आते थे। सूर्य की किरणों के समान सर्वत्र फैल रहे उनके सहस्रों तीक्ष्ण वाणों से सब दिशाएँ व्याप्त हो गईं। आकाश,अन्तरिक्ष और पृथ्वी,सभी स्थान तीक्ष्ण वाणों से परिपूर्ण हो गये। उस स्थान का आकाश रक्तवर्ण के मेघों से आच्छादित हुआ सा प्रतीत हो रहा था। धनुष हाथ में लिये कर्ण रणभूमि में नृत्य सा कर रहे थे। जिन लोगों ने जितने वाण कर्ण को मारे थे,उनसे तिगुने वाण उनको कर्ण ने मारे। इसके पश्चात् फिर उन्होंने सबको सहस्रों वाणों से पीडित करके सिंहनाद किया॥५८।६१॥घोड़े-रथ-

स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्त्तिनाम्' ।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्याच्र्छद्युधिष्ठिरम् ॥ ६३ ॥
ततस्ते पाण्डवा राजञ्छिखण्डी च ससात्यकिः ।
राधेयात्परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन् ॥ ६४ ॥
तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे ।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः ॥ ६५ ॥
नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्विशाम्पते ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणामभिगर्जताम् ॥ ६६ ॥
ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ ६७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सकुलयुद्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सारथी ध्वजा छत्र आदि के सहित सब वीर बाणों से ढक गये। उन्होंने विमुख होकर कर्ण को सेना में घुसने का अवकाश दे दिया। बाण वर्षा से उन महाधनुर्द्धरों को पीड़ित करके शत्रुनाशन कर्ण हाथियों के दल में घुस पड़े। वहाँ रण से न हटनेवाले चेदि देश के तीन सौ रथी योद्धाओं को तीक्ष्ण बाणों से मारकर वीर कर्ण युधिष्ठिर के समीप पहुँचे और उन्हें पीड़ित करने लगे॥६१।६३॥तब शिखण्डी,सात्यकि,भीमसेन आदि पाण्डवदल के वीर योद्धा,युधिष्ठिर को अपने मध्य में करके,कर्ण से बचाने की चेष्टा करने लगे। उधर आपके पक्ष के महाधनुर्द्धर शूर पुरुष भी यत्नपूर्वक सब ओर से कर्ण की रक्षा करने लगे। उस समय रणभूमि में चारों ओर विविध बाजे बजने लगे,वीर क्षत्रिय उत्साहपूर्वक सिंहनाद करने लगे। तब फिर निर्भय कौरव और पाण्डव युद्ध करने लगे। उधर युधिष्ठिर आदि पाण्डव थे और इधर कर्ण आदि हम सब थे॥६४।६७॥

कर्ण पर्व का अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

सञ्जय उवाच—विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत् ।
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥ १ ॥
नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्नृपः ।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसम्भ्रमात् ॥ २ ॥
निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः ।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

उनचासवाँ अध्याय ॥ ४९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महावीर कर्ण अपने साथ सहस्रों रथों, हाथियों, घोड़ों, पैदलों को लिये हुए आगे बढ़े और शत्रुसेना को चीर करके युधिष्ठिर की ओर चले। अचिन्त्य वीर कर्ण शत्रुओं के चलाये हुए सहस्रों प्रकार के शस्त्रों को उन बाणों से काटकर उन्हें घायल करने और मारने लगे। कर्ण ने शत्रुओं के सिर, बाहु, जङ्घा आदि अङ्ग काटना प्रारम्भ किया। उनमें से कुछ तो मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े

द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे ॥ ४ ॥
ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥ ५ ॥
एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसा पूरयन्दिशः ॥ ६ ॥
अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥ ७ ॥
स तान्प्रमृद्याभ्यपतत्पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्वणो यथा ॥ ८ ॥
स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपञ्चालकेकयैः ।
नाशकत्तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥ ९ ॥
ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १० ॥
कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ॥ ११ ॥
तथास्मान्बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ।
यद्बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु ॥ १२ ॥

और कुछ घायल होकर भाग खड़े हुए॥१।३॥सात्यकि के उत्साहित करने से फिर द्रविड़ और निषाद देश के पैदल योद्धा, कर्ण को मारने की इच्छा से,उनकी ओर दौड़े। किन्तु कर्ण के बाणों ने एक साथ उनके हाथ, सिर और सिरत्राण काट डाले और वे कटे हुए शाल (साखू) के वन के समान पृथ्वी पर गिर गये। इस प्रकार युद्ध में मरे हुए उन सहस्रों वीरों के यश से सब दिशाएँ व्याप्त हो गईं और मृतशरीरों से रणभूमि भर गई॥४।६॥पाण्डवों और पाञ्चालों ने कुपित काल के समान कर्ण को रणभूमि में स्थित देखकर वैसे ही सम्मुख आकर रोका, जैसे रोग को मन्त्र और औषधियें रोकती हैं। किन्तु जैसे असाध्य व्याधि मन्त्र,औषध,क्रिया आदि को न मानकर बढ़ती ही जाती है वैसे ही कर्ण भी उन सबको विच-लित और विमुख करके युधिष्ठिर के निकटवर्ती होने लगे। इसके उपरान्त राजा की रक्षा के निमित्त घोर प्रयत्न कर रहे पाण्डवों, पाञ्चालों तथा केकेय देश के वीरों ने कर्ण को आगे बढ़ने से रोका और ब्रह्मज्ञानी पुरुष भी जैसे मृत्यु को नहीं टाल सकता वैसे ही कर्ण उनको लाँघकर आगे नहीं बढ़ सके॥७।९॥तब उन वीरों के द्वारा रोके गये निकटवर्ती शत्रुनाशन वीर कर्ण से, क्रोध के कारण लाल नेत्र किये हुए, महाराज युधि-ष्ठिर कहने लगे—हे कर्ण! हे वृथादर्शी सूतपुत्र! मैं जो कहता हूँ उसे सुनो। तुम सदा बलवान् अर्जुन से युद्ध करने की लाग-डाँट रखते हुए, दुर्योधन की सम्मति से,हमें सताने की चेष्टा करते हो।तुममें जितना बल और वीर्य है, पाण्डवों के प्रति विद्वेष भाव है,सो सब अपने पौरुष के अनुसार प्रकट करो; उसमें किसी

तत्त्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥ १३ ॥
एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥ १४ ॥
तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिन्दमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥ १५ ॥
सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष ।
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः ॥ १६ ॥
ज्वालामालापरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्यदृश्यत ।
युगान्ते दग्धुकामस्य संवर्ताग्नेरिवापरः ॥ १७ ॥
ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् ।
समाधत्त शितं बाणं गिरीणामपि दारुणम् ॥ १८ ॥
ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम् ।
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया ॥ १९ ॥
स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः ।
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥ २० ॥
स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै ।
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने ॥ २१ ॥
गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत् ।
राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥ २२ ॥

प्रकार की न्यूनता न होने पावे। मैं महारण में अभी तुम्हारे युद्ध की अभिलाषा को मिटा दूँगा॥१०।१३॥ हे महाराज! अब राजा युधिष्ठिर ने कर्ण को लोहमय, सुवर्णपुङ्खयुक्त, दस बाण मारे। शत्रुदमन महाधनुर्धर कर्ण ने भी हँसकर उनको दस वत्सदन्त बाण मारे। इस प्रकार अनादर का भाव प्रकट करके कर्ण ने जब प्रहार किया तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर, घृत की आहुति पड़ने से अग्नि के समान, क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। उनके शरीर से ज्वालाएँ निकलने लगीं और वे प्रलय काल में सृष्टि को भस्म करने के निमित्त उद्यत दूसरे संवर्त-अग्नि के समान दिखाई पड़ने लगे॥१४।१७॥ अब राजा ने कर्ण को मार डालने के निमित्त सुवर्ण मण्डित धनुष खींचकर उस पर, पर्वतों को भी विदीर्ण करनेवाला, एक तीक्ष्ण यमदण्ड-सदृश बाण चढ़ाया। युधिष्ठिर ने पूर्ण बल से कानों तक खींचकर वह बाण छोड़ा। वह वेग से युधिष्ठिर का छोड़ा हुआ वह भयानक बाण वज्रपात के समान दारुण शब्द करता हुआ चला और एकाएक महारथी कर्ण के वामपार्श्व को छेदकर निकल गया। उस प्रहार से पीड़ित महाबाहु कर्ण घबरा गये। उनका शरीर शिथिल पड़ गया, उनके हाथ से धनुष छूट पड़ा। वीर कर्ण मृतक के समान निश्चेष्ट होकर शल्य के आगे गिर पड़े। अर्जुन की प्रतिज्ञा के विचार से युधिष्ठिर ने, अवसर पाकर भी, फिर कर्ण के ऊपर प्रहार नहीं किया॥१८।२०॥

ततो हाहाकृतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
विवर्णमुखभूयिष्ठं कर्णं दृष्ट्वा तथागतम् ॥ २३ ॥
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे क्ष्वेलाः किलकिलास्तथा ।
पाण्डवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥ २४ ॥
प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव ।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥ २५ ॥
स हेमविकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत् ।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः ।
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे ॥ २७ ॥
तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः ।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू ॥ २८ ॥
युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्ध्यत्त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ २९ ॥
शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम् ।
तांस्तस्य गोप्तॄन्विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ३० ॥
ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम् ।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विद्ध्वा षष्ट्यानदत्तदा ॥ ३१ ॥
ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ॥ ३२ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥

का विवर्ण (उतरा हुआ) मुख (चेहरा) और यह पीड़ित दशा देखकर कौरवों की सेना में हाहाकार मच गया। राजाके पराक्रम को देखकर पाण्डवदल के लोग उछलने, किलकारियाँ मारने और सिंहनाद करने लगे। मुहूर्त भर में महापराक्रमी कर्ण को होश आ गया। उन्होंने क्रूर भाव से राजा युधिष्ठिर को मारने का विचार किया सुवर्ण-मण्डित विजय नाम का धनुष चढ़ाकर महारथी कर्ण राजा युधिष्ठिर के ऊपर निरन्तर बाण बरसाने लगे॥२३।२६॥चन्द्रमण्डल के आसपास स्थित पुनर्वसु नक्षत्र के दो तारों के समान, युधिष्ठिर के रथ के चक्ररक्षक, पाञ्चाल वीर चन्द्रदेव और दण्डधार को उन्होंने दो क्षुरप्र बाणों से मार डाला॥२७।२८॥ युधिष्ठिर ने फिर कर्ण को तीस,सुषेण और सत्यसेन को तीन-तीन, शल्य को नब्बे और फिर कर्ण को तिहत्तर बाण मारकर उनकी रक्षा करनेवाले सहायक वीरों को तीन-तीन बाण मारे। तब कर्ण ने हँसकर, धनुष चढ़ाकर, एक भल्ल बाण से युधिष्ठिर के शरीर को चीर करके फिर अत्यन्त तीक्ष्ण साठ बाण

तं शल्यः प्राह मा कर्ण गृहीथाः पार्थिवोत्तमम् ।
गृहीतमात्रो हत्वा त्वां मा करिष्यति भस्मसात् ॥ ५३ ॥
अब्रवीत्प्रहसन्राजन्कुत्सयन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ ५४ ॥
प्रजह्यात्समरं भीतः प्राणान्रक्षन्महाहवे ।
न भवान्क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः ॥ ५५ ॥
ब्राह्मे बले भवान्युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ।
मा स्म युध्यस्व कौन्तेय मा स्म वीरान्समासदः ॥ ५६ ॥
मा चैतानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् ।
वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः ॥ ५७ ॥
मादृशान्विब्रुवन्युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे ।
स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥ ५८ ॥
न हि त्वां समरे राजन्हन्यात्कर्णः कथञ्चन ।
एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः ॥ ५९ ॥
न्यहनत्पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम् ।
ततोऽपायाद् द्रुतं राजन्व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ६० ॥
अथापयान्तं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम् ।
चेदिपाण्डवपञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः ॥ ६१ ॥

से स्वयं पवित्र होकर कर्ण ने उन्हें जीवित ही पकड़ लेना चाहा। वे उस समय धर्मराज का वध भी कर सकते थे; किन्तु कुन्ती को जो वर दे चुके थे उसको स्मरण करके उन्होंने वह विचार नहीं किया ॥४८।५२॥ हे महाराज! शल्य ने कर्ण को युधिष्ठिर को पकड़ लेने के निमित्त उतारू देखकर रोका और कहा—हे कर्ण! तुम इन महाराज को पकड़ने का साहस मत करो; नहीं तो ये तुरन्त कुपित होकर तुमको और मुझे भी भस्म कर डालेंगे। हे राजेन्द्र! तब कर्ण ने वह विचार छोड़ दिया और तिरस्कार तथा उपहास के भाव से वे कहने लगे—हे युधिष्ठिर! क्षत्रियकुल में उत्पन्न और क्षत्रिय-धर्म का पालन करनेवाला पुरुष कभी महायुद्ध में प्राणों की रक्षा करने के निमित्त शत्रु के आगे से नहीं भाग सकता। मैं समझता हूँ, तुम्हें क्षत्रियों के धर्म का ज्ञान नहीं है। तुम ब्राह्मणोचित कर्म—स्वाध्याय और यज्ञ आदि—करते रहते हो और उसी को अच्छी प्रकार जानते हो॥५३।५६॥ इसी से मैं कहता हूँ कि युद्ध और वीरों का सामना मत करो। अब कभी युद्ध में न जाना और वीरों को अप्रिय वचन न सुनाना। अथवा और लोगों से वैसे वचन कहना; मुझ सरीखे वीरों से न कहना। मेरे जैसे लोगों से युद्ध में कटु वचन कहने से यह और अन्य प्रकार के अपमान भी सहने पड़ेंगे। हे धर्मराज! अपने घर को अथवा जहाँ पर कृष्ण और अर्जुन हैं वहाँ जाओ। कर्ण तुमको समर में कभी न मारेगा। इस प्रकार कहकर और धर्मराज को छोड़कर महाबली कर्ण वैसे ही पाण्डव-सेना का संहार करने लगे जैसे वज्रपाणि इन्द्र असुरसेना को चौपट करें॥५९।६०॥ नरपति युधिष्ठिर लज्जित होकर शीघ्र ही वहाँ से भाग गये। चेदि, पाण्डव, पाञ्चालगण और महारथी सात्यकि,

द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ॥ ६२ ॥
कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् ।
भेरीशङ्खमृदङ्गानां कार्मुकाणां च निःस्वनः ॥ ६३ ॥
बभूव धार्त्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा ।
युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ॥ ६४ ॥
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान्कर्णविक्रमम् ।
काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥
स्वान्योधानब्रवीत्क्रुद्धो निघ्नतैतान्किमासत ।
ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः ॥ ६६ ॥
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ।
अभवत्तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥ ६७ ॥
रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ।
उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥ ६८ ॥
इति ब्रुवाणा ह्यन्योन्यं जघ्नुर्योधा महारणे ।
अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥ ६९ ॥
समावृतैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ।
विपताकध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ॥ ७० ॥
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः ।
प्रवणादिव शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥ ७१ ॥

द्रौपदी के पुत्र, नकुल और सहदेव आदि सब योद्धा भी युधिष्ठिर को विमुख देखकर उनके पीछे चलते हुए। युधिष्ठिर की सेना को और योद्धाओं को रण से विमुख देखकर महावीर कर्ण प्रसन्नतापूर्वक कौरवों के साथ उनका पीछा करते हुए चले॥६०।६२॥ उस समय कौरवों की सेना में भयानक धनुष चढ़ाने का शब्द, सिंहनाद और भेरी-शङ्ख-मृदङ्ग आदि बाजे बजने का शब्द गूँज उठा। हे महाराज! युधिष्ठिर श्रुतिकीर्ति के रथ पर सवार हो गये। कर्ण का पराक्रम और उनके बाणों से अपनी सेना का विचलित होना देखकर, क्रुद्ध होकर, धर्मराज ने कहा—हे वीरो! देख क्या रहे हो! इन शत्रुओं को मारते क्यों नहीं! तब पाण्डव-पक्ष के महारथी भीमसेन आदि वीर, धर्मराज की आज्ञा प्राप्तकर, आपके पुत्रों पर आक्रमण करने को दौड़ पड़े॥६३।६७॥ रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों का और चले हुए तथा गिर रहे शस्त्रों का भयङ्कर शब्द चारों ओर गूँज उठा। "आओ, सामने आओ, दौड़ो और जल्दी प्रहार करो" इस प्रकार कह-कहकर योद्धा लोग परस्पर प्रहार करने लगे। आकाश-मण्डल में बाणों की वर्षा ने मेघ की घटा का सा अँधेरा कर दिया॥६७।६९॥ बाणों से घायल वीर लोग परस्पर प्रहार करने लगे। एक दूसरे के प्रहार से जिनके अङ्ग-भङ्ग हो गये हैं ऐसे राजा लोग, ध्वजा-पताका-घोड़े-सारथी-रथ-शस्त्र आदि से हीन होकर, मर-मरकर पृथ्वी पर

सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ।
छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः ॥ ७२ ॥
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ।
विप्रविद्धायुधाश्चैव विरथाश्च रथैर्हताः ॥ ७३ ॥
प्रतिवीरैश्च संमर्दे पत्तिसङ्घाः सहस्रशः ।
विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥ ७४ ॥
शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संवृता मही ।
यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं शुश्रुवुर्जनाः ॥ ७५ ॥
विमानैरप्सरःसङ्घैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
हतानभिमुखान्वीरान्वीरैः शतसहस्रशः ॥ ७६ ॥
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः ।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ॥ ७७ ॥
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।
रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥ ७८ ॥
पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः ।
एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ७९ ॥
सैन्येन रजसा वृत्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान् ।
कचाकचि युद्धमासीद्दन्तादन्ति नखानखि ॥ ८० ॥
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मासुनाशनम् ।
तथा वर्तति संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ८१ ॥

गिरने लगे। वज्र शोभित पर्वतों के शिखर जैसे वज्र पात से फट-फटकर गिरें वैसे ही सवारों सहित बड़े-बड़े हाथी और घोड़े घायल होकर मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। कवच सहित शरीर और दिव्य आभूषण जिनके छिन्न भिन्न हो गये हैं ऐसे पैदल योद्धा,शत्रुवीरों के बाणों से, मर मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे॥७०। ७३॥उस समय समरभूमि रणमत्त वीरों के, विशाल लाल लोचनों से शोभित चन्द्र और अरविन्द के समान मुखमण्डलवाले, कटे हुए सिरों से भर गई। सवारों सहित सहस्रों घोड़े, रथियों के बाणों से मरे हुए हाथी और असंख्य पैदल योद्धा मर-मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। स्वर्ग में भी पृथ्वी के ही समान कोलाहल सुन पड़ रहा था॥७३।७५॥विमानों पर अप्सराएँ गा बजा रही थीं और जो वीर सम्मुख युद्ध में मारे जाते थे उन्हें तत्काल दिव्य विमानों पर चढ़ा चढ़ाकर स्वर्ग को ले जाती थीं। यह आश्चर्य देखकर, स्वर्गलोक प्राप्त करने की इच्छा से, वीर क्षत्रियगण प्रसन्नता और उत्साह के साथ शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे को मारने और मरने लगे। रथी रथियों से, हाथियों के सवार हाथियों के सवारों से,घुड़सवार घुड़सवारों से और पैदल पैदलों से भिड़कर विचित्र युद्ध कर रहे थे॥७६।७९॥हे महाराज! इस प्रकार घोर संग्राम में असंख्य हाथियों,घोड़ों और मनुष्यों का नाश होने लगा। उस समय इतनी धूलि उड़ी कि अँधेरा हो गया और उस अँधेरे में अपने पक्ष का या

नराश्वनागदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा ।
गजाश्वनरदेहान्सा व्युवाह पतितान्बहून् ॥ ८२ ॥
नराश्वगजसम्बाधे नराश्वगजसादिनाम् ।
लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्दमा ॥ ८३ ॥
नराश्वगजदेहानां वहन्ती भीरुभीषणा ।
तस्याः पारमपारं च व्रजन्ति विजयैषिणः ॥ ८४ ॥
गाधेन चोत्प्लवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्ज्य चापरे ।
ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ॥ ८५ ॥
सस्नुस्तस्यां पपुश्चास्यां मम्लुश्च भरतर्षभ ।
रथानश्वान्नरान्नागानायुधाभरणानि च ॥ ८६ ॥
वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान्हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहितम् ॥ ८७ ॥
लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरक्तेन शब्देन च विसर्पता ॥ ८८ ॥
विषादः सुमहानासीत्प्रायः सैन्यस्य भारत ।
तत्तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥ ८९ ॥
भूयः समाद्रवन्वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा ।
तेषामापततां वेगमविषह्यं निरीक्ष्य च ॥ ९० ॥

शत्रुपक्ष का जो सम्मुख पड़ जाता था उसी पर लोग प्रहार करते थे; क्योंकि वे पहचान ही नहीं पाते थे कि यह अपने दल का है या पराये दल का। उस समय वीरगण भिड़ गये और परस्पर केश पकड़कर दाँतों से, नखों से और घूँसों से प्रहार करने लगे। कोई-कोई शस्त्र न रहने पर कुश्ती ही लड़ने लगे। इस प्रकार देह और सब पापों को नष्ट करनेवाला धर्मसङ्गत तुमुल संग्राम होने पर मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों से निकले हुए रक्त की भयानक महानदी बह चली। उसमें गिरे हुए मृत हाथी, घोड़े और मनुष्य बह चले॥७९-८२॥ मांस और रक्त के कीचड़ से परिपूर्ण वह महाघोर नदी कायरों के निमित्त बड़ी भयानक थी। विजय की इच्छा रखनेवाले वीर, हाथियों पर बैठकर, उस नदी के पार जाने की चेष्टा कर रहे थे। कुछ लोग उसमें गोता खाकर फिर ऊपर उभर आते थे। उनके अङ्ग, कवच, वस्त्र, शस्त्र सब रक्त से तर और लाल हो जाते थे। हे भरतश्रेष्ठ! उस भीषण नदी में कोई नहा गया, कोई गोता खाकर रक्त पी गया और कोई डूबकर मर ही गया। उस समय हमें असंख्य रथ, हाथी, घोड़े, मनुष्य, शस्त्र, कवच और आभूषण उस नदी में गिरते और बहते दिखाई पड़ रहे थे। उस रक्त में हमें अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी और सब दिशाएँ लाल ही लाल दिखाई देने लगीं॥८३-८७॥ उस रक्त के फैल रहे गन्ध, स्पर्श, रस, भयानक रूप और प्रचण्ड-शब्द से प्रायः सम्पूर्ण सेना उदास हो गई। भीमसेन आदि वीरगण पहले ही इस प्रकार कौरवसेना को नष्ट कर चुके थे; इस समय फिर सात्यकि आदि वीर आक्रमण करते हुए देखकर॥८८-९०॥ उन वीरों के

पुत्राणां ते महासैन्यमासीद्राजन्पराङ्मुखम् ।
तत्प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥ ९१ ॥
विध्वस्तवर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ।
व्यद्रवत्तावकं सैन्यं लोड्यमानं समन्ततः ।
सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥ ९२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सकुलयुद्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

वेग और आक्रमण को न सह सकने के कारण आपके पुत्रों की सम्पूर्ण सेना युद्ध छोड़कर भाग खड़ी हुई। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सब इधर-उधर भागने लगे। शत्रुओं के बाणों से विमर्दित आपकी सेना कवच-हीन और मर्यादा से रहित होकर खड्ग-धनुष आदि शस्त्रों को फेंककर, वन में सिंह से पीड़ित हाथियों के समूह के समान, इधर उधर भागने लगी॥९०।९२॥

—:०:—

कर्ण पर्व का उनचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच—तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् ।
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥ १ ॥
योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद्भरतर्षभ ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन्व्यवर्तत ॥ २ ॥
ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन्रणे ॥ ३ ॥
कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान्सराजकान् ।
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ॥ ४ ॥
एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
हंसवर्णान्हयानग्र्यान्प्रैषीद्यत्र वृकोदरः ॥ ५ ॥
ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ७ ॥

पचासवाँ अध्याय ॥ ५० ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! उस समय अपनी सेना और योद्धाओं को पाण्डवों के पराक्रम से भागते देखकर जोर से पुकार-पुकारकर राजा दुर्योधन ने उन्हें लौटाने की बारम्बार चेष्टा की; परन्तु कोई भी नहीं लौटा । तब व्यूह के पक्ष, प्रपक्ष आदि से कौरवदल के अनेक सशस्त्र महारथी योद्धा निकल पड़े । वे भीमसेन पर आक्रमण करने लगे॥१।३॥ दुर्योधन के भाइयों सहित सब कौरवों को भागते देखकर कर्ण ने मद्रराज से कहा—हे शल्य ! मुझे भीमसेन के रथ के समीप ले चलो । तब शल्य ने हंस के वर्ण के श्वेत घोड़ों को भीमसेन के रथ की ओर हाँक दिया । शल्य के हाँके हुए वे घोड़े भीमसेन के रथ के समीप तुरन्त

सोऽब्रवीत्सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
संशयान्महतो मुक्तं कथञ्चित्प्रेक्षतो मम ।
अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥ ९ ॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ।
अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ॥ १० ॥
हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति ।
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥
राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै ।
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥ १२ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति ।
सिंहनादेन महता सर्वाः सन्नादयन्दिशः ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥ १४ ॥
शल्य उवाच—पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम् ।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम् ॥ १५ ॥
ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन ।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे ॥ १६ ॥
त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे ।
बिभर्ति सदृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ १७ ॥

पहुँच गये॥ ७॥ कर्ण को आते देखकर क्रुद्ध भीमसेन ने उनको मार डालने का विचार कर लिया। उन्होंने वीर सात्यकि और धृष्टद्युम्न से कहा—तुम लोग महाराज युधिष्ठिर की रक्षा करो। दुष्ट कर्ण ने, दुर्योधन की प्रसन्नता के निमित्त, महाराज का कवच छिन्न-भिन्न कर दिया और मेरे सम्मुख ही उन्हें पकड़ने का यत्न किया था। वे किसी प्रकार उस विषम सङ्कट से बच गये। उसका मुझे बड़ा ही दुःख है। मैं इस समय कर्ण को मारकर अथवा इसके हाथ से स्वयं मरकर उस दुःख को दूर करूँगा॥ ८।१०॥ मैं सत्य कहता हूँ, इस घोर संग्राम में यही होगा। हे वीरो! मैं इस समय धरोहर के समान महाराज को तुम्हें सौंपता हूँ। तुम लोग सावधान होकर धर्मराज की रक्षा करना। हे राजेन्द्र! महाबाहु भीमसेन यों कहकर महासिंहनाद से सब दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए कर्ण की ओर लपके। युद्ध में प्रसन्न होनेवाले भीमसेन को शीघ्रता के साथ आते देखकर मद्रराज शल्य ने कहा॥ ११।१४॥ हे कर्ण! वह देखो, महाबाहु भीमसेन अत्यन्त कुपित होकर हम लोगों की ओर आ रहे हैं। ये इस समय अवश्य ही चिरकाल से सञ्चित क्रोध को तुम पर, आक्रमण करके, निकालना चाहते हैं। इस समय इनका रूप प्रलयकाल की दारुण अग्नि के समान भयङ्कर जान पड़ता है। महावीर अभिमन्यु और राक्षस घटोत्कच के मरने पर भी इनका ऐसा भयानक रूप

सञ्जय उवाच—इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप ।
अभ्यवर्धत वै कर्ण क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥ १८ ॥
अथागतं तु सम्प्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
अब्रवीद्वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १९ ॥
यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर ।
भीमसेनं प्रति विभो तत्सत्यं नात्र संशयः ॥ २० ॥
एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः ।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥ २१ ॥
अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा ।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥ २२ ॥
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः ।
सोऽद्य संग्रामशिरसि सन्नद्धः क्रोधमूर्छितः ॥ २३ ॥
किं करोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद्रणम् ।
चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः ॥ २४ ॥
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद्धनञ्जयः ।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद्भीमसमागमात् ॥ २५ ॥
निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते ।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ॥ २६ ॥
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं सम्प्रधारय ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः ॥ २७ ॥

मैंने नहीं देखा। इस समय कुपित भीमसेन तीनों लोकों के वीरों को एक साथ ही नष्ट कर सकते हैं॥१५। १७॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! वीर शल्य कर्ण से इस प्रकार कह ही रहे थे कि क्रोध से प्रज्वलित महाबली भीमसेन वहाँ पहुँच गये। युद्ध की इच्छा से आये हुए भीमसेन को देखकर वीर कर्ण ने हँसकर शल्य से कहा—हे मद्रराज ! तुमने भीमसेन के विषय में जो कुछ कहा, वह सब सत्य है। ये शूर, वीर, क्रोधी महाबली और प्राणों की अपेक्षा न रखकर युद्ध करते हैं। ये युद्ध करने में कभी नहीं थकते॥१८।२१॥ अज्ञातवास में विराट राजा के यहाँ रहते समय इन्होंने, द्रौपदी का प्रिय करने के निमित्त, गुप्त रूप से केवल बाहुबल के आश्रय महाबली कीचक को और उसके भाइयों को मार डाला था। आज इस समय वही भीमसेन क्रुद्ध होकर युद्ध करने को उद्यत हैं। दण्डपाणि यमराज से भी युद्ध करने में ये पीछे नहीं हट सकते ॥२२।२४॥बहुत दिनों से मेरी यह इच्छा है कि समर में अर्जुन या तो मुझे मारें या मैं उनको मारूँ। आज इस समय भीमसेन का सामना होने से मुझे अपने उस मनोरथ के पूर्ण होने में सन्देह जान पड़ता है। मैं भीमसेन को यदि मार डालूँगा या रथहीन कर दूँगा तभी अर्जुन मुझसे युद्ध करने आवेंगे और उसी को मैं अच्छा समझूँगा। हे शल्य ! शीघ्र बतलाओ इस समय तुम्हारी क्या सम्मति है॥२५।२७॥शल्य ने कहा—

उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम् ।
अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥ २८ ॥
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनम्।
यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात्प्रभृति हृद्गतः ॥ २९ ॥
स वै सम्पत्स्यते कर्ण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ॥ ३० ॥
हन्ताहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्याद्धनञ्जयः ।
युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥ ३१ ॥
सञ्जय उवाच—ततः प्रायाद्रथेनाशु शल्यस्तत्र विशाम्पते ।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥ ३२ ॥
ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः ।
उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥ ३३ ॥
भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तस्य सैन्यं दुरासदम् ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद्बली ॥ ३४ ॥
स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ।
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३५ ॥
ततो मुहूर्ताद्राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत् ।
समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृतः ॥ ३६ ॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे ।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३७ ॥
स विद्धः सूतपुत्रेण च्छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ३८ ॥

हे कर्ण ! तुम इस समय महापराक्रमी भीमसेन के साथ युद्ध करो। इनको परास्त कर चुकने पर अवश्य ही अर्जुन तुमसे युद्ध करने आवेंगे और इस प्रकार तुम्हारी बहुत दिन की इच्छा आज पूर्ण होगी, यह मैं सत्य कहता हूँ। अब फिर कर्ण ने कहा—हे शल्य ! इस समय या तो अर्जुन को मैं मारूँगा, या वही मुझे मार डालेंगे। हे महाराज ! महारथी कर्ण यों कहकर, युद्ध के निमित्त दृढ़ निश्चय करके, शल्य से भीमसेन के निकट रथ ले चलने के निमित्त कहने लगे॥२७।३१॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! तब वीरवर शल्य शीघ्र ही कर्ण का रथ वहाँ पर ले गये जहाँ महाधनुर्द्धर भीमसेन आपकी सेना को मारकर भगा रहे थे। कर्ण और भीमसेन का समागम होने पर रणस्थल में तुरही और भेरी आदि सहस्रों बाजे बजने लगे। महाबली भीमसेन अत्यन्त कुपित होकर तीक्ष्ण नाराच बाणों से आपकी दुर्द्धर्ष सेना को चारों ओर भगाने लगे। अब कर्ण और भीम दोनों वीर भयानक संग्राम करने लगे॥३२।३५॥ भीमसेन क्षण भर में सहज ही कर्ण के सम्मुख वेग से आ गये। कर्ण ने भी उन्हें आते देखकर, कुपित होकर, पहले उनके वक्षःस्थल में एक नाराच बाण मारा; फिर

तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ ३९ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ४० ॥
राजन्मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी ॥ ४१ ॥
तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत् ।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ४२ ॥
ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः ।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया ॥ ४३ ॥
स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् ।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ॥ ४४ ॥
विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः ।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ॥ ४५ ॥
स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः ।
अदारयद्रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम् ॥ ४६ ॥
स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह ।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः ॥ ४७ ॥
ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम् ।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम् ॥ ४८ ॥

वे उन पर बाणों की वर्षा करने लगे । महावीर भीमसेन भी कर्ण के बाणों से अत्यन्त घायल हो चुकने पर उनके ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे । अब भीम ने लक्ष्य कर कर्ण को तीक्ष्ण नव बाण मारे॥३६।३८॥कर्ण ने तीक्ष्ण बाण मारकर भीमसेन के धनुष के,मध्य से काटकर, दो टुकड़े कर दिये । भीमसेन का धनुष काटकर कर्ण ने उनके हृदय में, सब प्रकार के आवरणों को तोड़ डालनेवाला, तीक्ष्ण नाराच बाण मारा । भीमसेन ने दूसरा धनुष हाथ में लेकर कर्ण के सब मर्मस्थलों में तीक्ष्ण बाण मारे और ऐसा घोर सिंहनाद किया, जिससे पृथ्वी और आकाश तक काँप उठा । तब कर्ण ने वैसे ही भीमसेन को पच्चीस नाराच बाण मारे,जैसे कोई वन में मदोन्मत्त हाथी को जलती हुई लकड़ियाँ मारे॥३९।४२॥उन बाणों से शरीर छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण भीमसेन क्रोध से विह्वल हो उठे, उनके नेत्रों में रक्त उतर आया । उन्होंने कर्ण के वध की इच्छा से धनुष पर महावेगयुक्त और बड़े बड़े पर्वतों को भी तोड़ सकनेवाला महाविकट बाण चढ़ाया । फिर बलपूर्वक कानों तक खींचकर कुपित भीमसेन ने वह बाण छोड़ा । उनके हाथ से छूटा हुआ वह बाण, वज्रपात के समान घोर शब्द करता हुआ, वज्र के ही समान वेग से कर्ण के वक्ष स्थल में लगा । वज्र जैसे पर्वत को फाड़ डाले, वैसे ही उस बाण ने कर्ण के हृदय को फाड़ दिया॥४३।४६॥हे कुरुश्रेष्ठ ! भीमसेन

ततः पराजिते कर्णे धार्त्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
व्यद्रावयद्भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान्पुरा ॥ ४९ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कर्णापयाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

के प्रहार से सेनापति कर्ण मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़े। उन्हें अचेत देखकर वीर सारथी झटपट वहाँ से रथ को हटा ले गये। इस प्रकार कर्ण के परास्त होने पर दुर्योधन की सेना चारों ओर भागने लगी। हे महाराज! पूर्व समय में इन्द्र ने जैसे असुरों की सेना को भगाया था वैसे ही वली भीमसेन भी कर्ण को हरा कर कौरव-सेना को मारने और भगाने लगे॥४७।४९॥

—०—

कर्णपर्व का पचासवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय ।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः ॥ १ ॥
कर्णो ह्येको रणे हन्ता पाण्डवान्सृञ्जयैः सह ।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥
पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे ।
ततः परं किमकरोत्पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच—विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे ।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान्समभाषत ॥ ४ ॥
शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत ।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ ५ ॥
ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा ॥ ६ ॥
श्रुतर्वा दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः ।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ७ ॥
दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ ।
धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च जलसन्धः शलः सहः ॥ ८ ॥

इक्यावनवाँ अध्याय ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! भीमसेन ने यह बड़ा दुष्कर कार्य किया कि महाबाहु कर्ण को रथ पर अचेत कर दिया। दुर्योधन बारम्बार मुझसे यही कहा करता था कि कर्ण अकेले ही सब पाण्डवों और सृञ्जयों को मार डालेगा। उस समय कर्ण को भीमसेन से यों परास्त हुआ देखकर दुर्योधन ने क्या किया॥१।३॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज! राजा दुर्योधन ने कर्ण को महायुद्ध में विमुख देखकर अपने भाइयों से कहा कि तुम लोग अभी जाकर अथाह सङ्कट-सागर में डूबे हुए कर्ण की रक्षा करो॥४।५॥ हे राजेन्द्र! तब आपके सब पुत्र बड़े भाई की यह आज्ञा पाकर, पतङ्गे जैसे अग्नि की ओर चले वैसे ही, भीमसेन को मारने के विचार से क्रुद्ध होकर उनकी ओर दौड़ पड़े। महा-पराक्रमी, कवच पहने और पाश आयुध आदि धारण

एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः ।
भीमसेनं समासाद्य समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ९ ॥
ते व्यमुञ्चञ्छरव्रातान्नानालिङ्गान्समन्ततः ।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः ॥ १० ॥
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप ।
रथैः पञ्चशतैः सार्द्धं पञ्चाशद्हनद्रथान् ॥ ११ ॥
विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः ।
भीमसेनो महाराज तत्पपात हतं भुवि ॥ १२ ॥
सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तथा ।
तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो ॥ १३ ॥
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम् ।
ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ॥ १४ ॥
जहार समरे प्राणान्भीमो भीमपराक्रमः ।
तौ धरामनुपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ ॥ १५ ॥
विकटश्च सहश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप ।
ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम् ॥ १६ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ।
हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर ॥ १७ ॥
वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु ।
तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥ १८ ॥
नन्दोपनन्दौ समरे प्रेषयद्यमसादनम् ।
ततस्ते प्राद्रवन्भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ॥ १९ ॥

किये हुए श्रुतर्वा, दुर्धर, क्राथ, विविन्सु, विकट, सम, नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह, ये आपके पुत्र अनेक रथी योद्धाओं के साथ आगे बढ़े और चारों ओर से भीमसेन को घेरकर उनके ऊपर अनेक प्रकार के विकट बाण बरसाने लगे॥९।१०॥आपके पुत्रों के प्रहार से पीड़ित पराक्रमी पाण्डव ने शीघ्रता के साथ उनके पाँच सौ रथ नष्ट करके पचास रथी योद्धाओं को मार डाला। उन्होंने एक भल्ल बाण से विविन्सु का कुण्डल-मण्डित शिरस्त्राणशोभित पूर्णचन्द्रतुल्य सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। आपके अन्य सब पुत्र शूरवीर विविन्सु की मृत्यु देखकर भीमसेन पर आक्रमण करने को दौड़े। तब भीमसेन ने अन्य दो भल्ल बाणों से देवकुमार तुल्य आपके अन्य दो पुत्रों विकट और सह—को मार डाला। वे दोनों आँधी से उखड़े हुए बड़े वृक्षों के समान पृथ्वी पर गिर पड़े॥१०।१५॥अब भीमसेन ने शीघ्र ही एक तीक्ष्ण नाराच बाण से क्राथ को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। आपके धनुर्धर वीर पुत्रों के मारे जाने पर कौरव-सेना में घोर हाहाकार मच गया। इस प्रकार सेना में हलचल होने पर महाबली भीमसेन

भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।
पुत्रांस्ते निहतान्दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥ २० ॥
हंसवर्णान्हयान्भूयः प्रैषयद्यत्र पाण्डवः ।
ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥ २१ ॥
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ।
स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ॥ २२ ॥
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।
दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥ २३ ॥
आसीद् बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति ।
ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः ॥ २४ ॥
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तत्र पश्यताम् ।
ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ॥ २५ ॥
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ २६ ॥
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः ।
ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन् ॥ २७ ॥
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् ।
भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम् ॥ २८ ॥
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः ।
ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् ॥ २९ ॥
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च ॥ ३० ॥

ने फिर नन्द और उपनन्द को मार डाला। तब आपके बचे हुए पुत्रगण कालान्तक के समान भयङ्कर भीमसेन को देखकर विह्वल होकर भागने लगे॥१६।१९॥ हे महाराज! आपके पुत्रों की मृत्यु देखकर कर्ण बहुत ही दुःखित हुए। उन्होंने फिर अपने रथ को भीमसेन के सम्मुख ले चलने के निमित्त शल्य से कहा। शल्य के हाँके हुए वे घोड़े वेग से भीमसेन के रथ के समीप पहुँच गये। तब भीमसेन और कर्ण दोनों घोर संग्राम करने लगे। हे महाराज! उस समय उन दोनों महारथियों को भिड़ते देखकर मैं सोचने लगा कि इस घोर संग्राम का परिणाम क्या होगा॥१९।२४॥ इसके उपरान्त युद्ध में निपुण भीमसेन आपके पुत्रों के सम्मुख ही वीरवर कर्ण के ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। श्रेष्ठ दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले कर्ण ने भी क्रोधान्ध होकर नव लोहमय भल्ल बाणों से भीमसेन को घायल कर दिया। भीम-पराक्रमी भीमसेन ने कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर, कान तक खींचकर, सात बाण उनको मारे। कर्ण ने भी कुपित सर्प के समान फुफकारकर भीमसेन पर इतने बाण बरसाये कि वे उनमें छिप गये॥२४।२८॥ महाबली भीमसेन भी कौरवों के सम्मुख ही महारथी कर्ण

ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम् ।
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ ३१ ॥
कर्णस्य निधनाकांक्षी चिक्षेपातिबलो नदन् ।
तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः ।
ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ॥ ३३ ॥
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम् ।
ततो युद्धमभूद्घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३४ ॥
हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।
ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३५ ॥
आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः ॥ ३६ ॥
घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम् ।
तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकः ॥ ३७ ॥
प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नगः ।
स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ॥ ३८ ॥
सञ्चचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ।
ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ॥ ३९ ॥
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाहनत् ॥ ४० ॥

को बाण-वर्षा से ढककर घोरतर सिंहनाद करने लगे। महावीर कर्ण भीमसेन के बाणों की चोट से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने दृढ़ता के साथ धनुष पकड़कर भीमसेन को दस बाण मारे और एक तीक्ष्ण भल्ल से उनका धनुष काट डाला॥२८।३०॥तब भीमसेन ने कर्ण को मार डालने के अभिप्राय से एक सुवर्ण-पत्र-भूषित, दूसरे यमदण्ड के समान भयानक,परिघ लेकर कर्ण के ऊपर फेंका और सिंहनाद किया। कर्ण ने भी तत्काल विषैले सर्प-सदृश असंख्य बाणों से उस वज्र के समान शब्द करते आ रहे बेलन के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब महावीर भीमसेन ने बलपूर्वक धनुष पकड़कर शत्रुदलन कर्ण को बाणों से छिपा दिया॥३१।३४॥हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् एक दूसरे को मार डालने के निमित्त उद्यत बाली और सुग्रीव के समान महावीर कर्ण और भीमसेन पहले से भी अधिक घोर संग्राम करने लगे। महारथी कर्ण ने कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर तीन बाणों से भीमसेन को घायल किया। कर्ण के बाणों से बहुत ही घायल होने के कारण भीमसेन क्रोध के मारे काँपने लगे। उन्होंने कर्ण के शरीर को चीरनेवाला एक घोर बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा। वह बाण कर्ण के कवच को तोड़कर शरीर को फोड़कर, बिल में घुसनेवाले सर्प के समान, पृथ्वी में घुस गया। इस बाण की चोट से वीर कर्ण बहुत व्यथित और विह्वल हो उठे;

सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ।
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्त्ताद्राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ ४२ ॥
विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः ।
गदां गृह्य महाबाहुरपतत्स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४३ ॥
अवप्लुत्य च वेगेन तव सैन्यं विशाम्पते ।
व्यधमद्गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ॥ ४४ ॥
नागान्सप्तशतान्राजन्नीषादन्तान्प्रहारिणः ।
व्यधमत्सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥ ४५ ॥
दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान्नागानवधीद्बली ॥ ४६ ॥
ततस्ते प्राद्रवन्भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४७ ॥
तान्स सप्तशतान्नागान्सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ४८ ॥
ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान्पुनः ।
पोथयामास कौन्तेयो द्विपञ्चाशदरिन्दमः ॥ ४९ ॥

वे भूकम्प के समय पर्वत के समान काँपने लगे॥३५। ३९॥इसके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त क्रोध करके भीमसेन को पर्याप्त तीक्ष्ण नाराच बाणों से घायल करके अन्य असंख्य बाणों से पीड़ित किया। फिर एक बाण से उनकी ध्वजा काटकर गिरा दी और एक भल्ल बाण से उनके सारथी को भी मार डाला। इस प्रकार क्षण भर में भीमसेन का धनुष और रथ काटकर वे हँसने लगे॥३९।४२॥तब महाबाहु भीमसेन गदा हाथ में लेकर उस टूटे हुए रथ के ऊपर से तुरन्त कूद पड़े। वायु जैसे शरद् ऋतु के मेघ को उड़ा देती है वैसे ही वे उस गदा के प्रहार से कौरव-सेना को मारने और भगाने लगे। इसके पश्चात् भीम ने हल के समान बड़े-बड़े दाँतोंवाले और शत्रुसेना पर प्रहार करनेवाले सात सौ हाथियों को कुपित होकर एकाएक मारा और भगाया। मर्मस्थलों की जानकारी रखनेवाले बली भीम उन हाथियों के दन्तवेष्टन, नेत्र, कपोल, मस्तक आदि स्थानों में और मर्मस्थलों में वेग से गदा प्रहार करने लगे। उनके भयानक प्रहारों से अत्यन्त भयविह्वल होकर वे हाथी पहले तो इधर-उधर भागे; किन्तु जब उनके सवारों ने उनको सँभाला और उत्तेजित किया, तब वे फिर भीमसेन के सम्मुख आये और मेघमण्डल जैसे सूर्य को छिपा ले वैसे ही उन्होंने चारों ओर से भीमसेन को घेर लिया। तब शत्रु-दल-दलन भीमसेन ने उस गदा की मार से वैसे ही उन सात सौ हाथियों को मार-मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया जैसे इन्द्र ने वज्र के प्रहार से पर्वतों को चूर-चूर कर डाला था ॥४३।४८॥तब भीमसेन ने फिर शकुनि के साथ के महाबलशाली बावन हाथियों को मार डाला। फिर

तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् ।
न्यहनत्पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥ ५० ॥
प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना ।
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्नावाहितं यथा ॥ ५१ ॥
ते भीमभयसन्त्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ ५२ ॥
रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्रादिनश्चर्मवर्मिणः ।
भीममभ्यद्रवन्घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ॥ ५३ ॥
तान्स पञ्चशतान्वीरान्सपताकध्वजायुधान् ।
पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ५४ ॥
ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसम्मताः ।
त्रिसाहस्राऽभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥ ५५ ॥
प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदारिहा ।
विविधान्विचरन्मार्गान्गदया समपोथयत् ॥ ५६ ॥
तेषामासीन्महाञ्छब्दस्ताडितानां च सर्वशः ।
अश्मभिर्विध्यमानानां नगानामिव भारत ॥ ५७ ॥
एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान्हयोत्तमान् ।
हत्वान्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥ ५८ ॥
कर्णोऽपि समरे राजन्धर्मपुत्रमरिन्दमम् ।
स शरैश्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥ ५९ ॥

कौरवपक्ष की सेना को पीड़ित कर रहे वीर पाण्डव ने स्फूर्ति के साथ शत्रुपक्ष के कुछ अधिक सौ रथों और सैकड़ों पैदलों को नष्ट कर दिया । हे राजेन्द्र ! इधर इस प्रकार महाबाहु भीमसेन पीड़ित कर रहे थे और उधर सूर्य का तेज सता रहा था।इन दोनों कारणोंसे आपकी सेना,अग्नि में डाले गये चमड़े के समान सकुचित और नष्ट होने लगी॥४९।५१॥उस समय आपकी सेना भीमसेन के भय से विह्वल होकर चारों ओर भागने लगी । इसी समय और पाँच सौ कवचधारी रथी योद्धा बाण बरसाते हुए भीमसेन की ओर चले । महाबली भीमसेन ने, विष्णु जैसे असुरों का संहार करें वैसे ही, उन ध्वजा-पताका और शस्त्र आदि से सज्जित वीरों को गदा के प्रहार से चूर्ण कर दिया॥५२।५४॥ तब शकुनि की आज्ञा से शक्ति ऋष्टि-प्रास आदि शस्त्र हाथों में लिये हुए तीन सहस्र घुड़सवार योद्धा भीमसेन पर आक्रमण करने चले । शत्रुनाशन भीम ने उन घुड़सवारों के समीप जाकर,अनेक प्रकार के पैंतरे दिखाकर,उसी गदा से सबको चूर्ण कर डाला । चारों ओर से मारे जा रहे वे वीर वैसा ही शब्द और आर्तनाद करने लगे जैसा शब्द पत्थरों से तोड़े जा रहे बाँसों या नरकुलों के वनमें होता है॥५५।५७॥इस प्रकार शकुनि के तीन सहस्र चुने हुए घुड़सवारों को मारकर वीर भीमसेन दूसरे रथ पर सवार हुए और कर्ण के सम्मुख पहुँचे । उधर वीर कर्ण राजा युधिष्ठिर के ऊपर बाण

ततः स प्रद्रुतः संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः ।
अन्वधावत्किरन्बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ६० ॥
राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसी ।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥ ६१ ॥
सन्निवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः ।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः ।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ६३ ॥
अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम् ।
तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६४ ॥
विसृजन्तौ शरान्दीप्तान्विभ्राजेतां मनस्विनौ ।
ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम् ॥ ६५ ॥
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत ।
नैव सूर्यप्रभा राजन्न दिशः प्रदिशस्तथा ॥ ६६ ॥
प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ।
मध्याह्ने तपतो राजन्भास्करस्य महाप्रभाः ॥ ६७ ॥
हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपाण्डवयोस्तदा ।
सौबलं कृतवर्माणं द्रोणिमाधिरथिं कृपम् ॥ ६८ ॥
संसक्तान्पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः ।
तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद्विशाम्पते ॥ ६९ ॥

बरसाने लगे।उन्होंने धर्मराज के सारथी को मार गिराया। अपनी सेना को भागते देखकर कुपित कर्ण कङ्कपत्र बाण बरसाते हुए वेग से धर्मराज की ओर चले॥५८। ६०॥कर्ण का रथ देखकर धर्मराज भय के मारे भाग खड़े हुए। महावीर कर्ण भी, युधिष्ठिर पर बरसाये गये बाणों से आकाश और पृथ्वी को व्याप्त करते हुए, उनका पीछा करने लगे।यह देखकर कुपित बली भीमसेन कर्ण के ऊपर बाण बरसाने लगे। शत्रुओं को पीड़ित करनेवाले महारथी कर्ण लौट पड़े और भीमसेन को तीक्ष्ण बाण मारने लगे। उधर सत्यविक्रमी सात्यकि, भीमसेन की सहायता करने के निमित्त,आगे बढ़े और अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को व्यथित करने लगे॥६१।

६३॥महारथी कर्ण, सात्यकि के बाणों से पीड़ित होकर भी, भीमसेन से युद्ध करने लगे। उस समय वे दोनों वीर परस्पर भिड़कर निरन्तर बाण बरसाने लगे। उनके क्रौञ्च पक्षी की पीठ के समान लाल रङ्ग के बाण चारों ओर फैल जाने से सारा आकाश लाल ही लाल दिखाई पड़ने लगा। बाणों से सब दिशा-उपदिशाएँ और सूर्य की प्रभा तक छिप गई॥६४।६७॥मध्याह्न काल के समय तप रहे सूर्य का तीक्ष्ण तेज कर्ण और पाण्डव की बाण-वर्षा में छिप गया। इसी समय पाण्डवों को फिर आक्रमण करते और शकुनि,कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण,कृपाचार्य आदि को उनसे भिड़ते देखकर कौरवों की सेना युद्ध करने को लौट पड़ी। उमड़ रहे समुद्र

उद्वृत्तानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः ।
ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वान्योन्यं महाहवे ॥ ७० ॥
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् ।
ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ७१ ॥
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।
बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे ॥ ७२ ॥
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम् ।
आसीन्निनादः सुमहान्बाणौघानां परस्परम् ॥ ७३ ॥
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निःस्वनो महान् ।
ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम् ॥ ७४ ॥
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशाम्पते ॥ ७५ ॥
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद्यशः ।
शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः ॥ ७६ ॥
श्रूयन्ते विविधा राजन्नामान्युद्दिश्य भारत ।
यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा ॥ ७७ ॥
कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि ।
तान्दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान्परस्परम् ॥ ७८ ॥
अभवन्मे मती राजन्नैषामस्तीति जीवितम् ।
तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम् ॥ ७९ ॥
अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद्भविष्यति ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्कौरवाश्च महारथाः ॥ ८० ॥

के समान उस लौट रही सेना में तीव्र और भयानक कोलाहल होने लगा । दोनों पक्ष की सेनाओं के वीर योद्धा भिड़कर एक दूसरे की ओर देखते हुए प्रहार करने लगे॥६७।७१॥उस मध्याह्न काल के समय ऐसा घोर युद्ध हुआ कि वैसा युद्ध हम लोगों ने न तो पहले कभी देखा था और न सुना था। एक ओर की सेना दूसरी ओर की सेना के निकट पहुँचकर वैसे ही वेग से आगे बढ़ने लगी जैसे जल का समूह सागर की ओर बढ़ता है । दोनों ओर से चल रहे असंख्य बाणों का शब्द गरज रहे सागर की लहरों के शब्द के समान सुनाई पड़ने लगा । दोनों सेनाएँ वेग से बढ़कर दो नदियों के समान एक में मिल गईं । अब भारी यश प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले कौरव और पाण्डव दल के लोग घोर संग्राम करने लगे॥७२।७५॥दोनों पक्ष के पराक्रमी शूर गरज गरजकर, अपने विपक्षियों के नाम ले-लेकर, निरन्तर अनेक प्रकार की बातें कह रहे थे। जिसके पिता या माता के कुल में कर्म अथवा स्वभाव का जो दोष या व्यङ्ग्य था उसे उसका प्रतिपक्षी युद्ध में सुनाता

ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम् ॥ ८१ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सङ्कुलयुद्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

था। इस प्रकार उन शूरों को परस्पर तर्जन-गर्जन करते और कलङ्क खोलते देखकर मुझे तो निश्चय हो गया कि अब ये जीवित नहीं बच सकते, परस्पर कट मर जायँगे। उन महातेजस्वी कुपित वीरों के रूप देखकर मेरे मन में तीव्र भय का सञ्चार हुआ कि आज इसका परिणाम क्या होगा। हे महाराज! महारथी कौरव और पाण्डव, विजय की अभिलाषा करके, परस्पर बाणों से शरीरों को छिन्न भिन्न करने लगे॥७६।८१॥

कर्ण पर्व का इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५२ ॥

सञ्जय उवाच—क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥ १ ॥
रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः ।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम् ॥ २ ॥
गदानां परिघाणां च कणपानां च क्षिप्यताम् ।
प्रासानां भिन्दिपालानां भुशुण्डीनां च सर्वशः ॥ ३ ॥
सम्पातं चानुपश्याम संग्रामे भृशदारुणे ।
शलभा इव सम्पेतुः शरवृष्टयः समन्ततः ॥ ४ ॥
नागान्नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम् ।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा ॥ ५ ॥
पत्तयः पत्तिसङ्घांश्च हयसङ्घांश्च पत्तयः ।
पत्तयो रथमातङ्गान्रथा हस्त्यश्वमेव च ॥ ६ ॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप ।
वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम् ॥ ७ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा ।
रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी ॥ ८ ॥

बावनवाँ अध्याय ॥ ५२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! तब वे परस्पर विजय की इच्छा रखनेवाले बद्धवैर क्षत्रियगण एक दूसरे को मारने और मरने लगे। उस भयङ्कर संग्राम में परस्पर वीरों के चलाये हुए गदा, परिघ, कुणप, प्रास, भिन्दिपाल और भुशुण्डी आदि शस्त्र तथा असंख्य बाण पतङ्गों के समान चारों ओर गिरने लगे॥१।३॥हाथी हाथियों को, घोड़े घोड़ों को, रथी रथियों को और पैदल पैदलों को मारने लगे। हाथियों के सवार उनके सवारों को मारने लगे। इसी प्रकार घोड़ों के सवार घुड़सवारों को, पैदल योद्धा लोग हाथियों, रथों और घोड़ों को, और हाथियों के समूह रथों, घोड़ों और पैदलों को शीघ्रता के साथ बढ़कर मारने और रौंदने लगे॥४।६॥उन महारण में मारे जा रहे और परस्पर पुकार रहे शूरों के प्रहार से वह रणभूमि पशुओं की वध्यभूमि के समान

शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा ।
यथा वा वाससी शुक्ले महारञ्जनरञ्जिते ॥ ९ ॥
बिभृयाद्युवती श्यामा तद्वदासीद्वसुन्धरा ।
मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव च ॥ १० ॥
भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह ।
कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत ॥ ११ ॥
निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनाम् ।
चर्मणां सपताकानां सङ्घास्तत्रापतन्भुवि ॥ १२ ॥
गजा गजान्समासाद्य विषाणैरार्दयन्नृप ।
विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा ॥ १३ ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव ।
यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमण्डिताः ॥ १४ ॥
तोमरान्सादिभिर्मुक्तान्प्रतीपानास्थितान्बहून् ।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभंजुश्चापरे तथा ॥ १५ ॥
नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः ।
हिमागमे यथा राजन्व्यभ्रा इव महीधराः ॥ १६ ॥
शरैः कनकपुङ्खैश्च चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः ।
उल्काभिः सम्प्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥ १७ ॥
केचिद्भ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः ।
विनेशुः समरे तस्मिन्पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १८ ॥
अपरे प्राद्रवन्नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः ।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १९ ॥

भयङ्कर दिखाई पड़ने लगी। वह रणभूमि, रक्त से तर होने के कारण, वर्षा ऋतु में बीरबहूटियों से परिपूर्ण पृथ्वी के समान जान पड़ने लगी। जैसे कोई युवती कुसुम के रङ्ग से रँगे हुए वस्त्र पहन करके शोभित हो वैसे ही वह रणभूमि रक्त से तर होने के कारण जान पड़ती थी॥७।१०॥वीरों के मस्तक, बाहु, ऊरु आदि अङ्गों और कुण्डल, निष्क आदि आभूषणों,कवचों और शरीरों के ढेर के ढेर चारों ओर निरन्तर गिर रहे थे। दोनों पक्ष के हाथी परस्पर दाँतों के प्रहार से विदीर्ण और रक्त से तर होकर उस पर्वत के समान शोभायमान हो रहे थे, जिससे गेरू बह रही हो॥११।१४॥कोई-कोई हाथी घुड़सवारों के चलाये और ताने हुए तोमरों को सूँड से छीनकर तोड़ डालने लगे। कुछ हाथियों के कवच नाराच बाणों से कट गये थे और वे शरद् ऋतु के आगमन में मेघों से शून्य पर्वतों के समान शोभा को प्राप्त हो रहे थे॥१५।१६॥हाथियों के शरीरों में अनेक सुवर्णपुङ्खयुक्त बाण आकर लगे थे। इससे वे उल्काओं से प्रदीप्त शिखरवाले पर्वतों के समान जान पड़ते थे। कोई-कोई पर्वताकार हाथी हाथियों के किये हुए प्रहार से भी नहीं विचलित हुए, और जिनके पक्ष

विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान्रवान् ।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुक्रुशुश्चापरे गजाः ॥ २० ॥
हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः ।
निपेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २१ ॥
अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले ।
भावान्बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥ २२ ॥
नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष ।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥ २३ ॥
धावमानान्परांश्चान्ये दृष्ट्वान्ये तत्र भारत ।
गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥ २४ ॥
तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥ २५ ॥
निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः ।
वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥ २६ ॥
ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशाम्पते ।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥ २७ ॥
वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम् ।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ २८ ॥
भौमेन रजसाकीर्णे शस्त्रसम्पातसंकुले ।
नैव स्वे न परे राजन्व्यज्ञायन्त तमोवृताः ॥ २९ ॥

फट गये हों उन पर्वतों के समान अपने स्थान पर डटे हुए खड़े रहे । कुछ हाथी बाणों की मार और व्रणों की पीड़ा से व्यथित होकर भागने लगे । कुछ हाथी दाँतों और मस्तकों के बल पृथ्वी पर गिर पड़े । कुछ हाथी पृथ्वी पर बैठ गये और सिंह के समान गरजकर भयङ्कर शब्द करने लगे । कुछ हाथी इधर उधर चक्कर खाने लगे और कुछ आर्त्तनाद करने लगे॥१७।२०॥ सुवर्ण के आभूषणों से सजे हुए घोड़े बाणों की चोट से पीड़ित होकर गिर पड़े, मर गये और इधर-उधर भागने लगे । क्लेश से पीड़ित बहुत से घोड़े पृथ्वी पर गिरकर तड़पने लगे । बाणों और तोमरों से पीड़ित होकर बहुत से घोड़े भान्ति-भान्ति की चेष्टाएँ करने लगे। बहुत से मारे गये मनुष्य पृथ्वी पर गिरकर आर्त्तनाद करने लगे । अन्य बहुत से मनुष्य अपने बान्धवों और पिता-पितामहों को देखकर आर्त्तनाद करने लगे । कुछ लोग अपने शत्रुओं को भागते देखकर एक दूसरे के प्रसिद्ध नाम गोत्र आदि लेने लगे॥२१।२४॥हे महाराज ! वीरों के सुवर्ण के भूषणों से भूषित कटे हुए हाथ इधर-उधर तड़पने, उठने और गिरते थे । रण में कटकर गिरे हुए अनेक हाथ, पाँच मुखवाले सर्पों के समान, वेग से उछलने और लोटते थे । वे चन्दन-चर्चित रक्त से तर हाथ सुवर्ण की ध्वजाओं के समान, सर्पों के फणों के समान, शोभायमान हो रहे थे॥२५।२७॥हे राजेन्द्र ! इस प्रकार चारों ओर घोर संकुल

तथा तद्भवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
लोहितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥ ३० ॥
शीर्षपाषाणसञ्छन्नाः केशशैवलशाद्वलाः ।
अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥ ३१ ॥
मांसशोणितपङ्किन्यो घोररूपाः सुदारुणाः ।
नदीः प्रवर्तयामासुः शोणितौघविवर्धिनीः ॥ ३२ ॥
भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्धनाः ।
ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम् ॥ ३३ ॥
अवगाढान्मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन्भयम् ।
क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥ ३४ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम् ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ ३५ ॥
नृत्यन्ति वै भूतगणाः सुतृप्ता मांसशोणितैः ।
पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ॥ ३६ ॥
मेदोमज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव ह ।
धावमानाः स्म दृश्यन्ते काकगृध्रबकास्तथा ॥ ३७ ॥
शूरास्तु समरे राजन्भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ।
योधव्रतं समासाद्य चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ३८ ॥
शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले ।
व्यचरन्त रणे शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥ ३९ ॥

युद्ध होने लगा और योद्धा लोग परस्पर में ही मार-पीट करने लगे। चारों ओर शस्त्र चलने से एक तो यों ही किसी को अपने पराये का विचार नहीं था, उस पर धूलि उड़ने से घोर अन्धकार हो गया जिससे किसी को किञ्चिन्मात्र भी अपने या पराये की पहचान नहीं रही। हे महाराज! उस भयानक संग्राम में चारों ओर कई रक्त की नदियाँ बह निकलीं। उनमें मस्तक ही पत्थर की जगह थे। केश ही सेवार और घास के समान जान पड़ते थे। हड्डियाँ मछलियों की जगह थीं। धनुष-बाण-गदा आदि शस्त्र छोटी-छोटी डोंगियों के समान बह रहे थे। मांस और रक्त का उनमें कीचड़ था। ऐसी अत्यन्त दारुण और रक्त के प्रवाह को बढ़ानेवाली नदियाँ चारों ओर वीरों ने बहा दीं। वे घोर नदियाँ सबको यमपुर पहुँचानेवाली, कायरों को डरानेवाली और शूर पुरुषों के हर्ष को बढ़ानेवाली थीं। वीर योद्धाओं को डुबानेवाली उन नदियों को देखकर क्षत्रियों के भी मन में भय उत्पन्न होने लगा॥२८-३३॥ मांसाहारी जीव और राक्षस आदि उन नदियों के तट पर आनन्द से नाच रहे थे। उन नदियों ने रणभूमि को यमपुर के समान महाभयानक बना दिया। चारों ओर अगणित कबन्ध उठ खड़े हुए। भूतगण मांस और रक्त से तृप्त हो गये। रक्त पीकर, चर्बी खाकर, मेदा-मज्जा-वसा-मांस आदि से तृप्त और उन्मत्त मांसाहारी काक गिद्ध बगले आदि जीव इधर-उधर उड़

अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत ।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो ॥ ४० ॥
श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योधा विशाम्पते ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ४१ ॥
वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे ।
व्यपीदत्कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि सकुलयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

रहे थे॥३४।३७॥हे राजेन्द्र ! उस दारुण युद्ध में दुस्त्यज प्राणों के भय को छोड़कर, योद्धाओं के मन का विचार करके, वीर क्षत्रियगण निर्भय होकर युद्ध कर रहे थे । बाण शक्ति आदि शस्त्रों से दुर्गम और मांसाहारी जीवों से परिपूर्ण उस रणभूमि में शूर लोग अपना पौरुष प्रकट करते हुए इधर-उधर विचर रहे थे। योद्धा लोग चारों ओर अपने, और पिताओं के, नाम-गोत्र आदि सुना-सुनाकर शक्ति तोमर पट्टिश आदि शस्त्रों से परस्पर प्रहार कर रहे थे । हे महाराज ! इस प्रकार संग्राम ने जब घोर रूप धारण किया तब पाण्डवों से पीड़ित कौरवों की सेना,समुद्र में टूट गई नाव के समान, खिन्न हो गई॥३८।४२॥

कर्णपर्व का बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥

सञ्जय उवाच—वर्त्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने ।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥ १ ॥
संशप्तकानां कदनमकरोद्यत्र पाण्डवः ।
कोसलानां तथा राजन्नारायणबलस्य च ॥ २ ॥
संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः ।
अपातयन्पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३ ॥
ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन्प्रभुः ।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन्रथिनां वरान् ॥ ४ ॥
विगाह्य तद्रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम् ॥ ५ ॥
स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः ।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ॥ ६ ॥

तिरपनवाँ अध्याय ॥ ५३ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! क्षत्रियों का नाश करनेवाला ऐसा महाघोर संग्राम जिस समय हो रहा था उसी समय जहाँ पर महाबली अर्जुन संशप्तकगण, कोशलगण और नारायणी सेना का संहार कर रहे थे वहाँ रण भूमि में गाण्डीव धनुष का महाभयानक शब्द बारम्बार सुनाई पड़ रहा था।विजय की आकांक्षा रखनेवाले क्रोधी संशप्तकगण चारों ओर से बारम्बार अर्जुन के मस्तक पर बाणों की वर्षा कर रहे थे॥१।३॥महावीर अर्जुन सहज ही उस शस्त्रवर्षा को हृदय पर झेलते हुए शत्रुसेना में घुसे और उनके श्रेष्ठ रथी योद्धाओं को

सुशर्मा तु ततः पार्थं विध्वा दशभिराशुगैः ।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद्दक्षिणे भुजे ॥ ७ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष ।
स वानरवरो राजन्विश्वकर्मकृतो महान् ॥ ८ ॥
ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च ।
कपेस्तु निनदं श्रुत्वा सन्त्रस्ता तव वाहिनी ॥ ९ ॥
भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत ।
ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ॥ १० ॥
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम् ।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव ।
परिवव्रुस्ततः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥ १२ ॥
निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः ।
ते हयान्रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष ॥ १३ ॥
निगृहीतुमुपाक्रामन्क्रोधाविष्टाः समन्ततः ।
निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥ १४ ॥
निगृह्य बलवत्सर्वे सिंहनादमथानदन् ।
अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥ १५ ॥
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा ।
केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन्रणमूर्धनि ॥ १६ ॥

चुन-चुनकर मारने लगे। कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से उन रथी योद्धाओं की मण्डली को मथकर वीर अर्जुन महारथी सुशर्मा के समीप पहुँचे। उस समय सुशर्मा और उसके साथी संशप्तकगण फिर अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे॥४।६॥इसी मध्य में सुशर्मा ने अर्जुन को दस बाण मारकर श्रीकृष्ण के दाहने हाथ में तीन तीक्ष्ण बाण मारे। इसके पश्चात् सुशर्मा ने अर्जुन की ध्वजा में एक भल्ल बाण मारा। वह विश्वकर्मा का बनाया हुआ, ध्वजा में स्थित, वानर सुशर्मा के प्रहार से क्रुद्ध होकर गरजने और नृत्य सा करने लगा। इससे सम्पूर्ण सेना भयभीत होकर व्याकुल और चेष्टाहीन सी हो गई। वह निश्चेष्ट सेना अनेक पुष्पों से युक्त गन्धर्वों के उपवन के समान जान पड़ने लगी॥७।११॥हे राजेन्द्र! क्षण भर के पश्चात् होश में आकर वे सब योद्धा चारों ओर से अर्जुन के ऊपर वैसे ही बाण बरसाने लगे, जैसे मेघ पर्वत पर जलधारा बरसाते हैं। उन्होंने अर्जुन के रथ की गति रोक करके उसे अपने रथों के घेरे में कर लिया। उन कुपित संशप्तकों ने यह विचार कर लिया कि अर्जुन के घोड़ों को, रथ को, पहियों को और रथ के ईषादण्ड को प्रचण्ड आक्रमण से नष्ट कर दें। कुछ साहसी संशप्तकों ने रथ पर चढ़कर श्रीकृष्ण और अर्जुन को पकड़ लेना चाहा॥११। १५॥सिंहनाद कर रहे कुछ योद्धाओं ने समीप जाकर श्रीकृष्ण की भुजाएँ पकड़ लीं और कुछ ने आनन्द

पातयामास तान्सर्वान्दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥ १७ ॥
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम् ।
रथारूढांस्तु सुबहून्पदातींश्चाप्यपातयत् ॥ १८ ॥
आसन्नांश्च तथा योधाञ्शरैरासन्नयोधिभिः ।
छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥
पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान्बहून् ।
कुर्वाणान्दारुणं कर्म वध्यमानान्सहस्रशः ॥ २० ॥
रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥ २१ ॥
इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत् ।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी ॥ २२ ॥
तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी ।
सञ्चचाल महाराज वित्रस्ता चाद्रवद्भृशम् ॥ २३ ॥
पादबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा ।
नागमस्त्रं महाराज सम्प्रकीर्य मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥
ते बद्धाः पादबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टाश्चाभवन्राजन्नश्मसारमया इव ॥ २५ ॥
निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत्पाण्डुनन्दनः ।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥ २६ ॥

के साथ रथ पर स्थित अर्जुन को पकड़ लेने की चेष्टा की। दुष्ट हाथी जैसे अपने महावत और सवारों को पटक देता है वैसे ही महाबाहु श्रीकृष्ण ने अपनी देह को झटककर उन सबको रथ के नीचे गिरा दिया। महारथी संशप्तकों से घिरे हुए अर्जुन ने अपने रथ को रुका हुआ और उन योद्धाओं में से कुछ को आक्रमण के निमित्त दौड़ते तथा कुछ को रथ पर चढ़ते देखकर, कुपित होकर, कुछ को तो नीचे गिरा दिया और तनिक भी घबराये बिना, निकट से युद्ध करने के योग्य,छोटे बाणों से अनेक वीरों को मार गिराया ॥१६।१९॥अर्जुन ने इस प्रकार उन शत्रुओं को मारकर, मुसकराकर, कहा—हे कृष्णचन्द्र! असंख्य संशप्तकगण, रथों का घेरा डालकर, घोर दुष्कर्म करने को तैयार थे। मेरे बिना और कोई क्षत्रियश्रेष्ठ पृथ्वी पर ऐसा नहीं है जो इनसे अपने को बचा सकता ॥१९।२१॥हे राजेन्द्र! महातेजस्वी अर्जुन ने अब अपना देवदत्त नामक शङ्ख बजाया। श्रीकृष्ण ने भी पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उन दोनों शङ्खों के शब्द से आकाश और पृथ्वी परिपूर्ण हो उठी। उस शङ्ख-ध्वनि को सुनकर संशप्तक-सेना भयभीत और विचलित होकर भाग खड़ी हुई। तब अर्जुन ने नागास्त्र छोड़ा जिससे नागों ने प्रकट होकर संशप्तकों के पाँव जकड़ लिये॥२२।२४॥उक्त अस्त्र के प्रभाव से संशप्तकगण जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। दिव्य अस्त्रों के

का दृढ़ निश्चय करके, अर्जुन को चारों ओर से घेरने लगे। हे भरत-कुल-तिलक! उस समय फिर शूरवीर अर्जुन आपके पक्ष के वीरों के साथ घोर संग्राम करने लगे॥४३।४६॥

कर्ण पर्व का तिरपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच—कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौवलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥ १ ॥
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जह्रुः स्म वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे ॥ २ ॥
ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्त्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ३ ॥
कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे ।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥ ४ ॥
शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद् द्विजपुङ्गवम् ॥ ५ ॥
कृपस्तु शरवर्षं तद्विनिहत्य महास्त्रवित् ।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥ ६ ॥
ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे ।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७ ॥
ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः ॥ ८ ॥
हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥ ९ ॥

चौवनवाँ अध्याय ॥ ५४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! तब कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, उलूक, शकुनि और भाइयों सहित राजा दुर्योधन पाण्डवों के भय से पीड़ित अपनी सेना की दुर्दशा देखकर आगे बढ़े और प्रवाह के वेग से समुद्र में टूटकर डूब रही नाव के समान अपनी सेना को उबारने का यत्न करने लगे। क्षण भर में कायरों के मन में भय और वीरों के मन में उत्साह बढ़ानेवाला घोर युद्ध होने लगा॥१।३॥कृपाचार्य के छोड़े हुए बाणों ने टीड़ीदल के समान सृञ्जय-सेना को छा लिया। तब शिखण्डी क्रुद्ध होकर कृपाचार्य की ओर दौड़े और उनके चारों ओर घोर बाणों की वर्षा करने लगे। दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता कृपाचार्य ने उस बाण वर्षा को व्यर्थ करके शिखण्डी को दस बाण मारे॥४।६॥शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर सीधे जानेवाले सात बाण कृपाचार्य को मारे। उन बाणों से अत्यन्त घायल होकर महारथी कृपाचार्य क्रोधान्ध हो उठे। उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से शिखण्डी के घोड़े, सारथी और रथ को नष्ट कर दिया। तब महारथी शिखण्डी उस बिना

तमापतन्तं सहसा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १० ॥
तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा ।
निश्चेष्टस्तद्रणे राजञ्छिखण्डी समतिष्ठत ॥ ११ ॥
कृपेण च्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम् ।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १२ ॥
धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः ॥ १३ ॥
युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
सपुत्रं सहसैन्यं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥
नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन् ॥ १५ ॥
भीमसेनं करूषांश्च केकयान्सह सृञ्जयैः ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १६ ॥
शिखण्डिनस्ततो बाणान्कृपः शारद्वतो युधि ।
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष ॥ १७ ॥
ताञ्छरान्प्रेषितांस्तेन समन्तात्स्वर्णभूषितान् ।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत ।
व्यधमत्सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १९ ॥

घोड़ों के रथ मे कूदकर, ढाल तलवार लेकर, स्फूर्ति के साथ कृपाचार्य की ओर दौड़े॥७।९॥महारथी कृपाचार्य ने उन्हें एकाएक शीघ्रता के साथ आते देखकर, तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके, मार्ग में ही रोक दिया। हे राजेन्द्र! उस समय हम लोग, जल के ऊपर शिलाओं के तैरने के समान, यह अद्भुत दृश्य देखने लगे कि महावीर शिखण्डी कृपाचार्य के बाणों से निश्चेष्ट होकर आगे नहीं बढ़ सके। इसी समय महारथी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी को कृपाचार्य के बाणों से पीड़ित और परास्त देखकर, कृपाचार्य की ओर वेग से दौड़े॥१०।१२॥ महावीर कृतवर्मा, धृष्टद्युम्न को कृपाचार्य के रथ की ओर जाते देखकर, उन पर आक्रमण करने चले। तब राजा युधिष्ठिर भी पुत्रों के साथ सेना सहित कृपाचार्य के रथ की ओर जाने लगे। यह देखकर महावीर अश्वत्थामा ने उनको रोका। राजा दुर्योधन ने भी स्फूर्ति के साथ बढ़ रहे नकुल और सहदेव को बाण-वर्षा से रोककर उन पर आक्रमण किया॥१३।१५॥कर्ण ने आगे बढ़ रहे भीमसेन और उनके सहायक कारूष, कैकेय और सृञ्जयगण को अपने बाणों से रोका। फिर घोर युद्ध होने लगा। शिखण्डी को मानो भस्म ही कर डालेंगे, इस प्रकार कृपाचार्य स्फूर्ति के साथ उनके ऊपर बाण बरसाने लगे।महाबली शिखण्डी अपना खड्ग घुमाकर कृपाचार्य के छोड़े सुवर्ण भूषित बाणों को काटने लगे। तब कृपाचार्य ने स्फूर्ति के साथ अपने बाणों से शिखण्डी

स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत् ।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः ॥ २० ॥
शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः ।
चित्रकेतुसुतो राजन्सुकेतुस्त्वरितो ययौ ॥ २१ ॥
विकिरन्ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः ।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम ॥ २३ ॥
सुकेतुस्तु ततो राजन्गौतमं नवभिः शरैः ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २४ ॥
अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ २५ ॥
गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ २६ ॥
स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे ।
भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम् ॥ २७ ॥
चलतस्तस्य कायात्तु शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण स्वपातयत् ॥ २८ ॥
तच्छिरः प्रापतद्भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम् ।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात्प्रापतदच्युत ॥ २९ ॥

की शतचन्द्र विभूषित ढाल काट डाली । यह देखकर सब लोग चिल्लाने और हाहाकार करने लगे॥१६।१९॥ ढाल न रहने पर शिखण्डी केवल खड्ग ही लिये कृपाचार्य की ओर दौड़े और जिसकी मृत्यु निकट आ गई हो वह आतुर व्यक्ति जैसे मृत्यु के वश में हो, वैसे ही वे कृपाचार्य के वश में आ गये । हे महाराज ! इसी समय महाबली चित्रकेतु के पुत्र सुकेतु, शिखण्डी को कृपाचार्य के बाणों से छिन्न भिन्न और पीड़ित देखकर, शीघ्र ही विविध बाणों से कृपाचार्य को पीड़ित करते हुए उनके रथ के समीप पहुँचे॥२०।२२॥उस समय द्विजराज कृपाचार्य को सुकेतु से लड़ने में उलझे देखकर उनके आगे से शिखण्डी भाग गये । महावीर सुकेतु ने क्रम से नव,सत्तर और तीन बाण कृपाचार्य को मारे। फिर उनका बाण युक्त धनुष काटकर उनके सारथी के मर्मस्थल में एक बाण मारा॥२३।२५॥यह देखकर कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने दूसरा दृढ़ धनुष हाथ में लेकर सुकेतु के मर्मस्थलों में तीस बाण मारे । उन बाणों से महावीर सुकेतु बहुत ही व्याकुल हो गये और भूकम्प के समय जैसे वृक्ष काँपते हैं वैसे ही व्यथा के मारे रथ पर काँप उठे । इसी अवसर में कृपाचार्य ने एक क्षुरप्र बाण से उनका कुण्डलों से अलङ्कृत, पगड़ी और शिरस्त्राण से भूषित मस्तक काट डाला। सुकेतु का सिर,बाज के पञ्जे से छूटे हुए मांस-पिण्ड के समान,पृथ्वी पर गिर पड़ा । इसके पश्चात्

तस्मिन्हते महाराज त्रस्तास्तस्य पुरोगमाः ।
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ३० ॥
धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः ।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥ ३१ ॥
तदभूत्तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे ।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ॥ ३२ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन्हृदिकात्मजम् ॥ ३३ ॥
कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः ।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥ ३४ ॥
सरथश्छादितो राजन्धृष्टद्युम्नो न दृश्यते ।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः ॥ ३५ ॥
विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः ।
व्यरोचत रणे राजन्धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥ ३६ ॥
ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत्पृतनापतिः ॥ ३७ ॥
तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्योऽवारयद्युधि ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९ ॥
सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद्यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद्रथात् ॥ ४० ॥

धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम् ।
कौरवान्समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥ ४१ ॥
ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् ।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

अपने सहस्रों बाणों से अकस्मात् आई हुई उस बाण-वर्षा को व्यर्थ कर दिया। सेनापति धृष्टद्युम्न अपनी बाण-वर्षा को रुकते देखकर कुपित हो उठे। उन्होंने कृतवर्मा को रोककर एक भल्ल बाण से उनके सारथी को मार डाला। हे राजेन्द्र! महाबली धृष्टद्युम्न इस प्रकार वीर्यशाली शत्रु को पराजित करके अपने बाणों से कौरवों को पीड़ित करने लगे। पराक्रमी कौरव लोग भी सिंहनाद करते हुए उनकी ओर दौड़े और फिर घोर युद्ध होने लगा॥३७।४२॥

—०—

कर्णपर्व का चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच—द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् ।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्त्तत धृष्टवत् ॥ १ ॥
किरन्निषुगणान्घोरान्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
दर्शयन्विविधान्मार्गाञ्शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ॥ २ ॥
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ।
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित् ॥ ३ ॥
द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
बाणभूतमभूत्सर्वमायोधनशिरो महत् ॥ ४ ॥
बाणजालं दिवि च्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥ ५ ॥
तेन च्छन्नं नभो राजन्बाणजालेन भास्वता ।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६ ॥
तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे ।
न स्म सम्पतते भूतं किञ्चिदेवान्तरिक्षगम् ॥ ७ ॥

पचपनवाँ अध्याय ॥ ५५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! उधर महावीर अश्वत्थामा युधिष्ठिर को सात्यकि और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों से, सुरक्षित देखकर स्फूर्ति के साथ बाण बरसाने और अनेक प्रकार से अपनी शिक्षा और अभ्यास की निपुणता दिखलाने लगे। वे प्रसन्नतापूर्वक धर्मराज के समीप पहुँच गये। दिव्य मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित अस्त्रों से उन्होंने धर्मराज के रथ को और आकाशमण्डल को व्याप्त कर दिया। उस समय और कुछ भी नहीं देख पड़ता था, उस लम्बी-चौड़ी रणभूमि में अश्वत्थामा के बाण ही बाण दृष्टिगोचर आते थे। सुवर्ण-मण्डित बाणों का ऊपर चँदोवा सा तन गया॥१।५॥ आकाश-मण्डल में इतने बाण छा गये कि जान पड़ने लगा,

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः ।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ॥ ८ ॥
लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदीक्षितुम् ॥ ९ ॥
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम् ।
वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ॥ १० ॥
सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि सङ्गताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥ ११ ॥
सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२ ॥
युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥ १३ ॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥ १४ ॥
स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्राविध्यत शिलीमुखैः ॥ १५ ॥
श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥ १६ ॥
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
तथेतरांस्ततः शूरान्द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥ १७ ॥

मेघों की घटा घिर आई है। आकाशचारी प्राणी आकाश में उड़ नहीं सकते थे। यह देखकर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय संग्राम प्रिय सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर और अन्य योद्धा लोग अश्वत्थामा की स्फूर्ति देखकर आश्चर्य से दङ्ग रह गये। कोई किसी प्रकार पराक्रम करके भी अश्वत्थामा को न रोक सका। सब राजा लोग मध्याह्नकाल में तप रहे प्रचण्ड सूर्य के समान तेजस्वी अश्वत्थामा की ओर आँख भर कर देखने में भी असमर्थ हो रहे थे॥६।१०॥इस प्रकार अपनी सेना को मरते देखकर पाण्डवपक्ष के वीरों से नहीं रहा गया। तब सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर, पाञ्चालगण और द्रौपदी के पाँचों पुत्र मृत्यु का भय छोड़कर अश्वत्थामा की ओर दौड़े। वीरश्रेष्ठ सात्यकि ने पहले अश्वत्थामा को सत्ताईस बाण मारे और फिर सुवर्ण-खचित सात बाणों से उनको घायल किया। इसके पश्चात् धर्मराज ने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्य ने सात, श्रुतकर्मा ने तीन, श्रुतकीर्ति ने सात, सुतसोम ने नव, शतानीक ने सात और अन्यान्य वीरों ने असंख्य बाण मारकर एक साथ ही चारों ओर से अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया॥११।१४॥उनके बाणों की मार से महावीर अश्वत्थामा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और छेड़े गये भयानक सर्प के समान बारम्बार दीर्घश्वास लेने लगे। उन्होंने भी सात्यकि को पचीस, श्रुतकीर्ति को नव, सुतसोम को पाँच, श्रुतकर्मा को आठ, प्रतिविन्ध्य

धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम् ।
कौरवान्समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥ ४१ ॥
ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् ।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ४२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

अपने सहस्रों बाणों से अकस्मात् आई हुई उस बाण-वर्षा को व्यर्थ कर दिया। सेनापति धृष्टद्युम्न अपनी बाण-वर्षा को रुकते देखकर कुपित हो उठे। उन्होंने कृतवर्मा को रोककर एक भल्ल बाण से उनके सारथी को मार डाला। हे राजेन्द्र! महाबली धृष्टद्युम्न इस प्रकार वीर्यशाली शत्रु को पराजित करके अपने बाणों से कौरवों को पीड़ित करने लगे। पराक्रमी कौरव लोग भी सिंहनाद करते हुए उनकी ओर दौड़े और फिर घोर युद्ध होने लगा॥३७।४२॥

—०—

कर्णपर्व का चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

सञ्जय उवाच—द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् ।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्त्तत धृष्टवत् ॥ १ ॥
किरन्निषुगणान्घोरान्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
दर्शयन्विविधान्मार्गाञ्शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ॥ २ ॥
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ।
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित् ॥ ३ ॥
द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
बाणभूतमभूत्सर्वमायोधनशिरो महत् ॥ ४ ॥
बाणजालं दिवि च्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥ ५ ॥
तेन च्छन्नं नभो राजन्बाणजालेन भास्वता ।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६ ॥
तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे ।
न स्म सम्पतते भूतं किञ्चिदेवान्तरिक्षगम् ॥ ७ ॥

पचपनवाँ अध्याय ॥ ५५ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र! उधर महावीर अश्वत्थामा युधिष्ठिर को सात्यकि और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों से, सुरक्षित देखकर स्पर्द्धा के साथ बाण बरसाने और अनेक प्रकार से अपनी शिक्षा और अभ्यास की निपुणता दिखलाने लगे। वे प्रसन्नतापूर्वक धर्मराज के समीप पहुँच गये। दिव्य मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित अस्त्रों से उन्होंने धर्मराज के रथ को और आकाशमण्डल को व्याप्त कर दिया। उस समय और कुछ भी नहीं देख पड़ता था, उस लम्बी-चौड़ी रणभूमि में अश्वत्थामा के बाण ही बाण दृष्टिगोचर आते थे। सुवर्ण-मण्डित बाणों का ऊपर चँदोवा सा तन गया॥१।५॥आकाश-मण्डल में इतने बाण छा गये कि जान पड़ने लगा,

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः ।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ॥ ८ ॥
लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदीक्षितुम् ॥ ९ ॥
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम् ।
वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ॥ १० ॥
सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि सङ्गताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥ ११ ॥
सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२ ॥
युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥ १३ ॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥ १४ ॥
स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्राविध्यत शिलीमुखैः ॥ १५ ॥
श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥ १६ ॥
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
तथेतरांस्ततः शूरान्द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥ १७ ॥

मेघों की घटा घिर आई है । आकाशचारी प्राणी आकाश में उड़ नहीं सकते थे । यह देखकर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ । उस समय संग्राम प्रिय सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर और अन्य योद्धा लोग अश्वत्थामा की स्फूर्ति देखकर आश्चर्य से दङ्ग रह गये । कोई किसी प्रकार पराक्रम करके भी अश्वत्थामा को न रोक सका । सब राजा लोग मध्याह्नकाल में तप रहे प्रचण्ड सूर्य के समान तेजस्वी अश्वत्थामा की ओर आँख भर कर देखने में भी असमर्थ हो रहे थे॥८।१०॥इस प्रकार अपनी सेना को मरते देखकर पाण्डवपक्ष के वीरों से नहीं रहा गया । तब सात्यकि, धर्मराज युधिष्ठिर, पाञ्चालगण और द्रौपदी के पाँचों पुत्र मृत्यु का भय छोड़कर अश्वत्थामा की ओर दौड़े । वीरश्रेष्ठ सात्यकि ने पहले अश्वत्थामा को सत्ताईस बाण मारे और फिर सुवर्ण-खचित सात बाणों से उनको घायल किया । इसके पश्चात् धर्मराज ने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्य ने सात, श्रुतकर्मा ने तीन, श्रुतकीर्ति ने सात, सुतसोम ने नव, शतानीक ने सात और अन्यान्य वीरों ने असंख्य बाण मारकर एक साथ ही चारों ओर से अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया॥१०।१४॥उनके बाणों की मार से महावीर अश्वत्थामा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और छेड़े गये भयानक सर्प के समान बारम्बार दीर्घश्वास लेने लगे । उन्होंने भी सात्यकि को पचीस, श्रुतकीर्ति को नव, सुतसोम को पाँच, श्रुतकर्मा को आठ, प्रतिविन्ध्य

श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः ।
अथान्यद्धनुरादाय श्रुतकीर्तिर्महारथः ॥ १८ ॥
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः
ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण मारिष ॥ १९ ॥
छादयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।
ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ॥ २० ॥
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन्विव्याध च शरैस्त्रिभिः ।
ततो धर्मसुतो राजन्प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ॥ २१ ॥
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रोणेः प्रहरतो रणे ॥ २२ ॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्त्वानदद्भृशम् ।
छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ २३ ॥
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद्द्रुतम् ।
अथान्यद्धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २४ ॥
शैनेयं शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।
तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ॥ २५ ॥
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ।
युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम् ॥ २६ ॥
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।
आगच्छमानांस्तान्दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान्परन्तपः ॥ २७ ॥
प्रहसन्प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ।
ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ॥ २८ ॥

को तीन, शतानीक को नव, धर्मराज को पाँच और अन्य वीरों को दो-दो बाण मारे। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से श्रुतकीर्ति का धनुष काट डाला। श्रुतकीर्ति ने दूसरा धनुष लेकर पहले अश्वत्थामा को तीन बाण मारे और फिर असंख्य तीक्ष्ण बाणों से उन्हें पीड़ित करना आरम्भ किया॥१५।१९॥अश्वत्थामा ने असंख्य बाण बरसाकर पाण्डवसेना को बाणों से भर दिया, फिर हँसकर धर्मराज का धनुष काट डाला और उनको तीन बाण भी मारे॥१९।२१॥धर्मराज ने उसी समय दूसरा धनुष लेकर अश्वत्थामा के वक्षःस्थल और हाथों में सत्तर बाण मारे। सात्यकि ने भी क्रोधान्ध होकर एक तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाण से अश्वत्थामा का धनुष काट डाला और भयानक सिंहनाद किया। अश्वत्थामा ने झटपट शक्ति के प्रहार से सात्यकि के सारथी को रथ से गिरा दिया। फिर तुरन्त दूसरा धनुष लेकर वे सात्यकि को बाणवर्षा से पीड़ित करने लगे। सारथी न रहने से सात्यकि के रथ के घोड़े इधर उधर भागने लगे॥२१।२६॥तब युधिष्ठिर आदि

द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने ।
तद्बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् ॥ २९ ॥
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् ।
दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ॥ ३० ॥
निहतान्मेनिरे सर्वान्पाण्डून्द्रोणसुतेन वै ।
युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ३१ ॥
अब्रवीद् द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः ।
नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ॥ ३२ ॥
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि ।
ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ॥ ३३ ॥
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान्ब्राह्मणब्रुवः ।
मिपतस्ते महाबाहो युधि जेष्यामि कौरवान् ॥ ३४ ॥
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् ।
एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥
युक्तं तत्त्वं च सञ्चिन्त्य नोत्तरं किञ्चिदब्रवीत् ।
अनुक्त्वा च ततः किञ्चिच्छरवर्षेण पाण्डवम् ॥ ३६ ॥
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।
स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ॥ ३७ ॥

वीरगण अश्वत्थामा के ऊपर बड़े वेग से निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। महावीर अश्वत्थामा भी उन वेग से आ रहे बाणों को हँसते-हँसते सहने लगे। अग्नि जैसे घास-फूस को जलावे वैसे ही सूर्य-सदृश वीर अश्वत्थामा भी बाणों की अग्नि से पाण्डव-सेना को भस्म करने लगे। तिमि नाम का बड़ा मच्छ जैसे नदी के अगले भाग में हलचल मचा दे वैसे ही महाबाहु अश्वत्थामा भी पाण्डव-सैन्य-सागर को मथने और अत्यन्त पीड़ित करने लगे। उस समय दुर्योधन ने अश्वत्थामा का अद्भुत पराक्रम देखकर समझ लिया कि अब पाण्डव मार डाले गये॥२६।३१॥ इसी समय युधिष्ठिर कुपित होकर स्फूर्ति के साथ महारथी अश्वत्थामा से कहने लगे—हे आचार्यपुत्र ! [मैं तुमको योद्धाओं में श्रेष्ठ, बली, अलङ, कृती, स्फूर्तिशाली और पराक्रमी जानता हूँ। किन्तु तुम यदि अपना यह बल धृष्टद्युम्न को दिखलाओ तो हम लोग तुम्हें बलवान् और कृतविद्य जानें। समर में शत्रु-नाशन धृष्टद्युम्न को देखकर तुम्हारा यह बल नहीं देख पड़ेगा ।]आज जब तुम मुझे ही मारने के निमित्त उद्यत हो तब कहना पड़ता है कि तुममें प्रीति और कृतज्ञता नाम लेने को भी नहीं है। देखो तप, दान और अध्ययन ही तो ब्राह्मण के प्रधान कर्म हैं। धनुष धारण करना क्षत्रियों का धर्म है। तुम तप, शम, दम, आदि अपने कर्मों को छोड़कर क्षत्रियों का कार्य कर रहे हो इसलिए अवश्य ही ब्राह्मणों में अधम हो। ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर भी ऐसे नीच कर्म करने के कारण तुम नाममात्र के ब्राह्मण हो। हे महाबाहो ! मैं तुम्हारे सम्मुख ही युद्ध में कौरवों को परास्त करूँगा, तुम मनमाना हत्याकाण्ड कर लो॥३१।३५॥ हे राजेन्द्र ! धर्मराज के ये उचित और यथार्थ वचन सुनकर महावीर अश्वत्थामा चुप रहे,

पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् ।
अपयाते ततस्तस्मिन्धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३८ ॥
द्रोणपुत्रस्ततो राजन्प्रत्यगात्स महामनाः ।
ततो युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे ।
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ॥ ३९ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि पार्थापयाने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

कुछ भी नहीं बोले । कुपित अश्वत्थामा हँसकर फिर युधिष्ठिर और उनकी सेना पर बाणों की वर्षा करने लगे । जिस प्रकार कुपित अन्तक (मृत्यु) प्रजा का नाश करे उसी प्रकार अश्वत्थामा शत्रुसेना का संहार करने लगे । महाराज युधिष्ठिर अश्वत्थामा के बाणों की वर्षा से पीड़ित होकर उनके सम्मुख नहीं स्थित हो सके । वे अपनी विशाल सेना को छोड़कर उनके सामने से अन्यत्र चले गये।उनके हट जाने पर अश्वत्थामा मार-काट करने लगे । हे महाराज ! धर्मराज भी अश्वत्थामा को छोड़कर, जनसंहाररूप क्रूर कर्म के निमित्त उद्यत होकर, आपकी सेना के अन्य भाग में पहुँचे॥३५।३९॥

कर्ण पर्व का पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सञ्जय उवाच—भीमसेनं च पाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम् ।
वैकर्त्तनः स्वयं रुद्ध्वा वारयामास सायकैः ॥ १ ॥
ततस्तु चेदिकारूपान्सृञ्जयांश्च महारथान् ।
कर्णो जघान समरे भीमसेनस्य पश्यतः ॥ २ ॥
भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम् ।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥
सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान्केकयांस्तथा ।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान्निजघान सहस्रशः ॥ ४ ॥
संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः ।
पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५ ॥
ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः ।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६ ॥

छप्पनवाँ अध्याय ॥ ५६ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! दूसरी ओर स्वयं सेनापति कर्ण क्रुद्ध होकर चेदि और कैकेय देश की सेनाओं सहित धृष्टद्युम्न और भीमसेन को बाण-वर्षा से रोकने लगे । भीमसेन के सम्मुख ही वीर कर्ण चेदि, करूष और सृञ्जय देश की सेना का नाश करने लगे। तब महावीर भीमसेन महारथी कर्ण को छोड़कर क्रोध से, सूखी घास को जला रही अग्नि के समान प्रज्वलित होकर कौरव-सेना में घुसे और उसका नाश करने लगे। ॥१।३॥महारथी कर्ण भी समर में पाञ्चाल, कैकेय और सृञ्जयसेना के सहस्रों योद्धाओं का संहार करने लगे। हे महाराज ! इस प्रकार एक ओर संशप्तकगण को अर्जुन, दूसरी ओर कौरवों को भीमसेन और तीसरी

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः ।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥ ७ ॥
ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप ।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ८ ॥
नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः ।
जघान समरे राजन्सहदेवश्च पञ्चभिः ॥ ९ ॥
तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १० ॥
ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत ।
यमयोः सहसा राजन्विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥ ११ ॥
तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे ।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि ॥ १२ ॥
ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि ।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥ १३ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः ।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥ १४ ॥
धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत ।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥
आच्छादयन्दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवो यथा ।
बाणभूते ततस्तस्मिन्सञ्छन्ने च नभस्तले ॥ १६ ॥

और पाञ्चालों को वीर कर्ण नष्ट करने लगे। आपकी ही कुमन्त्रणा के कारण इन तीन अग्नितुल्य प्रचण्ड महारथियों की बाण रूप अग्नि से भस्म हो रहे सब क्षत्रिय समर में नष्ट होने लगे॥४।६॥हे राजेन्द्र! उधर आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर नव बाणों से नकुल को और उनके घोड़ों को घायल किया। फिर एक क्षुरप्र बाण से सहदेव के रथ की सुवर्ण-मण्डित ध्वजा काट डाली। तब कुपित होकर नकुल ने सात और सहदेव ने पाँच बाण दुर्योधन को मारे।दुर्योधन ने भी कुपित होकर उन महाधनुर्द्धर यमज(जुड़िये)भाइयों के वक्ष.स्थल में पाँच-पाँच बाण मारकर दो भल्ल बाणों से उनके बाणयुक्त धनुष काट डाले॥७।११॥फिर बल-पूर्वक तीन तीन बाण मारकर उन्हें पीड़ित किया। तब देव-कुमार-तुल्य महावीर नकुल और सहदेव ने चटपट इन्द्रधनुष के समान अन्य धनुष लेकर दुर्योधन के ऊपर वैसे ही बाण बरसाना आरम्भ किया,जैसे महामेघ पर्वत के ऊपर जल बरसाते हैं॥१२।१३॥राजा दुर्योधन ने भी क्रोध से विह्वल होकर उक्त दोनों पाण्डवों को बाण-वर्षा से छा दिया। उस समय यही देख पड़ता था कि दुर्योधन का धनुष मण्डलाकार घूम रहा है और उससे सहस्रों बाण निकल रहे हैं। दुर्योधन ने क्षण भर में सूर्य की किरणों के समान असंख्य बाणों से दिशाओं को व्याप्त कर दिया। इस प्रकार समरभूमि और और आकाशमण्डल बाणों से परिपूर्ण हो जाने पर राजा

यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम् ।
पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः ॥ १७ ॥
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे ।
ततः सेनापती राजन्पाण्डवस्य महारथः ॥ १८ ॥
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।
माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥ १९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः ।
तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २० ॥
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन्पुरुषर्षभः ।
ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २१ ॥
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च ।
तथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष ॥ २२ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः ॥ २३ ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ।
प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद्रुधिरेक्षणः ॥ २४ ॥
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ।
स पञ्चदश नाराचाञ्श्वसतः पन्नगानिव ॥ २५ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत् ।
ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
विविशुर्वसुधां वेगात्कङ्कबर्हिणवाससः ।
सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत ॥ २७ ॥

दुर्योधन का रूप यमराज के समान दिखाई पड़ने लगा। हे महाराज ! उस समय आपके पुत्र का अद्भुत पराक्रम देखकर सब महारथियों ने समझा कि नकुल और सहदेव अब मृत्यु के मुख में पहुँच गये॥१७।१८॥ हे राजेन्द्र ! तब पाण्डवों के सेनापति महारथी धृष्टद्युम्न स्फूर्ति से राजा दुर्योधन का सामना करने पहुँचे। महारथी नकुल-सहदेव को पीछे करके वीर धृष्टद्युम्न आपके पुत्र को अपने बाणों से पीड़ित करने लगे। असहनशील दुर्योधन ने भी हँसकर धृष्टद्युम्न को पहले पचीस और फिर पैंसठ तीक्ष्ण बाण मारे॥१८।२२॥ फिर एक तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से धृष्टद्युम्न का बाणयुक्त धनुष मध्य से काट डाला। इस प्रकार अंगुलित्राण सहित धृष्टद्युम्न का धनुष काटकर दुर्योधन ने सिंहनाद किया। अब शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न ने वह धनुष फेंककर नया सुदृढ़ धनुष हाथ में लिया। उस समय उनके नेत्रों से रक्त सा बरसने लगा और वे अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। घायल महाधनुर्द्धर धृष्टद्युम्न उस समय बहुत ही शोभित हो रहे थे। उन्होंने दुर्योधन को मार डालने के विचार से,फुफकार रहे कुपित सर्पों के समान,पन्द्रह नाराच बाण उनको मारे। वे कङ्क-

वसन्तकाले सुमहान्प्रफुल्ल इव किंशुकः ।
स च्छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ २८ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥ २९ ॥
सायकैर्दशभी राजन्भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।
तस्य तेऽशोभयन्वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ॥ ३० ॥
प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद् भ्रमरा मधुलिप्सवः ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३१ ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।
ततो दुर्योधनस्याश्वान्हत्वा सूतं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ।
रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥ ३३ ॥
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ।
तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥ ३४ ॥
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥ ३५ ॥
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ ।
तमारोप्य रथे राजन्दण्डधारो जनाधिपः ॥ ३६ ॥
अपाहरदसम्भ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ।
कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः ॥ ३७ ॥

पत्रशोभित बाण राजा के सुवर्ण-शोभित कवच को तोड़कर उन्हें घायल करते हुए वेग से पृथ्वी में घुस गये॥२२।२७॥धृष्टद्युम्न के बाणोंसे राजा दुर्योधन कवचहीन, अत्यन्त घायल और व्यथित हो उठे। वे रक्त से तर होकर वसन्त में फूले हुए ढाक के पेड़ के समान शोभायमान हुए। महावीर दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर एक भल्ल बाण से धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला और उनकी भौंहों के मध्य में दस विकट बाण मारे। मधु के लोभी भ्रमर जैसे फूले हुए कमल की शोभा बढ़ाते हैं, वैसे ही दुर्योधन के चलाये हुए सुतीक्ष्ण नाराच धृष्टद्युम्न के मुख को सुशोभित करने लगे॥२७।३१॥धृष्टद्युम्न ने वह कटा हुआ धनुष फेंक दिया और उसी समय दूसरा धनुष तथा सोलह भल्ल बाण हाथ में लिये। उन्होंने पाँच बाणों से दुर्योधन के सारथी और घोड़ों को मारकर एक बाण से धनुष काट डाला और शेष दस बाणों से उनके सुसज्जित रथ, छत्र, शक्ति, गदा, खड्ग और ध्वजा के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। विचित्र मणिमय नागयुक्त सुवर्ण के अङ्गद और कुरुपति की ध्वजा को छिन्न-भिन्न देखकर सब नरपतियों को बड़ा विस्मय हुआ। सब भाइयों ने देखा कि उनके भाई का रथ, कवच, शस्त्र, ध्वजा आदि सब कुछ नष्ट हो गया है। तब वे अपने भाई की रक्षा करने लगे॥३१।३६॥इसी मध्य में धृष्टद्युम्न के सम्मुख ही निर्भय दण्डधार दुर्योधन को, अपने रथ पर बैठाकर, उस स्थान

द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे ।
तं पृष्ठतोऽभ्ययात्तूर्णं शैनेयो वितुदञ्शरैः ॥ ३८ ॥
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः ।
स भारत महानासीद्योधानां सुमहात्मनाम् ॥ ३९ ॥
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः ।
न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित्पराङ्मुखः ॥ ४० ॥
प्रत्यदृश्यत्ततः कर्णः पाञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
तस्मिन्क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः ॥ ४१ ॥
प्रादुरासीदुभयतो राजन्मध्यगतेऽहनि ।
पाञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः ॥ ४२ ॥
ते सर्वेऽभ्यद्रवन्कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ।
तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान्मनस्विनः ॥ ४३ ॥
विचिन्वन्निव बाणाग्रैः समासादयदग्रगान् ।
व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम् ॥ ४४ ॥
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।
ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥ ४५ ॥
सृजन्तं सायकान्क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् ।
युध्यमानांस्तु तान्शूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः ।
अथापरान्महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४७ ॥

से हटा ले गये। अन्य ओर असहनशील कर्ण सात्यकि से युद्ध कर रहे थे। धृष्टद्युम्न के बाणों से पीड़ित राजा दुर्योधन की रक्षा करने के निमित्त वे सात्यकि को छोड़कर उग्र बाणोंवाले, द्रोणाचार्य के मारनेवाले, धृष्टद्युम्न के सम्मुख पहुँचे। जैसे कोई हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी की जाँघों में दाँतों की चोट करे वैसे ही कर्ण के प्रहारों से घायल सात्यकि भी बाण-वर्षा करते हुए कर्ण का पीछा करते चले॥३६।३९दुर्योधन सहित सब राजा लोग कुपित होकर उस समय महायुद्ध करने लगे। कर्ण और धृष्टद्युम्न भी भिड़ गये। पाण्डवों के और हमारे पक्ष का कोई भी वीर युद्ध से पृथक् नहीं हुआ। कर्ण स्फूर्ति के साथ पाञ्चालों की सेना में जा घुसे। उस समय मध्याह्नकाल था। दोनों ओर असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्य नष्ट होने लगे। हे महाराज! विजय चाहनेवाले पाञ्चालगण शीघ्रतापूर्वक चारों ओर से कर्ण पर आक्रमण करने के निमित्त वैसे ही दौड़ पड़े जैसे सायङ्काल में पक्षियों के समूह अपने निवासस्थान, किसी बड़े वृक्ष, की ओर बसेरा करने को को जाते हैं॥३९।४३॥क्रुद्ध कर्ण भी आगे बढ़कर पाञ्चाल-सेना के प्रधान-प्रधान योद्धाओं को मारने लगे। तब व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, चित्र, उग्रायुध, शुक्र, दुर्जय, रोचमान और सिंहसेन, इन आठ वीरों ने बहुत से रथों के साथ कर्ण को घेर लिया॥४३।४६॥इन आठों पाञ्चाल वीरों को महाबाहु कर्ण ने आठ ही तीक्ष्ण बाणों

जघान बहुसाहस्रान्योधान्युद्धविशारदान् ।
जिष्णुं च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥ ४८ ॥
दण्डं च राजन्समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम् ।
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम् ॥ ४९ ॥
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ।
तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥ ५० ॥
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत् ।
तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥ ५१ ॥
सर्वतोऽभ्यद्रवन्भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् ।
निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः ॥ ५२ ॥
कुर्वन्तो विविधान्नादान्वज्रनुन्ना इवाचलाः ।
गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥ ५३ ॥
रथैश्चाधिरथे मार्गे समास्तीर्यत मेदिनी ।
नैवं भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावकाः॥ ५४ ॥
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ।
सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥ ५५ ॥
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत् ।
मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ॥ ५६ ॥
पाञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत् ।
यथा मृगगणांस्त्रस्तान्सिंहो द्रावयते दिशः ॥ ५७ ॥
पाञ्चालानां रथव्रातान्कर्णो व्यद्रावयत्तथा ।
सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित्॥ ५८ ॥

से मार गिराया। प्रतापी कर्ण ने फिर युद्ध में निपुण कई सहस्र योद्धाओं को मारकर गिरा दिया। अनन्तर उन्होंने जिष्णु, जिष्णुकर्मा, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान, महारथी शलभ तथा चेदि देश के अन्य अनेक महारथियों को कुपित होकर मार डाला। इन वीरों को मार रहे, रक्त से तर, कर्ण दूसरे रुद्र के समान भयानक देख पड़ते थे॥४८।५०॥ हे महाराज! युद्धभूमि में कर्ण के बाणों की चोट खाये हुए बड़े-बड़े हाथी डरकर चिल्लाते हुए भागे, जिससे समरभूमि में भारी हलचल मच गई। कर्ण के बाणों से घायल होकर गजराज, वज्र से फटे हुये पर्वतों के समान, शब्द करते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। चारों ओर गिर रहे हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और टूटे हुए रथों से रण-भूमि व्याप्त हो गई॥५०।५४॥ उस समय कर्ण ने जैसा अद्भुत कार्य किया वैसा भीष्म, द्रोण, या आपके पक्ष का कोई योद्धा नहीं कर पाया। मृगों में जैसे निर्भय सिंह विचरता है वैसे ही वीर कर्ण पाञ्चाल-सेना में, उसका नाश करते हुए, विचर रहे थे। कर्ण ने हाथियों, घोड़ों, रथों और मनुष्यों को बहुत बड़ी संख्या में मार गिराया। जैसे डरे हुए मृगों

तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः ।
वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः ॥ ५९ ॥
कर्णाग्निना वने दग्ध्वा भारत सृञ्जयाः ।
कर्णेन चेदिकैकेयपाञ्चालेषु च भारत ॥ ६० ॥
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसम्मताः ।
मम चासीन्मती राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन्पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि ।
पाञ्चालान्व्यधमत्सङ्ख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः ॥ ६२ ॥
पाञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६३ ॥
धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष । ।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥ ६४ ॥
शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा ।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६५ ॥
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नश्च संयुगे ।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥ ६६ ॥
तांस्तत्राधिरथिः सङ्ख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान् ।
एको बहूनभ्यपतद्गरुत्मान्पन्नगानिव ॥ ६७ ॥
तैः कर्णस्याभवद्युद्धं घोररूप विशाम्पते ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥ ६८ ॥

को सिंह चारों ओर भगाता है, वैसे ही वीर कर्ण भी पाञ्चालों के रथियों को भगाने लगे॥५४।५८॥सिंह के सम्मुख पहुँचकर जैसे मृग नहीं जीवित बचते वैसे ही कर्ण के सम्मुख आये हुए पाञ्चालगण जीवित नहीं बच सके। अग्नि के ऊपर गिरकर जैसे पतङ्ग जलते हैं वैसे ही कर्णरूप अग्नि के समीप जाकर सृञ्जयगण भस्म होने लगे। अकेले कर्ण ने चेदि, कैकेय और पाञ्चाल देश के योद्धाओं में घुसकर, अपना नाम सुनाकर, बहुत से शूरों को मार गिराया। हे महाराज! कर्ण का पराक्रम देखकर मुझे जान पड़ा कि वे पाञ्चाल देश के एक भी योद्धा को युद्ध में जीवित नहीं छोड़ेंगे॥५८।६२॥युद्ध में कर्ण के हाथों इस प्रकार असङ्ख्य पाञ्चालों का नाश होते देख राजा युधिष्ठिर कुपित होकर इसी समय उनकी ओर वेग से चले। तब महावीर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सहदेव, नकुल, जनमेजय, सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और प्रभद्रकगण तथा अन्यान्य बहुत से पाण्डवपक्ष के वीर योद्धा आगे बढ़े और चारों ओर से कर्ण को घेरकर उन पर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥६३।६६॥गरुड़ जैसे सर्पों पर आक्रमण करें वैसे ही अकेले कर्ण ने सम्पूर्ण चेदि,पाञ्चाल और पाण्डव आदि पर आक्रमण किया। तब कर्ण के साथ वे लोग देवासुर-सग्राम के समान घोर युद्ध करने लगे। सूर्य जैसे अन्धकार को नष्ट करते हैं वैसे ही अकेले कर्ण,तनिक भी विचलित न

तान्समेतान्महेष्वासाञ्शरवर्षौघवर्षिणः ।
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥ ६९ ॥
भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह ।
सर्वतोऽभ्यहनत्क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः ॥ ७० ॥
बाह्लीकान्केकयान्मत्स्यान्वासात्यान्मद्रसैन्धवान् ।
एकः सङ्ख्ये महेष्वासो योधयन्बह्वशोभत ।
तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ॥ ७१ ॥
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ।
वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥ ७२ ॥
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।
सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पतितायुधाः ॥ ७३ ॥
ते क्षताः समदृश्यन्त भीमभीता गतासवः ।
रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः ॥ ७४ ॥
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत् ।
तत्स्तम्भितमिवातिष्ठद्भीमसेनभयार्दितम् ॥ ७५ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं निरुत्साहं कृतव्रणम् ।
निश्चेष्टं तुमुलं दीनं बभौ तस्मिन्महारणे ॥ ७६ ॥
प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात्सागरो नृप ।
तद्वत्तव बलं तद्वै निश्चलं समवस्थितम् ॥ ७७ ॥
मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात्प्रत्यवरोपितम् ।
अभवत्तव पुत्रस्य तत्सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥ ७८ ॥

होकर, एकत्र होकर बाण बरसा रहे उन धनुर्द्धर वीरों को मारने, भगाने और परास्त करने लगे॥६७।६९॥ हे राजेन्द्र! इधर कर्ण पाण्डवों से लड़ रहे थे उधर भीमसेन भी बड़े भयङ्कर बाणों से चारों ओर कौरव-सेना का नाश करने लगे। महाधनुर्द्धर भीमसेन अकेले ही असंख्य बाह्लीक, कैकेय, मत्स्य, वसाति, मद्रक और सिन्धु देश के योद्धाओं के साथ युद्ध करने लगे। जिनके सवार मारे जा चुके हैं ऐसे बड़े-बड़े हाथी मर्मस्थलों में भीमसेन के बाण लगने से मर-मरकर, अर्धमृत होकर, पृथ्वी पर गिरने लगे। उनके गिरने से पृथ्वी काँप उठती थी। जिनके सवार मारे जा चुके हैं ऐसे घोड़े और अनेक पैदल सिपाही, भीमसेन के बाणों से शरीर छिन्न-भिन्न होने पर मरकर, मुख से रुधिर उगलते हुए, समर-शय्या पर सोने लगे॥७०।७४॥ सहस्रों रथी योद्धा, भीमसेन के भय से, विह्वल हो उठे। उनके हाथों से शस्त्र गिर पड़े; भीमसेन के बाणों की चोट से मर-मरकर वे पृथिवी पर गिरने लगे। उस समय भीमसेन के बाणों से जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये हैं ऐसे असंख्य घुड़सवारों, हाथियों के सवारों, सारथियों, रथियों, घोड़ों और पैदलों के मृतशरीरों से समर-भूमि भर गई। भीमसेन के भय से दुर्योधन के सैनिक विह्वल, निष्प्रभ, निरुत्साह, दीन और निश्चेष्ट होकर जहाँ के तहाँ खड़े थे और शरद् ऋतु में निश्चल

तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥ ७९ ॥
जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।
सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ८० ॥
भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्तौ विरेजतुः ।
वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥ ८१ ॥
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान्बहून् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ ८२ ॥
प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन ।
एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः ॥ ८३ ॥
अपारयन्तो मद्बाणान्सिंहशब्दं मृगा इव ।
दीर्यते च महत्सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥ ८४ ॥
हस्तिकक्ष्यो ह्यसौ कृष्णः केतुः कर्णस्य धीमतः ।
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥ ८५ ॥
न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः ।
जानीते हि भवान्कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥ ८६ ॥
तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम् ।
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम् ॥ ८७ ॥
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव ॥ ८८ ॥

महासागर के समान सम्पूर्ण सेना जान पड़ती थी। हे राजेन्द्र! दोनों पक्ष के योद्धा परस्पर एक दूसरे के प्राण ले रहे थे। यद्यपि वे रक्त से भीग रहे थे; उनके चारों ओर रक्त ही रक्त देख पड़ता था तो भी वे परस्पर मारते-मारते हुए एक दूसरे पर आक्रमण करने को चले ही जा रहे थे॥७५।७९॥इस प्रकार एक ओर कुपित कर्ण पाण्डव सेना को और दूसरी ओर भीमसेन कौरव-सेना को मारते और भगाते हुए अपूर्व शोभा को प्राप्त हो रहे थे॥८०।८१॥त्रिगर्तदेशीय संशप्तक-सेना का संहार करके विजयी अर्जुन ने कहा—हे जनार्दन! मुझसे युद्ध करनेवाली यह संशप्तक सेना मेरे प्रहारों से पीड़ित होकर छिन्न भिन्न हो गई है। संशप्तक सेना के ये महारथी मेरे बाणों को नहीं सह सकते और सिंह के गर्जन को न सह सकनेवाले मृगों के समान अपने साथियों समेत भाग रहे हैं। उधर महारण में सृञ्जयसेना भी कर्ण के बाणों से पीड़ित और अस्त व्यस्त हो रही है। यह देखो, बुद्धिमान् महारथी कर्ण राजसेना के मध्य सबका नाश करते हुए विचर रहे हैं;क्योंकि उनके रथ की हस्तिकक्ष्या-चिह्नित ध्वजा फहराती देख पड़ती है॥८२।८५॥ये सब महारथी मिलकर भी कर्ण को नहीं जीत सकते आप तो कर्ण के पराक्रम को अच्छी प्रकार जानते हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप त्रिगर्त-सेना को छोड़-कर वहीं पर मेरा रथ ले चलें, जहाँ महारथी कर्ण

अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव ।
ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः ॥ ८९ ॥
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ ।
केशवप्रेरितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः ॥ ९० ॥
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत ।
मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो वानरध्वजः ॥ ९१ ॥
चलत्पताकस्तां सेनां विमानं द्यामिवाविशत् ।
तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥ ९२ ॥
क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ विभ्राजेतां महाद्युती ।
युद्धशौण्डौ समाहूतावागतौ तौ रणाध्वरम् ॥ ९३ ॥
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ ।
क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ वेगवन्तौ बभूवतुः ॥ ९४ ॥
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महावने ।
विगाह्य तु रथानीकमश्वसङ्घांश्च फाल्गुनः ॥ ९५ ॥
व्यचरत्पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः ।
तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ॥ ९६ ॥
संशप्तकगणान्भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत् ।
ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ॥ ९७ ॥
चतुर्दशसहस्रैस्तु तुरगाणां महाहवे ।
द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनां च धन्विनाम् ॥ ९८ ॥

हमारी सेना को मारकर भगा रहे हैं। हे कृष्णचन्द्र ! मुझे तो यही पसन्द है, आगे आप जैसा ठीक समझें वैसा करें॥८६।८८॥ हे महाराज ! तब श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा—ठीक है अर्जुन, तुम शीघ्र कौरव सेना में चलो। हे भरत-कुल-श्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण के द्वारा सञ्चालित अर्जुन के रथ के श्वेत घोड़े वेग से अर्जुन को लेकर कौरव सेना के भीतर घुसे। उन सुवर्ण के आभूषणों से सजे, वेगशाली और श्रीकृष्ण के हाँके घोड़ों के प्रवेश करते ही कौरवों की सेना तितर बितर होने लगी। अर्जुन का यह कपि चिह्नित ध्वजा से युक्त रथ मेघ-गर्जन-तुल्य त्रासजनक शब्द करता हुआ, आकाश में विमान के समान, कौरव-सेना के मध्य जाने लगा। उसमें अनेक पताकाएँ वायु के वेग से फहरा रही थीं ॥८८।९२॥ कुपित और लाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण तथा अर्जुन उस महासेना को चीरते हुए घुस पड़े। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण जब अश्विनीकुमारों को विधिपूर्वक बुलाते हैं तब वे जैसे यज्ञस्थल में आ जाते हैं, वैसे ही युद्ध-निपुण श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बुलाये जाने से समर-यज्ञ में आ गये। महावन में तलशब्द से क्रुद्ध हुए दो उन्मत्त हाथियों के समान वे नरश्रेष्ठ कुपित हो उठे। रथों और घोड़ों की सेना को मथकर महावीर अर्जुन, पाशपाणि मृत्यु के समान, आपकी सेना में विचरने लगे॥९२।९६॥ हे भारत ! उस समय अर्जुन को कौरव सेना के भीतर पराक्रम प्रकट करते देखकर

शूराणां लब्धलक्षाणां विदितानां समन्ततः ।
अभ्यवर्तन्त कौन्तेयं छादयन्तो महारथाः ॥ ९९ ॥
शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम् ।
स च्छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ॥ १०० ॥
दर्शयन्रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः ।
निघ्नन्संशप्तकान्पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् ॥ १०१ ॥
ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः ।
निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना ॥ १०२ ॥
किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः ।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥ १०३ ॥
रुक्मपुङ्खान्प्रसन्नाग्राञ्छरान्सन्नतपर्वणः ।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥ १०४ ॥
मही वियद्दिशः सर्वाः समुद्रा गिरयोऽपि वा ।
स्फुटन्तीति जना जज्ञुः पार्थस्य तलनिःस्वनात् ॥ १०५ ॥
हत्वा दशसहस्राणि पार्थिवानां महारथः ।
संशप्तकानां कौन्तेयः प्रपक्षं त्वरितोऽभ्ययात् ॥ १०६ ॥
प्रपक्षं च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम् ।
प्रममाथ बलाद्बाणैर्दानवानिव वासवः ॥ १०७ ॥
प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम् ।
शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत ॥ १०८ ॥

दुर्योधन ने फिर संशप्तकों को उन पर आक्रमण करने के निमित्त बाधित किया । हे राजेन्द्र ! तब संशप्तक-सेना के महारथी लोग एक सहस्र रथ, तीन सौ हाथी, चौदह सहस्र घोड़े और दो लाख प्रसिद्ध लक्ष्यवेधी शूर धनुर्द्धर पैदल साथ लेकर चारों ओर से बाण वर्षा करके अर्जुन को समाच्छन्न करते हुए उनके समीप आये॥९६।१००॥संशप्तकों के बाणों से छिपे जा रहे अर्जुन ने पाशपाणि अन्तक के समान अत्यन्त भयानक उग्र रूप धारण किया । संशप्तकगण का संहार करते समय अर्जुन का रूप दर्शनीय हो उठा । उन्होंने क्षण भर में बिजली के समान चमकीले सुवर्ण-भूषित बाणों से आकाश को ऐसा परिपूर्ण कर दिया कि तनिक सा भी स्थान शून्य नहीं रहा । वे बाण आकाश भर में असंख्य सर्पों के समान जान पड़ते थे॥१००। १०३॥अर्जुन सभी ओर सुवर्णपुङ्ख, घोर, सन्नतपर्व युक्त बाण छोड़ रहे थे । उनके तलशब्द से पृथ्वी, आकाश, सब दिशाएँ, समुद्र और पर्वत फटते से जान पड़ने लगे । महारथी अर्जुन दस सहस्र राजाओं को मारकर स्फूर्ति के साथ संशप्तकों के प्रपक्ष की ओर चले। प्रपक्ष की रक्षा काम्बोजगण कर रहे थे । दानवों को जैसे इन्द्र नष्ट करें वैसे ही अर्जुन भल्ल बाणों से शत्रुसेना को चौपट करने लगे॥१०४।१०७॥मारने को आ रहे शत्रुओं के शस्त्रों, हाथों और मस्तकों को अर्जुन भल्ल बाणों से काट काटकर गिराने लगे । शत्रुओं

अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन्भुवि ।
विष्वग्वाताभिसम्भग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः ॥ १०९ ॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान्निघ्नन्तमर्जुनम् ।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥ ११० ॥
तस्यास्यतोऽर्द्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसन्निभौ ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः ॥ १११ ॥
स पपात ततो वाहात्सुलोहितपरिस्रवः ।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् ॥ ११२ ॥
सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम् ।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम् ॥ ११३ ॥
काञ्चनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा ।
ततोऽभवत्पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥ ११४ ॥
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युद्ध्यताम् ।
एकेपुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः ॥ ११५ ॥
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद्विशाम्पते ।
रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥ ११६ ॥
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥ ११७ ॥
तस्मिन्प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना ।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥ ११८ ॥

के अङ्ग-प्रत्यङ्ग और शस्त्र कट-कटकर ऐसे गिरने लगे, जैसे घोर आँधी से टूटी शाखाओं वाले वृक्ष गिर पड़ें। हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों को नष्ट कर रहे अर्जुन के ऊपर सुदक्षिण (काम्बोज) का छोटा भाई बाण बरसाने लगा॥१०९।११०॥अर्जुन ने दो अर्धचन्द्र बाणों से उसके परिघ तुल्य दोनों हाथों को काटकर पूर्णचन्द्र के समान मुखवाला उसका सिर भी क्षुर बाण से काट डाला। अब सुदक्षिण का छोटा भाई रक्त से तर होकर, वज्रप्रहार से फटे हुए मैनसिल के पर्वत के शिखर के समान, वाहन की पीठ पर से नीचे गिर पड़ा। लोगों ने देखा कि वह बड़े डीलडौल का कमलनयन, प्रियदर्शन, सुदक्षिण का छोटा भाई, सुवर्णमय स्तम्भ के समान, फटे हुए सुमेरु पर्वत के शिखर के समान, गिर पड़ा। हे महाराज! इसके पश्चात् फिर घोर युद्ध होने लगा॥१११।११४॥ उस समय संग्राम करनेवालों की अनेक प्रकार की दशाएँ होने लगीं। काम्बोज, यवन और शक देश के घुड़सवार अर्जुन के बाणों से विदीर्ण और रक्त से तर हो गये, जिससे सब रणभूमि रक्तमयी प्रतीत होने लगी। इसी समय घोड़ों और सारथी से हीन रथी, सवारों से हीन घोड़े, महावतों से रहित हाथी और बिना हाथियों के महावत एक दूसरे का नाश करने लगे॥११५।११७॥जिस समय अर्जुन क्रुद्ध होकर पक्ष-प्रपक्ष के वीरों का नाश कर रहे थे उस समय महा-

विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
आददानः शरान्घोरान्स्वरश्मीनिव भास्करः ॥ ११९ ॥
क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किङ्करदण्डभृत् ॥ १२० ॥
ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि सङ्घशः ।
तैर्विसृष्टैर्महाराज, व्यद्रवत्पाण्डवी चमूः ॥ १२१ ॥
स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशाम्पते ।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥ १२२ ॥
तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
सञ्छादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ॥ १२३ ॥
ततः शरशतैस्तीक्ष्णैरश्वत्थामा प्रतापवान् ।
निश्चेष्टौ तावुभौ युद्धे कृत्वा माधवपाण्डवौ ॥ १२४ ॥
हाहाकृतमभूत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा ।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा सञ्छादितौ शरैः ॥ १२५ ॥
सिद्धचारणसङ्घाश्च सम्पेतुस्ते समन्ततः ।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च ॥ १२६ ॥
न मया तादृशो राजन्दृष्टपूर्वः पराक्रमः ।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ सञ्छादयिष्यतः ॥ १२७ ॥
द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे ।
अश्रौषं बहुशो राजन्सिंहस्य निनदो यथा ॥ १२८ ॥

रथी अश्वत्थामा सुवर्ण-भूषित धनुष और सूर्य-किरण-सदृश तीक्ष्ण बाण लिये हुए अर्जुन के सम्मुख आये। क्रोध से मुख फैलाकर लाल-लाल आँखें निकाले दौड़ रहे दण्डपाणि यम के समान उग्र रूप धारण किये हुए अश्वत्थामा युद्ध करने लगे॥११८।१२०॥उनके चलाये हुए बाण चारों ओर फैलने लगे और उनसे रथ पर स्थित श्रीकृष्ण और अर्जुन भी ढक गये। प्रतापी अश्वत्थामा ने सैकड़ों तीक्ष्ण बाण मारकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को समर में अचेत सा कर दिया॥१२१।१२४॥ यह देखकर सब चराचर प्राणी हाहाकार करने लगे। उस समय सिद्ध और चारणगण, चराचर की रक्षा करनेवाले, श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाणों में छिपते और विह्वल होते देखकर यह सोचते हुए चारों ओर से आने लगे कि "आज किस प्रकार संसार का भला होगा"।हे महाराज।अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाण वर्षा से ढककर जैसा पराक्रम दिखाया वैसा पराक्रम मैंने पहले और किसी का नहीं देखा था।उस समय मुझे सिंहनाद के समान शत्रुओं के निमित्त भयानक, अश्वत्थामा की प्रत्यञ्चा का शब्द बारम्बार सुनाई पड़ने लगा। वे जब बाईं ओर दाहनी ओर बाण-जाल बरसाकर युद्धस्थल में विचरने लगे तब उनके धनुष की प्रत्यञ्चा मेघ के भीतर चमक रही बिजली के समान शोभा को प्राप्त हुई॥१२५।१२८॥हे महाराज। उस समय उनका शरीर ऐसा दुर्निरीक्ष्य हो उठा कि यशस्वी अर्जुन अत्यन्त

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः ।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥ १२९ ॥
स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः ।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रैक्ष्य तं द्रोणजं ततः ॥ १३० ॥
विक्रमं विहतं मेने आत्मनः स महायशाः ।
तस्यास्य समरे राजन्वपुरासीत्सुदुर्दृशम् ॥ १३१ ॥
द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे ।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥ १३२ ॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत् ।
स रोषान्निःश्वसन्राजन्निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ १३३ ॥
द्रौणिं ह्यपश्यत्संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः ।
ततः क्रुद्धोऽब्रवीत्कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ॥ १३४ ॥
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे ।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥ १३५ ॥
कच्चिद्वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव ।
कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ॥ १३६ ॥
कच्चित्कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत ।
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे ॥ १३७ ॥
गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन्भरतर्षभ ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम् ॥ १३८ ॥
एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश ।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ॥ १३९ ॥

स्फूर्तिशाली और दृढहस्त होने पर भी अश्वत्थामा को देखकर मोहित हो गये; उन्हें अपना पराक्रम नष्ट सा प्रतीत होने लगा। हे महाराज! महावीर अर्जुन और अश्वत्थामा के ऐसे भयानक संग्राम में अश्वत्थामा का बल अधिक और अर्जुन का पराक्रम न्यून देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित हो उठे॥१२९।१३३॥बारम्बार दीर्घ-श्वास लेकर, मानों भस्म कर देंगे इस प्रकार, वे अश्वत्थामा और अर्जुन की ओर देखने लगे। अब उन्होंने प्रेमपूर्वक कहा—हे अर्जुन! आज मैं तुम्हारे विषय में यह बड़ा आश्चर्य देख रहा हूँ कि युद्ध में अश्वत्थामा तुमको दबाये लेते हैं। आज क्या तुम्हारा पराक्रम और बाहुबल घट गया है? तुम्हारे हाथ या रथ में क्या गाण्डीव धनुष नहीं है? तुम्हारी मुट्ठी क्या ढीली पड़ गई है? तुम्हारी भुजाओं में कोई चोट तो नहीं लगी है? आज जो मैं अश्वत्थामा को रण-स्थल में तुमसे अधिक पराक्रम दिखलाते देख रहा हूँ, इसका कारण क्या है? हे अर्जुन! इस समय अश्वत्थामा को गुरु-पुत्र समझकर टाल जाना सर्वथा अनुचित और

ध्वजं छत्रं पताकाश्च रथं शक्तिं गदां तथा ।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥ १४० ॥
स मूर्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः ।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम् ॥ १४१ ॥
अपोवाह रणात्सूतो रक्षमाणो धनञ्जयात् ।
एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः ॥ १४२ ॥
व्यहनत्तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः ।
पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य भारत ॥ १४३ ॥
एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह ।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ १४४ ॥
संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः ।
वसुषेणश्च पञ्चालान्क्षणेन व्यधमद्रणे ॥ १४५ ॥
वर्त्तमाने तथा रौद्रे राजन्वीरवरक्षये ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ १४६ ॥
युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः ।
क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तम ॥ १४७॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

हानिकर है॥१३७।१३८॥हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर अर्जुन ने सावधान होकर जल्दी से चौदह भल्ल बाण तरकस से निकाले और उनसे अश्वत्थामा का धनुष, ध्वजा, छत्र,पताका, रथ, शक्ति, गदा आदि काटकर उनके कन्धे में अनेक वत्सदन्त बाण मारे॥१३९।१४०॥उस प्रहार से मूर्छित होकर अश्वत्थामा ध्वजा का दण्ड पकड़कर टिक गये। उन्हें अर्जुन के बाणों से पीड़ित और अचेत देखकर, अर्जुन के कवल से उनको बचाने के निमित्त, सारथी उन्हें रणस्थल से हटा ले गया। उस अवसर में अर्जुन फिर, दुर्योधन के सम्मुख ही,सहस्रों की संख्या में कौरव-सेना का नाश करने लगे॥१४१।१४३॥हे महाराज! यह आपकी कुमन्त्रणा का ही फल है कि इस प्रकार समर में कौरव मारे गये। इस प्रकार महावीर अर्जुन संशप्तकों को, भीमसेन कौरवों को और वीर कर्ण पाञ्चालों को विनष्ट करने लगे। सेनाओं के तीनों भागों में घोर युद्ध होने लगा। हे राजाधिराज! वीर-विनाश कारी युद्ध के समय रणभूमि में असंख्य कबन्ध उठने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण के बाणों की वेदना से विह्वल होकर रणस्थल से कोस भर पर चले गये॥१४४।१४७॥

कर्ण पर्व का छप्पनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सञ्जय उवाच—दुर्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ ।
अब्रवीन्मद्रराजं च तथैवान्यांश्च पार्थिवान् ॥ १ ॥

यदृच्छयैतत्सम्प्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २ ॥
सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युध्यतां युधि ।
इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥
हत्वा च पाण्डवान्युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ ।
निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ॥ ४ ॥
दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः ।
हृष्टा नादानुदक्रोशन्वादित्राणि च सर्वशः ॥ ५ ॥
ततः प्रमुदिते तस्मिन्दुर्योधनबले तदा ।
हर्षयंस्तावकान्योधान्द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवतां चापि पश्यताम् ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ ७ ॥
स तेनाहममर्षेण मित्रार्थे चापि पार्थिवाः ।
सत्यं वः प्रतिजानामि तद्वाक्यं मे निबोधत ॥ ८ ॥
धृष्टद्युम्नमहत्वाहं न विमोक्ष्यामि दंशनम् ।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥
अर्जुनो भीमसेनश्च योधो यो रक्षिता रणे ।
धृष्टद्युम्नस्य तं सङ्ख्ये निहनिष्यामि सायकैः ॥ १० ॥

सत्तावनवाँ अध्याय ॥ ५७ ॥

सञ्जय कहते—हैं कि हे राजेन्द्र ! इसी समय राजा दुर्योधन कर्ण के समीप आ गये । उन्होंने मद्रराज शल्य तथा अन्य महारथियों की ओर देखकर और विशेष रूप से कर्ण को सम्बोधन करके कहा—हे मित्र कर्ण ! आपसे ही यह क्षत्रिय के निमित्त प्रार्थनीय, धर्मस्वरूप, अपने समान वीर्यशाली शत्रु के साथ युद्ध करने का अवसर मिला है । इस प्रकार का युद्ध क्षत्रियों के निमित्त सुखदायक होता है । यह युद्ध उपस्थित होने से शूरों के निमित्त स्वर्ग का द्वार अपने आप खुल गया है॥१।२॥इस समय पाण्डवों को युद्ध में मारकर या तो निष्कण्टक पृथ्वी का राज्य सदा करोगे, अथवा शत्रुओं के हाथ से मारे जाकर वीरों के योग्य उत्तम लोकों में पहुँचोगे और वहाँ सुख भोगोगे । दोनों प्रकार लाभ ही है॥३।४॥ हे महाराज ! दुर्योधन के ये वचन सुनकर प्रधान-प्रधान क्षत्रिय योद्धा लोग ऊँचे स्वर से सिंहनाद करने और बाजे बजाने लगे । तब अश्वत्थामा आपके योद्धाओं को और भी अधिक आनन्दित करते हुए बोले॥५। ६॥हे क्षत्रियो ! सम्पूर्ण सेना के और तुम लोगों के सम्मुख अस्त्र-शस्त्र डाले हुए मेरे पूज्य पिता को धृष्टद्युम्न ने मार डाला है । मैं उसे सहन नहीं कर सकता । इसलिये पिता की हत्या का बदला लेने और मित्र दुर्योधन का हित करने को मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि धृष्टद्युम्न को मारे बिना शरीर से कवच नहीं उतारूँगा । यदि मैं यह प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकूँ तो मुझे स्वर्ग न मिले। मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि अर्जुन, भीमसेन या

एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारती चमूः ।
अभ्यद्रवत कौन्तेयांस्तथा ते चापि पाण्डवाः ॥ ११ ॥
स संनिपातो रथयूथपानां बभूव राजन्नतिभीमरूपः ।
जनक्षयः कालयुगान्तकल्पः प्रावर्त्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम् ॥ १२ ॥
ततः प्रवृत्ते युधि सम्प्रहारे भूतानि सर्वाणि सदैवतानि ।
आसन्समेतानि सहाप्सरोभिर्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान् ॥ १३ ॥
दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धैर्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान्
रणे स्म कर्मोद्वहतः प्रवीरानवाकिरन्नप्सरसः प्रहृष्टाः ॥ १४ ॥
समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान्सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान्
निषेव्यमाणस्त्वनिलेन योधाः परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः ॥ १५ ॥
सा दिव्यमाल्यैरवकीर्यमाणा सुवर्णपुङ्खैश्च शरैर्विचित्रैः ।
नक्षत्रसङ्घैरिव चित्रिता द्यौः क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा ॥ १६ ॥
ततोऽन्तरिक्षादपि साधुवादैर्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः ।
ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः समाकुलः सोऽभवत्सम्प्रहारः॥ १७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामप्रतिज्ञाया सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

जो कोई धृष्टद्युम्न की रक्षा करने को मुझसे युद्ध करेगा उसे मैं अपने बाणों से विनष्ट करूँगा॥९।१०॥ अश्वत्थामा के इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर सम्पूर्ण कौरव-सेना एकत्र होकर पाण्डवों की ओर और पाण्डव-सेना कौरवों की ओर बढ़ने लगी। अब दोनों पक्ष के रथी-महारथी भिड़ गये और प्रलयकाल के समान प्रहार और जनसंहार प्रारम्भ हो गया। युद्ध में मार-काट प्रारम्भ होने पर आकाश में देवगण सहित सब प्राणी एकत्र हो गये। अप्सराएँ भी श्रेष्ठ वीरों को निहारती हुई एकत्र होने लगीं। प्रसन्नचित्त होकर रण में अद्भुत कर्म कर रहे श्रेष्ठ वीरों पर सुगन्धित पुष्प-माला-रत्न आदि बरसाकर, सुगन्ध फैलाकर, अप्सराएँ उन्हें उत्साहित करने लगीं॥११।१४॥अनुकूल वायु श्रेष्ठ सुगन्ध लेकर चलने लगा और योद्धाओं को आमोदित करने लगा। सुगन्धित वायु लगने से आह्लादित होकर योद्धा लोग परस्पर लड़कर गिरने लगे। उस समय रणस्थल दिव्य माला, सुवर्ण-पुङ्ख-चित्रित बाण-जाल और योद्धाओं के मृतदेहों आदि से परिपूर्ण होकर नक्षत्र-माला से अलंकृत आकाशमण्डल के समान शोभायमान होने लगा। वीरों के धनुष और प्रत्यञ्चा के शब्द, रथों की घरघराहट और सिंहनाद से गूँज रहे रणस्थल को देवता गन्धर्व आदि आकाशचारी लोगों के साधुवाद ने प्रतिध्वनित कर दिया॥१५।१७॥

—०—

कर्णपर्व का सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अथ अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

सञ्जय उवाच—एवमेष महानासीत्संग्रामः पृथिवीक्षिताम् ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे ॥ १ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय ॥ ५८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! उस समय महा- | वीर भीमसेन, अर्जुन और कर्ण के कुपित होने पर

द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान्महारथान् ।
अब्रवीदर्जुनो राजन्वासुदेवमिदं वचः ॥ २ ॥
पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम् ।
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान् ॥ ३ ॥
न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते ॥ ४ ॥
त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन ।
न च मां धार्त्तराष्ट्रेषु कश्चिद्युध्यति संयुगे ॥ ५ ॥
तस्मात्त्वं मत्प्रियं कुर्वन्याहि यत्र युधिष्ठिरः ।
दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥ ६ ॥
पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे ।
ततः प्रायाद्रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः ॥ ७ ॥
यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः ।
अयुध्यंस्तावकैः सार्धं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥
ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
पश्य पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ १० ॥
पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
मृतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥ ११ ॥

चारों ओर राजा लोग घोरतर युद्ध करने और मरने लगे। उधर अश्वत्थामा और अन्यान्य महारथियों को परास्त कर अमित पराक्रमी अर्जुन महामति कृष्णचन्द्र से कहने लगे—हे महाबाहो! वह देखिए, पाण्डव-सेना चारों ओर भाग रही है। वीर कर्ण भी हमारे पक्ष के महारथियों को पीडित कर रहे हैं। इस समय मुझे न तो कहीं धर्मराज युधिष्ठिर देख पड़ते हैं, न उनके रथ की ध्वजा ही देख पड़ती है॥१।३॥दो भाग दिन व्यतीत हो चुका है, केवल एक भाग शेष है। विशेषकर इस समय कौरवपक्ष के वीरों में से कोई भी मुझसे युद्ध नहीं करता। इसलिए अब आप, मेरा प्रिय करने के निमित्त, मुझे युधिष्ठिर के समीप ले चलिए। मैं भाइयों सहित धर्मराज युधिष्ठिर को सकुशल देखकर फिर शत्रुओं से युद्ध करूँगा॥४।७॥हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण ने शीघ्रता के साथ युधिष्ठिर के समीप पहुँचने के निमित्त रथ हाँक दिया। उस समय राजा युधिष्ठिर, और महारथी सृञ्जयगण, मारने या मरने का दृढ़ निश्चय करके, कौरवों के साथ घोर युद्ध कर रहे थे। महात्मा श्रीकृष्ण उस युद्धभूमि में असंख्य वीरों का विनाश देखकर अर्जुन से कहने लगे॥७।९॥ हे अर्जुन! वह देखो, दुर्योधन की दुष्ट नीति के कारण पृथ्वी पर भरत वंश का तथा अन्य अनेक राजाओं का कैसा दारुण संहार हो रहा है! वह देखो, मरे हुए धनुर्द्धर योद्धाओं के सुवर्ण से मढ़ी पीठवाले धनुष,

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान्निर्मुक्तान्पन्नगानिव ॥ १२ ॥
हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
वर्माणि चापविद्धानि रुक्मगर्भाणि भारत ॥ १३ ॥
सुवर्णविकृतान्प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषणाः ।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ १४ ॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान्हेमभूषणान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान् ॥ १५ ॥
अयःकुन्तांश्च पतितान्मुसलानि गुरूणि च ।
शतघ्नीः पश्य चित्राश्च विपुलान्परिघांस्तथा ॥ १६ ॥
चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे ।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥ १७ ॥
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ।
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ॥ १८ ॥
गजवाजिरथक्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः ।
मनुष्यहयनागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥ १९ ॥
परिघैरायसैर्घोरैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ।
शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ २० ॥
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ।
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः ॥ २१ ॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ।
सांगुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ॥ २२ ॥

बहुमूल्य तरकस, सुवर्ण पुङ्ख-शोभित बाण, केंचुल छोड़े हुए सर्पों के समान चमकीले नाराच बाण पड़े हैं ॥१०।१२॥ हाथीदाँत की मूट में शोभित खड्ग, स्वर्ण-जटित कवच, स्वर्णमय प्रास, सुवर्ण-भूषित शक्तियाँ, सुवर्ण-पत्रों से बँधी भारी गदाएँ, सुवर्णाङ्कित ऋष्टियाँ, सुवर्ण-भूषित पट्टिश, स्वर्णदण्डयुक्त परशु, लोहे के कुन्त, भारी मूसल, विचित्र शतघ्नी, विपुल परिघ, चक्र, तोमर आदि अनेक शस्त्र इधर उधर पड़े हुए हैं ॥१३।१६॥ विजयाभिलाषी वीर यद्यपि हाथों में शस्त्र पकड़े मरे पड़े हैं तथापि जीवित से जान पड़ते हैं। यह देखो, सहस्रों योद्धा पड़े हैं, जिनके अङ्ग गदाओं की चोट से चूर्ण हो गये हैं और मूसलों के प्रहार से मस्तक फट गये हैं। हाथी घोड़े रथ आदि ने ऊपर से जाकर उन्हें कुचल डाला है। हे शत्रुदमन! बाण, शक्ति, ऋष्टि, पट्टिश, भीषण लोह-निर्मित परिघ, कुन्त, परशु और घोड़ों की टापों से छिन्न-भिन्न तथा रक्त से लथपथ मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से समर-भूमि ढँक सी रही है ॥१६।२०॥ वह देखो, वीरों के

हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ।
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ २३ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुन्धरा ।
कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः ॥ २४ ॥
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः ।
रथांश्च बहुधा भग्नान्हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ २५ ॥
वाजिनश्च हतान्पश्य निष्कीर्णान्त्राञ्शराहतान् ।
अनुकर्षानुपासङ्गान्पताका विविधध्वजान् ॥ २६ ॥
रथिनां च महाशङ्खान्पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान् ।
निरस्तजिह्वान्मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ॥ २७ ॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजवाजिनः ।
वारणानां परिस्तोमांस्तथैवाजिनकम्बलान् ॥ २८ ॥
विपाटितविचित्रांश्च रूप्यचित्रान्कुथांकुशान् ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टा महद्भिः पतितैर्गजैः ॥ २९ ॥
वैदूर्यदण्डांश्च शुभान्पतितानंकुशान्भुवि ।
बद्धाः सादिभुजाग्रेषु सवर्णविकृताः कशाः ॥ ३० ॥
विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ।
अश्वास्तरपरिस्तोमान्राङ्कवान्पतितान्भुवि ॥ ३१ ॥
चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥ ३२ ॥

सुवर्णालंकृत केयूर शोभित तलत्र-युक्त चन्दन चर्चित कटे हुए हाथ, अंगुलित्रयुक्त अँगूठी आदि से शोभित हथेलियाँ और उँगलियाँ, हाथियों की सूँड़के समान जाँघें, अत्युत्तम चूड़ामणि और कुण्डलों से अलङ्कृत मस्तक जहाँ-तहाँ पड़े हुए रणस्थल को शोभित कर रहे हैं ॥२१।२४॥जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट-फट गये हैं ऐसे, रक्त से तर, अनेक कबन्ध चारों ओर उठने से यह रणभूमि शान्ताग्नि शोभित यज्ञस्थली के समान प्रतीत हो रही है । वह देखो, स्वर्ण-किङ्किणी-जाल-मण्डित असंख्य श्रेष्ठ रथ इधर उधर अनेक स्थान से टूटे-फूटे पड़े हैं॥२४।२५॥बाणों की चोट खाये, रक्त से तर, घोड़े मरे पड़े हैं । उनकी आँतें निकल आई हैं। वह देखो, अनुकर्ष, उपासङ्ग, विविध ध्वजा पताका, तरकस, महारथियों के महाशङ्ख और श्वेत चामर आदि सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा है। वे पर्वताकार बड़े बड़े हाथी मरे पड़े हैं, उनकी जिह्वायें बाहर निकल आई हैं॥२६। २७॥विचित्र वैजयन्ती, मारे गये हाथी-घोड़े, हाथियों के हौदे, विचित्र कम्बल, फटे हुए विचित्र सुवर्ण-रत्न-मण्डित आसन, टूटकर गिरे हुए और हाथियों के पैरों-तले आ जाने से चूर्ण हुए बड़े-बड़े घण्टे तथा वैडूर्य-मणि की मूठवाले अंकुश आदि इधर-उधर बहुत से पड़े हैं। घुड़सवारों के हाथ के जड़ाऊ कोड़े, विचित्र मणि-मण्डित सुवर्ण-शोभित घोड़ों की काठियाँ, चीनें और रङ्कुचर्म के कोमल आसन आदि इधर-उधर दृष्टिगोचर

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः　　　।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः　　　॥ ३३ ॥
वदनैः पश्य सञ्छन्नां महीं शोणितकर्दमाम्　　।
सजीवांश्चापरान्पश्य कूजमानान्समन्ततः　　　॥ ३४ ॥
उपास्यमानान्बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशाम्पते　　।
ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः　　　॥ ३५ ॥
व्युत्क्रान्तानपरान्योधांश्छादयित्वा तरस्विनः　।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः　　॥ ३६ ॥
अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः　　　।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम्　॥ ३७ ॥
जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन　।
सन्निवृत्ताश्च ते शूरास्तान्वै दृष्ट्वा विचेतसः　॥ ३८ ॥
जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम् ।
जलं पीत्वा मृतान्पश्य पिबतोऽन्यांश्च मारिष ॥ ३९ ॥
परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान्बान्धवप्रियाः　।
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे　॥ ४० ॥
तथापरान्नरश्रेष्ठ सन्दष्टौष्ठपुटान्पुनः　　　।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान्समन्ततः　　॥ ४१ ॥
एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः　　।
अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे　　　　॥ ४२ ॥

आते हैं॥२८।३१॥राजाओं की चूड़ामणियाँ, विचित्र सुवर्ण की मालाएँ, छत्र, चामर, व्यजन आदि बिखरे पड़े हैं। वह देखो, सुन्दर कुण्डल युक्त, चन्द्रमा और नक्षत्रों के समान कान्तियुक्त और श्मश्रु शोभित वीरों के अलङ्कृत सिर कटे पड़े हैं। देखो, चारों ओर रक्त का कीचड़ ही दिखाई देता है। वह देखो, चारों ओर असंख्य अर्धमृत प्राणी पड़े कराह रहे हैं॥३२।३४॥ और उनके इष्ट-मित्र, अस्त्र-शस्त्र रखकर, बारम्बार अश्रु बहाते रोते और उनकी सेवा करते हैं। बहुत से विजयाभिलाषी क्रुद्ध योद्धा, गिरे हुए या अर्धमृत वीरों को वाणों से ढककर, अन्य वीरों से युद्ध करने के निमित्त शीघ्रता से जा रहे हैं। बहुत से योद्धा युद्ध के निमित्त दौड़े जाते हैं, किन्तु अपने सजातीय इष्ट मित्रों को घायल अचेत देखकर लौट पड़ते हैं। कुछ घायल व्यक्ति जल माँग रहे हैं और उनके भाई-बन्धु जल लेने दौड़े जा रहे हैं। कुछ योद्धा जल ले आये तो जलप्रार्थी मरकर अचेत पड़ा मिला। यह देखकर वे वहीं जल फेंककर, खेद करते हुए, फिर युद्ध के लिए जा रहे हैं॥३५।३८॥देखो, कुछ तो जल पी रहे हैं और कुछ जल पीते ही मरकर गिर पड़े हैं। देखो, कुछ बन्धुवत्सल योद्धा लोग अपने प्रिय मित्रों को अचेत देख उनसे लिपटकर रो रहे हैं। कुछ योद्धा यद्यपि घायल होकर गिर पड़े हैं, तथापि दाँतों से ओठ चबाते हुए भौंहें टेढ़ी किये महारण को देख रहे हैं॥३९।४१॥

याहि याहीति गोविन्दं मुहुर्मुहुरचोदयत् ।
तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः ॥ ४३ ॥
त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम् ।
पश्य पाण्डव राजानमुपयातांश्च पार्थिवान् ॥ ४४ ॥
कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम् ।
असौ भीमो महेष्वासः सन्निवृत्तो रणं प्रति ॥ ४५ ॥
तमेते विनिवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
पाञ्चालसृञ्जयानां च पाण्डवानां च ये मुखम् ॥ ४६ ॥
निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ।
कौरवान्द्रवतो ह्येष कर्णो रोधयतेऽर्जुन ॥ ४७ ॥
अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः ।
असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ॥ ४८ ॥
तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः ।
अनुप्रयाति संग्रामे हतान्पश्य च सृञ्जयान् ॥ ४९ ॥
सर्वमाह सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने ।
ततो राजन्महाघोरः प्रादुरासीन्महारणः ॥ ५० ॥
सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन्समागमे ।
उभयोः सेनयो राजन्मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥ ५१ ॥
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
तावकानां परेषां च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ ५२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि वासुदेववाक्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

हे महाराज ! महात्मा श्रीकृष्ण अर्जुन से यों कहते हुए युधिष्ठिर की ओर जाने लगे । अर्जुन भी धर्मराज को देखने के निमित्त अत्यन्त उत्सुक होनेके कारण श्रीकृष्ण से बारम्बार शीघ्रता से रथ हाँकने के निमित्त कहने लगे । तब श्रीकृष्ण शीघ्रता से घोड़ों को हाँकते हुए फिर अर्जुन को समरभूमि दिखाकर धीरे से कहने लगे—वह देखो, कौरवपक्ष के राजा लोग युधिष्ठिर की ओर वेग से जा रहे हैं । महावीर कर्ण भी युद्ध स्थल में प्रज्वलित अग्नि के समान प्रचण्ड हो रहे हैं ॥४२।४५॥महाधनुर्द्धर भीमसेन युद्धभूमि में वेग से आक्रमण कर रहे हैं । वह देखो,पाञ्चालों,सृञ्जयों,और पाण्डवों के अग्रवर्ती योद्धा धृष्टद्युम्न आदि वीर उनके पीछे जा रहे हैं । देखो, पाण्डव-सेना घोर युद्ध करके कौरव सेना को पीड़ित कर रही है और कौरव सेना व्याकुल तथा विह्वल होकर भाग रही है । महावीर कर्ण रण से भागी हुई कौरव सेना को रोकने का यत्न कर रहे हैं । वह देखो, इन्द्र के समान पराक्रमी और शस्त्रधारी वीर पुरुषों के मुखिया अश्वत्थामा, यम के समान रूप धारण करके, युद्ध करने जा रहे हैं । उनको रोकने के निमित्त महारथी धृष्टद्युम्न वेग से जा रहे हैं । वह देखो, सृञ्जयगण संग्राम में मारे जा रहे हैं॥४५। ४९॥हे महाराज ! इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात्सुमहाबलम् ।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ २० ॥
अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरञ्जयः ।
तिष्ठतिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥
इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः ।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥ २२ ॥
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः ।
यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥ २३ ॥
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा ।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥ २४ ॥
स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु ।
जवेनाभ्याययौ द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥ २५ ॥
द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्रोधेन निःश्वसन्वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २६ ॥
तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम् ।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते ।
पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ २८ ॥
पापं हि यत्त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम् ।
अद्य त्वां तप्स्यते तद्वै यथा न कुशलं तथा ॥ २९ ॥

और सात्यकि का वह अद्भुत युद्ध और रण-कौशल देखकर सबके रोंगटे खड़े हो गये । हे राजेन्द्र ! इसी अवसर में शत्रुओं को परास्त करनेवाले अश्वत्थामा शत्रुशमन धृष्टद्युम्न के निकट जाकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे—अरे ब्राह्मण की हत्या करनेवाले क्षत्रियाधम ! ज़रा मेरे सम्मुख खड़ा तो रह । आज तुम मेरे हाथ से जीवित नहीं बच सकते । हे नरनाथ ! इस प्रकार बारम्बार कह रहे अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ महाघोर तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्न को छा दिया॥१९। २२॥पहले समर में द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न को देखकर अपनी मृत्यु समझकर जैसे उदास हो गये थे, वैसे ही अश्वत्थामा इस समय धृष्टद्युम्न को अपने निमित्त मृत्युस्वरूप जान पड़े । वे भी, यह सोचकर कि मुझे कोई शस्त्र से नहीं मार सकता, वेग से प्रलय के समय काल के समान अश्वत्थामा की ओर चले॥२३।२५॥ अश्वत्थामा भी धृष्टद्युम्न को सम्मुख प्राप्तकर क्रोध से बारम्बार श्वास लेते हुए उनकी ओर वेग से दौड़े । (बड़े-बड़े धनुष हाथ में लिये हुए) वे दोनों वीर एक दूसरे को देखकर ही क्रोध से विह्वल हो गये थे । तब महाप्रतापी अश्वत्थामा ने निकटवर्ती धृष्टद्युम्न को सम्बोधन करके कहा—हे अधम पाञ्चाल ! आज मैं तुझे जीवित न छोड़ूँगा। तुमने रण में मेरे पिता को मारकर जो पाप किया है उसका फल आज तुझे मिलेगा। यदि अर्जुन तेरी रक्षा न करेंगे, अथवा तुम व्याकुल होकर

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे ।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥ ३१ ॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे ।
यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥ ३२ ॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात् ।
एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३ ॥
निशितेनाथ बाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः ।
ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
आच्छादयद्दिशो राजन्धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समन्ततः ॥ ३५ ॥
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः ।
तथैव पार्षतो राजन्द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३६ ॥
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान्सह पाण्डवैः ॥ ३७ ॥
द्रौपदेयान्युधामन्युं सात्यकिं च महारथम् ।
एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ३९ ॥
वेगवान्समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम् ॥ ४० ॥

मेरे सम्मुख से भाग न जाओगे तो मैं सत्य कहता हूँ, तुझे मारे बिना न छोड़ूँगा॥२६।३०॥हे राजेन्द्र ! यह सुनकर प्रतापी धृष्टद्युम्न ने उत्तर दिया—हे द्रोणपुत्र ! युद्ध में यत्न कर रहे तेरे रण-प्रिय पिता को जिसने उत्तर दिया है और उनका सिर काटा है वह यह मेरा खड्ग ही तेरी इन बातों का उत्तर देगा। मैंने तेरे ब्राह्मणाधम पिता को मारा है और इस समय युद्ध में तुझ पापरूप को भी पराक्रम-पूर्वक मारूँगा। हे महाराज ! क्रोधान्ध धृष्टद्युम्न ने यों कहकर अश्वत्थामा को एक तीक्ष्ण बाण मारा॥३१।३४॥तब अश्वत्थामा भी अत्यन्त कुपित होकर धृष्टद्युम्न के चारों ओर तीक्ष्ण बाण बरसाकर उन्हें पीड़ित करने लगे। उस समय अश्वत्थामा के असंख्य बाणों से सब दिशाएँ, आकाशमण्डल और योद्धा लोग अदृश्य हो गये। महावीर धृष्टद्युम्न भी, कर्ण के सम्मुख ही, समर की शोभा बढ़ानेवाले अश्वत्थामा को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। कर्ण अकेले ही पाण्डवों, पाञ्चालों, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, युधामन्यु, उत्तमौजा, सात्यकि और अन्य सहस्रों योद्धा आदि को चारों ओर बाण बरसाकर विमुख करने लगे॥३४।३८॥इतने में धृष्टद्युम्न ने सब के

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात्सुमहाबलम् ।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ २० ॥
अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरञ्जयः ।
तिष्ठतिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥
इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः ।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥ २२ ॥
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः ।
यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥ २३ ॥
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा ।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥ २४ ॥
स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु ।
जवेनाभ्यायर्यो द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥ २५ ॥
द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्रोधेन निःश्वसन्वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २६ ॥
तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम् ।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते ।
पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ २८ ॥
पापं हि यत्त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम् ।
अद्य त्वां तप्स्यते तद्वै यथा न कुशलं तथा ॥ २९ ॥

और सात्यकि का वह अद्भुत युद्ध और रण-कौशल देखकर सबके रोंगटे खड़े हो गये । हे राजेन्द्र ! इसी अवसर में शत्रुओं को परास्त करनेवाले अश्वत्थामा शत्रुशमन धृष्टद्युम्न के निकट जाकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे—अरे ब्राह्मण की हत्या करनेवाले क्षत्रियाधम ! ज़रा मेरे सम्मुख खड़ा तो रह । आज तुम मेरे हाथ से जीवित नहीं बच सकते । हे नरनाथ ! इस प्रकार बारम्बार कह रहे अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ महाघोर तीक्ष्ण बाणों से धृष्टद्युम्न को छा दिया॥१९।२२॥पहले समर में द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न को देखकर अपनी मृत्यु समझकर जैसे उदास हो गये थे, वैसे ही अश्वत्थामा इस समय धृष्टद्युम्न को अपने निमित्त मृत्युस्वरूप जान पड़े । वे भी, यह सोचकर कि मुझे कोई शस्त्र से नहीं मार सकता, वेग से प्रलय के समय काल के समान अश्वत्थामा की ओर चले॥२३।२५॥ अश्वत्थामा भी धृष्टद्युम्न को सम्मुख प्राप्तकर क्रोध से बारम्बार श्वास लेते हुए उनकी ओर वेग से दौड़े । (बड़े-बड़े धनुष हाथ में लिये हुए) वे दोनों वीर एक दूसरे को देखकर ही क्रोध से विह्वल हो गये थे । तब महाप्रतापी अश्वत्थामा ने निकटवर्ती धृष्टद्युम्न को सम्बोधन करके कहा—हे अधम पाञ्चाल ! आज मैं तुझे जीवित न छोड़ूँगा । तुमने रण में मेरे पिता को मारकर जो पाप किया है उसका फल आज तुझे मिलेगा । यदि अर्जुन तेरी रक्षा न करेंगे, अथवा तुम व्याकुल होकर

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे ।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥
एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥ ३१ ॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे ।
यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥ ३२ ॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात् ।
एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३ ॥
निशितेनाथ बाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः ।
ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
आच्छादयद्दिशो राजन्धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समन्ततः ॥ ३५ ॥
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः ।
तथैव पार्षतो राजन्द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३६ ॥
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान्सह पाण्डवैः ॥ ३७ ॥
द्रौपदेयान्युधामन्युं सात्यकिं च महारथम् ।
एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ३९ ॥
वेगवान्समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम् ॥ ४० ॥

मेरे सम्मुख से भाग न जाओगे तो मैं सत्य कहता हूँ, तुझे मारे बिना न छोड़ूँगा॥२६।३०॥हे राजेन्द्र ! यह सुनकर प्रतापी धृष्टद्युम्न ने उत्तर दिया—हे द्रोणपुत्र! युद्ध में यत्न कर रहे तेरे रण-प्रिय पिता को जिसने उत्तर दिया है और उनका सिर काटा है वह यह मेरा खड्ग ही तेरी इन बातों का उत्तर देगा। मैंने तेरे ब्राह्मणाधम पिता को मारा है और इस समय युद्ध में तुझ पापरूप को भी पराक्रम-पूर्वक मारूँगा। हे महा राज ! क्रोधान्ध धृष्टद्युम्न ने यों कहकर अश्वत्थामा को एक तीक्ष्ण बाण मारा॥३१।३४॥तब अश्वत्थामा भी अत्यन्त कुपित होकर धृष्टद्युम्न के चारों ओर तीक्ष्ण बाण बरसाकर उन्हें पीड़ित करने लगे। उस समय अश्वत्थामा के असंख्य बाणों से सब दिशाएँ, आकाश-मण्डल और योद्धा लोग अदृश्य हो गये। महावीर धृष्टद्युम्न भी, कर्ण के सम्मुख ही, समर की शोभा बढ़ानेवाले अश्वत्थामा को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे। कर्ण अकेले ही पाण्डवों, पाञ्चालों, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों, युधामन्यु, उत्तमौजा, सात्यकि और अन्य सहस्रों योद्धा आदि को चारों ओर बाण बरसाकर विमुख करने लगे॥३४।३[illegible] [illegible] में ध[illegible] म्न ने सब के

ते हयाश्चन्द्रसङ्काशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥ ५१ ॥
दृष्ट्वायातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन्महाबलः ॥ ५२ ॥
विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर ।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥ ५३ ॥
ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम् ।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५४ ॥
स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
उत्सृज्य समरे राजन्पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ५५ ॥
रथमारुरुहे वीरो धनञ्जयशरार्दितः ।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥ ५६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप ।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ५७ ॥
अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५८ ॥
क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसंमितम् ।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥
ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः ।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥ ६० ॥

डालेंगे। इसलिए मृत्यु के मुख में पड़े हुए के समान अश्वत्थामा के चङ्गुल में फँसे हुए धृष्टद्युम्न को शीघ्र बचाओ। हे राजेन्द्र! महात्मा श्रीकृष्ण ने अब शीघ्रता के साथ घोड़ों को उसी ओर हाँक दिया जहाँ अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न पर झपट रहे थे॥४७।५०॥वे चन्द्रमा के समान श्वेत घोड़े श्रीकृष्ण का इशारा पाते ही, मानों आकाश को पी लेंगे इस प्रकार, अश्वत्थामा के रथ की ओर दौड़ चले। अमित-पराक्रमी अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को आते देखकर धृष्टद्युम्न को मारने के निमित्त और भी शीघ्रता से घोर प्रयत्न किया। अर्जुन ने देखा कि अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न को पकड़कर खींच रहे हैं। तब उन्होंने महारथी अश्वत्थामा के ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए वे विकट बाण, बिल में सर्प के समान, अश्वत्थामा के शरीर में वेग से प्रवेश करने लगे॥५१।५४॥अर्जुन के उन बाणों से प्रतापी अश्वत्थामा अत्यन्त घायल और विह्वल हो उठे। तब वे धृष्टद्युम्न को छोड़कर अपने रथ पर चले गये और धनुष लेकर अर्जुन को बाण मारने लगे। इसी अवसर में वीर सहदेव शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर बिठाकर युद्धस्थल से हटा ले गये॥५६। ५७॥उधर अर्जुन भी बाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित करने लगे। तब अश्वत्थामा ने क्रोध से अधीर होकर उनके वक्षःस्थल और हाथों में बाण मारना आरम्भ किया। इसी समय अर्जुन ने अश्वत्थामा को ताक-

हयान्सूतं रथं चैव निमेषाद्धधमच्छरैः ।
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥ ४१ ॥
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ।
द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ॥ ४२ ॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४३ ॥
धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम् ।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ॥ ४४ ॥
नाशकद्भरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः ।
तस्यान्तमिषुभी राजन्यदा द्रौणिर्न जग्मिवान् ॥ ४५ ॥
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽन्वगात् ।
आसीदाप्लवतो वेगस्तस्य राजन्महात्मनः ॥ ४६ ॥
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् ।
एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति ।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः ॥ ४८ ॥
तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन ।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रैषयत्तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥ ५० ॥

सम्मुख ही तीक्ष्ण बाण से उनका धनुष काट डाला। तब अश्वत्थामा ने अन्य धनुष हाथ में लिया और कई विषैले सर्प सदृश बाण लेकर उनसे क्षण भर में धृष्टद्युम्न के धनुष, शक्ति, गदा, ध्वजा, रथ आदि के टुकड़े टुकड़े करके सारथी और घोड़ों को मार डाला। इस प्रकार घोड़े, रथ, सारथी, धनुष आदि के न रहने पर वीर धृष्टद्युम्न तीक्ष्ण ढाल-तलवार लेकर रथ से उतरने लगे। वे रथ से उतरने भी नहीं पाये कि अश्वत्थामा ने स्फूर्ति के साथ भल्ल बाणों से शतचन्द्रयुक्त प्रकाशमान खड्ग के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। महाबाहु धृष्टद्युम्न को इस प्रकार अश्वत्थामा की स्फूर्ति से निःशस्त्र होते देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ॥३८।४३॥हे महाराज! धृष्टद्युम्न का रथ टूट गया, सारथी नहीं रहा, घोड़े मर गये, धनुष और खड्ग आदि शस्त्र भी नहीं रहे, शस्त्रों और अस्त्रों से उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब छिन्न-भिन्न हो गये; किन्तु महारथी अश्वत्थामा घोर यत्न करके भी उन्हें बाण से नहीं मार सके। अश्वत्थामा जब किसी प्रकार बाणों से अपने शत्रु धृष्टद्युम्न का वध नहीं कर सके तब वे, रथ से उतरकर, धनुष रखकर, बड़ा खड्ग हाथ में लेकर वेग से दौड़े। उस समय वे नागराज पर झपट रहे गरुड़ के समान शोभा को प्राप्त हुए ॥४३।४७॥यह देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! देखो देखो, धृष्टद्युम्न को मार डालने के निमित्त अश्वत्थामा घोर यत्न कर रहे हैं और ये निःसन्देह धृष्टद्युम्न को मार

ते हयाश्चन्द्रसङ्काशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥ ५१ ॥
दृष्ट्वायातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन्महाबलः ॥ ५२ ॥
विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर ।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥ ५३ ॥
ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम् ।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५४ ॥
स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
उत्सृज्य समरे राजन्पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ५५ ॥
रथमारुरुहे वीरो धनञ्जयशरार्दितः ।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥ ५६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप ।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ५७ ॥
अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः ।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५८ ॥
क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसंमितम् ।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥
ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः ।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥ ६० ॥

डालेंगे। इसलिए मृत्यु के मुख में पड़े हुए के समान अश्वत्थामा के चङ्गुल में फँसे हुए धृष्टद्युम्न को शीघ्र बचाओ। हे राजेन्द्र! महात्मा श्रीकृष्ण ने अब शीघ्रता के साथ घोड़ों को उसी ओर हाँक दिया जहाँ अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न पर झपट रहे थे॥४७।५०॥ वे चन्द्रमा के समान श्वेत घोड़े श्रीकृष्ण का इशारा पाते हो, मानों आकाश को पी लेंगे इस प्रकार, अश्वत्थामा के रथ की ओर दौड़ चले। अमित-पराक्रमी अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को आते देखकर धृष्टद्युम्न को मारने के निमित्त और भी शीघ्रता से घोर प्रयत्न किया। अर्जुन ने देखा कि अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न को पकड़कर खींच रहे हैं। तब उन्होंने महारथी अश्वत्थामा के ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण छोड़े। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए वे विकट बाण, बिल में सर्प के समान, अश्वत्थामा के शरीर में वेग से प्रवेश करने लगे॥५१।५४॥ अर्जुन के उन बाणों से प्रतापी अश्वत्थामा अत्यन्त घायल और विह्वल हो उठे। तब वे धृष्टद्युम्न को छोड़कर अपने रथ पर चले गये और धनुष लेकर अर्जुन को बाण मारने लगे। इसी अवसर में वीर सहदेव शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर बिठाकर युद्धस्थल से हटा ले गये॥५६।५७॥ उधर अर्जुन भी बाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित करने लगे। तब अश्वत्थामा ने क्रोध से अधीर होकर उनके वक्षःस्थल और हाथों में बाण मारना आरम्भ किया। इसी समय अर्जुन ने अश्वत्थामा को ताक-

निषसाद् रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ ।
ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद्विजयं धनुः ॥ ६१ ॥
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ६२ ॥
विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः ।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात् ॥ ६३ ॥
अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जितकाशिभिः ।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥ ६४ ॥
वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः ।
सिंहनादांश्च चक्रुस्ते दृष्ट्वा सङ्ख्ये तदद्भुतम् ॥ ६५ ॥
एवं कृत्वाब्रवीत्पार्थो वासुदेवं धनञ्जयः ।
याहि संशप्तकान्कृष्ण कार्यमेतत्परं मम ॥ ६६ ॥
ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम् ।
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ६७ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि द्रौण्यपयाने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

कर, क्रुद्ध होकर, दूसरे कालदण्ड के समान एक उग्र नाराच बाण छोड़ा॥५८।५९॥अर्जुन का वह नाराच बाण महातेजस्वी ब्राह्मण के कन्धे में जाकर लगा।उस प्रहार से महारथी अश्वत्थामा विह्वल होकर रथ पर बैठ गये। उन्हें मूर्च्छा आ गई। यह देखकर उनका सारथी उसी समय उन्हें रणभूमि से हटा ले गया। इसी समय महावीर कर्ण क्रोध से विह्वल होकर अपना विजय नामक धनुष खींचने और बारम्बार अर्जुन को देखकर उनसे द्वैरथ युद्ध करने की इच्छा प्रकट करने लगे॥६०।६२॥उधर अश्वत्थामा को पीड़ित और धृष्टद्युम्न को प्राण-सङ्कट से मुक्त देखकर विजयी पाञ्चालगण चिल्लाकर आनन्द प्रकट करने लगे। पाण्डव-सेना में सिंहनाद होने लगा और सहस्रों श्रेष्ठ बाजे बजने लगे। इस प्रकार यह अद्भुत युद्ध हुआ॥६३।६५॥हे राजेन्द्र! इधर अर्जुन कर्ण की चेष्टाओं पर ध्यान न देकर श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे मित्र! अब आप संशप्तकों की सेना में मेरा रथ ले चलिए। उनका नाश करना ही मेरा सबसे प्रधान कार्य है। अर्जुन के वचन सुनकर महात्मा श्रीकृष्ण, उच्च ध्वजा से शोभित और मन तथा वायु के समान वेग से चलने वाला,रथ लेकर संशप्तक-सेना की ओर चले॥६६।६७॥

कर्ण पर्व का उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५९ ॥

अथ षष्टितमोऽध्याय ॥ ६० ॥

सञ्जय उवाच—एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत् ।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥
एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥ २ ॥

तं चानुयान्ति संरब्धाः पाञ्चाला युद्धदुर्मदाः ।
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥
एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥ ४ ॥
जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली ।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥ ५ ॥
एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः ।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥ ६ ॥
पश्य सात्वत भीमाभ्यां निरुद्धा धिष्ठिताः पुनः ।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्निभ्यामिवासकृत् ॥ ७ ॥
एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम् ।
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥ ८ ॥
नदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान् ।
चलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥ ९ ॥
मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हुतमग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥ १० ॥
यथाविधमनीकं तु धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव ।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत सम्प्राप्तो बाणगोचरम् ॥ ११ ॥

साठवाँ अध्याय ॥ ६० ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे नरेन्द्र ! महात्मा श्रीकृष्ण इसी समय कहने लगे—हे अर्जुन ! वह देखो, कौरवपक्ष के महाबली धनुर्द्धर मिलकर, मार डालने के निमित्त, तुम्हारे भाई धर्मराज का पीछा कर रहे हैं। रणदुर्मद ये पराक्रमी पाञ्चालगण [चेदि और मत्स्य देश के वीरगण] युधिष्ठिर की रक्षा करने के निमित्त उनके पीछे वेग से जा रहे हैं॥१।३॥हाथी, घोड़े, रथ और पैदल ये धर्मराज को पकड़ने के निमित्त वैसे ही उनके पीछे जा रहे हैं, जैसे धन-लाभ की इच्छा रखनेवाले लोग किसी राजा के समीप जाते हैं॥४।६॥अमृत-हरण की चेष्टा कर रहे दानवों को जैसे अग्नि और इन्द्र ने रोका था वैसे ही पराक्रमी भीमसेन और सात्यकि, युधिष्ठिर के पीछे जा रही, कौरव-सेना को रोक रहे हैं। किन्तु उधर महारथियों की संख्या अधिक होने के कारण कौरवसेना उन दोनों वीरों को लाँघकर, वर्षाऋतु में समुद्रगामी जल-प्रवाह के समान, आगे बढ़ी जा रही है। वह देखो, सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा कवचधारी दुर्योधन रथ सेना लेकर युधिष्ठिर का पीछा कर रहा है। उसके साथ महाधनुर्द्धर, बली, सब शस्त्रों के युद्ध में निपुण, विषैले नागतुल्य, उसके भाई भी सिंहनाद करते, शङ्ख बजाते और धनुषों के शब्द करते जा रहे हैं॥७।९॥इस समय युधिष्ठिर दुर्योधन के वश में आ गये हैं, इसलिए उन्हें मैं मृत्यु के मुख में पहुँचा हुआ या अग्नि में गिरा हुआ समझता हूँ। दुर्योधन की सेना इस समय ऐसी सुसज्जित है कि इन्द्र भी उससे अपनी रक्षा नहीं कर

दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघाञ्शीघ्रमस्यतः ।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद्रणे ॥ १२ ॥
दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् ॥ १३ ॥
कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः ।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥ १४ ॥
राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे ।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥ १५ ॥
तस्यैभिर्युध्यमानस्य संग्रामे संशितात्मनः ।
अन्यैरपि च पार्थस्य कृतं कर्म महारथैः ॥ १६ ॥
उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तमः ।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः ॥ १७ ॥
कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः ।
संशयं समनुप्राप्तः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥
न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद्भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥ १९ ॥
नर्दतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिन्दमः ।
धमतां च महाशङ्खान्संग्रामे जितकाशिनाम् ॥ २० ॥
युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ ।
सञ्चोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ॥ २१ ॥
स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च ।
प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः ॥ २२ ॥

सकते। हे धनञ्जय! स्फूर्ति के साथ निरन्तर बाण बरसा रहे कुपित यमतुल्य तेजस्वी वीर महारथी दुर्योधन के वेग को रण में कौन व्यक्ति सँभाल सकता है॥१०।१२॥महाबली दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कर्ण ऐसे योद्धा हैं कि अपने बाणों से पर्वतों को भी फोड़ सकते हैं। हे अर्जुन! कर्ण ने रण निपुण युधिष्ठिर को विमुख कर दिया है। महाबली धृतराष्ट्र-पुत्रों के साथ वीर कर्ण अवश्य ही रण में युधिष्ठिर को पीड़ित कर सकता है॥१३।१५॥इन सबके साथ जिस समय राजा युधिष्ठिर युद्ध कर रहे थे उस समय कर्ण और अन्य महारथियों ने प्रहार करके उन्हें पीड़ित किया था। भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर उपवास करने से यों ही दुर्बल हो रहे हैं। वे ब्राह्मण का बल क्षमा रखते हैं। क्षत्रिय का बल, निष्ठुरता, उनमें नहीं है। शत्रुतापन युधिष्ठिर, कर्ण से युद्ध करके, प्राण-संशय को प्राप्त हो गये हैं॥१६।१८॥हे धनञ्जय! जब महाबली भीमसेन बार बार गरज रहे हैं और संग्राम में विजयी शत्रुओं के सिंहनाद तथा शङ्खनाद को सह रहे हैं तब तो राजा युधिष्ठिर जीवित नहीं जान पड़ते। वह देखो, पापबुद्धि सूतपुत्र बारम्बार "युधिष्ठिर को मारो" कहकर

आतुरो हि कृतो राजा संनिपेत्यश्च भारत ।
यथैनमनुवर्तन्ते पाञ्चालाः सह पाण्डवैः ॥ २३ ॥
त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः ॥ २४ ॥
न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः ।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो ।
पञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत ॥ २६ ॥
एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम् ।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ २७ ॥
एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन ।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥ २८ ॥
एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहताः शरैः ।
आर्तनादान्विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश ॥ २९ ॥
रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव समन्ततः ।
द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ॥ ३० ॥
हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह ।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ॥ ३१ ॥
असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति ।
किरञ्शरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

महाबली कौरवों को उत्तेजित कर रहा है॥१९।२१॥ ये सब महारथी महाराज युधिष्ठिर का पीछा कर रहे हैं और उन्हें स्थूणाकर्ण, पाशुपत आदि अस्त्रों से पीड़ित कर रहे हैं। जब महाधनुर्धर पाञ्चाल और पाण्डवगण, जल में डूबते हुए व्यक्ति को उबारने के निमित्त दौड़ रहे बली पुरुषों के समान, धर्मराज के पीछे दौड़े जा रहे हैं तब अवश्य ही दुर्धर्ष राजा युधिष्ठिर शत्रुओं के बाणों से अत्यन्त मृतप्राय हो रहे हैं। अब उनके रथ की ध्वजा नहीं देख पड़ती। या तो वह कर्ण के बाणों से छिप गई है या कटकर गिर पड़ी है॥२२।२४॥ वह देखो, उन्मत्त हाथी जैसे कमलवन को रौंदे वैसे ही महाबलशाली कर्ण—नकुल, सहदेव, सात्यकि, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शतानीक, पाञ्चालगण और महारथी चेदिगण के सम्मुख ही—पाण्डवसेना को नष्ट कर रहा है॥२५।२७॥ हे अर्जुन! वह देखो, तुम्हारे महारथी लोग अपने-अपने रथों को कैसे वेग से दौड़ा रहे हैं। कर्ण के बाणों की चोट से विह्वल होकर बड़े-बड़े हाथी आर्तनाद करते हुए दसों दिशाओं में भाग रहे हैं। वह देखो, सूतपुत्र की हस्तिकक्ष्याचिह्नित ध्वजा इधर-उधर घूम रही है॥२८।३१॥ वह कर्ण सहस्रों बाण छोड़कर पाण्डवों की रथसेना को मारता हुआ भीमसेन के रथ की ओर वेग से जा रहा है। महारथी पाञ्चालगण कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर, इन्द्र के वज्र से विदलित असुरों

एतान्पश्य च पञ्चालान्द्राव्यमाणान्महारथान् ।
शक्रेणेव यथा दैत्यान्हन्यमानान्महाहवे ॥ ३३ ॥
एष कर्णो रणे जित्वा पञ्चालान्पाण्डुसृञ्जयान् ।
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥ ३४ ॥
पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन्साधु शोभते ।
शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसङ्घैः समावृतः ॥ ३५ ॥
एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
त्रासयन्तो रणे पाण्डून्सृञ्जयांश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥
एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे ।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद ॥ ३७ ॥
अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः ।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः ॥ ३८ ॥
तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः ।
एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ ३९ ॥
पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम् ।
उदयं पर्वतं यद्वच्छशाङ्केनाभिशोभितम् ॥ ४० ॥
पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्नि च्छत्रेण भारत ।
ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना ॥ ४१ ॥
एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशाम्पते ।
उत्तमं जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥ ४२ ॥
पश्य ह्येनं महाबाहो विधुन्वानं महद्धनुः ।
शरांश्चाशीविषाकारान्विसृजन्तं महारणे ॥ ४३ ॥

के समान, विचलित हो रहे हैं और प्राण लेकर चारों ओर भाग रहे हैं । वह देखो, वीर कर्ण इस समय पाण्डवों, पाञ्चालों और सृञ्जयों को परास्त करके चारों ओर देख रहा है। जान पड़ता है, वह तुम्हें ही खोज रहा है । वह देखो, कर्ण इस समय बारम्बार धनुष का शब्द करके शत्रुओं को परास्त करने के कारण परम प्रसन्न होकर देवगण के मध्य में स्थित इन्द्र के समान शोभायमान हो रहा है॥३२।३५॥वह देखो, कर्ण का पराक्रम देखकर कौरवगण सिंहनाद करते हुए पाण्डवों और सृञ्जयों के अन्तःकरण में भय का सञ्चार कर रहे हैं । पराक्रमी कर्ण हमारी सेना को बहुत ही डरवा करके कौरवसेना से कह रहा है—"हे वीरो ! तुम लोग शीघ्र दौड़कर आक्रमण करो, तुम्हारा भला हो । ये सृञ्जय-पाञ्चालगण तुम्हारे आगे से जीवित न लौट सकें । तुम्हारे पीछे हम लोग भी आते हैं ।"॥३६।३८॥हे अर्जुन ! कर्ण कौरवसेना को प्रोत्साहन देकर बाण बरसाता हुआ उसके पीछे-पीछे जा रहा है । हे धनञ्जय ! देखो, चन्द्रमा के उदय से उदयाचल की जैसे शोभा होती है वैसे ही सौ तीलियोंवाले श्वेत छत्र से कर्ण की शोभा हो रही है।

असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम् ।
प्रार्थयन्समरे पार्थ त्वया सह परन्तप ॥ ४४ ॥
वधाय चात्मनोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा ।
कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत ॥ ४५ ॥
रिरक्षिषुः सुसंवृत्तो धार्तराष्ट्रो निवर्तते ।
सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतां च प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता ।
अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्यमानयोः ॥ ४७ ॥
देवासुरे पार्थ मृधे देवदानवयोरिव ।
पश्यन्तु कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम् ॥ ४८ ॥
त्वां च दृष्ट्वातिसंरब्धं कर्णं च भरतर्षभ ।
असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥ ४९ ॥
आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे ।
प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम् ॥ ५० ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम् ।
पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम ॥ ५१ ॥
शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम् ।
पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा ॥ ५२ ॥
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च ।
अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते ॥ ५३ ॥
द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं संनिपूदय ।
निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम् ॥ ५४ ॥

यह वीर धनुष चढ़ाकर विषैले नाग-तुल्य बाण बरसाता हुआ तुम्हारी ओर कुटिल दृष्टि से देख रहा है। अब यह इसी ओर आवेगा॥३९।४३॥ हे पार्थ! तुम्हारी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर वह वीर युद्ध की इच्छा से, अग्नि में कूदने को उद्यत पतङ्ग के समान, मरने को इसी ओर आ रहा है। कर्ण को अकेला देखकर, उसकी रक्षा के निमित्त, दुर्योधन अपनी रथ सेना लेकर उसके साथ ही आ रहा है। अतएव इस समय तुम राज्य, यश और सुख प्राप्त करने के निमित्त यत्न पूर्वक इन सबके साथ कर्ण को मारो॥४४।४७॥ हे अर्जुन! तुम और कर्ण देवराज तथा दैत्यराज के समान जब निर्भय होकर युद्ध करोगे तब तुमको और कर्ण को अत्यन्त क्रोध के साथ भिड़ते देखकर दुष्ट दुर्योधन कुछ न कर सकेगा। हे भरतश्रेष्ठ! इस समय तुम अपनी योग्यता और धर्मात्मा युधिष्ठिर के प्रति धर्षणरूप कर्ण का अपराध देखकर, आर्यजनोचित युद्ध का निश्चय करके, रथयूथप कर्ण का सामना करो॥४७।५१॥ हे अर्जुन! वह देखो, महातेजस्वी

सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना ।
उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ ॥ ५५ ॥
असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति ।
केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ॥ ५६ ॥
समुपैष्यति पञ्चालानिति मन्ये परन्तप ।
आचचक्षे प्रियं पार्थ तवेदं भरतर्षभ ॥ ५७ ॥
राजासौ कुशली श्रीमान्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
असौ भीमो महाबाहुः सन्निवृत्तश्चमूमुखे ॥ ५८ ॥
वृतः सञ्जय सैन्येन शैनेयेन च भारत ।
वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ॥ ५९ ॥
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः ।
सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा विक्षरद्व्रणा ॥ ६० ॥
विप्रधावति वेगेन भीमस्याभिहता शरैः ।
विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ॥ ६१ ॥
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना ।
निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम् ॥ ६२ ॥
आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।
पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः ॥ ६३ ॥
पताका विप्रकीर्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन ।
सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ॥ ६४ ॥

बली पाँच सौ प्रधान रथी योद्धा, पाँच सहस्र हाथी, दस सहस्र घोड़े और लाखों पैदल एक दूसरे की रक्षा करते हुए तुम्हारी ओर आ रहे हैं। इस समग्र सेना का सञ्चालन महारथी अश्वत्थामा कर रहे हैं। तुम इस रथ-सेना को अपने बाणों से छिन्न भिन्न करके प्रसिद्ध बली कर्ण के सम्मुख पहुँचो॥५२।५४॥विग से कर्ण के सम्मुख जाकर अपना अतुल पराक्रम दिखलाओ। वह देखो, कुपित कर्ण पाञ्चाल सेना की ओर वेग से जा रहा है। उसके रथ की ध्वजा धृष्टद्युम्न के रथ के सम्मुख देख पड़ती है॥५४।५७॥हे अर्जुन! मैं इस समय तुमको प्रिय समाचार सुनाता हूँ। वह देखो, महाराज युधिष्ठिर कुशल-पूर्वक स्थित हैं। वह देखो, महाबाहु भीमसेन—सात्यकि और सृञ्जयगण के साथ—पलटकर कौरवसेना के अग्र भाग में पहुँच गये हैं। भीमसेन और वीर पाञ्चालगण तीक्ष्ण बाणों से कौरवों का नाश कर रहे हैं। भीमसेन के वेग और विविध बाणों से पीड़ित होकर दुर्योधन की सेना रणभूमि से भाग रही है। खेत कट जाने पर पृथ्वी जैसे उजड़ी हुई देख पड़ती है वैसे ही रुधिर से तर इस कौरव सेना का रूप दीन देख पड़ता है॥५७।६२॥विषैले सर्प-सदृश क्रुद्ध भीमसेन के लौट पड़ने से ही कौरव सेना भाग रही है। वह देखो, तारा चन्द्र और सूर्य के चिह्नों से युक्त श्वेत, लाल, पीले, हरे और काले रङ्ग की अनेक पताकाएँ और छत्र टूट-

केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते ।
रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः ॥ ६५ ॥
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः ।
निर्मनुष्यान्गजानश्वान्रथांश्चैव धनञ्जय ॥ ६६ ॥
समाद्रवन्ति पाञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः ।
विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात् ॥ ६७ ॥
बलं परेषां दुर्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिन्दम ।
एते नर्दन्ति पञ्चाला ध्मापयन्ति च वारिजान् ॥ ६८ ॥
अभिद्रवन्ति च रणे मृद्नन्तः सायकैः परान् ।
पश्यस्वैषां च माहात्म्यं पञ्चाला हि पराक्रमात् ॥ ६९ ॥
धार्तराष्ट्रान्विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान् ।
शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां सायुधानां निरायुधाः ॥ ७० ॥
तेनैवैतानमोघास्त्रान्निघ्नन्ति च नदन्ति च ।
शिरांस्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च ॥ ७१ ॥
रथनागहया वीरा यशस्याः सर्व एव च ।
सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७२ ॥
पञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगिभिः ।
सुभृशं च पराक्रान्ताः पाञ्चालानां निवारणे ॥ ७३ ॥
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ।
भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान्धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥ ७४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून्सहस्रशः ।
पञ्चालेष्वभिभूतेषु द्विपद्भिरपभीर्नदन् ॥ ७५ ॥

छूटकर इधर-उधर गिर रहे हैं। सुवर्ण, चाँदी और अन्य धातुओं की चमकीली अनेक प्रकार की ध्वजाएँ गिर रही हैं। हाथी और घोड़े भाग रहे हैं। डटकर युद्ध करनेवाले पाञ्चाल-वीरों के विविध बाणों से मर-मरकर रथी लोग रथों से गिर रहे हैं॥६२।६५॥कौरव-पक्ष के ही सवारों से रहित हाथियों, घोड़ों और रथों पर बैठकर पाञ्चालगण कौरवों पर आक्रमण करने जा रहे हैं। भीमसेन के बाहुबल का आश्रय पाकर ये पुरुषसिंह, प्राणों का मोह छोड़कर, शत्रुओं की दुर्दर्ष सेना को विमर्दित कर रहे हैं। यह देखो, पाञ्चाल-गण गरजते हैं, शङ्ख बजाते हैं और बाणों से शत्रुओं को मारते हुए उनकी ओर बढ़ रहे हैं॥६६।६८॥यह स्वर्गलाभ का माहात्म्य देखो कि पाञ्चालगण पराक्रम-पूर्वक कौरवों को मारते हुए जा रहे हैं। वे स्वयं शस्त्र-हीन हैं तो सशस्त्र शत्रुओं के शस्त्र छीनकर उन्हीं से शत्रुओं पर अचूक वार करते और गरजते हैं। वे शत्रुओं के सिर और हाथ आदि को काट-काटकर गिरा रहे हैं। पाञ्चाल-सेना के रथी, गजारोही और घुड़सवार सभी प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं॥६९।७२॥ हंसों की श्रेणी जैसे मानस-सरोवर से निकलकर गङ्गा

शत्रुपक्षमवस्कन्द्य शरानस्यति मारुतिः ।
विपण्णभूयिष्ठतरा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७६ ॥
रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः ।
पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी ॥ ७७ ॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि धराभृताम् ।
भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥ ७८ ॥
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः ।
अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम् ॥ ७९ ॥
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः ।
एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ॥ ८० ॥
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ।
सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः ॥ ८१ ॥
तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः ।
हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान्प्रहारिणः ॥ ८२ ॥
पश्य नीलाम्बुदनिभान्महामात्रैरधिष्ठितान् ।
शक्तितोमरसङ्घातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥ ८३ ॥
सप्त सप्त च नागांस्तान्वैजयन्तीश्च सध्वजाः ।
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ॥ ८४ ॥

में घुसती है वैसे ही पाञ्चालगण बड़े वेग से कौरवसेना में घुस रहे हैं।साँड़ों को रोकने के निमित्त जैसे साँड़ बल प्रकट करें वैसे ही कृपाचार्य, कर्ण आदि कौरवों के मित्र योद्धा लोग पराक्रम-पूर्वक पाञ्चालों को रोकने का प्रयत्न कर रहे हैं ।,फिर भी वे नहीं रुकते और कौरव-सेना को मार-मारकर गिरा रहे हैं।कौरव पक्ष के लोगों को, सहस्रों की संख्या में, धृष्टद्युम्न आदि वीर मार रहे हैं ॥७३।७६॥सिंहनाद करते हुए भीमसेन शत्रु सेना पर बाण बरसा रहे हैं, जिससे कौरवों की सेना के मुख (चेहरे) फीके पड़ गये हैं। अधिकांश शत्रु सेना नष्ट और उत्साहहीन हो गई है । रथी और हाथियों घोड़ों के सवार डरकर भाग रहे हैं ।यह देखो, नाराच बाण मारकर भीमसेन हाथियों को विदीर्ण कर रहे हैं और ये हाथी, इन्द्र के वज्र से फटे हुए पर्वतों के शिखरों के समान, पृथ्वी पर गिर रहे हैं । भीमसेन के तीक्ष्ण बाण शरीर में घुसने से अनेक हाथी विह्वल हो उठे हैं और अपनी ही सेना को रौंदते हुए भाग रहे हैं ॥७६।७९॥शत्रुओं को परास्त करने की प्रसन्नता से महावीर भीमसेन बारम्बार सिंहनाद कर रहे हैं। यह निषादों का राजा श्रेष्ठ हाथी पर बैठकर भीमसेन की ओर झपटता आ रहा है और दण्डपाणि यमराज के समान क्रुद्ध होकर बारम्बार भीमसेन के ऊपर तोमर फेंक रहा है ।गरज रहे निषाद-राज के दोनों हाथ भीमसेन ने काट डाले और अग्नि के तुल्य दस उग्र नाराच बाणों से उसको मार गिराया । अब उसके साथी वीरों के ओर अनेक हाथी भीमसेन की ओर आ रहे हैं;वे हाथी नीले मेघ के समान हैं। उन हाथियों के सवार भीमसेन पर शक्तियों और तोमरों की वर्षा कर रहे हैं॥७९।८३॥

दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः ।
न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ॥ ८५ ॥
पुरन्दरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ ।
अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन नरसिंहेन वारिताः ॥ ८६ ॥
न शक्नुवन्ति वै पार्थं पार्थिवाः समुदीक्षितुम् ।
मध्यन्दिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः ॥ ८७ ॥
एते भीमस्य सन्त्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः ।
शरैः सन्त्रासिताः सङ्ख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित् ॥ ८८ ॥
सञ्जय उवाच—एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्वासुदेवाद्धनञ्जयः ।
भीमसेनेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ८९ ॥
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहिताञ्छिशितैः शरैः ।
ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ॥ ९० ॥
प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः ।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा ॥ ९१ ॥
पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ॥ ९२ ॥

इति श्री महाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

भीमसेन ने तीक्ष्ण बाण मारकर हाथियों के ऊपर की ध्वजाएँ, सात-सात टुकड़े करके, गिरा दीं और दस-दस नाराच बाणों से एक-एक हाथी को मार डाला। हे अर्जुन! इन्द्र के समान कुपित भीमसेन के लौटकर इस प्रकार संहार करने पर अब कौरवों का वह सिंहनाद नहीं सुनाई पड़ता। दुर्योधन की तीन अक्षौहिणी सेना मिलकर आक्रमण कर रही थी, उसे कुपित भीमसेन ने अकेले ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया॥८५।८६॥ मध्याह्न काल के सूर्य के समान तप रहे भीमसेन की ओर राजा लोग आँख भरकर देख भी नहीं सकते। भीमसेन के बाणों से पीड़ित शत्रुदल के योद्धा, सिंह के सताये मृगों के समान, व्याकुल हो रहे हैं॥८७।८८॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण के मुख से भीमसेन के किये हुए दुष्कर कर्म का वृत्तान्त सुनकर महाबाहु अर्जुन स्वस्थ हुए और बचे हुए ससात्कों को फिर नष्ट करने लगे। अर्जुन के प्रहार से विह्वल होकर बहुत से तो भाग गये और बहुत से मरकर, इन्द्रलोक में जाकर, इन्द्र के अतिथि हुए। अर्जुन फिर दुर्योधन की चतुरङ्गिणी सेना को मारने लगे॥८९।९२॥

—:०:—

कर्णपर्व का साठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे ।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥

द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे मुहुर्मुहुः ।
किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन्भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३ ॥
तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात्पराङ्मुखम् ।
यत्नेन महता राजन्पर्यवस्थापयद्बली ॥ ४ ॥
व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान्युद्धदुर्मदान् ॥ ५ ॥
प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः ।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान्॥ ६ ॥
भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः ।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान्सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ ७ ॥
जिघांसन्तो नरव्याघ्राः समन्तात्तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥ ८ ॥
तथैव तावका राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥ ९ ॥
रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥
शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥ ११ ॥

एकसठवाँ अध्याय ॥ ६१ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! जब भीमसेन और युधिष्ठिर लौटकर युद्ध करने लगे और पाण्डवों तथा सृञ्जयों के हाथसे मेरी सेना मारी जाने लगी अर्थात् इस प्रकार दुर्योधन की सेना आनन्द-रहित होकर भाग खड़ी हुई तब कौरवों ने क्या किया ? सब वृत्तान्त कहो॥१।२॥सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महाप्रतापी कर्ण महाबाहु भीमसेन को देखकर, क्रोध से लाल नेत्र करके, उनकी ओर वेग से चले । आपकी सेना को, विमुख होकर भीमसेन के आगे से, भागते देख कर महारथी कर्ण ने बड़ा यत्न करके रोका । कौरव-सेना को क्रमशः स्थापित करके वीर कर्ण फिर पाण्डवों की ओर बढ़े॥३।५॥तब पाण्डव दल के महारथी लोग भी धनुष बजाते और बाण बरसाते कर्ण की ओर चले। भीमसेन,सात्यकि,शिखण्डी,जनमेजय,बलवान् धृष्टद्युम्न प्रभद्रकगण और पाञ्चालगण अत्यन्त क्रुद्ध होकर चारों ओर से विजयलाभ की इच्छा से कौरव सेना पर आक्रमण करने लगे । कौरव पक्ष के महारथी भी शत्रु-पक्ष के महारथियों को मार डालने के विचार से पाण्डव-सेना की ओर वेग से बढ़े॥६।९॥उस समय असंख्य ध्वजाओं से शोभित दोनों ओर की चतुरङ्गिणी सेना का स्वरूप अद्भुत दिखाई पड़ने लगा । शिखण्डी कर्ण से भिड़ गये । बहुत सी सेना साथ लिये धृष्टद्युम्न आपके

नकुलो वृषसेनं तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः ।
उलूकं समरे राजन्सहदेवः समभ्ययात् ॥ १२ ॥
सात्यकिः शकुनिं चापि द्रौपदेयाश्च कौरवान् ।
अर्जुनं च रणे यत्तो द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥
युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद्रणे ।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४ ॥
भीमसेनः कुरून्सर्वान्पुत्रांश्च तव मारिष ।
सहानीकान्महाबाहुरेक एव न्यवारयत् ॥ १५ ॥
शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥ १६ ॥
प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत् ॥ १७ ॥
धारयंस्तु स तान्बाणाञ्शिखण्डी बह्वशोभत ।
राजतः पर्वतो यद्वत्त्रिभिः शृङ्गैरिवोच्छ्रितैः ॥ १८ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे ।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥ १९ ॥
तस्य कर्णो हयान्हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥ २० ॥
हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः ॥ २१ ॥
तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः ।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

पुत्र दुःशासन से युद्ध करने लगे। नकुल वृषसेन से, धर्मराज युधिष्ठिर चित्रसेन से, सहदेव उलूक से, सात्यकि शकुनि से, अर्जुन महारथी अश्वत्थामा से, द्रौपदी के पुत्र दुर्योधन के भाइयों से, युधामन्यु कृपाचार्य से, उत्तमौजा कृतवर्मा से और भीमसेन अकेले ही, असमय सेना सहित आपके अनेक पुत्रों से युद्ध करने लगे ॥१०।१५॥ तब भीष्म का वध करनेवाले शिखण्डी अपने प्रतिद्वन्दी, निर्भय होकर समरभूमि में विचर रहे, कर्ण पर बाण-वर्षा करने लगे॥१६॥ शिखण्डी के बाणों की चोट से क्रोध के मारे कर्ण के होंठ फड़कने लगे। उन्होंने अपने को रोकनेवाले शिखण्डी की भौंहों के मध्य में तीन बाण मारे। ललाट में लगे हुए उन तीन बाणों से शिखण्डी तीन शिखरोंवाले चाँदी के पर्वत के समान शोभायमान हुए। कर्ण ने बाण मारकर जब बहुत गहरी चोट पहुँचाई तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिखण्डी ने तीक्ष्ण नब्बे बाणों से कर्ण को घायल किया॥१७।१९॥ प्रतापी कर्णने तीन बाणों से शिखण्डी के सारथी और घोड़ों को मारकर एक क्षुरप्र बाण से उनके रथ की ध्वजा भी काट डाली। शत्रुदमन क्रुद्ध शिखण्डी ने बिना घोड़ों के रथ पर से कूदकर कर्ण

कर्णचापच्युतान्बाणान्वर्जयंस्तु नरोत्तमः ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः ॥ २३ ॥
ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत् ।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ २५ ॥
तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष ।
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ २७ ॥
आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते ॥ २८ ॥
अथापरैः सप्तदशैर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २९ ॥
ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन ततः उच्चुकुशुर्जनाः ॥ ३० ॥
अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥
तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं सुमहात्मनः ।
व्यस्मयन्त रणे योधा सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३२ ॥

के ऊपर भयङ्कर शक्ति फेंकी । कर्ण ने तीन बाणों से उस शक्ति को काट डाला और शिखण्डी को नव उग्र बाण मारे॥२०।२२॥शिखण्डी बहुत ही घायल और विह्वल होने के कारण कर्ण के सम्मुख नहीं ठहर सके, उनके बाणों से बचते हुए वे भाग गये । तब महारथी कर्ण पाण्डव सेना को वैसे ही मारने और गिराने लगे जैसे प्रबल आँधी रुई के ढेर को उड़ा ले जाती है॥२३।२४॥उधर दुःशासन पराक्रमी धृष्टद्युम्न को रोककर बाणों से पीड़ित करने लगे । धृष्टद्युम्न ने कोप करके दुःशासन के वक्ष स्थल में तीन बाण मारे । फिर दुःशासन ने भी एक सुवर्णपुङ्ख भल्ल बाण धृष्टद्युम्न के बायें हाथ में मारा । तब अमर्षशील धृष्टद्युम्न ने दुःशासन को बहुत ही घोर बाण मारा । उन्होंने स्फूर्ति के साथ धृष्टद्युम्न के उस बाण को तीन बाणों से मार्ग में ही काट डाला और दूसरे सत्रह कनक-भूषित भल्ल बाण धृष्टद्युम्न के दोनों हाथों और वक्ष स्थल में मारे॥२५।२९॥तब धृष्टद्युम्न ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण क्षुरप्र बाण से दुःशासन का धनुष ही काट डाला । यह देखकर सैनिकगण जोर से चिल्लाने लगे । दुःशासन ने हँसते-हँसते उसी समय दूसरा धनुष लेकर धृष्टद्युम्न के ऊपर चारों ओर तीक्ष्ण बाण बरसाना आरम्भ किया । दुःशासन के बाणों से धृष्टद्युम्न को समाच्छन्न और पीड़ित देखकर सब योद्धाओं, सिद्धों और अप्सराओं को बड़ा विस्मय हुआ । हम लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा

धृष्टद्युम्नं न पश्याम घटमानं महाबलम्　　।
दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महागजम्　　॥ ३३ ॥
ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज　　।
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव　　॥ ३४ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह　　।
घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परन्तप　　॥ ३५ ॥
नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः　　।
पितुः समीपे तिष्ठन्वै त्रिभिरन्यैरविध्यत　　॥ ३६ ॥
नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव　　।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम्　　॥ ३७ ॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण　　।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः॥ ३८ ॥
ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ　　।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी　　॥ ३९ ॥
स दृष्ट्वा प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः　　।
निवारयामास बलादनुसृत्य विशाम्पते　　॥ ४० ॥
निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान्ययौ　　।
कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु　　॥ ४१ ॥
जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष　　।
उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः　　॥ ४२ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान्　　।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति　　॥ ४३ ॥

कि सिंह जैसे महागज को आगे न बढ़ने दे, वैसे ही दुःशासन ने महारथी धृष्टद्युम्न को रोक लिया। लाख चेष्टा करके भी धृष्टद्युम्न आगे न बढ़ सके॥३०।३३॥ हे महाराज! पाञ्चाल, पाण्डव और सृञ्जयगण अपने सेनापति धृष्टद्युम्न को अवरुद्ध देखकर, उनकी सहायता करने के निमित्त, चतुरङ्गिणी सेना लेकर उधर हो वेग से बढ़े और दुःशासन को हटाने की चेष्टा करने लगे। उस समय दोनों ओर के योद्धा भिड़कर, सब प्राणियों के निमित्त भयानक, घोर युद्ध करने लगे। दूसरी ओर, अपने पिता कर्ण के समीप स्थित, शूर वृषसेन ने सम्मुख उपस्थित नकुल को क्रमशः पाँच और तीन लोहमय उग्र बाण मारे। तब वीर नकुल ने हँसकर वृषसेन के हृदय में एक तीक्ष्ण नाराच बाण मारा। प्रबल शत्रु के बाण की गहरी चोट खाकर वृषसेन ने नकुल को बीस और नकुल ने वृषसेन को पाँच बाण मारे॥३४।३८॥ तब वे दोनों पराक्रमी असंख्य बाण बरसाकर परस्पर पीड़ित करने लगे। इसी मध्य में कौरवों की सेना भग खड़ी हुई। महात्मा कर्ण दुर्योधन की सेना को भागते देखकर, उसके पीछे जाकर, उसे बलपूर्वक लौटाने और ठहराने की चेष्टा करने लगे॥३९।

उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते ।
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥ ४४ ॥
सात्यकिः शकुनिं विध्वा विंशत्या निशितैः शरैः ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ४५ ॥
सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन्प्रतापवान् ।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ४६ ॥
तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत ।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ॥ ४७ ॥
अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः ।
अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद्युद्धशालिनः ॥ ४९ ॥
सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम् ।
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत ॥ ५० ॥
शैनेयशरसंछन्नं तत्र सैन्यं विशाम्पते ।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥ ५१ ॥
भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे ।
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ॥ ५२ ॥
चक्रे लोकेश्वर तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः ।
ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात् ॥ ५३ ॥

४०॥कर्ण के लौटने पर वीर नकुल कौरवों की ओर दौड़े । तब वृषसेन भी नकुल को छोड़कर फिर अपने पिता कर्ण के रथचक्र की रक्षा करने लगे ॥४१।४२॥उधर महाबली सहदेव क्रुद्ध उलूक को रोकने लगे । सहदेव ने उलूक के सारथी और चारों घोड़ों को मार डाला । तब उस टूटे हुए रथ से कूद-कर उलूक शीघ्रता से त्रिगर्त सेना के भीतर घुस गया ॥४२।४४॥इसी समय महाबली सात्यकि ने शकुनि को तीक्ष्ण धारवाले बीस बाणों से घायल करके हँसते-हँसते एक भल्ल बाण से उनकी ध्वजा काट डाली । वीर शकुनि ने भी अत्यन्त क्रोध करके बाणों से सात्यकि का कवच तोड़कर सुवर्णमयी ध्वजा भी काट डाली । तब सात्यकि ने शकुनि को कई तीक्ष्ण बाण मारकर उनके सारथी को तीन बाणों से पीड़ित किया । फिर स्फूर्ति के साथ बाणों से शकुनि के रथ के घोड़ों को मार डाला॥४५।४८॥हे नरश्रेष्ठ ! शकुनि शीघ्रता से उस रथ से कूदकर उलूक के रथ पर चढ़कर सात्यकि के आगे से भाग गये । महावीर सात्यकि भी बड़े वेग से कौरव सेना की ओर बढ़े । सात्यकि के बाणों से कौरवों की सेना ऐसी पीड़ित हुई कि युद्ध छोड़कर चारों ओर भागने और मृतकों के समान पृथ्वी पर गिरने लगी॥४८।५१॥राजा दुर्योधन संग्राम में भीमसेन को रोकने की चेष्टा करने लगे । वीर भीमसेन ने क्रोध करके क्षण भर में उनके रथ, सारथी, ध्वजा और

कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ।
तत्र नादो महानासीद्भीमसेनं जिघांसताम् ॥ ५४ ॥
युधामन्युः कृपं विध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे ।
अथान्यद्धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५५ ॥
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत्क्षितौ ।
ततोऽपायाद्रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥ ५६ ॥
उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम् ।
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ ५७ ॥
तद्युद्धमासीत्सुमहद्घोररूपं परन्तप ।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशाम्पते ॥ ५८ ॥
कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे ।
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५९ ॥
सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम् ।
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ६० ॥
दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम् ।
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत् ॥ ६१ ॥
ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम् ।
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत् ॥ ६२ ॥
तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोदरः ।
दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ६३ ॥

घोड़ों को नष्ट कर दिया। यह देखकर पाण्डव-सेना को अपार आनन्द हुआ। दुर्योधन भय के मारे भीमसेन के आगे से भाग गये। तब सब कौरव-सेना एकत्र होकर भीमसेन को मार डालने के निमित्त उनकी ओर चली और योद्धा लोग भयङ्कर सिंहनाद करने लगे ॥५२।५४॥ वीर युधामन्यु ने कृपाचार्य को तीक्ष्ण बाणों से घायल करके उनका धनुष काट डाला। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने क्रुद्ध होकर दूसरा धनुष हाथ में लेकर युधामन्यु के छत्र, ध्वजा और सारथी को नष्ट कर दिया। महाबली युधामन्यु, भय के मारे, स्वयं रथ हाँकते हुए उनके आगे से भाग खड़े हुए ॥५५।५६॥ जैसे पर्वत पर जल बरसाते हैं, वैसे ही महाबली उत्तमौजा कृतवर्मा को बाणों से पीड़ित करने लगे। उस समय वे दोनों वीर अपूर्व युद्ध करने लगे। कृतवर्मा ने सहसा उत्तमौजा को हृदय में घायल कर दिया। इससे वे मूर्च्छित होकर रथ पर बैठ गये। यह देखकर उनका सारथी रथ लेकर रणभूमि से भाग गया ॥५७।६०॥ अब सारी कौरव-सेना भीमसेन की ओर वेग से बढ़ी। दुःशासन और शकुनि गज-सेना से भीमसेन को घेरकर उन पर क्षुद्रक बाणों से प्रहार करने लगे। तब भीमसेन क्रुद्ध दुर्योधन को बाणवर्षा से हटा करके गज-सेना की ओर वेग से दौड़े। वीर भीमसेन गज-सेना को सहसा आते देखकर क्रुद्ध होकर दिव्य अस्त्र का प्रयोग करने लगे। वज्र से इन्द्र जैसे

गजैर्गजानभ्यहनद्वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।
ततोऽन्तरिक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम् ॥ ६४ ॥
छादयामास समरे गजान्निघ्नन्वृकोदरः ।
ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः ॥ ६५ ॥
व्यधमत्तरसा भीमो मेघसङ्घानिवानिलः ।
सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः ॥ ६६ ॥
रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः ।
ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन्विदुद्रुवुः ॥ ६७ ॥
केचिद्विभिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन्भुवि ।
पतितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूपितैः ॥ ६८ ॥
अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः ।
दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ॥ ६९ ॥
रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः ।
ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा ॥ ७० ॥
दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः ।
केचिद्वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः ॥ ७१ ॥
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः ।
महाभुजगसङ्काशौ चन्दनागुरुरूषितौ ॥ ७२ ॥
अपश्यं भीमसेनस्य धनुर्विक्षिपतो भुजौ ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाशनिसमस्वनम् ॥ ७३ ॥

असुरों का संहार करें वैसे ही वे हाथियों पर हाथियों को पटककर और बाण मारकर गज सेना को चौपट करने लगे॥६०।६४॥टिड्डियाँ जैसे वृक्ष पर छा जाती हैं वैसे ही हाथियों का संहार कर रहे भीमसेन के बाणों से अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया। आँधी जैसे घनघटा को छिन्न भिन्न कर डाले वैसे ही भीमसेन वेग में, एकत्र हुए, सहस्रों हाथियों को मारने लगे। सुवर्ण जाल और मणि मोती आदि से शोभित वे हाथी बिजली सहित मेघों के समान रणभूमि में शोभायमान हो रहे थे॥६४। ६७॥भीमसेन के बाणों से मारे जा रहे वे हाथी चारों ओर चिल्लाते हुए भागने लगे। कुछ के हृदय फट गये और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। गिरे और गिर रहे सुवर्ण भूषित उन हाथियों से वह रणभूमि ऐसी जान पड़ती थी जैसे बड़े-बड़े पर्वत फट फटकर वहाँ गिर पड़े हों। रत्नों से शोभित प्रकाशमान हाथियों के सवार योद्धा रणभूमि में, पुण्य क्षीण होने पर गिरे हुए, ग्रहों के समान जान पड़ते थे। भीमसेन के बाणों से जिनके मस्तक, कपोल, सूँड आदि अङ्ग प्रत्यङ्ग कट फट गये हैं ऐसे सैकड़ों हाथी भागने लगे॥६७।७१॥कुछ पर्वताकार हाथियों के अङ्गों में बाण घुस जाने से रक्त बह रहा था और वे, बह रहे धातुओं से चित्रित पर्वतों के समान, भय के मारे भाग रहे थे। धनुष को चढ़ा रहे भीमसेन की विशाल भुजाएँ चन्दन और अगुरु से भूषित थीं और महासर्पों के समान दिखाई देती

विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम् ।
भीमसेनस्य तत्कर्म राजन्नेकस्य धीमतः ।
निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ॥ ७४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

थीं। उनकी प्रत्यञ्चा के और तल के वज्रपात सदृश भयानक शब्द को सुनकर भय के मारे बड़े बड़े हाथी मल-मूत्र त्याग करते हुए भागने लगे। हे महाराज! सब प्राणियों का नाश कर रहे रुद्र के समान भीमसेन ने अकेले ही ऐसा अद्भुत कर्म कर दिखाया॥७१।७४॥

— ::०:: —

कर्णपर्व का इकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६१ ॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

सञ्जय उवाच—ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते ।
तिष्ठन्रथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ॥ १ ॥
तद्बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे ।
व्यक्षोभयदुदीर्णाश्वं महोदधिमिवानिलः ॥ २ ॥
दुर्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने ।
अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः ॥ ३ ॥
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम् ।
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम् ॥ ४ ॥
अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत् ॥ ५ ॥
ततोऽधावन्त कौरव्या जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम् ।
दुष्टभावान्पराञ्ज्ञात्वा समवेता महारथाः ॥ ६ ॥
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७ ॥
अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन्युधिष्ठिरम् ।
भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान् ॥ ८ ॥

बासठवाँ अध्याय ॥ ६२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे नरनाथ! अब प्रबल प्रतापी अर्जुन श्वेत घोड़ों से युक्त और कृष्ण-सञ्चालित रथ पर बैठकर, आँधी जैसे महासमुद्र को मथ डाले वैसे ही, असंख्य घुड़सवारों से परिपूर्ण कौरव सेना को मथने लगे। इस समय अर्जुन को उधर उलझे हुए और युधिष्ठिर की ओर से असावधान देखकर राजा दुर्योधन कुपित होकर, आधी सेना साथ लेकर, अपनी सेना की ओर आ रहे अमर्षपूर्ण राजा युधिष्ठिर को घेरने के निमित्त बढ़े। दुर्योधन ने युधिष्ठिर के समीप जाकर उनको तिहत्तर क्षुरप्र बाण मारे॥१।४॥युधिष्ठिर ने भी क्रोध से विह्वल होकर दुर्योधन को तीस भल्ल बाण मारे। इसी समय सब कौरव धर्मराज को पकड़ लेने के निमित्त वेग से दौड़े॥५।६॥शत्रुओं के दुष्ट भाव को जानकर महावीर नकुल, सहदेव और

उरस्यविध्यद्राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम् ।
स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत् ।
अक्रोशन्त ततः सर्वे धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥
गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः ।
ततः शताः सप्तदश केकयानां प्रहारिणाम् ॥ ३२ ॥
पञ्चालैः सहिता राजन्धार्तराष्ट्रान्न्यवारयन् ।
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये ॥ ३३ ॥
दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सकुलयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

शील कर्ण अत्यन्त क्रुद्ध होकर धर्मराज की ओर झपटे। क्रोध से उनके होंठ फड़कने लगे। वे नाराच, अर्धचन्द्र, वत्सदन्त आदि अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों से धर्मराज को पीड़ित करने लगे॥२७।२८॥युधिष्ठिर भी कर्ण के ऊपर स्वर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। कर्ण ने हँसकर कङ्कपत्र बाण मार और तीन भल्ल बाण मारकर धर्मराज के हृदय में घाव कर दिया। इस प्रहार से धर्मराज अत्यन्त विह्वल और पीड़ित होकर रथ पर बैठ गये और अपने सारथी से बारम्बार कहने लगे कि शीघ्र रथ को हाँक ले चलो॥२९।३१॥सब राजा लोग और आपके पुत्रगण "धर्मराज को पकड़ लो—पकड़ लो" कहकर चिल्लाते हुए चारों ओर से दौड़ पड़े। तब पाञ्चालों सहित केकय देश के सत्रह सौ योद्धा कौरव सेना के वीरों को रोकने लगे। हे भारत! इस प्रकार वह जन-नाशक युद्ध होते समय महाबली भीमसेन और दुर्योधन फिर परस्पर भिड़ गये॥३१।३४॥

कर्णपर्व का बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६२ ॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

सञ्जय उवाच—कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान् ।
व्यधमत्परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान् ॥ १ ॥
तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे ।
रथान्पञ्चशतान्कर्णः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ २ ॥
अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः ।
भीमसेनमुपागच्छन्कर्णबाणप्रपीडिताः ॥ ३ ॥
रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा ।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

तिरसठवाँ अध्याय ॥ ६३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! तब पराक्रमी कर्ण, सेना के अग्र भाग में स्थित, केकय देश के महाधनुर्द्धर महारथियों को मारने लगे। कर्ण ने अपने को रोकने का यत्न कर रहे केकयों के पाँच सौ रथियों को क्षण भर में मार गिराया॥१।२॥कर्ण को युद्ध में अजेय और उनके पराक्रम को असह्य जानकर पीड़ित हो रहे केकय देश के योद्धा, आश्रय के निमित्त, भीमसेन के समीप भागे। हे महाराज! महावीर कर्ण इस

सेनानिवेशमार्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम् ।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥ ५ ॥
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया ।
सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥
तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ७ ॥
चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परन्तपौ ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति ॥ ८ ॥
तौ पृथक्शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम् ।
नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ ॥ ९ ॥
तथैव तौ प्रत्यविध्यत्सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिन्दमौ ॥ १० ॥
दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान् ।
युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान्हयोत्तमान् ॥ ११ ॥
ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत् ।
कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥ १२ ॥
तथैव नकुलस्यापि हयान्हत्वा प्रतापवान् ।
ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ १३ ॥
तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ ।
भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा ॥ १४ ॥
तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा ।
अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया ॥ १५ ॥

प्रकार बाण बरसाकर उस रथ-सेना को छिन्न-भिन्न करके अकेले ही युधिष्ठिर को पकड़ने के निमित्त दौड़े ॥३।४॥उस समय बाणों से अत्यन्त पीड़ित अचेत-प्राय धर्मराज धीरे-धीरे अपने शिविर को जा रहे थे और नकुल-सहदेव इधर-उधर उनकी रक्षा करते हुए चल रहे थे। दुर्योधन का हित करनेकी इच्छासे कर्ण वेग से राजा युधिष्ठिर के समीप पहुँचे। उन्होंने उनको तीन बाण मारे। अब युधिष्ठिर ने भी कर्ण के वक्षःस्थल में बाण मारे। फिर सारथी को तीन और घोड़ों को चार बाण मारे॥५।७॥धर्मराज के चक्ररक्षक नकुल और सहदेव, पृथक्-पृथक्, कर्ण के ऊपर बाण बरसाने लगे। कर्ण कहीं राजा का वध न कर डालें, यह सोच-कर वे पूर्ण रूप से युधिष्ठिर की रक्षा और कर्ण को रोकने का यत्न करने लगे। पराक्रमी कर्ण ने तीक्ष्ण धार के दो भल्ल बाण नकुल और सहदेव को मारे और फिर श्वेत वर्ण के काली पूँछवाले श्रेष्ठ घोड़ों को, जो युधिष्ठिर के रथ में लगे थे, मार डाला। अब कर्ण ने हँसकर एक भल्ल बाण से युधिष्ठिर का शिरस्त्राण काट डाला॥८।१२॥इसी प्रकार नकुल के रथ के घोड़ों को भी मारकर एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से उनके

योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह ।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः ॥ १६ ॥
क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः ।
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैरभिनस्तथा ॥ १७ ॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि ।
एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे ॥ १८ ॥
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत् ।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥
प्रहस्य समरे कर्णश्चकार विमुखं शरैः ।
ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह ॥ २० ॥
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम् ।
यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान् ॥ २१ ॥
तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ।
शङ्खयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः ॥ २२ ॥
श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह ।
असौ निघ्नन्रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः ॥ २३ ॥
सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे ।
पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २४ ॥

रथ की धुरी और धनुष काट डाला। घोड़े मर गये, रथ टूट गये, शरीर भी अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो गया, तब युधिष्ठिर और नकुल दोनों भाई स्फूर्ति से सहदेव के रथ पर चले गये॥१३।१४॥अब मद्रराज शल्य दोनों मानजों को रथहीन, दुर्दशाग्रस्त और प्राण-सङ्कट में पड़े देखकर कृपापूर्वक, उनके बचाव के विचार से कहने लगे—हे कर्ण ! आज तुमको धनञ्जय से युद्ध करना है, फिर तुम धर्मराज से क्यों भिड़ रहे हो ? इस प्रकार औरों से युद्धकरने में तुम्हारे शस्त्र-अस्त्र बाण आदि घट जायँगे, कवच नष्ट हो जायगा, तरकस रिक्त हो जायँगे, तुम्हारे घोड़े और सारथी भी परिश्रम करते करते थक जायँगे और तुम भी शत्रुओं के प्रहारों से पीड़ित हो जाओगे, उस समय अर्जुन के सम्मुख जाकर बस उपहास के पात्र बनोगे ॥१५।१८॥हे राजेन्द्र ! शल्य ने यों कहकर कर्ण को रोकना चाहा तथापि कुपित कर्ण ने न माना। वे बारम्बार तीक्ष्ण बाणों से युधिष्ठिर और नकुल-सहदेव को पीड़ित करने लगे। तब शल्य ने हँसकर, रथ पर स्थित और युधिष्ठिर को मार डालने पर तुले हुए, कर्ण से फिर कहा—हे कर्ण ! धर्मराज को मारने से तुम्हें क्या मिलेगा ? राजा दुर्योधन ने जिनके वध के निमित्त आज तक तुम्हारा सम्मान किया है उन अर्जुन को मारो तो एक बात भी है ॥१८।२२॥वह सुनो, वर्षाकाल के मेघ के गर्जन के समान श्रीकृष्ण और अर्जुन के शङ्खों का शब्द सुनाई पड़ रहा है और रह रहकर अर्जुन का धनुष भयानक शब्द कर रहा है। हे कर्ण ! देखो, वीर अर्जुन बाण-वर्षा से श्रेष्ठ योद्धाओं को मारते हुए हमारी सम्पूर्ण सेना का संहार कर रहे हैं। तुम उन्हें ढूँढ़कर उनसे

उत्तरं चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः ।
धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दाक्षिणम् ॥ २५ ॥
भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते ।
यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम्॥ २६ ॥
तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा ।
पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम् ॥ २७ ॥
यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान्भवेत् ।
परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम् ।
किन्नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ २८ ॥
इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे ॥ २९ ॥
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः ।
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ३० ॥
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान् ।
मद्रराजप्रणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ॥ ३१ ॥
गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवस्य मारिष ॥ ३२ ॥
ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः ।
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ ३३ ॥
अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम् ।
अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ॥ ३४ ॥

युद्ध करो। शूर अर्जुन की पृष्ठ रक्षा युधामन्यु और उत्तमौजा कर रहे हैं। सात्यकि बाँये पहिये की और धृष्टद्युम्न दाहिने पहिये की रक्षा में नियुक्त हैं॥२२।२५॥ उधर देखो, वही भीमसेन राजा दुर्योधन से युद्ध कर रहे हैं। हम सबके सम्मुख भीमसेन राजा दुर्योधन को न मार डालें, इसका उपाय सबसे पहले करो। देखो, रणनिपुण भीमसेन दुर्योधन को मार डालने का उद्योग कर रहे हैं। इस समय यदि दुर्योधन उनके हाथ से बच जायँ तो इसे मैं बड़ा आश्चर्य समझूँगा। इसलिए पहले तुम, प्राण-सङ्कट में पड़े हुए, दुर्योधन की रक्षा करो। नकुल, सहदेव या राजा युधिष्ठिर को मारकर क्या करोगे॥२६।२८॥ यह सुनकर और सचमुच रण में दुर्योधन को भीमसेन के ग्रास में पड़े हुए देखकर कर्ण ने युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को छोड़ दिया। वे शीघ्रता के साथ दुर्योधन की रक्षा करने को चले। शल्य ने भी आकाश को उड़े से जा रहे घोड़ों को शीघ्रता से हाँक दिया॥२९।३१॥ कर्ण के वहाँ से चल देने पर बाणों से घायल धर्मराज भी सहदेव के, शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त, रथ पर बैठकर भाइयों के साथ अत्यन्त लज्जितभाव से शिविर में पहुँचे और रथ से उतरकर तुरन्त बिस्तर पर लेट गये। चिकित्सकों ने उनके शरीर से सब शल्य निकालकर घावों

सोऽब्रवीद् भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम् ॥ ३५ ॥
जीमूत इव नर्दंस्तु युध्यते स वृकोदरः ।
ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ॥ ३६ ॥
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ ।
तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ ॥
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मोपयाने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

पर ओषधियाँ लगा दीं । शरीर के शल्य निकल जाने पर भी हृदय का शल्य, अर्थात् कर्ण से परास्त होने का खेद, उन्हें अत्यन्त पीड़ित करने लगा । उन्होंने सहदेव और नकुल से कहा—हे भाइयो ! वीर भीमसेन मेघ के समान गरजकर युद्ध कर रहे हैं, इसलिए तुम शीघ्र उनके समीप उनकी सहायता करने को जाओ। ॥३१।३६॥युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर नकुल-सहदेव तुरन्त, शीघ्रगामी घोड़ों से युक्त अन्य रथ पर बैठकर, भीमसेन और अर्जुनके समीप पहुँचे । अब वे अपनीसेना के साथहोकर शत्रुओंका संहार करने लगे॥३६।३७॥

कर्णपर्व का तिरसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

सञ्जय उवाच—द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः ।
अपतत्सहसा राजन्यत्र पार्थो व्यवस्थितः ॥ १ ॥
तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान् ।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम् ॥ २ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
अर्जुनं वासुदेवं च च्छादयामास सायकैः ॥ ३ ॥
अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथौ ।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा ॥ ४ ॥
अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव ।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत ॥ ५ ॥

चौसठवाँ अध्याय ॥ ६४ ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजेन्द्र ! महाबली अश्वत्थामा असंख्य रथों के साथ एकाएक वहाँ पर आ गये, जहाँ वीर अर्जुन शत्रु-सेना का संहार कर रहे थे । श्रीकृष्ण सहित अर्जुन ने अश्वत्थामा को, आते देखकर, वैसे ही रोक दिया जैसे तट-भूमि समुद्र के वेग को रोकती है । तब पराक्रमी अश्वत्थामा कुपित होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को बाणवर्षा से पीड़ित करने लगे । यह देखकर महारथी कौरवगण अत्यन्त विस्मित हो उठे॥१।४॥महावीर अर्जुन ने हँसकर दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया । अस्त्र-निपुण अश्वत्थामा ने, अस्त्र के प्रभाव से, उस अस्त्र को शान्त कर दिया । उस समय अश्वत्थामा को परास्त करने के निमित्त

यद्यद्धि व्याक्षिपद्युद्धे पाण्डवोऽस्त्रं जिघांसया ।
तत्तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत् ॥ ६ ॥
अस्त्रयुद्धे ततो राजन्वर्तमाने महाभये ।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ७ ॥
स दिशः प्रदिशश्चैव च्छादयित्वा ह्यजिह्मगैः ।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद्दक्षिणे भुजे ॥ ८ ॥
ततोऽर्जुनो हयान्हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः ।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ९ ॥
सर्वलोकवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम् ।
स रथान्रथिनः सर्वान्पार्थचापच्युतैः शरैः ॥ १० ॥
द्रौणेरपहतान्सङ्ख्ये ददृशुः स च तांस्तथा ।
प्रावर्तयन्महाघोरां नदीं परवहां तदा ॥ ११ ॥
तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे ।
अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः ॥ १२ ॥
रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ॥ १३ ॥
पार्थेन समरे राजन्कृतो घोरो जनक्षयः ।
निहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः ॥ १४ ॥
हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः ।
तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः ॥ १५ ॥

अर्जुन ने जितने अस्त्र छोड़े उन सबको अश्वत्थामा ने व्यर्थ कर दिया। हे भरतश्रेष्ठ! उस घोर अस्त्र युद्ध के समय महाबाहु अश्वत्थामा, मुख फैलाये हुए साक्षात् काल के समान, भयङ्कर प्रतीत होने लगे। उन्होंने सीधे और शीघ्र जानेवाले बाणों से दसों दिशाओं को व्याप्त करके श्रीकृष्ण के दाहने हाथ में तीन विकट बाण मारे॥५।८॥तब महावीर अर्जुन ने स्फूर्ति से अश्वत्थामा के घोड़ों को मारकर रणभूमि में चतुरङ्गिणी सेना के रक्त से एक महानदी बहा दी। अश्वत्थामा के अनुगामी असंख्य रथों समेत रथी, अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए बाणों से, नष्ट होने लगे। अश्वत्थामा ने भी अर्जुन के समान जन संहार करके रक्त की भयावनी नदी बहा दी॥९।११॥हे राजेन्द्र! इस प्रकार जब दोनों महारथी परस्पर घोर संग्राम करने लगे तब दोनों ओर के योद्धा लोग मर्यादा-हीन युद्ध करते हुए इधर-उधर विचरने लगे। वीर अर्जुन ने रथों को सारथी और घोड़ों से हीन, घोड़ों को सवारों से रहित और हाथियों को सवारों तथा महावतों से रहित करके असंख्य सेना को मारना आरम्भ कर दिया। अर्जुन के बाणों से मर मरकर बड़े-बड़े रथी गिरने लगे। घोड़ों के जोत कट गये, वे इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे॥११।१५॥अर्जुन का यह अद्भुत और भयानक कार्य देखकर अश्वत्थामा शीघ्रता के साथ विजयी अर्जुन के सम्मुख आये। सुवर्ण मण्डित धनुष चढ़ाकर

अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १६ ॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः ।
भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा ॥ १७ ॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम् ।
सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत ॥ १८ ॥
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः ।
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम् ॥ १९ ॥
स च्छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि ।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥ २० ॥
तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
चिच्छेद सहसा राजन्प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ २१ ॥
स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।
विकीर्णः पर्वतो राजन्यथा वज्रेण ताडितः ॥ २२ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः ।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् ॥ २३ ॥
तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य पार्थो राजन्गाण्डिवमाददे सः।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत्तरस्वी वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥ २४ ॥
विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन ।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः ॥ २५ ॥
विगाह्य तां पाण्डववाणवृष्टिं शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य ।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्ध्यत्त्रिभिःशतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम् ॥ २६ ॥

अर्जुन के चारों ओर असंख्य बाण बरसाकर उन्होंने कठोरता से उनके हृदय में एक उग्र बाण मारा। उस बाण की गहरी चोट से महारथी अर्जुन विह्वल हो उठे॥१५।१८॥उन्होंने भी चारों ओर असंख्य विकट बाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित करके बलपूर्वक उनका धनुष काट डाला। वीरश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने एक वज्र सदृश भीषण लोहे का परिघ (बेलन) लेकर अर्जुन के ऊपर फेंका। उन्होंने हँसकर उसी समय वह स्वर्णपट्ट-भूषित परिघ काट डाला। वह विकट बेलन अर्जुन के बाणों से कटकर, वज्र से विदीर्ण पर्वत के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१९।२२॥तब महारथी अश्वत्थामा ने अत्यन्त कुपित होकर ऐन्द्र अस्त्र का प्रयोग किया। इन्द्रजाल के प्रभाव से अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा होने लगी। फैले हुए इन्द्रजाल को देखकर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष हाथ में लिया और इन्द्र के दिये हुए महास्त्र का प्रयोग करके अश्वत्थामा के इन्द्र-जाल को नष्ट कर दिया। फिर समीप जाकर अर्जुन ने अपने अस्त्र से अभिमन्त्रित बाणों द्वारा अश्वत्थामा के रथ और शरीर को छा दिया। अश्वत्थामा ने अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर भी, उस बाणवर्षा के भीतर

ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद ।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्यामवाकिरत्पश्यतां तावकानाम्॥२७॥

स विध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ २८ ॥
स संगृह्य स्वयं वाहान्कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ २९ ॥
प्रायच्छत्तुरगान्यच्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
तदस्य समरे राजन्सर्वे योधा अपूजयन् ॥ ३० ॥
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे ।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥ ३१ ॥
प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः ।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥ ३२ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन् ।
समन्तान्निशितान्बाणान्विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ ३३ ॥
पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पुनः पुनरथो वीरैः संयुगे जितकाशिभिः ॥ ३४ ॥
पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥ ३५ ॥
वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः ॥ ३६ ॥

प्रवेश होकर, अपने नाम से अङ्कित सौ बाण श्रीकृष्ण को और तीन सौ क्षुद्रक (छोटे) बाण अर्जुन को कस-कसकर मारे॥२२।२६॥तब अर्जुन ने मर्मस्थलों में सौ बाण मारकर गुरुपुत्र को विह्वल कर दिया और फिर सब कौरवों के सम्मुख ही अश्वत्थामा के घोड़ों, सारथी और धनुषकी प्रत्यञ्चा पर निरन्तर बाण बरसाना आरम्भ किया। इसके पश्चात् मर्मस्थलों में घायल अश्वत्थामा के सारथी को एक भल्ल बाण से मारकर गिरा दिया। तब अश्वत्थामा आप ही रास पकड़कर घोड़ों को हाँकने और बाणवर्षा से श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को पीड़ित करने लगे। उस समय अश्वत्थामा की स्फूर्ति और पराक्रम-पूर्ण साहस को देखकर हम लोग चकित हो गये॥२७। २९॥उनको रथ हाँकते और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पर प्रहारभी करते देखकर सबलोग उनकी प्रशंसा करनेलगे तब महाबाहु अर्जुन ने हँसकर क्षुरप्र बाणों से अश्वत्थामा के घोड़ों की रास काट दी। अर्जुन के बाणों से पीड़ित घोड़े, कोई रोक-थाम न रहने के कारण, इधर-उधर भागने लगे। यह देखकर आपकी सेना में भारी कोलाहल होने लगा॥३०।३२॥महावीर पाण्डव-गण विजय प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित हुए और तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए कौरव सेना पर चढ़ दौड़े। विजयी पाण्डवों के बारम्बार निरन्तर प्रहार करने से पीड़ित और उत्साहहीन होकर आपकी सेना, कर्ण और विचित्र योद्धा कौरवों के सम्मुख ही,भाग खड़ी

अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १६ ॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः ।
भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायस्य पत्रिणा ॥ १७ ॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम् ।
सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत ॥ १८ ॥
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः ।
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम् ॥ १९ ॥
स च्छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि ।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥ २० ॥
तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
चिच्छेद सहसा राजन्प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ २१ ॥
स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।
विकीर्णः पर्वतो राजन्यथा वज्रेण ताडितः ॥ २२ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः ।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् ॥ २३ ॥
तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य पार्थो राजन्गाण्डिवमाददे सः।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत्तरस्वी वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥ २४ ॥
विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन ।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः॥ २५ ॥
विगाह्य तां पाण्डववाणवृष्टिं शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य ।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्ध्यत्त्रिभिःशतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम्॥ २६ ॥

अर्जुन के चारों ओर असंख्य बाण बरसाकर उन्होंने कठोरता से उनके हृदय में एक उग्र बाण मारा। उस बाण की गहरी चोट से महारथी अर्जुन विह्वल हो उठे॥१५।१८॥उन्होंने भी चारों ओर असंख्य विकट बाणों से अश्वत्थामा को पीड़ित करके बलपूर्वक उनका धनुष काट डाला। वीरश्रेष्ठ अश्वत्थामा ने एक वज्र-सदृश भीषण लोहे का परिघ (बेलन) लेकर अर्जुन के ऊपर फेंका। उन्होंने हँसकर उसी समय वह स्वर्णपट्ट-भूषित परिघ काट डाला। वह विकट बेलन अर्जुन के बाणों से कटकर, वज्र से विदीर्ण पर्वत के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१९।२२॥तब महारथी अश्वत्थामा ने अत्यन्त कुपित होकर ऐन्द्र अस्त्र का प्रयोग किया। इन्द्रजाल के प्रभाव से अर्जुन के ऊपर निरन्तर बाणों की वर्षा होने लगी। फैले हुए इन्द्रजाल को देखकर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष हाथ में लिया और इन्द्र के दिये हुए महास्त्र का प्रयोग करके अश्वत्थामा के इन्द्र-जाल को नष्ट कर दिया। फिर समीप जाकर अर्जुन ने अपने अस्त्र से अभिमन्त्रित बाणों द्वारा अश्वत्थामा के रथ और शरीर को छा दिया। अश्वत्थामा ने अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर भी, उस बाणवर्षा के भीतर

ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद ।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्यामवाकिरत्पश्यतां तावकानाम्॥ २७ ॥
स विध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ २८ ॥
स संगृह्य स्वयं वाहान्कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ २९ ॥
प्रायच्छत्तुरगान्यश्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
तदस्य समरे राजन्सर्वे योधा अपूजयन् ॥ ३० ॥
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे ।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥ ३१ ॥
प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः ।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥ ३२ ॥
पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन्।
समन्तान्निशितान्बाणान्विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ ३३ ॥
पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पुनः पुनरथो वीरैः संयुगे जितकाशिभिः ॥ ३४ ॥
पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौवलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥ ३५ ॥
वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
न चातिष्ठत संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः ॥ ३६ ॥

प्रवेश होकर, अपने नाम से अङ्कित सौ बाण श्रीकृष्ण को और तीन सौ क्षुद्रक (छोटे) बाण अर्जुन को कस-कसकर मारे॥२२।२६॥तब अर्जुन ने मर्मस्थलों में सौ बाण मारकर गुरुपुत्र को विह्वल कर दिया और फिर सब कौरवों के सम्मुख ही अश्वत्थामा के घोड़ों,सारथी और धनुषकी प्रत्यञ्चा पर निरन्तर बाण बरसाना आरम्भ किया। इसके पश्चात् मर्मस्थलों में घायल अश्वत्थामा के सारथी को एक भल्ल बाण से मारकर गिरा दिया। तब अश्वत्थामा आप ही रास पकड़कर घोड़ों को हाँकने और बाणवर्षा से श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को पीड़ित करने लगे। उस समय अश्वत्थामा की स्फूर्ति और पराक्रम-पूर्ण साहस को देखकर हम लोग चकित हो गये॥२७।२९॥उनको रथ हाँकने और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पर प्रहारभी करते देखकर सबलोग उनकी प्रशंसा करनेलगे तब महाबाहु अर्जुन ने हँसकर क्षुरप्र बाणों से अश्वत्थामा के घोड़ों की रास काट दी। अर्जुन के बाणों से पीड़ित घोड़े, कोई रोक-थाम न रहने के कारण, इधर-उधर भागने लगे। यह देखकर आपकी सेना में भारी कोलाहल होने लगा॥३०।३२॥महावीर पाण्डव-गण विजय प्राप्त करके अत्यन्त आनन्दित हुए और तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए कौरव सेना पर चढ़ दौड़े। विजयी पाण्डवों के बारम्बार निरन्तर प्रहार करने से पीड़ित और उत्साहहीन होकर आपकी सेना, कर्ण और विचित्र योद्धा कौरवों के सम्मुख ही,भाग खड़ी

ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः ।
अभवद्व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद्बलम् ॥ ३७ ॥
तिष्ठतिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः ।
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥ ३८ ॥
अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः ॥ ३९ ॥
ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत्प्रणयादिव ।
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम् ॥ ४० ॥
त्वयि तिष्ठति सन्त्रासात्पलायनपरायणा ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिन्दम ॥ ४१ ॥
सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम ।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥ ४२ ॥
एतच्छ्रुत्वापि राधेयो दुर्योधनवचो महान् ।
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥ ४३ ॥
पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर ।
अद्य हन्मि रणे सर्वान्पञ्चालान्पाण्डुभिः सह ॥ ४४ ॥
वाहयाश्वान्नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः ।
एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम् ।
सज्यं कृत्वा महाराज संगृह्य च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

हुई॥३३।३४॥आपके पुत्र बारम्बार उसे रोकने लगे, परन्तु सैनिकगण चारों ओर से पीड़ित होने के कारण निराश हो चुके थे, इसलिए नहीं रुके। योद्धाओं के भागने पर आपकी भय-विह्वल सेना व्याकुल हो उठी। महारथी कर्ण बारम्बार "ठहरो-ठहरो" कहकर सबको रोकते थे, तथापि पाण्डवों की मार से पीड़ित होने के कारण कोई पीछे फिरकर देखता भी नहीं था॥३५।३८॥ दुर्योधन की सेना को चारों ओर भागते देखकर विजयी पाण्डव लोग आनन्द में घोर सिंहनाद करने लगे। अब दुर्योधन ने समीप आकर स्नेहपूर्ण स्वर से कहा—हे कर्ण! देखो, तुम्हारे विद्यमान् रहते ही पाण्डवों और पाञ्चालों ने मेरी सेना को इस प्रकार पीड़ित कर रक्खा है कि भय के मारे कोई ठहरने की हिम्मत नहीं करता। इस समय जो उचित समझो वही करो। हमारे सहस्रों योद्धा, पाण्डवों के बाणों से पीड़ित होकर, भागे जा रहे हैं। वे अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हीं को पुकार रहे हैं॥३९।४२॥ हे महाराज! दुर्योधन के ये वचन सुनकर बली कर्ण उत्साह के साथ मद्रराज से हँसकर कहने लगे—हे शल्य! तुम झटपट मेरे घोड़ों को हाँककर शत्रु-सेना में ले चलो। मेरे बाहुबल, पराक्रम और दिव्य अस्त्रों के प्रभाव को देखो। मैं इस समय रण में सम्पूर्ण पाण्डव-सेना और पाञ्चालों को मार डालूँगा। शल्यसे यों कहकर प्रतापी कर्ण अपने विजय धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर, उसे बारम्बार हाथ से माँजकर, सत्य

सन्निवार्य च योधान्स सत्येन शपथेन च ।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥ ४७ ॥
ततो राजन्सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन्महामृधे ॥ ४८ ॥
ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४९ ॥
हाहाकारो महानासीत्पञ्चालानां विशाम्पते ।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥ ५० ॥
निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः ॥ ५१ ॥
प्राकम्पत मही राजन्निहतैस्तैः समन्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत्पाण्डवानां महद्बलम् ॥ ५२ ॥
कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहञ्शत्रून्नरव्याघ्र शुशुभे स परन्तपः ॥ ५३ ॥
ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह ।
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ॥ ५४ ॥
चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः ।
तेषां तु क्रोशतामासीद्भीतानां रणमूर्द्धनि ॥ ५५ ॥
धावतां च ततो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः ।
आर्तनादो महांस्तत्र भूतानामिव सम्प्लवे ॥ ५६ ॥

की शपथ देते हुए अपने योद्धाओं को लौटाने लगे। कर्ण के आश्वासन से सब सेना लौट पड़ी। तब अद्वितीय योद्धा कर्ण ने, परशुराम के दिये हुए, दिव्य भार्गवास्त्र का प्रयोग किया॥४३।४७॥ उस अस्त्र के प्रभाव से कर्ण के धनुष से एक साथ सहस्रों, लाखों, करोड़ों, कङ्कपत्र-युक्त तीक्ष्ण बाण निकलकर पाण्डव-सेना पर गिरने लगे। चारों ओर बाणों के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं था। कर्ण के प्रचण्ड भार्गवास्त्र से पीड़ित पाण्डव-सेना में हाहाकार मच गया॥४८।५०॥ सहस्रों हाथी, घोड़े, रथी और पैदल मर-मरकर चारों ओर गिरने और पृथ्वीतल को कँपाने लगे। पाण्डवों की सेना में हलचल मच गई, सब लोग व्याकुल हो उठे। बिना धुएँ की अग्नि के समान प्रचण्ड तेजस्वी कर्ण अकेले ही सब शत्रुओं को बाणवर्षा से भस्म कर रहे थे। वन में अग्नि लगने पर हाथियों के समूह किसी ओर मार्ग न पाकर, जैसे व्याकुल होते हैं वैसे ही कर्ण के बाणोंसे मारे जा रहे पाञ्चालगण और चेदिगण मोहित होकर मरने और आर्तनाद करनेलगे॥५१।५४॥ पाण्डव सेना के योद्धा भय के मारे अपनी शक्ति भर चिल्लाने लगे। प्राण बचाने के निमित्त इधर-उधर भाग रहे लोगों का आर्तनाद प्रलयकाल के कोलाहल के समान सुनाई पड़ रहा था। किसी के मर जाने पर उसके कुटुम्बी जैसे एकत्र होकर रोने-कलपने और चिल्लाते हैं वैसे ही, अस्त्र के तेज से नष्ट हो रही, सेना के लोग चिल्ला

वध्यमानांस्तु तान्दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ ५७ ॥
ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥
प्रेतराजपुरे यद्वत्प्रेतराजं विचेतसः ।
श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥ ५९ ॥
अथाब्रवीद्वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥ ६० ॥
पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् ।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥ ६१ ॥
सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥ ६२ ॥
अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान्प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णं प्रति पलायितुम् ॥ ६३ ॥
जीवन्प्राप्नोति पुरुषः सङ्ख्ये जयपराजयौ ।
मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ॥ ६४ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम् ।
धनञ्जयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिन्दमम् ॥ ६५ ॥
कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षतः ।
तं दृष्ट्वाश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि ॥ ६६ ॥

रहे थे। पाञ्चालों की दुर्दशा देखकर और आर्तनाद सुनकर पशु पक्षी आदि तिर्यक् योनि के जीव भी भयभीत हो गये॥५५।५७॥ कर्ण के प्रहार से मर रहे सृञ्जयगण अपनी रक्षा के निमित्त, बारम्बार अर्जुन और श्रीकृष्ण को वैसे ही पुकार रहे थे जैसे यमपुर में यातना भोगनेवाले प्राणी विह्वल होकर प्रेतराज को पुकारते हैं। कर्ण के बाणों से मारे जा रहे उन सैनिकों का आर्तनाद और पुकार सुनकर तथा महाघोर भार्गवास्त्र को देखकर अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! इस अमोघ भार्गवास्त्र का प्रभाव देखिए। इस अस्त्र को कोई किसी प्रकार व्यर्थ नहीं कर सकता॥५८।६१॥ वह देखिए, महापराक्रमी कर्ण क्रुद्ध होकर, यम के समान, रनभूमि में दारुण कर्म कर रहा है। वह बारम्बार रथ के घोड़ों को हँकवाकर मेरी ओर देख रहा है, मानों मुझे युद्ध के निमित्त बुला रहा हो। मैं इस समय कर्ण के सम्मुख से टल भी नहीं सकता। यदि मनुष्य का जीवन रहता है तो युद्ध में उनकी जय पराजय होती है; किन्तु जो मर गया वह जय कहाँ से प्राप्त करेगा?॥६२।६४॥ हे महाराज! अर्जुन के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे धनञ्जय! कर्ण के प्रहारों से धर्मराज अत्यन्त पीड़ित और जर्जर हो गये हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम पहले चलकर उन्हें देख लो और आश्वासन दो, फिर लौटकर कर्ण को मारना॥ हे महाराज! महात्मा कृष्ण चाहते थे कि इधर कर्ण

एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद् द्रष्टुमिच्छन्युधिष्ठिरम् ।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशाम्पते ॥ ६७ ॥
ततो धनञ्जयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात्केशवाज्ञया ॥ ६८ ॥
गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया ।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत्तत्र चाग्रजम् ॥ ६९ ॥
युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत ।
दुःसहं वज्रिणा सङ्ख्ये पराजित्य गुरोः सुतम् ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मराजशोधने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

अन्यान्य वीरों से लड़कर थक जायेंगे और उधर अर्जुन थोड़ा सा विश्राम कर लेंगे, तब उन्हें कर्ण के मारने में सुगमता होगी । यह सोचकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पहले धर्मराज से मिल आने का अनुरोध किया ॥६५।६७॥ अब वे अर्जुन को लेकर युधिष्ठिर से मिलने के निमित्त चल दिये । धर्मराज को देखने की उत्कण्ठा के मारे अर्जुन श्रीकृष्ण से, बार-बार तेजी से रथ हाँकनेके निमित्त कहने लगे । इसी समय अश्वत्थामा के साथ उनका पूर्व-वर्णित युद्ध छिड़ गया । इन्द्र भी जिन्हें सहज में परास्त नहीं कर सकते, उन अश्वत्थामा को हराकर वीर अर्जुन सेना के भीतर धर्मराज को खोजने लगे । किन्तु वे तो वहाँ थे ही नहीं, इस कारण कहीं नहीं देख पड़े॥६८।७०॥

—:०:—

कर्णपर्व का चौसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६४ ॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

सञ्जय उवाच—द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा कृत्वा महद्दुष्करं शूरकर्म ।
आलोकयामास ततः स्वसैन्यं धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ १ ॥
अयुध्यमानान्पृतनामुखस्थाञ्शूरः शूरान्हर्षयन्सव्यसाची।
पूर्वप्रहारैर्मथितान्प्रशंसन्स्थितान्महात्मा स रथाननेकान् ॥ २ ॥
अपश्यमानस्तु किरीटमाली युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम् ।
उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा ॥ ३ ॥
भीमसेन उवाच—अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत्कथञ्चन ॥ ४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय ॥ ६५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! महाबली और शत्रुओं के निमित्त दुर्द्धर्ष अर्जुन वीर अश्वत्थामा को परास्त करने के पश्चात्, दुष्कर कर्म करके, अपनी सेना को चारों ओर देखने लगे । सेना के अग्र भाग में स्थित होकर युद्ध कर रहे शूरों को हर्षित करके अर्जुन ने उन वीरों की प्रशंसा की और उन योद्धाओंका साहस बढ़ाया जो पहले शत्रुओंके आक्रमण से पीड़ित होने पर भी अब तक अपने रथों पर बैठे हुए समर-भूमि में डटे थे । इस प्रकार अपने योद्धाओं को शुश्रूषा के साथ स्थापित करके, चारों ओर अपने बड़े भाई युधिष्ठिर को न देखकर, वीर अर्जुन भीमसेन के समीप पहुँचे और उनसे पूछने लगे कि इस समय

अर्जुन उवाच—तस्माद्भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य ।
नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ॥ ५ ॥
यः सम्प्रहारैर्निशितैः पृषत्कैर्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी ।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत्॥६॥
स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः सङ्ख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः ।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम स्थास्याम्यहं शत्रुगणान्निरुद्ध्य ॥ ७ ॥
भीमसेन उवाच—त्वमेव जानीहि महानुभाव राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य ।
अहं हि यद्यर्जुन यास्यमित्रा वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः॥ ८ ॥
ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं संशप्तकाः प्रत्यनीकस्थिता मे ।
एतानहत्वाद्य मया न शक्यमितोऽपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात्॥ ९ ॥
अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः स्ववीर्यमासाद्य कुरुप्रवीर ।
संशप्तकान्प्रति योत्स्यामि सङ्ख्ये सर्वानहं याहि धनञ्जय त्वम्॥ १० ॥
तद्भीमसेनस्य वचो निशम्य सुदुष्करं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
संशप्तकानीकमसह्यमेकः सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥ ११ ॥
उवाच नारायणमप्रमेयं कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य ।
श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्त्वस्तदाहवे सत्यवचो महात्मा ॥
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन्प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ १२ ॥

महाराज कहाँ हैं॥१।२॥भीमसेन ने कहा—हे धनञ्जय! कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिर यहाँ से शिविर को चले गये हैं। शायद ही वे जीवित हों॥४॥यह सुनकर अर्जुन ने कहा—हे महानुभाव! आप शीघ्र ही धर्मराज का समाचार लेने के निमित्त यहाँ से जाइए। अवश्य ही कर्ण ने बाणों से उनको गहरी चोट पहुँचाई है,तभी वे रणभूमि छोड़कर शिविर को गये हैं। पहले युद्ध में भी कर्णने बाणोंसे उन्हें पीड़ित किया था,परन्तु वे विजय की प्रतीक्षा करते हुए रणभूमि में तब तक उपस्थित रहे जब तक आचार्य नहीं मारे गये।किन्तु आज कर्ण ने उन्हें जीवन-संशय की अवस्था को पहुँचा दिया है तभी वे रणभूमि में नहीं ठहर सके। आप उनका वृत्तान्त जानने के निमित्त शीघ्र जाइए। मैं यहाँ, युद्ध करके, शत्रुओं को रोकूँगा॥५।७॥ भीमसेन ने कहा—हे अर्जुन! तुम्हीं धर्मराज का वृत्तान्त जानने के निमित्त जाओ। यदि मैं इस समय यहाँ से हट जाऊँगा तो शत्रु पक्ष के वीरगण मुझे डरा हुआ जानकर मेरा उपहास करेंगे। अर्जुन ने फिर भीमसेन से कहा—हे भाई! इस समय मेरे सम्मुख वीर संशप्तकगण युद्ध करने को खड़े हैं। इन्हें मारे बिना मैं शत्रुओं के मध्य से कहीं नहीं जा सकता॥८।९॥ अर्जुन के यों कहने पर भीमसेन ने उत्तर दिया कि हे अर्जुन! मैं अकेला ही अपने बल वीर्य के आश्रय संशप्तकों से युद्ध करता हूँ। तुम युधिष्ठिर को देखने के निमित्त निर्भय होकर चले जाओ। सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! तब महावीर अर्जुन युधिष्ठिर को देखने के निमित्त, उनके समीप, जाने के विचार से बोले—हे वासुदेव!धर्मराजको देखनेके निमित्त मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा हूँ। इसलिए आप झटपट इस सैन्य-

अर्जुन उवाच—चोदयाश्वान्हृषीकेश विहायैतद्बलार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ १३ ॥

सञ्जय उवाच—ततो हयान्सर्वदाशार्हमुख्यः प्रचोदयन्भीममुवाच चेदम् ।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम यास्याम्यहं जहि पार्थारिसङ्घान् ॥ १४ ॥

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन्वाजिभिर्गरुडोपमैः ॥ १५ ॥
प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिन्दमम् ।
सन्दिश्य चैनं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥ १६ ॥
ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ राजानमासाद्य शयानमेकम् ।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ १७ ॥
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं क्षेमिणं पुरुषर्षभम् ।
मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥ १८ ॥
तावभ्यनन्दद्राजापि विवस्वानश्विनाविव ।
हते महासुरे जम्भे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥ १९ ॥
मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परन्तपः ॥ २० ॥

सञ्जय उवाच—अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ ।
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥ २१ ॥
महासत्त्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
हतमाधिरथिं मेने सङ्ख्ये गाण्डीवधन्वना ॥ २२ ॥

सागर को छोड़कर, घोड़ों को हाँकते हुए, मुझे वहीं ले चलिए॥१०।१३॥अब अप्रमेय प्रभावशाली श्रीकृष्ण, गरुड़ के समान वेग से चलनेवाले, घोड़ों को हाँकते हुए भीमसेन से कहने लगे—हे वीर! संशप्तकगण को मारना और रोकना तुम्हारे निमित्त कोई आश्चर्य की बात नहीं है। [illegible] जाते हैं, तुम शत्रुओं को चौपट करो॥१४॥भीमसेन को शत्रु सेना के विरुद्ध खड़ा करके और युद्ध करने की आज्ञा देकर कृष्णचन्द्र बड़े वेग से घोड़ों को हाँकते हुए राजा युधिष्ठिर के शिविर की ओर चले॥१५।१६॥वहाँ पहुँचकर दोनों वीर रथ से उतर पड़े। राजा युधिष्ठिर अकेले लेटे हुए थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने, समीप जाकर, उनको पाद प्रणाम किया॥१७॥धर्मराज को क्षेमपूर्वक देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने आनन्द से वैसे ही उनका अभिनन्दन किया जैसे अश्विनीकुमार इन्द्र का अभिनन्दन करें। राजा युधिष्ठिर ने भी, सूर्य के समीप उपस्थित अश्विनीकुमारों के समान, उन दोनों वीरों को देखकर—कर्ण को मारा गया समझकर—प्रसन्नतापूर्वक वैसे ही उनका अभिनन्दन किया जैसे जम्भासुर के मारे जाने पर बृहस्पति ने इन्द्र और विष्णु का अभिनन्दन किया था॥१८।२०॥सञ्जय कहते हैं—[illegible], विशाल लाल लोचनोंवाले, वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन के सब अङ्गों में बाण लगे हुए थे, [illegible] था। उन्हें ऐसे [illegible] में देखकर युधिष्ठिर [illegible]

तावभ्यनन्दत्कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नं पूजयन्भरतर्षभ ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरं प्रति कृष्णार्जुनागमे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

हो गया कि कर्ण अब इस लोक में नहीं है। तब प्रसन्नचित्त युधिष्ठिर मुसकराकर, अभिनन्दन करते हुए, अर्जुन और श्रीकृष्णसे मधुर वचन कहने लगे॥२१।२३॥

—.०—

कर्णपर्व का पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६५ ॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनञ्जय ।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १ ॥
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः ।
आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २ ॥
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च ।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ३ ॥
अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम् ।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम् ॥ ४ ॥
त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे ।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥ ५ ॥
दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम् ।
अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ६ ॥
अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च ।
पातालमिव गम्भीरं सुहृदां नन्दिवर्धनम् ॥ ७ ॥
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे ।
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ ८ ॥

छाछठवाँ अध्याय ॥ ६६ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण और अर्जुन! मैं हृदय से तुम दोनों का स्वागत करता हूँ। इस समय तुम्हें देखकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ।महारथी कर्ण को मारकर तुम कुशल से लौट आये,इसमें अधिक आनन्द की बात और क्या होगी? लोक-प्रसिद्ध योद्धा कर्ण युद्धस्थल में विषैले सर्प के समान, सब शस्त्रों के युद्ध में निपुण, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों के आगे चलनेवाला, कवच के समान उनका रक्षक और उनके निमित्त कल्याण-स्वरूप था। धनुष हाथ में लिए महारथी वृषसेन और सुषेण नाम के दोनों पुत्र उसकी रक्षा कर रहे थे॥१।३॥परशुराम ने उसे अस्त्र सिखलाकर दुर्जय बना दिया था। वह पृथ्वी के योद्धाओं में अग्रगण्य,नरश्रेष्ठ और प्रसिद्ध रथी था। शत्रुओं को और उनकी सेना को मारनेवाला कर्ण, सदा दुर्योधन का हित चाहता था और हमें दुःख देने को प्रस्तुत रहता था। इन्द्र सहित सब देवता भी महायुद्ध में उसे परास्त नहीं कर सकते थे॥४।६॥वह तेज और बल में अग्नि तथा वायु के तुल्य था। उस पाताल

घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ ।
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥ ९ ॥
तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी ।
हतावाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः ।
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ११ ॥
एताञ्जित्वा महावीर्यः कर्णः शत्रुगणान्बहून् ।
जितवान्मां महाबाहो यतमानो महारणे ॥ १२ ॥
अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान्बहु ।
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः ॥ १३ ॥
भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनञ्जय ।
बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत्सोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥
त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद्भीतो धनञ्जय ।
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥ १५ ॥
तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनञ्जय ।
आत्मनो मरणं यातो वाध्रीणस इव द्विपः ॥ १६ ॥
तस्यायमगमत्कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम् ।
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत् ॥ १७ ॥

के समान गम्भीर (अर्थात् अथाह पराक्रमी), सुहृदों के निमित्त आनन्दवर्धन और मेरे मित्रों के निमित्त मृत्युरूप कर्ण को महायुद्ध में मारकर, असुर नाशन देवताओं के समान तुम दोनों सकुशल मेरे समीप लौट आये, यह बड़े हर्ष और सौभाग्य की बात है। हे अच्युत और हे अर्जुन! उसने आज, सब प्रजा के संहार के निमित्त उद्यत कुपित काल के समान निर्भय होकर मुझसे घोर युद्ध किया था। धृष्टद्युम्न और सात्यकि के सम्मुख ही कर्ण ने मेरी ध्वजा काट डाली, घोड़े मार डाले और मेरे आसपास के चक्ररक्षकों सहित सारथी को भी मार गिराया। इस प्रकार धृष्टद्युम्न, सात्यकि, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और सब पाञ्चालगण उसका कुछ नहीं कर सके। इन सबको और अन्य बहुत से वीरों को जीतकर कर्ण ने यत्न करके मुझे जीत लिया। इतना ही नहीं, उसने मेरा पीछा करके अनेक कठोर वचन भी बारम्बार कहे॥१०।१३॥ अधिक क्या कहूँ, भीमसेन के ही प्रभाव से मैं इस समय जीवित बच गया हूँ। कर्ण ने जो मेरा अपमान किया है उसे मैं उसके मारे जाने पर ही सह सकता हूँ। हे धनञ्जय! कर्ण के भय से मैं तेरह वर्ष न तो रात्रि को सोया और न दिन को ही घड़ी भर के निमित्त सुखी हुआ। उससे द्वेष और शत्रुता होने का विचार करके सदा मेरा हृदय चिन्ता से जलता रहा। मैं वाध्रीणस पक्षी* के समान युद्ध में कर्ण के हाथ से अपनी मृत्यु जानता था। मैं चिरकाल से इस चिन्ता में चूर था कि युद्ध में कर्ण

*यह पक्षी पितृकर्म में याज्ञिकों के हाथ से मारा जाता है। इसकी गर्दन काली, सिर लाल और पंख सफेद होते हैं।

जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्ययम् ।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १८ ॥
यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद्भीतो धनञ्जय ।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥ १९ ॥
सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना ।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥ २० ॥
को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत्पुनः ।
ममैवं धिक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना ॥ २१ ॥
न प्राप्तपूर्वं यद्भीष्मात्कृपाद् द्रोणाच्च संयुगे ।
तत्प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥ २२ ॥
स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलं तथा ।
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २३ ॥
शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे ।
रामतुल्यस्तथास्त्रेण स कथं वै निषूदितः ॥ २४ ॥
महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः ।
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २५ ॥
पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण विशाम्पते ।
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया ॥ २६ ॥
धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन ।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥

भय दिखाई दे रहा है॥१४।१८॥हे अर्जुन ! कर्ण के भय से मैं जहाँ जाता था वहीं मुझे अपने आगे कर्ण देख पड़ता था। समर में न हटनेवाले कर्ण ने आज युद्ध में, रथ और घोड़े नष्ट करके, मुझे जीत लिया और दया करके किसी प्रकार जीवित छोड़ दिया। युद्ध में भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यने जो मेरी दुर्दशा नहीं की थी वही आज उसने कर डाली॥१९।२२॥ हे अर्जुन ! कर्ण ने जब मेरी दुर्दशा कर डाली तब मुझे जीवन या राज्य से क्या लाभ ? मैं तुमसे पूछता हूँ, बतलाओ, कर्ण कुशल-पूर्वक जीवित तो नहीं है ? किस प्रकार तुमने कर्ण को मारा है वह वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझसे कहो। युद्ध में इन्द्र के तुल्य बली, पराक्रम में यमराज के समान, अस्त्रविद्या में परशुराम के सदृश कर्ण को तुमने किस प्रकार मारा ? वह महारथी कहलाता था, सब प्रकार के युद्धों में निपुण था और धनुर्धर वीरों में श्रेष्ठ था॥२३।२५॥धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों ने तुम्हारे वध के निमित्त ही सदा कर्ण का सम्मान और सत्कार किया था। उसी कर्ण को तुमने आज किस प्रकार मारा ? दुर्योधन के सब योद्धा रण में कर्ण के हाथ से तुम्हारी मृत्यु समझते थे। हे अर्जुन! उसी कर्ण को युद्धमें तुमने किस प्रकार मारा ? ॥२६।२८॥हे वीर ! रुरु को मारनेवाले सिंह के समान युद्ध कर रहे उस दीप्त-होलवाले कर्ण का सिर उसके मित्रों के सामने तुमने कैसे काट डाला ? कर्ण युद्ध

स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः ।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २८ ॥
युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम् ।
त्वया पुरुषशार्दूल सिंहेनेव यथा रुरोः ॥ २९ ॥
यः पर्युपासीत्प्रदिशो दिशश्च त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन् ।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं स हीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः॥ ३० ॥
त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा ।
प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३१ ॥
यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः ।
स शूरमानी समरे समेत्य कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ॥ ३२ ॥
रौक्मं वरं हस्तिगजाश्वयुक्तं रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापःकच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे॥ ३३ ॥
योऽसौ सदा शूर मदेन मत्तो विकत्थते संसदि कौरवाणाम् ।
प्रियोऽस्यर्थं तस्य सुयोधनस्य कच्चित्स पापो निहतस्त्वयाद्य॥ ३४ ॥
कच्चित्समागम्य धनुःप्रयुक्तैस्त्वत्प्रेषितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः ।
शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः कच्चिद्भग्नौ धार्तराष्ट्रस्य बाहू ॥ ३५ ॥
योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये दुर्योधनं हर्षयन्दर्पपूर्णः ।
अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहात्कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ॥ ३६ ॥

के निमित्त तुमको चारों ओर ढूँढता फिरता था और तुम्हें दिखा देनेवाले पुरुष को रत्नों से भरा हुआ छकड़ा और छः हाथियों से युक्त रथ देने की प्रतिज्ञा कर रहा था। उस कर्ण को तुमने युद्ध में कैसे मारा! तुम्हारे हाथ से मारा गया दुरात्मा कर्ण कङ्कपत्र-युक्त तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न होकर रणभूमि में पड़ा है न! उसको मारकर तुमने आज मेरा प्रिय किया है न! ॥२९।३१॥ वीरता का अभिमान रखनेवाले सूतपुत्र को समर में तुमने मार डाला है न! पापमति कर्ण सदा तुमसे युद्ध करने की लाग-डाँट रखता था और आज भी तुम्हें दिखानेवाले पुरुष को हाथी घोड़े बैल आदि से युक्त सुवर्ण-निर्मित रथ और राज्य देना चाहता था। उस पापबुद्धि कर्ण को तुम मार चुके हो न! अपनी शूरता के मद में मत्त होकर कर्ण कौरवों की सभा में, दुर्योधन की प्रसन्नता के निमित्त, सदा अपनी प्रशंसा किया करता था। उस पापी को मारकर तुम निष्कण्टक हो चुके हो न! ॥३२।३४॥ तुमसे युद्ध करके, तुम्हारे धनुष से छूटे हुए लोहमय बाणों से छिन्न-भिन्न होकर, वीरमानी कर्ण पृथ्वी पर पड़ा हुआ है न! क्या तुमने दुर्योधन की भुजाएँ तोड़ डालीं! जो दर्पयुक्त कर्ण राजाओं के मध्य दुर्योधन के हर्ष को बढ़ाता हुआ मोहवश कहा करता था कि मैं सब पाण्डवों को मारूँगा, मैं ही अर्जुन को मारनेवाला हूँ, उस कर्ण को तुमने मार डाला है न! पापी कर्ण ने कुरुसभा के मध्य हमारी प्रिया द्रौपदी से रूक्ष और कठोर वचन कहे थे। [कि "हे द्रौपदी! पाण्डवों को धिक्कार है, वे तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, इसलिए आज तुम बिना पति की हो; क्योंकि रक्षा करने के कारण

नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचिद्यावत्स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः।
व्रतं तस्यैतत्सर्वदा शक्रसूनो कच्चित्त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः॥ ३७ ॥
योऽसौ कृष्णामब्रवीद् दुष्टबुद्धिः कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये ।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे सुदुर्बलान्पतितान्हीनसत्त्वान्॥ ३८ ॥
योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे नाहं हत्वा सह कृष्णेन पार्थम्।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः कच्चिच्छेते शरसम्भिन्नगात्रः ॥ ३९ ॥
कच्चित्संग्रामो विदितो वै तवायं समागमे सृञ्जयकौरवाणाम्।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं कच्चित्त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा॥ ४० ॥
कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धेर्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः ।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं कायात्प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन्॥ ४१ ॥
यत्तन्मया बाणसमर्पितेन ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर ।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४२ ॥
यद्दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मानुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित्त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य॥ ४३ ॥
यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत्सभामध्ये कौरवाणां समक्षम्।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य सङ्ख्ये त्वया हतः सूतपुत्रो ह्यमर्षी॥ ४४ ॥
यः सूतपुत्रः प्रहसन्दुरात्मा पुराब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनीमपीह कच्चित्स हतस्त्वयाद्य ॥ ४५ ॥

ही पति 'पति' कहलाता है", सो उसे मारकर उसके उन वचनों को तुमने मिथ्या कर दिखाया है न ? हमारे घोर शत्रु और शत्रुओं के निमित्त दुर्जय महाबली कर्ण ने, दुर्योधन के प्रयोजन का पूर्ण करने का निश्चय करके, बारह वर्ष से यह उग्र व्रत धारण कर रक्खा था कि समर में उग्रपराक्रमी अर्जुन को मारे बिना पाँव नहीं धुलाऊँगा। आज रण में उसे मारकर तुमने उसके उक्त व्रत को तोड़ दिया है न?॥३५।३७॥ दुष्ट-बुद्धि कर्ण ने कौरवों की सभा में सब महारथियों और राजाओं के सम्मुख द्रौपदी से कहा था कि हे कृष्णे ! तुम इन दुर्बल, पतित पाण्डवों को छोड़कर अन्य पति क्यों नहीं कर लेतीं ! दुष्ट कर्ण ने भी यह प्रतिज्ञा की थी कि कृष्ण सहित अर्जुन को मारे बिना नहीं लौटूँगा। वह पापमति सूतपुत्र तुम्हारे बाणों से कट-कुटकर रणशय्या में शयन कर रहा है न ? हे अर्जुन ! क्या तुमको मालूम है कि कौरवों और सृञ्जयों के समागम में, उनके सम्मुख, युद्ध करते समय दुष्ट कर्ण ने मेरी यह दशा कर दी है ? क्या उस दुरात्मा को मारकर तुम इस समय मेरे समीप आये हो?॥३८।४०॥ तुमने गाण्डीव धनुष से छूटे हुए प्रज्वलित अग्नि-तुल्य उग्र बाणों से काटकर उस मन्दमति कर्ण का कुण्डल-शोभित तेजस्वी मस्तक क्यों धड़ से पृथक् कर दिया है ? कर्ण जिस समय बाणवर्षा से मुझे पीड़ित कर रहा था उस समय, उसके मारने के निमित्त, मैंने तुम्हें स्मरण किया था। सो कर्ण को मारकर मेरे उस विचार को तुम पूर्ण कर चुके हो न ? कर्ण का आश्रय प्राप्त करके ही दुर्योधन को इतना दर्प था। कि वह हम लोगों को भस्म कर देना चाहता था और हमें उपेक्षा की दृष्टि से देखता था। तुमने पराक्रम-पूर्वक कर्ण को मारकर दुर्योधन को आज निराश्रय

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमः पृथिव्यां पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः।
सङ्ख्यायमानोऽर्धरथः स कच्चित्त्वया हतोऽद्याधिरथिर्महात्मन्॥ ४६ ॥
अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम।
हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण इति ब्रुवन्प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन॥ ४७ ॥
ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य कथं त्वया निहतः सूतपुत्रः ।
अनुध्याये त्वां सततं प्रवीर वृत्रे हते सौ भगवानिवेन्द्रः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

कर दिया है न?॥४१।४३॥कुरुसभा में, कौरवों के सम्मुख, कर्ण ने हम लोगों को षण्ड (खोखले) तिल कहा था। उस क्रोधी कर्ण को युद्ध में क्या तुम मार आये हो? शकुनि के साथ हुई द्यूत-क्रीड़ा में हारी गई द्रौपदी को बलपूर्वक सभा में लाने के निमित्त जिस दुरात्मा ने मुसकराकर दुःशासन को अनुमति दी थी, उस कर्ण को तुमने मार डाला है न? रथातिरथ गणना के समय पृथ्वी भर के शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पितामह भीष्म ने कर्ण को अर्धरथी बतलाया था; इसी पर बिगड़कर नीचमति कर्ण ने उनका तिरस्कार किया था। वह दुरात्मा कर्ण क्या तुम्हारे बाणों से मर गया है? ॥४४।४६॥हे अर्जुन! मेरे हृदय में कर्ण के किये अपमान की क्रोधाग्नि, उसके कपटाचार की वायु से सुलगती हुई, सदा से जल रही है। इस समय तुम यह कहकर कि मैंने कर्ण को मार डाला, क्या उसे शान्त करोगे? कर्ण का मारा जाना मेरे निमित्त अत्यन्त प्रार्थनीय है। इसलिए शीघ्र बतलाओ, तुमने उसे किस प्रकार मारा? हे वीर! वृत्रासुर के मारे जाने पर विष्णु ने जैसे इन्द्र के आगमन की प्रतीक्षा की थी वैसे ही मैं अब तक तुम्हारी बाट जोह रहा था॥४७।४८॥

कर्णपर्व का छाछठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६६ ॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

सञ्जय उवाच—तद्धर्मशीलस्य वचो निशम्य राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा ।
उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १ ॥
अर्जुन उवाच—संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन्।
आशीविषाभान्खगमान्प्रमुञ्चन्द्रौणिः पुरस्तात्सहसाभ्यतिष्ठत्॥ २ ॥
दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव ममस्तसेनावरणेऽभ्यतिष्ठत् ।
तेषामहं पञ्चशतानि हत्वा ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३ ॥

सड़सठवाँ अध्याय ॥ ६७ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे राजेन्द्र! अमित वीर्यशाली विजयी अर्जुन, कर्ण पर कुपित युधिष्ठिर के वचन सुनकर उनसे कहने लगे—हे महाराज! [कर्ण को जब मालूम हुआ कि द्रोणाचार्य मारे गये और समुद्र में अथाह जल में टूटकर डूब रही नाव की सी कौरवों की दशा हो रही है, वे व्याकुल होकर शत्रुओं को जीतने के विषय में निरुत्साह हो रहे हैं, तब वह महातेजस्वी वीर सगे भाई के समान धृतराष्ट्र के पुत्रों को उस सङ्कट से उबारने के विचार से रथ पर बैठकर युद्ध करने के निमित्त वेग से मेरी ओर चला।] मैं उस समय संशप्तक सेना से युद्ध कर रहा था। हे राजेन्द्र! कौरव-सेना के अग्रगामी अश्वत्थामा विषैले सर्पतुल्य बाण बरसाते हुए एकाएक मेरे सम्मुख आये। मेरी ध्वजा के अग्र भाग को देखकर उन्होंने असंख्य रथियों को मुझ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। मेघ के समान गरज रहे मेरे रथ को देखकर वे चारों ओर से मुझे घेरने लगे। मैंने स्फूर्ति से उनमें से पाँच सौ वीरों को मार डाला और अश्वत्थामा के सम्मुख अपना रथ पहुँचा।

स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः समभ्ययात्सिंहमिव द्विपेन्द्रः।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥ ४ ॥
ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम्।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कैर्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः ॥ ५ ॥
अष्टागवामष्टशतानि बाणान्मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य ।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणैर्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥ ६ ॥
ततोऽपरान्बाणसङ्घाननेकानाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।
ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नैस्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ७ ॥
नैवाददानं न च सन्दधानं जानीमहे कतरेणास्यतीति ।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत् ॥ ८ ॥
तस्याततं मण्डलमेव सज्यं प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः ।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ॥ ९ ॥
अहं हि तं त्रिंशता वज्रकल्पैः समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ।
क्षणात्श्वावित्समरूपो बभूव समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः ॥ १० ॥
स विक्षरन्रुधिरं सर्वगात्रै रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाभिभूतान्सैनिकानां प्रबर्हान्सो प्रपश्यन्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ११ ॥
ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य कर्णस्त्वरन्मामुपायात्प्रमाथी ॥ १२ ॥

दिया॥१।२॥महावीर अश्वत्थामा ने अपने योग्य कार्य किया; जैसे उन्मत्त गजराज सिंह के सम्मुख पहुँचे वैसे उन्होंने मेरा सामना किया और मारे जा रहे कौरवों को सङ्कट से बचाने की चेष्टा की। उस समय अश्वत्थामा के साथ, आठ-आठ बैलों से खींचे जानेवाले, आठ छकड़े बाणों से भरे थे। अश्वत्थामा ने वे सब बाण बरसाकर मुझे और श्रीकृष्ण को पीड़ित किया। आँधी जैसे मेघों को छिन्न-भिन्न करे वैसे मैं भी अश्वत्थामा के बाणों के टुकड़े-टुकड़े करने लगा॥४।६॥ उस समय वीर अश्वत्थामा अपना अभ्यास, शिक्षा कौशल, बाहुबल और प्रयत्नपूर्वक अस्त्र-निपुणता दिखाकर, वर्षाकाल में काली घटा जैसे जलधारा बरसाती है वैसे, मुझ पर बाण बरसाने लगे। वे मेरे किस ओर हैं, कब बाण निकालते हैं, कब धनुष पर चढ़ाते हैं और कब छोड़ते हैं, कितनी दूरी पर हैं, यह कुछ भी मुझे नहीं जान पड़ता था, ऐसी फुर्ती से वे दिखला रहे थे। यही देख पड़ता था कि अलातचक्र के समान उनका धनुष मण्डलाकार घूम रहा है और बाण सब दिशाओं को व्याप्त कर रहे हैं। अश्वत्थामा ने, अस्त्रबल के प्रभाव से, कान तक खींच-खींचकर अनेक बाण मारे। मुझे और श्रीकृष्ण को उन्होंने पाँच-पाँच तीक्ष्ण बाण मारे॥७।९॥ तब मैंने तुरन्त वज्रतुल्य तीस बाण मारकर अश्वत्थामा को पीड़ित किया। मेरे बाण शरीर में लगने से वे शल्लकी (स्याही) के समान जान पड़ने लगे। बहुत घायल होने के कारण उनके शरीर से रक्त बह चला। अपने योद्धाओं को पीड़ित, रुधिर से तर और अपने को विह्वल देखकर अश्वत्थामा फुर्ती से कर्ण की रथ सेना में घुस गये। कर्ण ने जब देखा

तान्सूदयित्वाहमपास्य कर्णं द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः ।
सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव ॥ १३ ॥
मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् ।
रथांस्तु तान्सप्तशतान्निमग्नांस्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म ॥ १४ ॥
न चाप्यभूत्क्लान्तमनाः स राजन्यावन्नास्मान्दृष्टवान्सूतपुत्रः ।
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेतमश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च ॥ १५ ॥
मन्ये कालमपयानस्य राजन्क्रूरात्कर्णात्तेऽहमचिन्त्यकर्मन् ।
मया कर्णस्यास्त्रमिदं पुरस्ताद्युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम् ॥ १६ ॥
न ह्यन्ययोद्धा विद्यते सृञ्जयानां महारथं योऽद्य सहेत कर्णम् ।
शैनेयो मे सात्यकिश्चक्ररक्षौ धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन् ॥ १७ ॥
युधामन्युश्चोत्तमौजाश्च शूरौ पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ ।
रथप्रवीरेण महानुभाव द्विपत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण ॥ १८ ॥
समेत्याहं सूतपुत्रेण सङ्ख्ये वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य ।
योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्रमस्मिन्संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य ॥ १९ ॥
आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय ।
महर्षभस्येव मुखं प्रपन्नाः प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति ॥ २० ॥
षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः ।
कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ॥ २१ ॥

कि मेरे प्रहार से उसकी सेना नष्ट हो रही है, योद्धा लोग डरकर भाग खड़े हुए हैं और हाथियों तथा घोड़ों के समूह तितर-बितर हो रहे हैं, तब वह पचास श्रेष्ठ रथियों के साथ स्फूर्ति से मेरे सम्मुख आ गया। उन सब योद्धाओं को मारकर मैं, केवल कर्ण को छोड़कर, आपको देखने के निमित्त शीघ्रता से यहाँ चला आया हूँ। हे महाराज! सिंह को देखकर जैसे गायों के झुण्ड व्याकुल होते हैं वैसे ही पाञ्चालगण कर्ण को देखकर डर रहे हैं॥१०।१३॥सब प्रभद्रकगण कर्ण के सम्मुख जाकर मानो मृत्यु के मुख में पहुँच गये हैं। कर्ण ने प्रभद्रकगण के सात सौ रथी योद्धाओं को मार डाला है। वास्तव में कर्ण ने जब तक हमारी सेना पर आक्रमण नहीं किया था तब तक वह शान्त नहीं हुआ था। हे राजेन्द्र! मैंने सुना कि पहले वीर अश्वत्थामा ने तीक्ष्ण बाणों से आपको घायल किया, उसके पश्चात् कर्ण से आपकी मुठभेड़ हो गई। मुझे निश्चय हो गया कि आप कर्ण को छोड़कर शिविर को चले आये हैं। हे राजेन्द्र! मैंने अब से पहले कर्ण का ऐसा अद्भुत पराक्रम नहीं देखा था॥१४।१६॥इस समय सृञ्जय-सेना में ऐसा कोई महारथी नहीं है जो कर्ण के वेग और पराक्रम को सह सके। सागर के भारी मच्छ के समान कर्ण के ग्रास में पड़कर प्रभद्रकगण नष्ट हो रहे हैं। छः सहस्र राजकुमार स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से कर्ण का सामना कर रहे हैं। हे नरेन्द्र! इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही मैं इस समय कर्ण को मारूँगा। महावीर सात्यकि और धृष्टद्युम्न मेरे रथ के पहियों की रक्षा करें। वीरवर युधामन्यु और उत्तमौजा पीछे से मेरे रथ की रक्षा करते रहें

प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या कष्टा याता तामहं राजसिंह ।
आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥ २२ ॥
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सकुलयुद्धे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

॥१७।१९॥मैं यदि आज पराक्रम प्रकट करके युद्ध कर रहे कर्ण को भाई-बन्धुओं सहित न मारूँ तो हे राजसिंह ! मेरी वही कष्टदायक गति हो जो अङ्गीकार या प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवाले लोगों की होती है । मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे रण में विजयलाभ का आशीर्वाद दें । अब मुझे रण में जाने की आज्ञा दीजिए; क्योंकि भीमसेन को अकेला पाकर धृतराष्ट्र के पुत्र पीड़ित कर रहे होंगे । आज मैं सम्पूर्ण सेना सहित कर्ण को और अपने अन्य सब शत्रुओं को अवश्य मारूँगा॥२०।२३॥

कर्णपर्व का सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथ अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच—श्रुत्वा कर्णं कल्पमुदारवीर्यं क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः ।
धनञ्जयं वाक्यमुवाच चेदं युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १ ॥
विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु ।
भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम् ॥ २ ॥
स्नेहस्त्वया पार्थकृतः पृथाया गर्भं समाविश्य यथा न साधु ।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३ ॥
यत्तद्वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम् ।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः कर्णाद्भीतो भीमसेनं विहाय ॥ ४ ॥
इदं यदि द्वैतवनेऽप्यवक्ष्यः कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति ।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे कृत्यानुपैष्याम तथैव पार्थ ॥ ५ ॥
मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य न वै कृतं तच्च तथैव वीर ।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्टाः ॥ ६ ॥

अड़सठवाँ अध्याय ॥ ६८ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण के बाणों की वेदना से विह्वल धर्मराज युधिष्ठिर ने जब कर्ण को सकुशल जीवित सुन पाया तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे — हे अर्जुन ! तुम्हारे सैनिक कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर भाग रहे हैं और तुम भी कर्ण को मारने में असमर्थ होने के कारण भय से विह्वल हो, रण में अकेले भीमसेन को छोड़कर, भाग आये हो ! आर्या कुन्ती के गर्भ से तुमने व्यर्थ जन्म लिया॥१।२॥ तुमने द्वैत वन में मेरे आगे प्रतिज्ञा की थी कि मैं अकेला ही सूतपुत्र को मारूँगा । अब वह तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ चली गई ? कर्ण के भय से भीम को अकेले छोड़कर तुम यहाँ कैसे चले आये ? तुम यदि द्वैत वन में पहले ही मुझसे कह देते कि मैं कर्णसे युद्ध नहीं कर सकूँगा, कर्ण को नहीं मार सकूँगा, तो मैं पहले ही उसका उचित प्रबन्ध करता अथवा इस प्रकार लड़कर राज्य लेने का विचार ही न करता । उस समय [दुर्योधन की आधी सेना सहित कर्ण के वध की।प्रतिज्ञा करके और शत्रुओं के मध्य में लाकर क्यों तुमने मुझको इस

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि पिपासवो बहुकल्याणमिष्टम्।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः॥ ७ ॥
प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण संछादितं गरलमिवाशनेन ।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्॥ ८ ॥
त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं त्वामन्वजीविष्म धनञ्जयाशया।
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं तन्नः सर्वान्नरके त्वं न्यमज्जः ॥ ९ ॥
यत्तत्पृथां वागुवाचान्तरिक्षे सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धौ ।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं सर्वाञ्छूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति॥ १० ॥
अयं जेता खाण्डवे देवसङ्घान्सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः।
अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकयानयं कुरून्राजमध्ये निहन्ता ॥ ११ ॥
अस्मात्परो नो भविता धनुर्धरो नैनं भूतं किञ्चन जातु जेता।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२ ॥
कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः॥ १३ ॥
तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता॥ १४ ॥

प्रकार उठाकर कठिन पृथ्वी पर पटक दिया॥१८॥ तुमने यों कर्ण से विमुख होकर फलने के समय फूले हुए वृक्ष को मानों काट डाला—हमारी बहुत दिनों की आशा पर पानी फेर दिया! मैं अत्यन्त राज्य का लोभी था, इसी कारण मांस से लिपटी हुई वंसी जैसे मछली का सर्वनाश करती है, अथवा खाने के पदार्थ में मिला हुआ विष जैसे प्राण हर लेता है, वैसे ही तुम्हारी बातों में फँसकर राज्य लेने के प्रयत्न ने मेरा सर्वनाश कर दिया। हे मूढ़! ठीक समय पर बोया गया बीज जैसे मेघ की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं आज तक तुमसे राज्य प्राप्त करने की आशा लगाये हुए था। तुमने इस प्रकार धोखा देकर मुझे बड़े ही असमञ्जस में—नरक में—डाल दिया॥७।९॥हे मन्द-मति अर्जुन! जब तुम सात दिन के थे तब आकाश-वाणी हुई थी कि "हे कुन्ती! यह इन्द्र के अंश से उत्पन्न बालक अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करेगा। यह महाबली बालक देवताओं को और सब प्राणियों को खाण्डव-दाह के समय परास्त करेगा। यह वीर मद्र, कलिङ्ग, केकेय आदि देशों के वीरों को और युद्ध में सामना करनेवाले दैत्यों तथा राक्षसों को मारेगा। यह दिग्विजय में पृथ्वी-मण्डल को, कौरवों और अपने सजा-तीयों को जीतेगा। इससे बढ़कर कोई धनुर्धर योद्धा अब नहीं उत्पन्न होगा। कोई भी प्राणी इसे नहीं जीत सकेगा। यह सब विद्याओं में पारङ्गत होगा और चाहेगा तो सब प्राणियों को अपने वश में कर लेगा ॥१०।१२॥अदिति के गर्भ से उत्पन्न उपेन्द्र के समान यह बालक तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। यह वीर बालक कान्ति में चन्द्रमा के समान, वेग में वायु के तुल्य, क्षमा में पृथ्वी सा और स्थिरता में सुमेरु पर्वत के सदृश होगा। यह प्रताप में अग्नि सा, ऐश्वर्य में कुबेर सा, तेज में सूर्य सा, शूरता में इन्द्र सा और बल-वीर्य में भगवान् विष्णु सा होगा। यह वंश का नाम बढ़ानेवाला पुत्र तुम्हें आनन्दित करेगा, स्वजनों को विजयी बनावेगा और शत्रुओं को नाश करने के

प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या कष्टा याता तामहं राजसिंह ।
आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥ २२ ॥
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

॥१७।१९॥मैं यदि आज पराक्रम प्रकट करके युद्ध कर रहे कर्ण को भाई-बन्धुओं सहित न मारूँ तो हे राजसिंह ! मेरी वही कष्टदायक गति हो जो अङ्गीकार या प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवाले लोगों की होती है । मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे रण में विजयलाभ का आशीर्वाद दें । अब मुझे रण में जाने की आज्ञा दीजिए, क्योंकि भीमसेन को अकेला पाकर धृतराष्ट्र के पुत्र पीड़ित कर रहे होंगे । आज मैं सम्पूर्ण सेना सहित कर्ण को और अपने अन्य सब शत्रुओं को अवश्य मारूँगा॥२०।२३॥

कर्णपर्व का सड़सठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६७ ॥

अथ अष्टषष्टितमोऽध्याय ॥ ६८ ॥

सञ्जय उवाच—श्रुत्वा कर्णं कल्यमुदारवीर्यं क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः ।
धनञ्जयं वाक्यमुवाच चेदं युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥ १ ॥
विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु ।
भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम् ॥ २ ॥
स्नेहस्त्वया पार्थकृतः पृथाया गर्भं समाविश्य यथा न साधु ।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३ ॥
यत्तद्वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम् ।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः कर्णाद्भीतो भीमसेनं विहाय ॥ ४ ॥
इदं यदि द्वैतवनेऽप्यवक्ष्यः कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति ।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे कृत्यानुपैष्याम तथैव पार्थ ॥ ५ ॥
मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य न वै कृतं तच्च तथैव वीर ।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्ठाः ॥ ६ ॥

अड़सठवाँ अध्याय ॥ ६८ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण के बाणों की वेदना से विह्वल धर्मराज युधिष्ठिर ने जब कर्ण को सकुशल जीवित सुन पाया तब वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगे — हे अर्जुन ! तुम्हारे सैनिक कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर भाग रहे हैं और तुम भी कर्ण को मारने में असमर्थ होने के कारण भय से विह्वल हो, रण में अकेले भीमसेन को छोड़कर, भाग आये हो । आर्या कुन्ती के गर्भ से तुमने व्यर्थ जन्म लिया॥१।३॥ तुमने द्वैत वन में मेरे आगे प्रतिज्ञा की थी कि मैं अकेला ही सूतपुत्र को मारूँगा । अब वह तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ चली गई ? कर्ण के भय से भीम को अकेले छोड़कर तुम यहाँ कैसे चले आये ? तुम यदि द्वैत वन में पहले ही मुझसे कह देते कि मैं कर्णसे युद्ध नहीं कर सकूँगा, कर्ण को नहीं मार सकूँगा, तो मैं पहले ही उसका उचित प्रबन्ध करता अथवा इस प्रकार लड़कर राज्य लेने का विचार ही न करता । उस समय [दुर्योधन की आधी सेना सहित कर्ण के वध की]प्रतिज्ञा करके और शत्रुओं के मध्य में लाकर क्यों तुमने मुझको इस

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि यियासवो बहुकल्याणमिष्टम्।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः॥ ७ ॥
प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण संछादितं गरलमिवाशनेन ।
अनर्थकं मे दर्शितवानासि त्वं राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्॥ ८ ॥
त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं त्वामन्वजीविष्म धनञ्जयाशया।
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं तन्नः सर्वान्नरके त्वं न्यमज्जः ॥ ९ ॥
यत्त्वपृथां वागुवाचान्तरिक्षे सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धौ ।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं सर्वाञ्छूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति॥ १० ॥
अयं जेता खाण्डवे देवसङ्घान्सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः।
अयं जेता मद्रकालिङ्गकेकयानयं कुरूत्राजमध्ये निहन्ता ॥ ११ ॥
अस्मात्परो नो भविता धनुर्धरो नैनं भूतं किञ्चन जातु जेता।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२ ॥
कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः॥ १३ ॥
तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता॥ १४ ॥

प्रकार उठाकर कठिन पृथ्वी पर पटक दिया॥४-६॥ तुमने यों कर्ण से विमुख होकर फलने के समय फूले हुए वृक्ष को मानों काट डाला—हमारी बहुत दिनों की आशा पर पानी फेर दिया ! मैं अत्यन्त राज्य का लोभी था, इसी कारण मांस से लिपटी हुई बंसी जैसे मछली का सर्वनाश करती है, अथवा खाने के पदार्थ में मिला हुआ विष जैसे प्राण हर लेता है, वैसे ही तुम्हारी बातों में फँसकर राज्य लेने के प्रयत्न ने मेरा सर्वनाश कर दिया । हे मूढ़ ! ठीक समय पर बोया गया बीज जैसे मेघ की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही मैं आज तक तुममे राज्य प्राप्त करने की आशा लगाये हुए था । तुमने इस प्रकार धोखा देकर मुझे बड़े ही असमञ्जस में—नरक में—डाल दिया॥७-९॥हे मन्दमति अर्जुन ! जब तुम सात दिन के थे तब आकाशवाणी हुई थी कि "हे कुन्ती ! यह इन्द्र के अंश से उत्पन्न बालक अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करेगा । यह महाबली बालक देवताओं को और सब प्राणियों को खाण्डव दाह के समय परास्त करेगा । यह वीर मद्र, कलिङ्ग, केकय आदि देशों के वीरों को और युद्ध में सामना करनेवाले दैत्यों तथा राक्षसों को मारेगा । यह दिग्विजय में पृथ्वी-मण्डल को, कौरवों और अपने सजातीयों को जीतेगा । इससे बढ़कर कोई धनुर्द्धर योद्धा अब नहीं उत्पन्न होगा । कोई भी प्राणी इसे नहीं जीत सकेगा । यह सब विद्याओं में पारङ्गत होगा और चाहेगा तो सब प्राणियों को अपने वश में कर लेगा ॥१०-१२॥अदिति के गर्भ से उत्पन्न उपेन्द्र के समान यह बालक तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हुआ है । यह वीर बालक कान्ति में चन्द्रमा के समान, वेग में वायु के तुल्य, क्षमा में पृथ्वी सा और स्थिरता में सुमेरु पर्वत के सदृश होगा । यह प्रताप में अग्नि सा, ऐश्वर्य में कुबेर सा, तेज में सूर्य सा, शूरता में इन्द्र सा और बल वीर्य में भगवान् विष्णु सा होगा । यह वंश का नाम बढ़ानेवाला पुत्र तुम्हें आनन्दित करेगा, स्वजनों को विजयी बनावेगा और शत्रुओं को नाश करने के

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच ।
एवंविधं तच्च नाभूत्तथा च देवापि नूनमनृतं वदन्ति ॥ १५ ॥
तथा परेषामृषिसत्तमानां श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम् ।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य न त्वा जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् ॥ १६ ॥
पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति ।
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य मौर्ख्यात्तु तन्नावबुद्धं मयासीत् ॥ १७ ॥
तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं यच्छत्रुवर्गं नरकं प्रविष्टः ।
तदैव वाच्योऽस्मि ननु त्वयाहं न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथञ्चित् ॥ १८ ॥
ततो नाहं सृञ्जयान्केकयांश्च समानयेयं सुहृदो रणाय ।
एवं गते किञ्च मयाद्य शक्यं कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ॥ १९ ॥
तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य ये चापि मां योद्धुकामाः समेताः ।
धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ॥ २० ॥
मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये ये चाप्यन्ये योद्धुकामाःसमेताः ।
यदि स्म जीवेत्स भवेन्निहन्ता महारथानां प्रवरो रथोत्तमः ।
तत्राभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ न चास्मि गन्ता समरे पराभवम् ॥ २१ ॥

निमित्त उत्पन्न हुआ है।" शतशृङ्ग पर्वत के शिखर पर, सब तपस्वियों के आगे, अन्तरिक्ष में ये वचन सुन पड़े थे, किन्तु ये वास्तव में वैसे नहीं हुए। इससे जान पड़ता है, देवता भी मिथ्या बोलते हैं॥१३।१५॥हे अर्जुन! अन्य ऋषि भी सदा तुम्हारी प्रशंसा किया करते थे। [उनके वचन सुनकर ही मुझे आशा थी कि तुम दुर्योधन को परास्त करोगे और] इसी से मैं दुर्योधन से नहीं दबा, मैंने युद्ध छेड़ दिया। मुझे नहीं मालूम था कि तुम कर्ण से डरकर रण से भाग खड़े होगे। त्वष्टा (विश्वकर्मा) के बनाये, शब्दहीन अक्ष और चक्र से युक्त, कपिध्वज रथ पर तुम बैठे थे, दिव्य खड्ग, सुवर्णचित्रित ताल प्रमाण गाण्डीव धनुष बाँधे हुए थे, तुम्हारे सारथी भी नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण थे। फिर भी तुम कर्ण से डरकर रण से भाग आये! पहले दुर्योधन कहा करता था कि युद्ध में अर्जुन कभी महावीर कर्ण के सम्मुख नहीं ठहर सकता। मैंने मूर्खतावश उसके कहने पर विश्वास नहीं किया। उसी का फल यह है कि आज मैं सन्तप्त हो रहा हूँ। हाय! मैं शत्रुओं के चङ्गुल में फँसकर नरक को जाऊँगा। तुमको पहले ही कह देना था कि मैं कर्ण से युद्ध नहीं कर सकूँगा॥१६।१८॥पहले कह देते तो मैं सृञ्जय, कैकेय आदि अपने इष्ट मित्रों को युद्ध का निमन्त्रण न देता। किन्तु अब तो कोई उपाय नहीं है। अब मैं कर्ण, दुर्योधन और युद्ध करने के निमित्त उपस्थित अन्य सब शत्रुओं को दबाने के लिए क्या करूँ? हे श्रीकृष्ण! मेरे जीवन को धिक्कार है कि कर्ण ने मुझे जीतकर छोड़ दिया! दुर्योधन आदि सब कौरवों और युद्ध के निमित्त उपस्थित सब राजाओं के सम्मुख कर्ण ने मेरा यह अपमान किया है। [एक भीमसेन ही मेरा रक्षक है, जिसने रण के मध्य महाभय से मुझे छुड़ाया और कुपित होकर तीक्ष्ण बाण से कर्ण को पीड़ित किया। गदापाणि रक्त चर्चित भीमसेन ने —प्रलयकाल में काल के समान समरभूमि में विचरकर, प्राणों का मोह छोड़कर, सब कौरवदल के प्रधान वीरों से युद्ध किया और उन्हें हराया। इस समय भी कौरवों के मध्य भीमसेन बार-बार गरज रहे हैं।] हे अर्जुन! यदि इस समय वीर

अथापि जीवेत्समरे घटोत्कचस्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः ।
मम ह्यभाग्यानि पुराकृतानि पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ॥ २२ ॥
तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना ।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः ॥ २३ ॥
आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षेत्स बान्धवः स्नेहयुक्तं सुहृच्च ।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥ २४ ॥
त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् ।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम् ॥ २५ ॥
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं कर्णाद्भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ ।
धनुश्च तत्केशवाय प्रयच्छ यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य ॥ २६ ॥
तदा हनिष्यत्केशवः कर्णमुग्रं मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ।
राधेयमेतं यदि नाद्यशक्तश्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय ॥ २७ ॥
प्रयच्छान्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको वा नरेन्द्रः ।
अस्मानेवं पुत्रदारैर्विहीनान्सुखाद्भ्रष्टान्राज्यनाशाच्च भूयः ॥ २८ ॥
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे पापैर्जुष्टं नरके पाण्डवेय ।
मासेऽपतिष्यः पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः ॥ २९ ॥
यत्ते श्रेयो राजपुत्राभविष्यन्न चेत्संग्रामादपयानं दुरात्मन् ।
धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यमसङ्ख्येयान्बाणगणांश्च धिक्ते ।
धिक्ते केतुं केसरिणः सुतस्य कृशानुदत्तं च रथं च धिक्ते ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरक्रोधवाक्ये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

अभिमन्यु होता या राक्षसेन्द्र घटोत्कच की मृत्यु न हुई होती तो कर्ण के हाथ में मेरा कभी ऐसा अपमान न होता और न मुझे रण से विमुख ही होना पड़ता ॥१९।२२॥ वास्तव में यह सब मेरे भाग्य का ही दोष है, पहले के किये पापों का फल है, जो तृण-तुल्य तुच्छ तुमको अपना सहायक समझकर मैंने यों धोखा खाया और कर्ण ने किसी असमर्थ अनाथ के समान मुझे अपमानित किया । जो कोई आपत्ति से अपने को छुड़ावे वही बान्धव, स्नेही और सुहृत् है—यह ऋषियों का कथन है और यही सज्जनों द्वारा आचरित धर्म है॥२३। २५॥ तुम यदि केशव को गाण्डीव धनुष देकर स्वयं उनके सारथी बनते तो मरुद्गण सहित वज्रपाणि इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही श्रीकृष्ण अवश्य कर्ण को मारकर ही लौटते॥२५।२७॥ हे धनञ्जय ! तुम यदि रण में विचर रहे कर्ण को नहीं मार सकते तो अपने से अधिक बली और अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण किसी राजा को गाण्डीव धनुष दे दो । तब फिर लोग हमें पापाचारी पुरुषों के योग्य अगाध नरक में निपतित, स्त्री पुत्र विहीन और राज्यसुख से भ्रष्ट नहीं देख पावेंगे । हे दुरात्मन्! इस प्रकार कर्ण के आगे से भाग आने की अपेक्षा यदि पाँचवें महीने तुम कुन्ति के गर्भ से गिर जाते या कुन्ति के गर्भ से तुम्हारा जन्म ही न होता तो बहुत अच्छा था । और अधिक तुम से क्या कहूँ, तुम्हारे गाण्डीव को धिक्कार है ! तुम्हारे असंख्य तीक्ष्ण और अमोघ बाणों को धिक्कार है ! तुम्हारे अग्निदत्त कपिध्वज रथ को भी धिक्कार है ! तुम्हारे भुज-बल को धिक्कार है ॥२७।३०॥

—०—

अथ ऊनसप्ततमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सञ्जय उवाच—युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥ १ ॥
तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत ॥ २ ॥
नहि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद्धनञ्जय ।
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ॥ ३ ॥
अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥
स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले च सम्प्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ॥ ५ ॥
न ते पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति ।
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात्किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥ ६ ॥
कस्माद्भवान्महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः ।
तत्त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥ ७ ॥
परामृशसि यत्क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ।
एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मे योऽभिचोदयेत् ॥ ९ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय ॥ ६९ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे कुरुकुल तिलक ! राजा युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर अर्जुन को क्रोध चढ़ आया । उन्होंने कटुभाषी भाई को मार डालने के विचार से अपनी खड्ग पर हाथ डाला । वासुदेव ने क्रुद्ध अर्जुन की चेष्टा देखकर कहा—हे अर्जुन ! यह क्या, खड्ग क्यों निकाल रहे हो ? कुछ कहो तो । यहाँ पर कोई युद्ध करने के निमित्त उपस्थित नहीं देख पड़ता । भीमसेन ने धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को रोक रक्खा है; वे यहाँ आये नहीं हैं, तुम खड्ग से किसे मारना चाहते हो ?॥१।३॥ यहाँ तो तुम राजा युधिष्ठिर को देखने आये हो। राजा को कुशलपूर्वक देख लिया । धर्मराज को सकुशल देखकर इस हर्ष के समय तुम्हें क्रोध क्यों आ गया ? यहाँ तो ऐसा कोई नहीं देख पड़ता, जिसका तुम वध करो। फिर किस पर प्रहार करना चाहते हो ? तुम्हारे चित्त को यह विभ्रम कैसा उपस्थित हुआ है ? तुम अकारण ही खड्ग क्यों निकाल रहे हो ? हे अद्भुत पराक्रमी ! इसी से मैं पूछता हूँ कि तुम क्या करना चाहते हो ? क्रुद्ध होकर खड्ग निकालने का कारण क्या है?॥४।८॥ श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर क्रुद्ध सर्प के समान फुफकार रहे अर्जुन, युधिष्ठिर की ओर देखकर, कहने लगे—हे श्रीकृष्ण ! आप जानते हैं कि मेरी यह प्रतिज्ञा

भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम ।
तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥ १० ॥
समक्षं तव गोविन्द न तत्क्षन्तुमिहोत्सहे ।
तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ॥ ११ ॥
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम् ।
एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ १२ ॥
सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः ।
विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥ १३ ॥
किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन्काल उपस्थिते ।
त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥ १४ ॥
तत्तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान् ।

सञ्जय उवाच — धिग्धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत्पुनः ॥ १५ ॥

कृष्ण उवाच — इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ।
कालेन पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद्भवानगात् ॥ १६ ॥
नहि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनञ्जय ।
यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः ॥ १७ ॥
अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै ।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १८ ॥
अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपास्थिताः ।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम् ॥ १९ ॥

है कि जो कोई मुझसे और किसी के हाथ में गाण्डीव धनुष देने को कहेगा उसका सिर मैं काट डालूँगा। हे जनार्दन! आपके सम्मुख ही महाराज ने मुझसे और किसी को गाण्डीव धनुष देने के निमित्त कहा है। मैं इसे क्षमा नहीं कर सकता॥८।११॥इसलिए हे नरश्रेष्ठ! इस धर्मात्मा राजा को ही मारकर मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँगा। इसी लिए मैंने खड्ग हाथ में लिया है कि धर्मराज को मारकर,प्रतिज्ञा का पालन करके,शोकशून्य और सन्तापहीन होऊँगा। हे गोविन्द! अथवा इस समय आपकी सम्मति में मुझे क्या करना चाहिए? क्योंकि आप इस जगत् के सब भूत-भविष्य वृत्तान्त को जानते हैं। आप जो कहेंगे वही मैं करूँगा॥१२।१५॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! अर्जुन के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण बारम्बार धिक्-धिक् कहकर अर्जुन से कहने लगे—हे धनञ्जय! इस समय तुम्हारा क्रोध देखकर और बातें सुनकर मुझे मालूम पड़ता है कि तुमने बूढ़ों की संगति नहीं की—बड़े-बूढ़ों से उपदेश नहीं प्राप्त किया। तुम्हारा यह क्रोध असङ्गत और अस्वाभाविक है। धर्म के अङ्गों को जाननेवाले लोग कभी ऐसा नहीं कर सकते। तुम धर्मभीरु होकर भी धर्म के यथार्थ तत्त्व को अच्छी प्रकार नहीं जानते। आज ऐसा कार्य में मूर्ख उद्यत देखने से तुम मुझे मूढ़ जान पड़ते हो। हे अर्जुन! जो व्यक्ति अकर्तव्य को कर्तव्य और कर्तव्य

अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये ।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥ २० ॥
नहि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथञ्चन ।
श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ २१ ॥
अविज्ञानाद्भवान्यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित् ।
प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे ॥ २२ ॥
प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम ।
अनृतां वा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात्कथञ्चन ॥ २३ ॥
स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम् ।
हन्याद्भवान्नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव ॥ २४ ॥
अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद ।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः ॥ २५ ॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च ।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥ २६ ॥
त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनैव कृतं पुरा ।
तस्माद्धर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात्कर्म व्यवस्यसि ॥ २७ ॥
स गुरुं पार्थ कस्मात्त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि ।
असम्प्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥
इदं धर्मरहस्यं च तव वक्ष्यामि पाण्डव ।
यद् ब्रूयात्तव भीष्मो हि पाण्डवो वा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥

अकर्तव्य जानता है वह अकर्तव्य और कर्तव्य के संमिश्रण को न जाननेवाला व्यक्ति नराधम है। धर्म का अनुसरण करनेवाले बुद्धिमान् धर्म के समष्टि और व्यष्टि रूप को जानकर कार्य करते हैं। तुम्हें उन बहुदर्शी पण्डितों (विद्वानों) का निश्चय नहीं मालूम। उस निश्चय को न जाननेवाला पुरुष तुम्हारी ही तरह कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय में मोह को प्राप्त होता है॥१५।२०॥कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्णय सहज नहीं है। शास्त्र के द्वारा ही कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान होता है। तुमको उसका बोध नहीं है। तुम अपने को धर्मज्ञ समझकर, अज्ञानवश होकर, धर्मरक्षा के निमित्त प्राणि-वधरूप महापातक में डूबने को उद्यत हो। इसी से कहना पड़ता है कि न तो तुम्हें शास्त्र का ज्ञान है और न तुमने बड़े-बूढ़ों का शास्त्रसङ्गत उपदेश ही सुना है। प्राणिवध करके धर्म का पालन करना, मेरी सम्मति में, वृथा और अधर्म है। मैं अहिंसा को ही श्रेष्ठ धर्म मानता हूँ। मेरी सम्मति में असत्य चाहे बोल ले, परन्तु प्राणी की हिंसा करना कदापि उचित नहीं॥२१।२३॥हे नरश्रेष्ठ! तुम प्रतिज्ञा-पालन के निमित्त किसी साधारण मूर्ख पुरुष के समान अपने ज्येष्ठ भ्राता राजा और धर्मज्ञ धर्मराज का वध कैसे करना चाहते हो? जो युद्ध न कर रहा हो, गुरु हो, अवध्य हो, विमुख हो, भाग रहा हो, शरण में आया हो, हाथ जोड़ रहा हो, असावधान और विपत्तिग्रस्त हो, उसे मारना सज्जनों की दृष्टि में सर्वथा निन्दनीय है। तुम्हारे अग्रज धर्मराज में ये सब बातें विद्यमान् हैं॥२५।२६॥

विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी ।
तत्ते वक्ष्यामि तत्त्वेन निबोधैतद्धनञ्जय ॥ ३० ॥
सत्यस्य वदिता साधुर्न सत्याद्विद्यते परम् ।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥
भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
यत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३२ ॥
विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ३३ ॥
सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
तत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ।
तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३४ ॥
भवेत्सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम् ।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ३५ ॥
किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः ।
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ॥ ३६ ॥
किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः ।
सुमहत्प्राप्नुयात्पापमापगास्विव कौशिकः ॥ ३७ ॥
अर्जुन उवाच—आचक्ष्व भगवन्नेतद्यथा विन्द्याम्यहं तथा ।
बलाकस्यानुसम्बन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥ ३८ ॥

तुमने अपने जिस सत्य का उल्लेख किया है उसे बाल-सुलभ मूर्खता के कारण ही तुमने धारण किया था और इस समय उसका पालन करने के निमित्त जो अधर्म तुम करना चाहते हो, वह भी तुम्हारी मूर्खता ही है। हे पार्थ! तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता को मारने को जो उद्यत हो उसका कारण यही है कि तुम धर्म की सूक्ष्म गति को नहीं जानते। मैं तुम्हें धर्म का गूढ़ रहस्य बतलाता हूँ। इस धर्म के रहस्य को पितामह भीष्म, राजा युधिष्ठिर, विदुर, यशस्विनी गान्धारी और देवी कुन्ती ही जानती और कह सकती हैं। तुम मन लगाकर सुनो॥२७।३०॥साधु जन सत्य ही बोलते हैं। सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है। किन्तु उस सत्य का स्वरूप, मेरी समझ में, अत्यन्त सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय है। कहीं पर सत्य न बोलकर मिथ्या बोलना ही उचित होता है। जहाँ पर सत्य मिथ्या के समान अधर्मजनक और मिथ्या सत्य के समान धर्मजनक होता है वहाँ वह सत्य ही मिथ्या है और मिथ्या ही सत्य है। इसके अतिरिक्त विवाह के अवसर पर, रति-क्रीड़ा के समय, प्राण-सङ्कट और सर्वस्व हरे जानेके समय(उसके बचानेके निमित्त)और ब्राह्मणके निमित्त [illegible] पाँच अवसरों पर झूठ बोलनेसे पाप नहीं होता॥३१।३३॥सर्वस्व छिना जाता हो तो वहाँ झूठ बोलना चाहिए,क्योंकि वहाँ सत्य मिथ्याके समान और मिथ्या सत्यके समान माना गया है। जो कोई सत्य और मिथ्याके इस विशेष मर्म को न जानकर सत्य बोलता है वह मूढ़ है। सत्य और मिथ्या के इस तत्त्व को जाननेवाला ही यथार्थ धर्मज्ञ है। अत्यन्त

वासुदेव उवाच—पुरा व्याधोऽभवत्कश्चिद्बलाको नाम भारत ।
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान्हन्ति न कामतः ॥ ३९ ॥
वृद्धौ च मातापितरौ बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान् ।
स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ॥ ४० ॥
स कदाचिन्मृगं लिप्सुर्नाभ्यविन्दन्मृगं क्वचित् ।
अपः पिबन्तं ददृशे श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ४१ ॥
अदृष्टपूर्वमपि तत्सत्त्वं तेन हतं तदा ।
अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ॥ ४२ ॥
अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम् ।
विमानमगमत्स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥ ४३ ॥
तद्भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन ।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयम्भुवा ॥ ४४ ॥
तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम् ।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥ ४५ ॥
कौशिकोऽप्यभवद्विप्रस्तपस्वी न बहुश्रुतः ।
नदीनां सङ्गमे ग्रामाददूरात्स किलावसत् ॥ ४६ ॥

दारुण कर्म करनेवाला पुरुष भी जङ्गली अन्ध पशु के मारनेवाले बलाक व्याध के समान धर्मज्ञ होने के कारण महापुण्य का भागी होता है और धर्मेच्छु मूढ़ पुरुष नदी-तटवासी कौशिक ब्राह्मण के समान पाप का भागी होता है॥३४।३७॥अर्जुन ने कहा—हे केशव! मुझे बलाक व्याध और कौशिक ब्राह्मण का वृत्तान्त विस्तार से सुनाइए, जिससे मैं इस सत्य धर्म के सूक्ष्म तत्त्व को अच्छी प्रकार समझ जाऊँ॥३८॥महात्मा श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! पूर्व समय में एक ईर्ष्या रहित अपने धर्म में निरत बलाक नाम का व्याध था जो, चित्त प्रसन्न करने के निमित्त नहीं किन्तु, स्त्री पुत्र परिवार के पालन मात्र के निमित्त मृगों का वध करता था। वह उस मृग मांस से अपने वृद्ध माता पिता और अन्य आश्रित जनों का पालन किया करता था॥ [सबको बाँटकर आप भी भोजन करता था]॥३९।४०॥एक दिन वह व्याध शिकार करने गया तो उसे कहीं पर कोई भी मृग नहीं मिला। अन्त को एक स्थान पर उसे एक अन्धा और सूँघकर ही देखनेवाला पशु मिल गया। जैसे विचित्र पशु को उसने पहले कभी नहीं देखा था। वह पशु जल पी रहा था। यह देखकर उस व्याध ने उसे मार डाला। उस अन्धे पशु के मरते ही आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और अप्सराओं के रमणीय गाने बजाने का शब्द अन्तरिक्ष में सुन पड़ने लगा। उसी समय व्याध को स्वर्ग ले जाने के निमित्त एक दिव्य विमान आया॥४१।४३॥हे अर्जुन! उस पशु ने तप करके ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया था और वह वन में सब प्राणियों का संहार करता था। इसीलिए ब्रह्मा ने उस दुष्ट पशु को अन्धा बना दिया था। सब प्राणियों के संहार करने के निमित्त कृतनिश्चय उस दुष्ट पशु को मारने के कारण जो पुण्य प्राप्त हुआ उससे निष्ठुर कर्म करनेवाला वह व्याध स्वर्ग को गया। धर्म का तत्त्व ऐसा ही सूक्ष्म और दुर्बोध है॥४४।४५॥हे अर्जुन! अब दूसरा उपाख्यान सुनो॥ कौशिक नाम के एक शास्त्रज्ञ अल्प तपस्वी ब्राह्मण,

सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद्व्रतम् ।
सत्यवादीति विख्यातः स तदासीद्धनञ्जय ॥ ४७ ॥
अथ दस्युभयात्केचित्तदा तद्वनमाविशन् ।
तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तानमार्गन्त यत्नतः ॥ ४८ ॥
अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम् ।
कतमेन पथा याता भगवन्बहवो जनाः ॥ ४९ ॥
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान्वेत्थ शंस नः ।
स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥ ५० ॥
बहुवृक्षलतागुल्ममेतद्वनमुपाश्रिताः ।
इति तान्ख्यापयामास तेभ्यस्तत्त्वं स कौशिकः ॥ ५१ ॥
ततस्ते तान्समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः ।
तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥ ५२ ॥
गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः ।
यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥ ५३ ॥
वृद्धानपृष्ट्वा सन्देहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति ।
तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥ ५४ ॥
दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति ।
श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥ ५५ ॥

गाँव के समीप ही, नदियों के सङ्गम पर रहते थे । सदा सत्य बोलने का व्रत धारण करने के कारण वे सत्यवादी कहलाते थे । एक दिन कुछ लोग डाकुओं के भय से वहीं वन में जा छिपे । कुपित डाकू, उन्हें खोजते हुए, कौशिक के समीप पहुँचे ॥४६।४८॥ उन्होंने सत्यवादी ब्राह्मण से पूछा कि हे भगवन् ! कुछ मनुष्य इधर आये थे, सो वे किस मार्ग से गये हैं ? आपने देखा हो तो सत्य कह दीजिए । ब्राह्मण देवता कोरे सत्यवादी थे, सत्य-धर्म के सूक्ष्म तत्त्व को नहीं जानते थे । उन्होंने उन्हें डाकू जानकर भी सत्य-पालन के निमित्त सत्य सत्य कह दिया कि हाँ, वे लोग इस वृक्ष लता और झाड़-झङ्खाड़ से परिपूर्ण वन में जा छिपे हैं । बस, उन निष्ठुर डाकुओं ने उनका पता पाकर वन में जाकर सबको मार डाला । सूक्ष्म धर्म को न जानने-वाले सत्यवादी कौशिक ने, मूढ़तावश सत्य बोलकर, लोगों की जो हत्या कराई थी, उसी पाप से उन्हें नरक में जाना पड़ा ॥४९।५३॥ हे धनञ्जय ! जो मनुष्य धर्म का निर्णय स्वयं नहीं कर सकता और अपने से अधिक ज्ञानी पुरुषों से पूछकर अपने धर्म-सम्बन्धी भ्रम को दूर भी नहीं कर लेता वह, कौशिक के ही समान, घोर नरक में गिरता है । धर्म और अधर्म के तत्त्व का निर्णय करने के निमित्त उनके विशेष लक्षण शास्त्र में बताये गये हैं सही, परन्तु कहीं-कहीं बुद्धि और अनुमान के द्वारा भी अत्यन्त दुर्बोध सूक्ष्म धर्म का निर्णय करना पड़ता है । [कुछ लोग केवल सत्य ही को धर्म कहते हैं । मैं इस कथन में कुछ दोष नहीं पाता, क्योंकि यह कथन धर्म के सभी अंशों के निमित्त लागू नहीं है ।] कुछ लोग शास्त्र को ही धर्म के सम्बन्ध में प्रमाण

तत्ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते ।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५६ ॥
यस्स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।
अहिंसार्थाय हिंस्राणां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५७ ॥
धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ५८ ॥
ये न्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित् ।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत्कथञ्चन ॥ ५९ ॥
अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन्नप्यकूजतः ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ॥ ६० ॥
यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत् ।
न तत्फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ६१ ॥
प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये ।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥ ६२ ॥
अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः ।
यस्स्तेनैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ॥ ६३ ॥
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ।
न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथञ्चन ॥ ६४ ॥

बतलाते हैं। मैं इस पर दोषारोपण नहीं करता। शास्त्र में प्रायः सब कुछ बता दिया गया है, फिर भी बहुत सी धर्म की विशेष बातें और अवस्थाएँ ऐसी हैं कि वैसा प्रसङ्ग कभी न आने के कारण उनका निर्णय शास्त्र में नहीं किया गया। वैसी अवस्थाओं में अवश्य ही अनुमान से कार्य सिद्ध कर लेना चाहिए। मैं उसी को धर्म मानता हूँ जो अहिंसा का प्रतिपादक हो; क्योंकि प्राणियों की रक्षा के निमित्त ही धर्म की स्थापना हुई है। जो अभ्युदय-युक्त है वही तो धर्म है॥५४। ५७॥शास्त्र में लिखा है कि धारण अर्थात् रक्षा करनेवाला ही धर्म है। धर्म ही सब प्रजा की रक्षा करता है, अर्थात् जो प्रजा की—सब जीवों की—रक्षा के निमित्त उपयोगी है वही धर्म है। हिंसा न होने देने के निमित्त धर्म के नियम बने हैं। जो लोग अनुचित रीति से किसी का धन छीनना चाहें उन्हें उसका पता न बतलाया जाय, यही निश्चित धर्म है। यदि चुप रहने से चोरों के हाथ से बचाव होता हो तो बोलने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि पापियों को धन देने से वे उसके द्वारा पाप ही करेंगे, जिससे उस धन का स्वामी भी नरक-भागी होगा। और यदि विवशता से उत्तर देना ही पड़े, बिना बोले चोरों को सन्देह हो जाने की आशङ्का हो, तो ऐसे प्रसङ्ग पर झूठ बोलना ही भला है; क्योंकि यहाँ पर मिथ्या ही सत्य है॥५८। ६०॥प्राण-सङ्कट, विवाह, सम्पूर्ण जाति के वध और हँसी-दिल्लगी में झूठ बोलना दूषित नहीं। धर्म के यथार्थ तत्त्व के ज्ञाता पण्डितों का कथन है कि इन अवसरों पर झूठ बोलने से यदि रक्षा होती हो तो झूठ ही बोलना चाहिए; क्योंकि वह मिथ्या ही सत्य है॥६१।६४॥

पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् ।
तस्माद्धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृत भाग्भवेत् ॥ ६५ ॥
एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि ।
यथाधर्मं यथाबुद्धि मयात्र वै हितार्थिना ॥ ६६ ॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः ।

अर्जुन उवाच—यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ॥ ६७ ॥
हितं चैव यथास्माकं तथैतद्वचनं तव ।
भवान्मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च ॥ ६८ ॥
गतिश्च परमा कृष्ण त्वमेव च परायणम् ।
न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥ ६९ ॥
तस्माद्भवान्परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम् ।
अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥
अस्मिंस्तु मम सङ्कल्पे ब्रूहि किञ्चिदनुग्रहम् ।
इदं वा परमत्रैव शृणु हृत्स्थ विवक्षितम् ॥ ७१ ॥
जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं यो मां ब्रूयात्कश्चन मानुषेषु ।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः ७२ ॥
हन्यामहं केशव तं प्रसह्य भीमो हन्यात्तूवरकेति चोक्तः ।
तस्मै राजा प्रोक्तवांस्ते समक्ष धनुर्देहीत्यसकृद्वृष्णिवीर ॥ ७३ ॥

पार्थ! मैंने तुम्हारे हित की इच्छा से धर्म शास्त्र और अपनी बुद्धि के अनुसार संक्षेप में धर्म का विशेष लक्षण तुमको सुना दिया। अब इस लक्षण के अनुसार विचार करके तुम्हीं कहो कि क्या तुम्हें प्रतिज्ञा-रक्षा के निमित्त युधिष्ठिर का वध करना चाहिए?॥६४।६७॥ अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव! आप महाप्राज्ञ और बड़े यशस्वी हैं। आपने जो कुछ कहा वह वास्तव में ठीक और हमारे निमित्त हितकारी है। सुहृद् और शुभचिन्तक को जो कुछ कहना चाहिए वही आपने कहा। आप हमारे माता और पिता के तुल्य हैं। हम आपको अपनी अनन्य गति और एकमात्र आश्रय समझते हैं। त्रिभुवन भर में ऐसा कोई विषय नहीं जिसे आप न जानते हों। इसलिए आप सब धर्म का यथार्थ श्रेष्ठ स्वरूप को भी अच्छी प्रकार जानते हैं। मुझे समझ हो गया कि युधिष्ठिर सर्वथा मेरे लिए अवध्य हैं। अब आप, मेरे मन के भाव को सुनकर, ऐसा उपाय बतलाइए कि युधिष्ठिर का वध न करने पर भी मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या न हो॥६७।७१॥ हे वासुदेव! मैं आपसे कह ही चुका हूँ कि मेरा उपांशु व्रत है कि यदि कोई मनुष्य मुझसे कहेगा कि तुम अपने से अधिक अस्त्रज्ञ वीर्यशाली पुरुष को अपना गाण्डीव धनुष दे दो, तो मैं उसे उसी क्षण मार डालूँगा। और भीमसेन की भी यह प्रतिज्ञा है कि उन्हें जो कोई पेटू कहेगा उसे वे मार डालेंगे। इस समय धर्मराज ने आपके सम्मुख ही बार बार मुझसे कहा कि तुम अपना गाण्डीव धनुष वृष्णिवीर श्रीकृष्ण को अथवा अन्य किसी को दे दो। अब यदि मैं इनको मार डालूँ तो क्षण भर भी इनके बिना जीवित नहीं रह सकूँगा। इसके अतिरिक्त मैंने मैं इनका धर्मराज का

तं हन्यां चेत्केशव जीवलोके स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम् ।
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः ॥ ७४ ॥
यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ भवेत्सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत्पाण्डवोऽहं च कृष्ण तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम् ॥ ७५ ॥
वासुदेव उवाच—राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च कर्णेन सङ्ख्ये निशितैर्बाणसङ्घैः
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर शरैर्भृशं ताडितो युध्यमानः ॥ ७६ ॥
अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् ।
अकोपितो ह्येष यदि स्म सङ्ख्ये कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत्सः ॥ ७७ ॥
जानाति तं पाण्डव एष चापि पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः ।
ततस्त्वमुक्तो भृशरोषितेन राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ ॥ ७८ ॥
नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् ।
तस्मिन्हते कुरवो निर्जिताः स्युरेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥ ७९ ॥
ततो वधं नार्हति धर्मपुत्रस्त्वया प्रतिज्ञार्जुन पालनीया ।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥ ८० ॥
यदा मानं लभते माननार्हस्तदा स वै जीवति जीवलोके ।
यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ८१ ॥
सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम् ।
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरैस्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व ॥ ८२ ॥

मारने का विचार मन में लाकर भी अपने को पापभागी बना लिया है। हे श्रेष्ठ धर्मज्ञ! अब ऐसा उपाय सोच-कर बताइए कि लोगों की समझ में मेरी प्रतिज्ञा भी खण्डित न हो और युधिष्ठिर का और मेरा जीवन भी नष्ट न हो॥७१।७५॥श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! धर्मराज थक गये थे, घायल हो गये थे, अपमान से दुःखित थे और कर्ण ने युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से अत्यन्त पीड़ित करके उन्हें अधीर बना दिया था। इसी से दुःखित धर्मराजने कुपित होकर ऐसे अनुचित वचन कह कर तुम्हारा तिरस्कार किया। ऐसे वचन कहने से इनका प्रयोजन यह भी था कि तुम कर्ण के ऊपर क्रोध करो; क्योंकि ये जानते हैं कि कुपित हुए बिना शायद तुम दुष्ट कर्ण को न मारो। कर्ण के ऊपर युधिष्ठिर अत्यन्त कुपित थे और यह भी जानते थे कि पापमति कर्ण को तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता। इसी से धर्मराज ने तुम्हारे सम्मुख ऐसे कठोर वचन कहकर तुम्हें क्रोधित किया॥७६।७८॥पाप-परायण कर्ण महादुर्द्धर्ष है; वह सदा तुमसे युद्ध करने की डाँट-डाँट दिखाया करता है। आज कौरवगण कर्ण का ही बाज़ी लगाकर युद्ध कर रहे हैं। धर्मराज जानते हैं कि कर्ण को मारने से ही कौरव परास्त हो जायँगे। इसी से युधिष्ठिर वध के योग्य नहीं हैं। किन्तु तुम्हें भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना है। इसलिए मैं तुमको तुम्हारे योग्य ही उपाय बतलाता हूँ, जिससे ये जीवित ही मृत-तुल्य हो जायँ॥७९।८०॥हे पार्थ! संसार का यह नियम है कि माननीय पुरुष का जब तक सम्मान हो तभी तक वह जीवित है, और जब उसका अपमान हो तब वह जीवित ही मरे के तुल्य

त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥ ८३ ॥
एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह ॥ ८४ ॥
अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ॥ ८५ ॥
अवधेन वधः प्रोक्तो यद्गुरुस्त्वमिति प्रभुः ।
तद् ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ॥ ८६ ॥
वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराजस्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः ।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम् ॥ ८७ ॥
भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु कुर्याद्राजा धर्ममवेक्ष्य चापि ।
मुक्तोऽनृताद्भ्रातृवधाच्च पार्थ हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

हो जाता है । तुम और भीमसेन, नकुल, सहदेव, वृद्ध जन, शूर जन आदि सभी लोग सदा इन धर्मराज का सम्मान करते आ रहे हैं । सो आज अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के निमित्त तुम कुछ इनका अपमान कर डालो । हे अर्जुन ! तुम इस समय पूजनीय धर्मराज युधिष्ठिर को "तुम" कह दो । "तुम" कहना मानों गुरु जन की हत्या करना है॥८१।८२॥अथर्ववेद में यह लिखा है और महर्षि अङ्गिरा ने यही कहा है । इस समय बिना विचारे तुम इस विधान का पालन करो । कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों को ऐसे अवसर पर ऐसा ही करना चाहिए । गुरु जन को 'आप' की जगह 'तुम' कहना बिना मारे ही मार डालना है। हे धर्मज्ञ ! मेरे कथन के अनुसार यही उपाय तुम करो । इस प्रकार तुम्हारे "तुम" सम्बोधन से अपमानित होकर धर्मराज तुम्हारे हाथ से मारे जाने के समान ही कष्ट का अनुभव करेंगे । उसके उपरान्त तुम इनके पाँवों पर गिरकर अपराध क्षमा कराना और कल्याण-युक्त हितवचन कहकर शान्त कर देना । तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज स्वयं प्राज्ञ और धर्ममार्ग के अनुगामी हैं । वे तुम्हारे किये अपमानका भेद जानकर, तुम्हें प्रतिज्ञा-पालन के निमित्त वैसा करने को विवश समझकर, कदापि क्रोध न करेंगे । इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करके और भाई की हत्या के पाप से बचकर पीछे से प्रसन्नतापूर्वक तुम कर्ण को मारो॥८४।८८॥

कर्णपर्व का उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

सञ्जय उवाच— इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत् ।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराजमनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच— मा त्वं राजन्व्याहर व्याहरस्व यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणार्द्धे ।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २ ॥
काले हि शत्रून्परिपीड्य मङ्ख्ये हत्वा च शूरान्पृथिवीपतींस्तान् ।
रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान्सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान् ॥ ३ ॥

यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम् ।
काम्बोजानामयुतं पार्वतीयान्मृगान्सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥ ४ ॥
सुदुष्करं कर्म करोति वीरः कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित् ।
रथादवप्लुत्य गदां परामृशंस्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान्रणे ॥ ५ ॥
वरासिना वाजिरथाश्वकुञ्जरांस्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन् ।
प्रगृह्य पद्भ्यामहितान्निहन्ति पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ६ ॥
महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः प्रसह्य हन्ता द्विषतामनीकिनीम् ।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ॥ ७ ॥
महारथान्नागवरान्हयांश्च पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य ।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः स मामुपालब्धुमरिन्दमोऽर्हति ॥ ८ ॥
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्सदामदान्नीलबलाहकोपमान् ।
निहन्ति यः शत्रुगणाननेकान्स मामुपालब्धुमरिन्दमोऽर्हति ॥ ९ ॥
स युक्तमास्थाय रथं हि काले धनुर्विधुन्वञ्शरपूर्णमुष्टिः ।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥ १० ॥

सत्तरवाँ अध्याय ॥ ७० ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! हितचिन्तक श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर, उनकी प्रशंसा करके, वीरवर अर्जुन ने जैसे कठोर वचन पहले कभी नहीं कहे थे वैसे वचन धर्मराज से कहना आरम्भ किया। अर्जुन ने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम युद्धभूमि से भागकर कोस भर पर पड़े हुए हो, इसलिए ऐसे कठोर वचन कहकर मेरा तिरस्कार करना तुम्हें नहीं सोहता। *हाँ, महाबली भीमसेन मेरी निन्दा कर सकते हैं;* क्योंकि वे अकेले ही वीर कौरवों से युद्ध कर रहे हैं। महावीर भीम ने यथासमय शत्रुओं को पीड़ित किया है, श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीर राजाओं को और अन्य शूर क्षत्रियों को मारा है, श्रेष्ठ रथियों और हाथियों को यमपुर भेजा है। रथ से उतरकर गदा हाथ में लेकर भीमसेन ने बेशक वह दुष्कर कर्म किया है जिसे और कोई नहीं कर सकता। उन्होंने सिंहनाद करके सहस्रों हाथियों को मार गिराया है। काम्बोजों और पर्वतीय वीरों को, जो हाथियों और घोड़ों पर से युद्ध कर रहे थे, वीर भीमसेन ने वैसे ही मारा कि जैसे सिंह मृगों को मार गिराता है॥१।४॥बड़े बड़े रथों, पर्वताकार हाथियों और तेज दौड़नेवाले घोड़ों को मारकर कौरवों की सेना में घुसनेवाले भीमसेन ही मुझे उपालम्भ दे सकते हैं। इन्द्र के समान पराक्रमी भीमसेन श्रेष्ठ खड्ग, चक्र, धनुष और हाथों से ही शत्रुओं को मार रहे हैं। महाबली यम और कुबेर के समान पराक्रमी और बलपूर्वक शत्रुओं के यश और प्राणों को अकेले ही हरनेवाले भीमसेन मेरा तिरस्कार कर सकते हैं। सदा सुहृद्गण जिनकी रक्षा करते रहते हैं वह तुम मुझे कुछ नहीं कह सकते ॥५।७॥भीमसेन अकेले ही दुर्योधन की चतुरङ्गिणी सेना का नाश कर रहे हैं। मेघ के समान कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग, निषाद मगध देश के वीरों का मानमर्दन और प्राण संहार करनेवाले भीमसेन यदि मुझको कुछ कहें तो कह सकते हैं। यथासमय अश्व-संयुक्त रथ पर बैठकर, धनुष चढ़ाकर, मुट्ठी भर बाण लेकर, मेघ जैसे जलधारा की वर्षा करे, वैसे ही शत्रुसेना के ऊपर निर्भय होकर बाण बरसानेवाले भीमसेन ही मुझे कुछ कह सकते हैं—तुम नहीं। भीमसेन ने आज

शतान्यष्टौ वारणानामवश्यं विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः ।
भीमेनाजौ हितान्यद्य बाणैः स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यग्निः ॥ ११ ॥
बलं तु वाचि द्विज सत्तमानां क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति ।
त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च त्वमेव मां वेत्थ यथाबलोऽहम् ॥ १२ ॥
यते ह नित्यं तव कर्तुमिष्टं दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च ।
एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किञ्चित् ॥ १३ ॥
मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो महारथान्प्रतिहन्मि त्वदर्थे ।
तेनाभिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किञ्चित्॥१४॥
प्रोक्तः स्वयं सत्यसन्धेन मृत्युस्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे ।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन॥ १५ ॥
न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्टमस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥ १६ ॥
अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद्यान्।
तान्नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टांस्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ १७ ॥

तीक्ष्ण बाणों से मस्तक-कपोल-सूँड आदि अङ्ग-प्रत्यङ्गों को विदीर्ण करके आठ सौ उन्मत्त हाथियों को मार गिराया है। वही शत्रुओं को मारनेवाले वृकोदर मुझे उलहना दे सकते हैं॥८।११॥हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणों का वाक्यबल और क्षत्रियों का बाहुबल जगत् में प्रसिद्ध है। तुम स्वयं क्षत्रियबल से हीन हो और वाक्यबल का आश्रय लेकर निष्ठुरतापूर्वक मुझे बलहीन बनला रहे हो ! मैं स्त्री,पुत्र,शरीर और जीवन तक से तुम्हारा प्रिय करने का यत्न करता हूँ, तो भी तुम मुझे वाक्य-बाणों से पीड़ित कर रहे हो ! तुम्हारे ही कारण हमें यह अत्यन्त घोर सङ्कट प्राप्त हुआ है। मैं तुम्हारे निमित्त समर में महारथियों को मारता हूँ और तुम द्रौपदी की शय्या पर पड़े रहते हो॥१२।१४॥तुम्हें मेरा अपमान न करना चाहिए। द्यूतक्रीड़ा में बारम्बार प्रमत्त होकर तुमने राजपाट सब गँवा दिया। फिर तुम मेरी निन्दा कैसे कर सकते हो ? हे राजेन्द्र ! तुम्हीं सदा असावधान हो, तुम्हीं मूढ़ हो, तुम्हीं भरतवंशियों में असाधु हो। तुम्हारे ही कारण राज्य नष्ट हुआ और पाण्डव दास बने। तुम्हारे ही कारण हमें वनवास के दुःख सहन पड़े और अभिमन्यु की मृत्यु का घोर शोक प्राप्त हुआ। अपने को ऐसा नृशंस जानकर भी तुम क्यों मेरी निन्दा करते हो ? हे राजेन्द्र ! यदि तुममें कुछ भी लज्जा हो तो तुमको लज्जित होकर चुपचाप सब तमाशा देखना चाहिए। तुम कृतघ्न हो, जो अपने उपकारी की निन्दा कर रहे हो। जो मनुष्य स्वयं अशक्त हो उसे सदा क्षमा ही करनी चाहिए। हम भाइयों को तुमसे कभी कुछ सुख नहीं मिला। तुम सबसे शङ्कित रहते हो, सब पर सन्देह करते हो। हे राजेन्द्र ! सत्यसन्ध पितामह ने तुम्हारे हित के निमित्त ही स्वयं अपनी मृत्यु का उपाय बतला दिया और उसी के अनुसार शिखण्डी ने उन महात्मा को रथसे गिराया। उस समय शिखण्डी की रक्षा और पितामह के ऊपर बाण-प्रहार करनेवाला मैं ही था, नहीं तो शिखण्डी कदापि उन्हें नहीं गिरा पाते। तुम जुआरी हो, इसलिए मैं तुम्हारे राज्यलाभ का अभिनन्दन नहीं करता (अर्थात् राज्य प्राप्त कर फिर हार दोगे)। तुमने स्वयं अनार्यजनोचित पापकर्म (द्यूतक्रीड़ा) किया और अब हम लोगों के बाहुबल से इस सङ्कट के पार जाना चाहते हो ! सहदेव ने अक्षक्रीड़ा के दोष और उसमें होनेवाले

ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रैस्तस्माल्लोकानेष करोमि भस्म ।
जैत्रं रथं भीममास्थाय कृष्ण यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३५ ॥
राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं कर्णं रणे नाशयितास्मि बाणैः ।
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥
अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री कुन्ती वाथो वा मया तेन वापि ।
सत्यं वदाम्यद्य न कर्णमाजौ शरैरहत्वा कवचं विमोक्ष्ये ॥ ३७ ॥
सञ्जय उवाच—इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ।
विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य कोशं च खड्गं विनिधाय तूर्णम् ॥ ३८ ॥
स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच ।
प्रसीद राजन्क्षम यन्मयोक्तं काले भवान्वेत्स्यति तन्नमस्ते ॥ ३९ ॥
प्रसाद्य राजानममित्रसाहं स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः ।
नेदं चिरात्क्षिप्रमिदं भविष्यत्यावर्ततेऽसावभियामि चैनम् ॥ ४० ॥
याम्येष भीमं समरात्प्रमोक्तुं सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम् ।
तव प्रियार्थं मम जीवितं हि ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ॥ ४१ ॥
इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी ।
एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य ॥ ४२ ॥
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः ।
कृतं मया पार्थ यथा न साधु येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ॥ ४३ ॥

ही कौरवों की आधी सेना का संहार किया है। देवसेना-तुल्य कौरवसेना के लोग मेरे ही बाणों से मरकर रणभूमि में शयन कर रहे हैं; अस्त्रज्ञों को मैं अस्त्रों से ही मारता हूँ। इसी से मैं बहुत लोगों को भस्म कर सकता हूँ। हे श्रीकृष्ण! हम दोनों विजयदायक रथ पर बैठकर शीघ्र ही कर्ण को मारने के निमित्त चलेंगे। हे वासुदेव! आज ये महाराज शान्त रहें; क्योंकि मैं रण में अवश्य ही कर्ण को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार डालूँगा॥३३।३६॥हे भरतकुलतिलक! वीर अर्जुन फिर धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर से कहने लगे—हे राजेन्द्र! आज या तो कर्ण की माता ही पुत्रशोक से दुखी होगी और या मैं कर्ण के हाथ से मारा गया तो कुन्ती देवी को पुत्रशोक होगा। हे नरेन्द्र! मैं सत्य कहता हूँ, प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को मारे बिना कदापि कवच नहीं उतारूँगा॥३६।३७॥सञ्जय कहते हैं कि हे कुरुराज! अर्जुन ने धर्मराज के आगे यों कहकर धनुष और शस्त्र रख दिये; खड्ग म्यान में कर ली। उसके पश्चात् वे लज्जा से सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर, धर्मराज से कहने लगे—हे महाराज! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप प्रसन्न हों और कारण-वश मैंने जो कुछ कटु वचन कहे हैं उन्हें क्षमा करें। मैंने क्यों आपके साथ यह दुर्व्यवहार किया और कठोर वचन कहे, सो यथासमय आपको विदित हो जायगा। अब महातेजस्वी अर्जुन ज्येष्ठ भ्राता के चरणों पर गिर पड़े और सन्ताप से पीड़ित अजातशत्रु राजा को प्रसन्न करके उनके सम्मुख खड़े होकर यों कहने लगे—हे महाराज! कर्ण मुझसे युद्ध करने के विचार से युद्धस्थल में उपस्थित है। मैं शीघ्र ही उसको मारूँगा। मैं सत्य कहता हूँ, आज कर्ण के मरने से उसकी माता राधा पुत्रहीन होगी, अथवा मैं मारा जाऊँगा और कुन्ती को

तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ।
पापस्य पापव्यसनान्वितस्य विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥ ४४ ॥
वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम् ।
गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः सुखं भवान्वर्त्ततां मद्विहीनः ॥ ४५ ॥
योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम् ।
न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य ॥ ४६ ॥
भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन न कार्यमद्यावमतस्य वीर ।
इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात राजा ततस्तच्छयनं विहाय ॥ ४७ ॥
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ।
राजन्विदितमेतद्धि यथा गाण्डीवधन्वनः ॥ ४८ ॥
प्रतिज्ञा सत्यसन्धस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता ।
ब्रूयाद्य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत ॥ ४९ ॥
वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम् ।
ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रतिरक्षता ॥ ५० ॥
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते ।
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ॥ ५१ ॥

पुत्रशोक होगा। आज या तो कर्ण की मृत्यु होगी या मेरी। हे राजेन्द्र मैं सत्य कहता हूँ कि मेरा यह जीवन आपका प्रिय करने के निमित्त ही है। अब अनुमति दीजिए तो मैं भीमसेन को समर से छुट्टी देने और कर्ण को मारने जाऊँ॥३८।४२॥भाई के पूर्वोक्त कठोर वचनों से धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त अपमानित हो चुके थे। अब शय्या से उठकर दुःखित और दीन भाव से कहने लगे—हे अर्जुन निःसन्देह मैंने अच्छा कार्य नहीं किया और मेरी ही करतूत से तुम सब भाइयों को घोर सङ्कट का सामना करना पड़ा तथा दुःख सहने पड़े। मैं अत्यन्त व्यसनी, जुआरी, मूढ़मति, भीरु, निष्ठुर, वृद्धों का अपमान करनेवाला, पापरूप और पापीपदत हूँ। मुझ नराधम के कारण ही कुरुकुल का नाश हुआ। बस, तुम मेरा सिर काट डालो। मुझ निष्ठुर का साथ देने से तुम्हें क्या लाभ? अथवा मैं पापी अभी वन को जाता हूँ। तुम मुझे छोड़कर सुख से रहो॥४३।४५॥वीर भीमसेन ही राजा होने के योग्य हैं। मैं नपुंसक और असमर्थ हूँ—राज्य लेकर क्या करूँगा? हे वीर! इस प्रकार अपमानित होकर मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मुझसे अब फिर तुम्हारे ऐसे कठोर वचन नहीं सुने जा सकते। बस, भीमसेन राजा हों, मैं जाता हूँ। हे महाराज! अपमान के कारण क्रोध और क्षोभ से युक्त युधिष्ठिर यों कहकर सहसा शय्या छोड़कर उठ खड़े हुए और वन को जाने के निमित्त उद्यत हो गये। तब महात्मा वासुदेव ने प्रणत होकर उन्हें रोका और यह कहकर शान्त किया—हे राजेन्द्र! सत्यप्रतिज्ञ महावीर अर्जुन की गाण्डीव धनुष के सम्बन्ध में जो पुरानी प्रसिद्ध प्रतिज्ञा है उसे आप जानते हैं। जो कोई इनसे अन्य किसी के हाथ में गाण्डीव धनुष दे देने के निमित्त कहेगा उसे ये मार डालेंगे। आपने आज अर्जुन से वही बात कही। उस अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के निमित्त सत्य रक्षा के निमित्त, मेरी सम्मति से अर्जुन ने वध की जगह आपका अपमान किया है; क्योंकि गुरु

तस्मात्त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः ।
व्यतिक्रममिमं राजन्सत्यसंरक्षणं प्रति ॥ ५२ ॥
शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि ।
क्षन्तुमर्हसि मे राजन्प्रणतस्याभियाचतः ॥ ५३ ॥
राधेयस्याद्य पापस्य भूमिःपास्यति शोणितम् ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्धयद्य सूतजम् ॥ ५४ ॥
यस्येच्छासि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम् ।
इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ५५ ॥
ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा ।
कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ॥ ५६ ॥
एवमेव यथात्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम ।
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव ॥ ५७ ॥
मोचिता व्यसनाद्घोराद्वयमद्य त्वयाच्युत ।
भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात् ॥ ५८ ॥
घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ ।
त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद्वयम् ॥ ५९ ॥
समुत्तीर्णाः सहामात्या सनाथाः स्म त्वयाऽच्युत॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

जय का अपमान करना ही उनका वध माना गया है॥४६।५१॥हे महाराज ! सत्य की रक्षा के निमित्त विवश होकर अर्जुन ने और मैंने जो अपराध तथा धर्म-व्यतिक्रम किया है, उसे क्षमा कीजिए । हम दोनों आपके शरणागत अनुगत हैं । मैं स्वयं प्रणत होकर प्रार्थना करता हूँ, आप क्षमा करें । निश्चय जानिए, आज पृथ्वी अवश्य कर्ण का रुधिर पियेगी । मैं सत्य कहता हूँ, आप कर्ण को मरा हुआ ही समझिए । आप जिसका वध चाहते हैं उसकी आयु का समय समाप्त ही समझिए॥५२।५५॥श्रीकृष्ण को इस प्रकार कहकर, प्रणत होकर, क्षमा प्रार्थना करते देख धर्मराज युधिष्ठिर ने सम्मानपूर्वक उनको उठा लिया । धर्मराज ने हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से कहा—हे केशव! तुम्हारा कहना ठीक है । अर्जुन से अन्य के हाथों में गाण्डीव धनुष देने के निमित्त कहकर मैंने ही अनुचित किया । अब मैं समझ गया और मुझे शान्ति प्राप्त हुई॥५६।५७॥आपने इस प्रकार अर्जुन की प्रतिज्ञा का निर्वाह करके हमें बचा लिया, घोर विपत्ति और सङ्कट से उबार लिया । हम दोनों भाई अज्ञान वश मोहित हो गये थे; आपने नाव के समान इस उभय सङ्कट के भयङ्कर विपत्तिसागर से हमें निकाल लिया । हे वासुदेव ! आपकी बुद्धिरूप नाव का आश्रय प्राप्त कर ही हम, अमात्यों और बन्धु बान्धवों सहित, दुःख और शोक के सागर के पार पहुँच गये । आपही हमारे नाथ हो॥५८।६०॥

— ० —

कर्णपर्व का सत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

अथ एकसप्ततितमोऽध्याय. ॥ ७१ ॥

सञ्जय उवाच—धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः ।
पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः ॥ १ ॥
इति स्म कृष्णवचनात्प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम् ।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित्कृत्वेव पातकम् ॥ २ ॥
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम भवेदेतद्यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ॥ ३ ॥
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम् ।
त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः ॥ ४ ॥
हत्वा तु नृपतिं पार्थ आकरिष्यः किमुत्तरम् ।
एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ५ ॥
स भवान्धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः ।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥ ६ ॥
स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम् ।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥ ७ ॥
प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे ।
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ८ ॥
हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः ।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ९ ॥
एतदत्र महाबाहो प्राप्तकाल मतं मम ।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति ॥ १० ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे नरेन्द्र ! श्रीकृष्ण के कहने से युधिष्ठिर को कटु वचन कहने का कुछ पातक करने के कारण जब अर्जुन उदास और दुःखित हुए तब युधिष्ठिर के प्रीति-युक्त वचन सुनकर उन्हें मनाने और प्रसन्न करने के निमित्त अनुरोध करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुनसे हँसकर कहा—तुम यदि तीक्ष्ण खड्गसे धर्मनिष्ठ युधिष्ठिर का वध कर डालते तो क्या होता ? धर्मराज को कठोर वचन सुनाकर ही जब तुम इस प्रकार दुःखित हो रहे हो तब युधिष्ठिर की हत्या करने पर तुम्हारी क्या दशा होती ? इसी लिए कहा है कि धर्म अत्यन्त दुर्ज्ञेय है, विशेषकर मन्दमति लोग तो उसकी गति समझ ही नहीं सकते॥१।५॥तुम यदि प्रतिज्ञा-पालन-रूप धर्म की रक्षा करने के निमित्त बड़े भाई को मार डालते तो अवश्य ही अधर्मभागी होकर महाघोर नरक में गिरते। हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरी सम्मति यह है कि अब तुम श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्मराज को मना लो। भक्तिपूर्वक राजा को प्रसन्न कर चुकने के पश्चात् हम और तुम दोनों शीघ्र ही कर्ण से युद्ध करने के निमित्त यहाँ से चलेंगे। तुम आज तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को मारकर महाराज को अत्यन्त प्रसन्न कर लोगे। हे महाबाहो ! मेरी

सञ्जय उवाच—ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः ।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥ ११ ॥
उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः ।
क्षमस्व राजन्यत्प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥ १३ ॥
उत्थाप्य भ्रातरं राजा धर्मराजो धनञ्जयम् ।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः ॥ १४ ॥
रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती ।
कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः ॥ १५ ॥
तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः ।
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः ।
अब्रवीत्तं महेष्वासं धर्मराजो धनञ्जयम् ॥ १६ ॥
कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः ॥ १७ ॥
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ।
सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन ॥ १८ ॥
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम् ।
न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे ॥ १९ ॥

सम्मति में इस समय यही कर्तव्य है कि तुम राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न करके कर्ण को मारने के निमित्त चलो। ऐसा करने से ही तुम्हारा कार्य सम्पन्न होगा ॥९।१०॥ हे महाराज! अब अपनी कृति के निमित्त लज्जित अर्जुन, श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार, धर्मराज के चरणों पर सिर रखकर बारम्बार कहने लगे—हे महाराज! प्रसन्न हूजिए, प्रसन्न हूजिए। मैंने प्रतिज्ञा पालन-धर्म की रक्षा करने के निमित्त जो दुर्वाक्य आपको कहे हैं उन्हें क्षमा कर दीजिए॥११।१२॥ हे भरतकुल-तिलक! शत्रुदमन अर्जुन को चरणों पर गिरकर रोते और क्षमा-प्रार्थना करते देखकर धर्मराज ने भाई को दोनों हाथों से उठाकर स्नेह पूर्वक हृदय से लगा लिया। वे आप भी आँसू बहाने लगे। इस प्रकार देर तक आँसू बहाने से दोनों महातेजस्वी भाइयों का हृदय शुद्ध हो गया॥१३।१५॥ राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन को हृदय से लगाकर, बारम्बार उनका मस्तक सूँघकर, हँसकर कहा – हे धनुर्द्धर अर्जुन! कर्ण ने सब सेना के सम्मुख ही युद्ध के समय बाणों से मेरे छत्र, कवच, ध्वजा, धनुष, शक्ति, बाण आदि को काट डाला, मेरे घोड़े भी मार डाले, और सब वीरों को हराकर मुझे बेतरह घायल, पीड़ित और विमुख कर दिया। रण में कर्ण के उग्र अद्भुत कर्म और पराक्रम को देखकर मार दुःख के मैं खिन्न हो रहा हूँ। मुझे अब अपना जीवन भी प्रिय नहीं रहा। तुम यदि आज उस वीर को नहीं मारोगे तो उस अपमान के दुःख से मैं अपने प्राण त्याग दूँगा; क्योंकि ऐसे अपमानित

प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ॥ २० ॥
सत्येन ते शपे राजन्प्रसादेन तथैव च ।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥ २१ ॥
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा ।
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ २२ ॥
एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः ।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ॥ २३ ॥
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः ।
एवमुक्तोऽब्रवीत्पार्थं केशवो राजसत्तम ॥ २४ ॥
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम् ।
एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥ २५ ॥
कथं भवान्रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम ।
भूयश्चोवाच मतिमान्माधवो धर्मनन्दनम् ॥ २६ ॥
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि ।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥ २७ ॥
श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् ।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥ २८ ॥
दिष्ट्यासि राजन्नहतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः ।
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥ २९ ॥

जीवन से क्या लाभ ?॥१९।२०॥यह सुनकर अर्जुनने कहा—हे राजेन्द्र!मैं सत्य की, आपके चरणोंकी, भीमसेन की, नकुल और सहदेव की शपथ खाकर शस्त्र को छू कर कहता हूं कि आज या तो मैं कर्ण को मारूँगा और या कर्ण ही मुझे मार गिरावेगा॥२०।२२॥हे नरेश्वर! महावीर अर्जुन ने युधिष्ठिर से यों कहकर कृष्णचन्द्र से कहा —हे माधव! आज मैं अवश्य युद्ध में कर्ण को मारूँगा। आप मेरे कल्याण के निमित्त दुरात्मा कर्ण के वध का अनुमोदन कीजिए। आपका भला हो॥२३।२४॥इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—हे भरत-श्रेष्ठ! तुमने जो मुझसे कहा उसे तुम कर सकते हो। कर्ण का वध तुम्हीं कर सकते हो। हे महारथी! मैं नित्य यही कामना किया करता हूं कि तुम किसी प्रकार रण में कर्ण को मारो। मैं यही सोचा करता हूं कि तुम किस प्रकार युद्ध में कर्ण को मारोगे। महात्मा श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा—हे महाराज! अब आप सान्त्वना देकर अर्जुन को प्रसन्न कीजिए और कर्ण को मारने की आज्ञा दीजिए॥२५।२७॥ हम दोनों को जब मालूम हुआ कि आप कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर चले आये हैं, तब आपका समाचार जानने के निमित्त हम रणभूमि से यहां चले आये। बड़ी बात है कि अब आप सकुशल हैं। भाग्य-वश कर्ण आपको न तो मार सका और न पकड़ ही सका। अब आप अर्जुन को मधुर वचनों से सान्त्वना

युधिष्ठिर उवाच—एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव ।
वक्तव्यमुक्तोऽसि हितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ ३० ॥
अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनञ्जय ।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥ ३१ ॥

सञ्जय उवाच—ततो धनञ्जयो राजञ्शिरसा प्रणतस्तदा ।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥ ३२ ॥
तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ ३३ ॥
धनञ्जय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया ।
महात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच - अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः ।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥ ३५ ॥
येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् ।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम् ॥ ३६ ॥
अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते ।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥
नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात् ।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच—इति ब्रुवाणं सुमनाःकिरीटिनं युधिष्ठिरःप्राह वचो बृहत्तरम् ।
यशोऽक्षयं जीवितमीप्सितं ते जयं सदा वीर्यमारिक्षयं तथा ॥ ३९ ॥

देकर विजय-लाभ का आशीर्वाद दीजिए॥२८।२९॥ तब धर्मराज ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! आओ, मेरे हृदय से लग जाओ। तुमने प्रतिज्ञा-पालनके निमित्त मुझे कटुवचन सुनाकर ठीक ही किया । मैं उसे क्षमा करता हूँ। अब मैं तुमको अनुमति देता हूँ, जाओ, कर्ण को मारो । मैंने अपमान के कारण घबराकर जो कुछ अनुचित वचन तुम्हें कहे हैं उनके निमित्त क्रोध न करना, बुरा न मानना॥३०।३१॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र!तब अर्जुन ने सिर नवाकर दोनों हाथोंसे ज्येष्ठभ्राताके चरण पकड़कर क्षमा प्रार्थना की।पश्चात्ताप कर रहे पीड़ित भाई को उठाकर, गले लगाकर,मस्तक सूँघकर धर्मराज ने कहा—हे महाबाहो ! तुमने अच्छी प्रकार सम्मान करके मेरे हृदय की वेदना दूर कर दी। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि अविनश्वर यश और विजय प्राप्त करो॥३२।३४॥वीरवर अर्जुन ने फिर कहा—हे महाराज ! आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से बलगर्वित कर्ण को उसके साथियों और सहायकों के सहित अवश्य यमपुर भेज दूँगा । दुर्मति कर्ण ने धनुष चढ़ाकर बाणों से आपको अत्यन्त पीड़ित किया है। उस पापका दारुण फल अभी उसे मिल जायगा । हे महाराज ! सत्य कहता हूँ कि कर्ण को मारकर रण से लौटकर मैं शीघ्र ही आपके दर्शन करूँगा, आपका अभिनन्दन और सम्मान करूँगा । हे पृथ्वीनाथ ! आपके चरण छूकर सत्य कहता हूँ कि कर्ण का वध किये बिना आज मैं रण-

प्रयाहि वृद्धिं च दिशन्तु देवता यथाहमिच्छामि तवास्तु तत्तथा।
प्रयाहि शीघ्रं जहि कर्णमाहवे पुरन्दरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

भूमि से नहीं लौटूंगा ॥३५।३८॥सञ्जय कहते हैं कि धर्मपरायण युधिष्ठिर अर्जुन के वचन सुनकर, प्रसन्न होकर, कहने लगे—हे अर्जुन! तुम्हें अक्षययश और विजय मिले, तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, शत्रु-नाश हो, वीर्य और आयु बढ़े। जाओ, देवगण तुम्हें कल्याण और वृद्धि दें। मैं जो कुछ चाहता हूँ वह सब तुम्हें प्राप्त हो। अपने अभ्युदय के निमित्त इन्द्र जैसे वृत्रासुर को मारने चले थे वैसे ही तुम भी जाकर कर्ण को मारो॥३९।४०॥

कर्णपर्व का इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७१ ॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

सञ्जय उवाच—प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ १ ॥
कल्पतां मे रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः ।
आयुधानि च सर्वाणि सज्जन्तां मे महारथे ॥ २ ॥
उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्वाश्वसादिभिः ।
रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः ॥ ३ ॥
प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया ।
एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ॥ ४ ॥
उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत् ।
अर्जुनो भरतश्रेष्ठ श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५ ॥
आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम ।
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥ ६ ॥
सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः ।
युक्तं तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना ॥ ७ ॥
आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
सुमङ्गलं स्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम् ॥ ८ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७२ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे राजेन्द्र! महाबली अर्जुन इस प्रकार राजा को प्रसन्न करके स्वयं भी आनन्दित हुए। वे कर्ण को मारने के निमित्त उद्यत होकर श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे वासुदेव! आप मेरे रथ को फिर से सुसज्जित करके उसमें सब अस्त्र-शस्त्र रखवाइए और श्रेष्ठ घोड़े जुतवाइए। निपुण सवारों के सिखलाये हुए दिव्य घोड़े पृथ्वी पर लोट-पोटकर अपनी थकन मिटा चुके होंगे; अब उन्हें लाकर उन पर साज रखवाइए और कर्णवध के निमित्त मुझे रथ पर बैठाकर झटपट समरभूमि में ले चलिए॥१।४॥अर्जुन के यों कहने पर श्रीकृष्ण ने अपने सारथी दारुक को बुलाया और अर्जुन की आज्ञा के अनुसार रथ सजाकर शीघ्र लाने के निमित्त उससे कहा। आज्ञा पाते ही दारुक उसी समय रथ सजाकर ले आया और सूचना

तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
आशिषोऽयुंक्त सततः प्रायात्कर्णरथं प्रति ॥ ९ ॥
समायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत ।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥ १० ॥
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन्समन्ततः ।
चापाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर ॥ ११ ॥
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम् ।
बहवः पक्षिणो राजन्पुन्नामानः शुभाः शिवाः ॥ १२ ॥
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे ।
कङ्का गृध्रा बकाः श्येना वायसाश्च विशाम्पते ॥ १३ ॥
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भयानकाः ।
निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे ॥ १४ ॥
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति ।
प्रयातस्याथ पार्थस्य महान्स्वेदो व्यजायत ॥ १५ ॥
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति ।
ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः ।
दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा ॥ १६ ॥
वासुदेव उवाच—गाण्डीवधन्वन्संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः ।
न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते ॥ १७ ॥

दी कि रथ तैयार है॥४।७॥वीर अर्जुन रथ तैयार खड़ा देखकर, धर्मराज की आज्ञा लेकर, उस पर सवार हुए। [देवताओं की पूजा वे पहले ही कर चुके थे।] इस समय ब्राह्मणगण सुमङ्गल स्वस्त्ययन करके स्वस्तिपाठ करने लगे। कर्ण से युद्ध करने के निमित्त जा रहे अर्जुन को महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने अनेक आशीर्वाद दिये।अवप्रतापी अर्जुनका रथबड़ेवेगसे कर्णके रथकी ओर चला।अर्जुनको आते देखकर सब प्राणियों ने महाधनुर्द्धर अर्जुनके हाथों कर्ण को मरा हुआ समझ लिया॥७।१०॥हे महाराज! उस समय सब दिशाएँ चारों ओर निर्मल हो गईं! चाष, शतपत्र और क्रौञ्च नामक शुभपक्षी अर्जुन की प्रदक्षिणा करने लगे,अर्थात् उनकी दाहिनी ओर उड़ते दिखाई पड़ने लगे। पुन्नामक (अर्थात् नर) पक्षी प्रसन्नतापूर्वक शब्द करते हुए अर्जुन को विजय की सूचना देकर युद्ध की प्रेरणा करने लगे। उनके आगे-आगे कङ्क,गिद्ध, कौए,बाज, बगले आदि पक्षी मांसाहार के लोभ से चलने लगे। इस प्रकार के शुभ शकुन अर्जुन को शत्रुसेना के नाश और कर्ण के वध की सूचना देने लगे॥११।१६॥हे राजेन्द्र! महावीर अर्जुन जिस समय युद्ध के निमित्त जा रहे थे उस समय उनके शरीर से निरन्तर स्वेद (पसीना) निकलने लगा। उन्हें यह बड़ी चिन्ता हुई कि मैं अद्वितीय योद्धा अस्त्रबल-सम्पन्न कर्णको मारकर कैसे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा। उस दुष्कर कर्म के निमित्त अर्जुन को चिन्ता करते जानकर और विषाद में मग्न देखकर प्रोत्साहित करते हुए कृष्णचन्द्र यों कहने लगे॥१६॥हे महारथी अर्जुन!

दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ।
त्वां प्राप्य समरे शूरं ते गताः परमां गतिम् ॥ १८ ॥
को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ १९ ॥
श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च ।
प्रत्युद्गम्य भवेत्क्षेमी यो न स्यात्त्वामिव प्रभो ॥ २० ॥
तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च ।
असंमोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संनतिः ॥ २१ ॥
वेधः पातश्च लक्ष्येषु योगश्चैव तथार्जुन ।
भवान्देवान्सगन्धर्वान्हन्यात्सहचराचरान् ॥ २२ ॥
पृथिव्यां तु रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान् ।
धनुर्ग्राहा हि ये केचित्क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ २३ ॥
आदेवात्त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि च ।
ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गाण्डीवं च महद्धनुः ॥ २४ ॥
येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः ।
अवश्यं तु मया वाच्यं यत्पथ्यं तव पाण्डव ॥ २५ ॥
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम् ।
कर्णो हि बलवान्दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः ॥ २६ ॥
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः ।
बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव ॥ २७ ॥

तुमने दिव्य गाण्डीव धनुष के द्वारा अपने बाहुबल से समर में जिन वीरों को जीता है उन्हें तुम्हारे अतिरिक्त इस पृथ्वी पर और कौन मनुष्य जीत सकता था? ये बहुत से इन्द्रतुल्य पराक्रमी नृपगण समर में तुम्हारे सम्मुख आते ही मरकर परम गति को प्राप्त हुए हैं। द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, भगदत्त, अवन्ती देश के विन्द और अनुविन्द, काम्बोज देश के सुदक्षिण, श्रुतायु, अच्युतायु आदि महारथियों से युद्ध करके कौन मनुष्य जीवित रह सकता था! इन सबको मारना तुम्हारा ही कार्य था॥१७।२०॥ तुम्हारे अस्त्र दिव्य हैं। तुममें स्फूर्ति, बाहुबल, युद्ध में मोह को न प्राप्त होना, रण विज्ञान, अचूक लक्ष्यवेध, लक्ष्यपात और एकाग्रता आदि सभी गुण अद्वितीय हैं और पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। धनुष धारण करनेवाले युद्धदुर्मद क्षत्रियों में तुम्हारे समान योद्धा मैंने देखा-सुना नहीं है। देवता, गन्धर्व, राक्षस आदि सबको तुम युद्ध में मार सकते हो; क्योंकि पृथ्वी पर तुम्हारे समान योद्धा कोई नहीं है॥२०।२४॥ सब प्रजा की सृष्टि करनेवाले प्रजापति ब्रह्मा ने ही गाण्डीव धनुष बनाया है। उसी धनुष से तुम युद्ध करते हो। इसलिए तुम्हारे समान और कोई नहीं है। किन्तु तुम्हारे हित की बात कहना अवश्य ही मेरा कर्तव्य है। हे महाबाहो! तुम कर्ण को साधारण पुरुष मत समझना। समर की शोभा बढ़ानेवाला कर्ण भी बलवान्, दर्पपूर्ण, अस्त्रज्ञ, महारथी, युद्धकला में

त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम् ।
परमं यत्नमास्थाय त्वया वध्यो महाहवे ॥ २८ ॥
तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥ २९ ॥
अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः ।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः ॥ ३० ॥
सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयङ्करः ।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ३१ ॥
सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः ।
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम् ॥ ३२ ॥
देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम् ।
अशक्यः सरथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥ ३३ ॥
दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ॥ ३४ ॥
तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥ ३५ ॥
जानामि ते पार्थ वीर्यं यथावद्दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च ।
सदावजानाति हि पाण्डुपुत्रानसौ दर्पात्सूतपुत्रो दुरात्मा ॥ ३६ ॥
आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः ।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनञ्जय ॥ ३७ ॥

अद्वितीय अभ्यास रखनेवाला, विचित्र युद्ध में निपुण और देश-काल का ज्ञाता है । बहुत कहने से क्या, मैं संक्षेप में जो कुछ कहता हूँ, वह सुनो॥२४।२७॥ मैं महारथी कर्ण को तुम्हारे समान अथवा यों कहो कि तुमसे अधिक समझता हूँ । इसलिए खूब एकाग्र होकर बड़े यत्न से महारण में तुम उसको मार सकोगे ॥२८॥वह सिंहसदृश कर्ण बड़ा बली, तेज में अग्नि-सदृश, वेग में वायुसदृश और क्रोध में कालसदृश है । वह महाबाहु, चौड़ी छातीवाला कर्ण अत्यन्त दुर्जय है । एक सौ अड़सठ अङ्गुल का उसका उन्नत शरीर है । अभिमानी, शूर, श्रेष्ठ वीर, दर्शनीय, योद्धाओं के सब गुणों से युक्त, मित्रों को अभय देनेवाला, सदा पाण्डवों से द्वेष रखनेवाला और दुर्योधन का हितैषी कर्ण ऐसा है कि मेरी समझ में तुम्हारे अतिरिक्त इन्द्र सहित सब देवता भी उसको नहीं मार सकते । इसलिए तुम यत्नपूर्वक आज उसे मारो॥२९।३२॥रक्त मांस का शरीर धारण करके सब देवता भी यदि युद्ध करने आवें और यत्नपूर्वक प्रहार करें तो वे भी योद्धा कर्ण को नहीं जीत सकते । हे अर्जुन ! दुरात्मा, पापचरित्र, नृशंस,पाण्डवों केप्रति दुष्ट बुद्धि रखनेवाले और पाण्डवों के साथ बिना किसी स्वार्थ के विरोध रखनेवाले कर्ण को आज मारकर तुम कृतकृत्य होओ। श्रेष्ठ रथी, दुर्जय कर्ण को आज मारकर धर्मराज को प्रसन्न करो । हे पार्थ ! तुम्हारे वीर्य और पराक्रम को मैं ठीक-ठीक जानता हूँ । देवता और दैत्य भी मिलकर तुम्हारा सामना नहीं कर सकते । दुरात्मा कर्ण दर्प के कारण सदा

खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम् ।
दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनञ्जय ॥ ३८ ॥
अहं त्वामनुजानामि वीर्येण च बलेन च ।
जहि कर्णं रणे शूरं मातङ्गमिव केसरी ॥ ३९ ॥
यस्य वीर्येण वीर्यं ते धार्तराष्ट्रोऽवमन्यते ।
तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्तनं जहि ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

पाण्डवों का अपमान करता है और उन्हें तुच्छ समझता है॥३३।३६॥दुष्ट दुर्योधन जिसके आश्रय से अपने को वीर बली समझता है, उस पाप और अनर्थ की जड़ कर्ण को तुम आज मारो। कर्ण पुरुषसिंह है, खड्ग उसकी जिह्वा है, धनुष मुख है और बाण दाढ़ें हैं। उस महावेगशाली दर्पपूर्ण कर्ण को आज मारो। तुम्हारे बल वीर्य को मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ। इसी से कहता हूँ कि गजराज को जैसे सिंह मारे, वैसे ही तुम रण में शूर कर्ण को मारो। दुर्योधन जिसके बाहुबल के आश्रय से तुम्हारे पराक्रम के प्रति अनादर प्रकट किया करता है, उसी कर्ण को तुम शीघ्र संग्राम में मारो॥३७।४०॥

कर्णपर्व का बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमो अध्याय ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच —ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
कृतसङ्कल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥ १ ॥
अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥ २ ॥
भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह ।
अन्योन्यं समरं प्राप्य किञ्चिच्छेषा विशाम्पते ॥ ३ ॥
भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः ।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥ ४ ॥
एते च पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः ।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥
पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह ।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७३ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे पृथ्वीनाथ ! उदार-प्रकृति कृष्णचन्द्र कर्ण को मारने के निमित्त निश्चय किये हुए अर्जुन से फिर कहने लगे —हे मित्र ! आज इस निष्ठुर हो रहे युद्ध का सत्रहवाँ दिन है। इस महा युद्ध में सहस्रों हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का संहार हो चुका है। पाण्डव पक्ष की असंख्य सेना कौरवों से युद्ध करके मरते-मरते थोड़ी सी बच रही है। कौरवों की सेना में बहुत से रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्य थे; किन्तु वे भी तुमसे शत्रु के सम्मुख उपस्थित होकर मर गये हैं और क्षीण हो जाते हैं॥१।४॥ये आये हुए

को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे ।
अन्यत्र पाण्डवान्युद्धे त्वया गुप्तान्महारथान् ॥ ७ ॥
शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान् ।
त्रींल्लोकान्समरे युक्तान्किं पुनः कौरवं वलम् ॥ ८ ॥
भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद्वासवोपमः ॥ ९ ॥
तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुम् ॥ १० ॥
तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे ।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ११ ॥
कोहि शक्तो रणे पार्थ भारतानां महारथौ ।
भीष्मद्रोणौ युधाजेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥
को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम् ।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च ॥ १३ ॥
सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम् ।
वीरान्कृतास्त्रान्समरे सर्वानेवानिवर्तिनः ॥ १४ ॥
अक्षौहिणीपतीनुग्रान्संहतान्युद्धदुर्मदान् ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥ १५ ॥
श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः ।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १६ ॥

राजा लोग और सृञ्जयों सहित पाण्डवगण तुम्हारे ही दुर्धर्ष बाहुबल के आश्रय से कौरवों का सामना कर रहे हैं। तुम्हारे ही बलवीर्य से सुरक्षित होकर पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, करूष, चेदि आदि देशों के शत्रुदलन वीर शत्रुसेना का नाश कर सके हैं। अर्जुन के अतिरिक्त और कौन योद्धा युद्ध में कौरवों को जीत सकता है?॥५।७॥मैं सत्य कहता हूँ, तुम रण में देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सहित तीनों लोकों के वीरों को जीत सकते हो। यह कौरवों की सेना तो कोई वस्तु ही नहीं। तुम्हारे बिना और कौन वीर, चाहे इन्द्रतुल्य ही क्यों न हो, राजा भगदत्त को जीत सकता है? हे पार्थ! तुम्हारे बाहुबल से सुरक्षित पाण्डव-सेना को शत्रुपक्ष के महारथी राजा लोग आँख उठाकर देख भी नहीं सके, मारने की कौन कहे॥८।१०॥हे अर्जुन! महावीर शिखण्डी और धृष्टद्युम्न की तुम सदा रक्षा करते रहे, इसी से वे भीष्म और द्रोण को रथ से गिरा सके। कौरवों के महारथी इन्द्रतुल्य पराक्रमी भीष्म और द्रोण को युद्ध करके भला कौन जीत सकता था? भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, वैकर्तन कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य, राजा दुर्योधन आदि उग्र, युद्धदुर्मद अस्त्रज्ञ, समरसे विमुख न होनेवाले अक्षौहिणियों के रक्षक और स्वामी सब मिलकर तुम्हारे विरुद्ध खड़े हुए थे। इनको तुम्हारे अतिरिक्त और कौन इस पृथ्वी पर जीतनेवाला है?॥११।

गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत ।
प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम् १७ ॥
उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत ।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत ॥ १८ ॥
उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः ।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः ॥ १९ ॥
आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः ।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ॥ २० ॥
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः ।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परन्तप ।
धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद्बलम् ॥ २२ ॥
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात्को नु मानवः ।
तत्सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम् ॥ २३ ॥
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो ।
मागधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः ॥ २४ ॥
अद्य सप्तैव चाहानि हतः सङ्ख्येऽभिमन्युना ।
ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम् ॥ २५ ॥
जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम् ।
ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥ २६ ॥

१५॥तुम्हारे धनुष से निरन्तर निकल रहे बाणों से असंख्य रथ, घोड़े और हाथी नष्ट हुए हैं, सेनाएँ विदीर्ण हुई हैं, अनेक देशों से आये हुए उग्र क्रोधी क्षत्रियों का संहार हुआ है। हे अर्जुन! दाससीय, वसाति, प्राच्य, वाटधान, अभिमानी भोजवंशी यादव आदि क्षत्रियों की असंख्य अश्व-गजपूर्ण सेना तुमसे और भीमसेन से युद्ध करके नष्ट हुई है॥१६।१८॥ दुर्योधन के निमित्त क्रुद्ध होकर युद्ध कर रहे उग्रस्वभाव दण्डपाणि समर-विशारद बली तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, माठर, तङ्गण, कोंकण, अन्ध्रक, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पार्वतीय (पहाड़ी) और सागर-तटवासी वीरों को तथा उनके सहायक कौरवों को तुम्हारे अतिरिक्त और कोई वीर योद्धा नहीं जीत सकता॥१९।२२॥ दुर्योधन की विशाल सेना व्यूहरचना पूर्वक आक्रमण कर रही थी। यदि तुम रक्षक न होते तो भला कौन उसका सामना कर सकता था? तुम पाण्डवों की रक्षा कर रहे थे, इसी से वे क्रुद्ध होकर सागर सी उमड़ रही और धूलि उड़ाकर आक्रमण कर रही शत्रुसेना को विदीर्ण और नष्ट कर सके। आज सात दिन हुए, अभिमन्यु ने मगध देश के राजा महाबली जयत्सेन को युद्ध में मारा था और उसके पश्चात् भीमसेन ने उसके अनुगामी योद्धाओं के भयङ्कर दस सहस्र हाथियों को गदा से गिराया था। इसी प्रकार और भी हाथियों, रथों और घोड़ों को भी

तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये ।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ॥ २७ ॥
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः ।
तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ॥ २८ ॥
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष ।
सचेदिकाशिपञ्चालान्करूपान्मत्स्यकेकयान् ॥ २९ ॥
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत्परमास्त्रवित् ।
तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ॥ ३० ॥
पूर्णमाकाशमभवद्रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।
हन्याद्रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना ॥ ३१ ॥
लक्षं नरद्विपान्हत्वा समेतान्स महाबलान् ।
गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ॥ ३२ ॥
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजत् ।
दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ॥ ३३ ॥
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्वगजवाजिनः ।
दर्शयित्वात्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ॥ ३४ ॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत् ।
विनिघ्नन्पृथिवीपालांश्चेदिपञ्चालकेकयान् ॥ ३५ ॥
अदहत्पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसंकुलाम् ।
मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम् ॥ ३६ ॥

सेन ने बलपूर्वक नष्ट किया है॥२२।२६॥हे पार्थ! इस प्रकार महाभयङ्कर संग्राम छिड़ने पर तुमने और भीमसेन ने चतुरङ्गिणी सेना सहित कौरवदल के अनेक वीरों को यमपुर पहुँचा दिया है। हे अर्जुन! तुम जानते ही हो कि पाण्डवों ने जब इस प्रकार शत्रु सेना के पूर्व भाग को नष्ट कर दिया,तब श्रेष्ठ अस्त्रज्ञ भीष्म पितामह ने उग्र बाण बरसाकर चेदि, काशी, पाञ्चाल,करूष, मत्स्य और केकय देश की सेना को नष्ट करना आरम्भ कर दिया॥२७।३०॥उनके धनुष से छूटे हुए, शत्रु शरीर-विदारण, सुवर्णपुङ्ख शोभित विकट बाणों ने आकाशमण्डल को छा दिया था। उन्होंने एक-एक मुट्ठी बाण चलाकर सहस्र सहस्र रथी योद्धाओं को गिराना आरम्भ किया और इस प्रकार एकत्र हुए लाखों श्रेष्ठ वीरों तथा हाथियों को मार गिराया। उनके बाण दसवीं उग्र गति से जाते थे। वे दोषयुक्त नव गतियों को त्यागकर सर्वथा प्राण हरनेवाली अमोघ दूरपातिनी गति से ही बाण बरसाते थे, जिससे तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेना का अधिकांश नष्ट हो गया। इस प्रकार पितामह ने दस दिन तक पाण्डवसेना का संहार करके रथों को वीरशून्य कर दिया और बहुत हाथियों, घोड़ों और पैदलों को मार डाला। धर्मयुद्ध कर रहे पितामह का रूप युद्ध में रुद्र और उपेन्द्र का सा घोर दिखाई पड़ रहा था॥३०।३४॥वे पाण्डव सेना में प्रवेश होकर चेदि, पाञ्चाल, केकय आदि देशों के नरपतियों को

तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।
पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः ॥ ३७ ॥
न शेकुः सृञ्जया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ।
विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ॥ ३८ ॥
सर्वोद्यमेन महता पाण्डवान्समभिद्रवत् ।
स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान्सृञ्जयानपि ॥ ३९ ॥
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ।
तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम् ॥ ४० ॥
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ॥ ४१ ॥
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम् ।
द्रोण पञ्च दिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम् ॥ ४२ ॥
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान् ।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ॥ ४३ ॥
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत्प्रजाः ।
दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ।
यदि वाद्य भवान्युद्धे सूतपुत्रमुखान्रथान् ॥ ४५ ॥
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनंक्ष्यत ।
भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ॥ ४६ ॥

और उनकी चतुरङ्गिणी सेना को प्रज्वलित प्रलय-काल की अग्नि के समान बाणों से भस्म कर रहे थे। युद्ध सागर में डूब रहे मन्दमति दुर्योधन का उद्धार करने के निमित्त सूर्य के समान तपते हुए विचर रहे पितामह को और सृञ्जयगण और अन्य राजा लोग देख भी नहीं सकते थे॥३५।३८॥श्रेष्ठ शस्त्र हाथों में लिये हजारों करोड़ों योद्धा पैदल उनके बाणों से विनष्ट हो गये। विजयी भीष्म ने अकेले ही पूर्ण उद्यम से युद्ध करके पाण्डवों और सृञ्जयों को मारा और भगाया, जिससे वे पृथ्वी पर अद्वितीय वीर और योद्धा माने गये। उन्हीं वीरवर को, तुम्हारे बाहुबल से सुरक्षित, शिखण्डी ने तीक्ष्ण बाण मारकर रथ से गिरा दिया। वे पितामह इन्द्र से लड़नेवाले वृत्रासुर के समान तुम्हारे पराक्रम से गिरकर शरशय्या पर पड़े हुए हैं॥३८।४२॥हे धनञ्जय! इसी प्रकार उग्र रूप द्रोणाचार्य ने पाँच दिन तक घोर युद्ध किया और शत्रुसेना को मारा। उन्होंने अभेद्य चक्रव्यूह की रचना की, कई महारथियों को मारा, समर में जयद्रथ की रक्षा का प्रयत्न किया और रात्रियुद्ध में काल के समान भयङ्कर रूप रखकर पाण्डव सेना को भस्म कर डाला। वीर प्रतापी महारथी द्रोणाचार्य तुम्हारे असंख्य योद्धाओं को मारकर अन्त को धृष्टद्युम्न के हाथ से मारे गये। उस महासमर में यदि तुम कर्ण आदि महारथियों को न रोकते तो द्रोणाचार्य कभी न मारे जा सकते॥४२।४६॥तुमने

तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये ।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ॥ २७ ॥
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः ।
तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ॥ २८ ॥
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष ।
सचेदिकाशिपञ्चालान्करूषान्मत्स्यकेकयान् ॥ २९ ॥
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत्परमास्त्रवित् ।
तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ॥ ३० ॥
पूर्णमाकाशमभवद्रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।
हन्याद्रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना ॥ ३१ ॥
लक्षं नरद्विपान्हत्वा समेतान्स महाबलान् ।
गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ॥ ३२ ॥
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजन् ।
दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ॥ ३३ ॥
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्वगजवाजिनः ।
दर्शयित्वात्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ॥ ३४ ॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत् ।
विनिघ्नन्पृथिवीपालांश्चेदिपञ्चालकेकयान् ॥ ३५ ॥
अदहत्पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसङ्कुलाम् ।
मज्जन्तमप्लवे मन्दमुजिहीर्षुः सुयोधनम् ॥ ३६ ॥

सेन ने बलपूर्वक नष्ट किया है॥२२।२६॥हे पार्थ ! इस प्रकार महाभयङ्कर संग्राम छिड़ने पर तुमने और भीमसेन ने चतुरङ्गिणी सेना सहित कौरवदल के अनेक वीरों को यमपुर पहुँचा दिया है। हे अर्जुन! तुम जानते ही हो कि पाण्डवों ने जब इस प्रकार शत्रु सेना के पूर्व भाग को नष्ट कर दिया,तब श्रेष्ठ अस्त्रज्ञ भीष्म पितामह ने उग्र बाण बरसाकर चेदि, काशी, पाञ्चाल,करूष, मत्स्य और कैकेय देश की सेना को नष्ट करना आरम्भ कर दिया॥२७।३०॥उनके धनुष से छूटे हुए, शत्रु शरीर-विदारण, सुवर्णपुङ्ख शोभित जिम्हग बाणों ने आकाशमण्डल को [illegible] लिया था । उन्होंने एक-एक मुट्ठी बाण चलाकर सहस्र सहस्र रथी योद्धाओं को गिराना आरम्भ किया और इस प्रकार एकत्र हुए लाखों श्रेष्ठ वीरों तथा हाथियों को मार गिराया । उनके बाण दसवीं उग्र गति से जाते थे। वे दोषयुक्त नव गतियों को त्यागकर सर्वथा प्राण हरनेवाली अमोघ दूरपातिनी गति से ही बाण बरसाते थे, जिससे तुम्हारी चतुरङ्गिणी सेना का अधिकांश नष्ट हो गया । इस प्रकार पितामह ने दस दिन तक पाण्डवसेना का संहार करके रथों को वीरशून्य कर दिया और बहुत हाथियों, घोड़ों और पैदलों को मार डाला । धर्मयुद्ध कर रहे पितामह का रूप युद्ध में रुद्र और उपेन्द्र का सा घोर दिखाई पड़ रहा था॥३०।३४॥वे पाण्डव सेना में प्रवेश होकर चेदि, पाञ्चाल, कैकेय आदि देशों के नरपतियों को

तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।
पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः ॥ ३७ ॥
न शेकुः सृञ्जया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ।
विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ॥ ३८ ॥
सर्वोद्यमेन महता पाण्डवान्समभिद्रवत् ।
स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान्सृञ्जयानपि ॥ ३९ ॥
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ।
तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम् ॥ ४० ॥
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ॥ ४१ ॥
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम् ।
द्रोणः पञ्च दिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम् ॥ ४२ ॥
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान् ।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ॥ ४३ ॥
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत्प्रजाः ।
दग्ध्वा योधाञ्शरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ।
यदि चाद्य भवान्युद्धे सूतपुत्रमुखान्रथान् ॥ ४५ ॥
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनंक्ष्यत ।
भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ॥ ४६ ॥

ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनञ्जय ।
एवं वा को रणे कुर्यात्त्वदन्यः क्षत्रियो युधि ॥ ४७ ॥
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ।
निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् ॥ ४८ ॥
निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ।
आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः ॥ ४९ ॥
अनाश्चर्यं हि तत्त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ।
त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाहादिति भारत ॥ ५० ॥
नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः ।
सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ५१ ॥
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ ।
शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा ॥ ५२ ॥
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ।
विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम ॥ ५३ ॥
आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ।
तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः ॥ ५४ ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ।
तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ॥ ५५ ॥
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ।
साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ॥ ५६ ॥

दुर्योधन की सब सेना को और महारथियों को रोक रक्खा था, तभी धृष्टद्युम्न युद्ध में द्रोणाचार्य को मार सके। हे पार्थ ! जयद्रथ-वध के अवसरों पर तुमने जैसा अद्भुत कर्म किया था, उसे तुम्हारे अतिरिक्त और कौन कर सकता था ? तुमने सम्पूर्ण कौरव-सेना को पीड़ित और विमुख करके, महापराक्रमी वीर महीपालों को मारकर, अस्त्रबल से जयद्रथ को मारा। सब राजा लोग जयद्रथ-वधको अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य समझते हैं। किन्तु वास्तव में तुम जैसे महारथी अस्त्रज्ञ के निमित्त, मेरी समझ में, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। तुम ऐसे पराक्रमी हो कि एक दिन में सब क्षत्रियों का नाश कर सकते हो॥४७।५०॥यदि तुम एक दिन में सब क्षत्रियों का संहार कर डालो तो मुझे कुछ विस्मय न होगा; मैं उसे तुम्हारे बाहुबल और अस्त्रबल के उपयुक्त कार्य ही समझूँगा। तुम घड़ी भर में अस्त्रबल से सम्पूर्ण संसार का संहार कर सकते हो। हे पार्थ ! भीष्म और द्रोण की मृत्यु हो जाने से अब कौरव-सेना में कोई वीर नहीं रहा। उसके सब श्रेष्ठ योद्धा और अधिकांश सैनिक मर चुके हैं; अधिकांश रथ, हाथी, और पैदल भी नष्ट हो चुके हैं। इस समय सूर्य चन्द्र नक्षत्रहीन आकाश के समान कौरव-सेना प्रभाहीन हो रही है। पहले इन्द्र के पराक्रम से जैसे दानवसेना नष्ट हुई थी, वैसे ही इस समय तुम्हारे प्रभाव से कौरव-सेना नष्ट हो रही है॥५१।५४॥कौरवदल

प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुन्धराम् ।
एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ॥ ५७ ॥
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव हरिर्यथा ।
अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ॥
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥ ५८ ॥
यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात् ॥ ५९ ॥
अत्यन्तापचितान्बन्धून्मानयन्मातृबान्धवान् ।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥ ६० ॥
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान्न जिघांससि ॥ ६१ ॥
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान्प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
एतत्ते सुकृतं कर्म नात्र किञ्चन युज्यते ।
वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ६३ ॥
दहने यत्सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्त्तत सुयोधनः ॥ ६४ ॥
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत ।
कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः ॥ ६५ ॥

मे केवल अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य और कृपाचार्य, ये पाँच महारथी बच रहे हैं। हे पार्थ! इन पाँचों महारथियों को मारकर महाराज युधिष्ठिर को यह द्वीप-नगर वन-पर्वत सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य अर्पण करो और सुखी होओ। विष्णु ने जैसे दैत्य-दानवों को मारकर इन्द्र को त्रिभुवन का राज्य दिया था, वैसे ही तुम भी शत्रुओं को मारकर युधिष्ठिर को पृथ्वी का साम्राज्य अर्पण करो। पूर्व समय मे विष्णु के पराक्रम से दैत्यों का संहार होने पर देवगण जैसे सन्तुष्ट हुए थे वैसे ही आज तुम्हारे बाहुबल से शत्रुओं का संहार होने पर पाञ्चालगण प्रसन्न होंगे॥५७।५८॥हे अर्जुन! यदि तुम नरश्रेष्ठ गुरुवर द्रोणाचार्य के सम्मान की रक्षा के निमित्त अश्वत्थामा पर कृपा करो और आचार्यपद का गौरव करके कृपाचार्य को छोड़ दो, यदि मातृकुल के सम्मान से बन्धुभाव का विचार करके कृतवर्मा को और मामा समझकर मद्रराज शल्य को न मारो, इन चारों को दया करके छोड़ दो, तो इसमें कुछ हानि नहीं। यह अच्छा कार्य है, हम लोग भी इसका अनुमोदन करेंगे। किन्तु इस पापमति और पाण्डवों के प्रति अत्यन्त क्षुद्र विचार रखनेवाले कर्ण को अवश्य तीक्ष्ण बाणों से आज मार डालो। दुष्टात्मा कर्ण ही सब अनर्थों की जड़ है॥५९।६३॥मन्दमति दुर्योधन ने जो रात्रि के समय लाक्षागृह में तुम पाँचों भाइयों सहित आर्या कुन्ति को भस्म करने का उद्योग किया था और तुम लोगों को सभा में बुलाकर द्यूतक्रीड़ा की थी, सो सब कर्ण की

ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ।
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ॥ ६६ ॥
कर्णः पार्थान्रणे सर्वान्विजेष्यति न संशयः ।
कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ॥ ६७ ॥
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ।
कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान्समागतान् ॥ ६८ ॥
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ।
प्रोत्साहयन्दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ।
यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ॥ ७० ॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ।
यच्च तद्धार्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ॥ ७१ ॥
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ।
द्रोणद्रौणिकृपान्वीरान्कर्षयन्तं नरर्षभान् ॥ ७२ ॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान्विरथांश्च महारथान् ।
व्यश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तीन्व्यायुधजीविनः ॥ ७३ ॥

ही प्रेरणा से हुआ था । दुर्मति दुर्योधन को तुम्हें सताने के निमित्त कर्ण ही सदा उत्साहित करता रहा है । कर्ण सदा सभा में तुम सबको मारने की प्रतिज्ञा करके दुर्योधन को तुम लोगों पर अत्याचार करने के निमित्त उत्साहित करता रहा है । दुर्योधन ने तुम लोगोंके साथ जो कुछ दुर्व्यवहार किया, उसका प्रधान कारण कर्ण ही है । दुर्योधन सदा से समझता है कि कर्ण उसका रक्षक है । कर्ण के आश्रय पर ही दुर्मति दुर्योधन अपनी सभा में बलपूर्वक मुझे पकड़लेने के निमित्त उद्यत हुआ था। दुर्योधन निश्चित रूपसे जानता है कि कर्ण युद्ध में सब पाण्डवों को मारेगा । दुर्योधन ने तुम्हारा बल और पराक्रम जानकर भी कर्ण के बल पर पाण्डवों के साथ युद्ध ठाना है॥६४।६८॥ कर्ण सदा दुर्योधन के आगे राजमण्डली के मध्य कहा करता है कि मैं युद्धस्थल में कृष्ण सहित सब पाण्डवों को परास्त और नष्ट करूँगा । प्रतापी दुर्योधन ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान आदि जो कुछ कर्ण के बल पर किया है, उसे स्मरण करो और शीघ्र कर्ण को मारो॥६८।७१॥हे अर्जुन ! वृषभस्कन्ध महायशस्वी शूर अपराजित बालक अभिमन्यु ने छः महारथियों के मध्य अद्भुत युद्ध किया था। उसने बारम्बार द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि वीरों को तीक्ष्ण बाणों से विचलित कर दिया था। कुरुकुल और वृष्णिवंश के यश को बढानेवाला वह बालक असंख्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को मार रहा था; हाथियों और घोड़ों की पीठों को मनुष्यों से शून्य और महारथियों को रथहीन कर रहा था; घोड़ों को मारता और पैदलों को शस्त्रहीन प्राणहीन करता हुआ वह अपना पराक्रम दिखाता शत्रुसेना को बाणों से भस्म कर रहा था । उसके भय से कुरुसेना के योद्धा इधर-उधर भाग रहे थे । इसी मध्य में क्रूरकर्मा छः महारथियों ने मिलकर उसे मार डाला । हे मित्र ! मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ, अभिमन्यु के इस प्रकार मारे जाने का अन्याय और उससे उत्पन्न क्रोध प्रत्येक समय मेरे चित्त को जलाता

कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरूणामयशस्करम् ।
विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ॥ ७४ ॥
मनुष्यवाजिमातङ्गान्प्राहिण्वन्तं यमक्षयम् ।
शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्तमिव वाहिनीम् ॥ ७५ ॥
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ।
यत्तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो ॥ ७६ ॥
अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ।
सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः ॥ ७७ ॥
निःश्वसन्क्रोधसन्दीप्तो विमुखः सायकार्दितः ।
अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते ॥ ७८ ॥
तस्थौ सुविह्वलः सङ्ख्ये प्रहारजनितश्रमः ।
अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ॥ ७९ ॥
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ॥ ८० ॥
तं चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहरञ्छरवृष्टिभिः ।
तस्मिन्विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत् ॥ ८१ ॥
प्राहसत्स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः ।
यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ॥ ८२ ॥

रहता है॥७१।७६॥उस समय कर्ण ने अभिमन्यु से युद्ध किया था; परन्तु उस बालक के सम्मुख वह ठहर नहीं सका। अभिमन्यु के प्रहार से अचेत, रुधिर से तर और पीड़ित कर्ण की बड़ी दुर्दशा हो गई थी। क्रोधान्ध कर्ण को उस बालक ने बाणों से विमुख कर दिया था। विह्वल कर्ण निरुत्साह होकर भागना चाहता था, परन्तु दुर्योधन को देखकर लज्जा के मारे अभिमन्यु के आगे से भाग नहीं सका और किसी प्रकार खड़ा रहा। उस समय जीवन से निराश कर्ण ने द्रोणाचार्य से अभिमन्यु के वध का उपाय पुछवाया। द्रोण ने वह क्रूर उपाय बता दिया और दुष्ट कर्ण ने बालक का धनुष काट डाला॥७९।८०॥तब उस असहाय अकेले बालक को पाँच महारथियों ने घेर लिया। कपटी दुरात्मा कर्ण और अन्य पाँच महारथियों ने तीक्ष्ण बाण मारकर बालक को शस्त्रहीन कर दिया और इस प्रकार क्रूर कर्ण की कठोरता से ही अभिमन्यु मारा गया। दुर्योधन और कर्ण के अतिरिक्त और सबको अभिमन्यु के मारे जाने से शोक और दुःख हुआ था। इन्हीं दोनों निर्लज्जों ने हँसकर आनन्द प्रकट किया था। हे पार्थ! कर्ण ने ही कुरुसभा में पाण्डवों के आगे कौरवों को सुनाकर द्रौपदी से कहा था कि हे द्रौपदी! हे मधुरभाषिणी! पाण्डव विनष्ट (राज्यहीन दास) होकर सदा के निमित्त नरकगामी हो गये, इसलिए अब तुम अन्य किसी को पति बना लो। हे कमललोचने! तुम्हारे पूर्वपति पाण्डव अब नहीं हैं, इसलिए तुम दासी होकर कुरुराज के भवन में रहो। पाण्डव तुम्हारे प्रभु नहीं रहे; क्योंकि वे दुर्योधन के दास हो चुके। हे शोभने! दास-भार्या तुम स्वयं दासी होकर

प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ८३ ॥
पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ।
एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम् ॥ ८४ ॥
प्रविशारालपक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ।
न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन ॥ ८५ ॥
दासभार्या च पाञ्चालि स्वयं दासी च शोभने ।
अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः ॥ ८६ ॥
सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते ।
पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समम् ॥ ८७ ॥
अन्योन्यं समुदीक्षन्ते धार्तराष्ट्रस्य तेजसा ।
व्यक्तं पण्डतिला ह्येते न पुरेव निमज्जिताः ॥ ८८ ॥
प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम् ।
इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ॥ ८९ ॥
पापः पापवचः कर्णः श्रृण्वतस्तव भारत ।
अद्य पापस्य तद्वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ॥ ९० ॥
शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः ।
यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि ॥ ९१ ॥
तानद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव ।
गाण्डीवप्रहितान्घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्छरान् ॥ ९२ ॥
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः ॥ ९३ ॥
त्वयास्तास्तस्य वर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम् ।
उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा महाशराः ॥ ९४ ॥

रहो॥८०।८५॥आज पृथ्वीपर राजा दुर्योधन ही सम्राट् हैं। सब राजा इन्हीं की कृपा से राज्य सुख भोगते हैं। दुर्योधन के तेज से परास्त पाण्डव बैठे हुए एक दूसरे की ओर लाचारी से देख रहे हैं। ये खोखले तिलों के समान बेकार और नरक में निमग्न पाण्डव आज से नौकर के समान राजा दुर्योधन की सेवा करेंगे ॥८६।८९॥हे अर्जुन! दुरात्मा पापी कर्ण ने तुम्हारे आगे ही ऐसे दुर्वचन धर्मपरायणा द्रौपदी से कहे थे। तुम आज तीक्ष्ण सुवर्ण भूषित बाणों से कर्ण का जीवन नष्ट करके उसके दुर्वचनों और अपने प्रति दुष्ट आचरणों का बदला चुकाओ। तुम लोगों के साथ कर्ण ने जो पापाचरण किया है उसकी शान्ति बाणों से ही होगी। आज राजा लोग कर्ण को तुम्हारे बाणों से मरकर गिरते देखेंगे। आज कर्ण, गाण्डीव धनुष के

अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम् ।
अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः ॥ ९५ ॥
प्रपतन्तं रथात्कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः ।
अद्य शोणितसम्मग्नं शयानं पतितं भुवि ।
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः ॥ ९६ ॥
हस्तिकक्षो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया ।
प्रकम्पमानः पततु भूमावाधि रथध्वजः ॥ ९७ ॥
त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम् ।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम् ॥ ९८ ॥
त्वं चेत्कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
प्रतिज्ञावारणार्थाय निहनिष्यसि सायकैः ॥ ९९ ॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान् ।
स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद ॥ १०० ॥
ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया ।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥ १०१ ॥
एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥ १०२ ॥
पञ्चालान्द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥ १०३ ॥
नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।
सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशङ्गतान् ॥ १०४ ॥
अभ्याहतानां कर्णेन पञ्चालानामसौ रणे ।
श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परन्तप ॥ १०५ ॥

बाणों की चोट खाकर, भीष्म और द्रोण के वाक्यों को स्मरण करे। आज तुम्हारे बिजली के समान चमकीले सुवर्णपुङ्ख नाराच बाण कर्ण के कवचों को छेदकर उसका रक्त पियें॥८९।९४॥आज कर्ण को उसके बान्धव रक्त से तर होकर, शस्त्र फेंककर, पृथ्वी पर लोटते देखें। आज पापी कर्ण की हस्तिकक्ष्या-चिह्नित ध्वजा तुम्हारे भल्ल बाणों से कटकर पृथ्वी पर गिरेगी। कर्ण के मरने पर मद्रराज शल्य तुम्हारे बाणों से व्यथित और अचेत होकर, कर्ण के सुवर्णालंकृत रथ को छोड़कर, भय से भागेंगे॥९५।९८॥आज कर्ण की मृत्यु देखकर दुर्योधन राज्यलाभ और जीवन से निराश हो जायगा। हे धनञ्जय! वह देखो, पाण्डवों के सहायक पाञ्चालगण कर्ण के बाणों से पीड़ित होकर भागे जा रहे हैं। इस समय द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न के पुत्रगण, नकुल, सहदेव, शतानीक, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा, सात्यकि और

नत्वेव भीताः पञ्चालाः कथञ्चित्स्युः पराङ्मुखाः ।
नहि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारणे ॥ १०६ ॥
य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् ।
तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मान्नासन्पराङ्मुखाः ॥१०७॥
ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः ।
यस्त्वेकः सर्वपञ्चालानहन्यहनि नाशयन् ॥ १०८ ॥
कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे ।
तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सलाः ॥ १०९ ॥
तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् ।
निर्दहन्तं च समरे दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ॥ ११० ॥
ते नित्यमुदिता जेतुं मृधे शत्रूनरिन्दम ।
न जात्वाधिरथेर्भीताः पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः ॥ १११ ॥
तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम् ।
आदत्तासूञ्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः ॥ ११२ ॥
एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम् ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथा कृतान् ॥ ११३ ॥
तांस्तथाभिमुखान्वीरान्मित्रार्थे त्यक्तजीवितान् ।
क्षयं नयति राधेयः पञ्चालाञ्छतशो रणे ॥ ११४ ॥
तद्भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे ।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि ॥ ११५ ॥
अस्त्रं हि रामात्कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात् ।
यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥ ११६ ॥

समस्त पाञ्चालों को कर्ण के चङ्गुल में फसा समझो ॥९९।१०४॥कर्ण के बाणों से पीड़ित, तुम्हारे परम आत्मीय, पाञ्चालों की चिल्लाहट सुनाई पड़ रही है। पहले के युद्ध में महावीर भीष्म ने अकेले ही सम्पूर्ण पाण्डव-सेना को बाणों से व्याप्त कर रक्खा था। परन्तु महाधनुर्द्धर शूर पाञ्चालगण उनके बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर भी न तो डरे और न रण से ही विमुख हुए। भला वे योद्धा लोग कर्ण के सम्मुख से क्यों भागने लगे ॥१०५।१०८॥वे लोग धनुर्द्धर योद्धाओं के अस्त्रगुरु अग्निसम तेजस्वी द्रोणाचार्य को परास्त करने के निमित्त सदा उद्यत रहे। वे आज तक कर्ण से भी नहीं डरे और उसके आगे से नहीं भागे। किन्तु आज दुर्मति कर्ण अपने मित्र का प्रिय करने के निमित्त उन महाशूर, जीवन की ममता छोड़कर लड़नेवाले वेगशाली पाञ्चालों को अस्त्रबल से विमुख करके वैसे ही भस्म कर रहा है, जैसे प्रचण्ड अग्नि पतङ्गों को जलाती है॥१०९।११२॥कर्ण और अन्य योद्धा इन्हें मार रहे हैं और खदेड़ रहे हैं। इसलिए

तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम् ।
समावृत्य महासेनां ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११७॥
एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः ।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्ति स्म तावकान् ॥ ११८ ॥
एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत ।
कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः ॥ ११९ ॥
एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः ।
सृञ्जयैर्योधयन्कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः ॥ १२० ॥
पाण्डवान्सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत ।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः ॥ १२१ ॥
नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले ।
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहम् ॥ १२२ ॥
तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥ १२३ ॥
त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान् ।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १२४॥
एतत्कृत्वा महत्कर्म हत्वा कर्णं महारथम् ।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥ १२५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

हे अर्जुन ! तुम शीघ्र ही नौका के समान, कर्ण के पराक्रम सागर में डूब रहे, इन महाधनुर्धर पाञ्चालों का उद्धार करो॥११३।११५॥कर्ण ने उसी भयानक भार्गवास्त्र को छोड़ा है जिसे ऋषिवर परशुराम से प्राप्त किया था। यह महातेजोमय शत्रुपक्ष क्षयकारी अस्त्र अजेय और दुर्निवार्य है। इस अस्त्र के प्रभाव से असंख्य बाण प्रकट होकर भ्रमरपंक्ति के समान चारों ओर फैल रहे हैं, जिनसे पाण्डव सेना अत्यन्त पीड़ित हो रही है॥११६।११८॥पाञ्चालगण अनिवार्य अस्त्र के प्रभाव से विह्वल, व्यथित और विनष्ट होते हुए चारों ओर भाग रहे हैं, । वह देखो, भीमपराक्रमी भीमसेन सृञ्जयों को रोके हुए उनके साथ कर्ण से युद्ध कर रहे हैं। किन्तु अस्त्र युक्त तीक्ष्ण बाण उन्हें बहुत ही पीड़ित कर रहे हैं। इस समय यदि तुम कर्ण की उपेक्षा करोगे तो वह महावीर, शरीर में स्थित रोग के समान, प्रबल होकर सब पाण्डवों, पाञ्चालों और सृञ्जयों का संहार कर डालेगा॥११९।१२१॥ हे पार्थ ! युधिष्ठिर की सेना में और कोई ऐसा योद्धा नहीं है,जो कर्णसे युद्ध ठानकर फिर अक्षत(घाव रहित) शरीर लिये लौट सके। मैं सत्य कहता हूँ, तुमको छोड़कर और कोई भी कर्ण सहित कौरवों को परास्त नहीं कर सकता। इसलिए अब तुम तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को मारने का महाकार्य करो। इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके यश और सुख के साथ विजयलक्ष्मी प्राप्त करो। इसी में तुम्हारी अस्त्रशिक्षा की सार्थकता है ॥१२२।१२५॥

कर्णपर्व का तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७३ ॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच—स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम् ।
विशोकः सम्प्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १ ॥
ततो ज्यामभिमृज्याशु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।
दध्रे कर्ण विनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥ २ ॥
त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम ।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं लोके भूतभविष्यकृत् ॥ ३ ॥
त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रीँल्लोकान्वै समागतान् ।
प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महाहवे ॥ ४ ॥
पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन ।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥ ५ ॥
भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण सर्वशः ।
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव यथाशनिम् ॥ ६ ॥
अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम् ।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ ७ ॥
अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे ।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८ ॥
अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते ।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनते ही क्षण भर में अर्जुन की चिन्ता और शोक सब दूर हो गया। उन्होंने सन्तुष्ट होकर कर्ण-वध के निमित्त दृढ़ निश्चय किया और गाण्डीव धनुष हाथ में लेकर, उसकी प्रत्यञ्चा को परिमार्जित करके, कहा—हे श्रीकृष्ण ! आप भूत भविष्य वर्तमान त्रिकाल के ज्ञाता और प्रवर्तक हैं। आप हमारे नाथ प्रसन्न होकर सहायता कर रहे हैं, इसलिए रण में मुझे अवश्य ही विजय प्राप्त होगी। हे मित्र ! मैं आपकी सहायता प्राप्त कर, कर्ण क्या वस्तु है, युद्ध में एकत्र होकर आक्रमण करने को उद्यत तीनों लोकों के प्राणियों को मार सकता हूँ॥१।४॥हे जनार्दन ! मैं देखता हूँ कि पाञ्चालों की सेना भय के मारे भाग रही है और कर्ण निर्भय होकर समर में विचर रहा है। उसका छोड़ा हुआ भार्गवास्त्र, इन्द्र के वज्र के समान, चारों ओर प्रज्वलित हो रहा है। मैं आज इस भीषण समर में कर्ण को मारूँगा और मेरे उस कार्य और यश का वर्णन तब तक लोग करते रहेंगे जब तक यह पृथ्वी रहेगी। आज मेरे विकर्ण बाण गाण्डीव धनुष से निकलकर कर्ण को अवश्य यमपुर भेजेंगे॥५।८॥आज राजा धृतराष्ट्र यह सोचकर पश्चा-त्ताप और अपनी बुद्धि की निन्दा करेंगे कि उन्होंने सर्वथा राज्य प्राप्त करने के अयोग्य दुर्योधन को क्यों राजा बनाया। धृतराष्ट्र आज अवश्य ही पुत्र, राष्ट्र,

अद्य राज्यात्सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात्तथा पुरात् ।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥ १० ॥
गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम् ।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥ ११ ॥
यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत् ।
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ।
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः ॥ १२ ॥
अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः ।
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥
अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वर ॥ १४ ॥
अद्यासौ सौबलः कृष्ण ग्लहाञ्जानातु वै शरान् ।
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति ॥ १५ ॥
अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम् ।
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः ॥ १६ ॥
अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया ।
सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥ १७ ॥
अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम् ।
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥ १८ ॥
यस्य चैतद्व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः ।
पादौ न धावये तावद्यावद्धन्यां न फाल्गुनम् ॥ १९ ॥

राज्य, सुख और लक्ष्मी से रहित होंगे । आज कर्ण के मारे जाने पर दुर्योधन अवश्य राज्य और जीवन से निराश होकर आपके उन वाक्यों को स्मरण करेगा, जिन्हें आपने सन्धि का प्रस्ताव ले जाकर कुरुसभा में कहा था। धृतराष्ट्र को शोक करना ही चाहिए; क्योंकि जो कोई गुणी को छोड़कर निर्गुण को प्रभु बनाता है वह विनाश को देखकर चिरकाल तक शोक करता है । जैसे कोई मन्दमति पुरुष आम का वन काटकर ढाक के पेड़ लगाता और उन्हें सींचने पर अन्त को पश्चात्ताप करता है, वही दशा धृतराष्ट्र की होगी॥९।१२॥जैसे कोई मूर्ख ढाक के रङ्गीन फल देखकर उससे फल प्राप्त करना चाहे, किन्तु अन्त में पछताय, वैसे ही धृतराष्ट्र आज दुःखित होंगे । आज शकुनि को मालूम होगा कि यह युद्ध की चौसर बड़ी विकट है— इसमें बाण ही पाँसे हैं, गाण्डीव धनुष गोटों की जगह है और मेरा रथ ही उसकी 'बिसात' है । इस द्यूतक्रीड़ा में मेरी ही जीत होगी॥१३।१५॥ आज मैं तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को मारकर राजा युधिष्ठिर की गई हुई नींद फिर लौटाऊँगा । वे कर्ण के भय से रात्रि को सोते नहीं थे, अब सुख से सोवेंगे । आज धर्मराज मेरे बाणों से कर्ण की मृत्यु देखकर प्रसन्न होकर सदा सुख भोग करेंगे । हे श्रीकृष्ण !

मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन ।
पातयिष्ये रथात्कायं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २१ ॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति सूतपुत्रो यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान्गुणान् ॥ २२ ॥
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ।
आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितम् ॥ २३ ॥
मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः ।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥ २४ ॥
अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत् ।
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन्पाण्डवान्प्रति ॥ २५ ॥
ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः ।
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥ २६ ॥
अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुतान्कर्णः श्लाघमानोऽऽत्मनो गुणान् ।
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ॥ २७ ॥
उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति ।
हन्ताहं पाण्डवान्सर्वान्सपुत्रानिति योऽब्रवीत् ॥ २८ ॥

आज मैं समरमें ऐसा अमोघ अप्रतिम उग्र अनिवार्य बाण छोड़ूँगा जो अवश्य ही कर्ण के जीवन को नष्ट कर देगा॥१६।१८॥हे श्रीकृष्ण ! दुरात्मा कर्ण पहले मुझे मारने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा कर चुका है कि वह मुझे मारे बिना अपने पाँव नहीं धुलावेगा। मैं आज उसके इस व्रत को निष्फल कर दूँगा और तीक्ष्ण बाणोंमे उसके प्राणहीन शरीर को रथ के नीचे गिरा दूँगा। जो दुर्मति कर्ण रण में किसी मनुष्य को कुछ समझता ही नहीं, उस अभिमानी के रक्त को आज अवश्य पृथ्वी पियेगी ॥१९।२३॥दुर्योधन की इच्छा के अनुसार कर्ण ने कुरुसभा में अपने गुणों की प्रशंसा करके पाञ्चाली से कहा था कि "हे द्रौपदी ! तुम पतिहीना हो, तुम्हारा कोई रक्षक नहीं है", सो उसके इस उपहास वाक्य को मिथ्या करके आज विषैले नाग के समान क्रुद्ध तीक्ष्ण मेरे बाण उसका रक्त पियेंगे। आज मैं बिजली के समान चमकीले नाराच बाणों को भरजोर खींच-कर गाण्डीव धनुष से छोड़ूँगा और वे कर्ण के प्राणों को हर लेंगे॥२२।२४॥पहले कर्णने कुरुसभामें पाण्डवों की निन्दा करके द्रौपदी से जो कठोर वचन कहे थे, उनके निमित्त उसे आज अवश्य पश्चात्ताप होगा। जो पाण्डव उस दिन कुरुसभा में खोखले तिल कहे गये थे वे ही आज, कर्ण के मारे जाने पर, सारपूर्ण तिल होंगे। मूढ़ कर्ण ने दुर्योधन से बारम्बार प्रण किया है कि वह पुत्रों सहित पाण्डवों को मारकर कौरवों की रक्षा करेगा। आज उस अभिमानी कर्ण के उन वचनों को मेरे तीक्ष्ण बाण असत्य कर दिखावेंगे॥२५।

तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ॥ २९ ॥
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान्दुरात्मवान् ।
हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम् ॥ ३० ॥
शरान्नानाविधान्मुक्त्वा त्रासयिष्यामि शात्रवान् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिर्यमराष्ट्रविवर्धनैः ॥ ३१ ॥
भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः ।
तत्राहं वै महासङ्ख्ये सम्पन्नं युद्धदुर्मदम् ॥ ३२ ॥
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः ।
अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३३ ॥
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।
अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम् ॥ ३४ ॥
हते कर्णे मया सङ्ख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने ।
अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ३५ ॥
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम् ॥ ३६ ॥
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।
अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः ॥ ३७ ॥
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विचरिष्यन्ति केशव ।
अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन ॥ ३८ ॥
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च क्षुरैश्च मधुसूदन ॥ ३९ ॥

२७॥अपने गुणों का गर्व और वर्णन करनेवाले कर्ण के बाहुबल के आश्रय ही दुर्मति दुर्योधन पाण्डवों का अपमान करता आया है और कर्ण के बल पर ही उसने बड़े बड़े मनोरथ कर रक्खे हैं। किन्तु मैं आज [उसके सब मनोरथों को व्यर्थ कर दूँगा और दुर्योधन तथा] सब राजाओं के आगे ही कर्ण को मारूँगा ॥२८।३०॥आज मेरे बाणों से महावीर कर्ण पुत्रों और भाइयों सहित विनष्ट होगा और उसकी यह दशा देखकर दुर्योधन पृथ्वी ,राज्य और जीवन से निराश हो जायगा—धृतराष्ट्र के पुत्रगण और कौरवपक्ष के राजा भय विह्वल होकर वैसे ही भागेंगे, जैसे सिंह को देखकर मृगों के झुण्ड भागते हैं॥३१।३४॥आज कर्ण के मरने पर दुर्योधन अपने कर्त्तव्यों पर पश्चात्ताप करेगा; उसे मालूम होगा कि अर्जुन सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ हैं। आज कर्ण के मरने पर पुत्र पौत्र-अमात्य सुहृद्‌गण सहित धृतराष्ट्र राज्य से निराश, निरानन्द और निराश्रय हो जायँगे—समृद्धिपूर्ण राज्य और लक्ष्मीसे हीन हो जायँगे। आज शत्रु के मरने से धर्मपुत्र निष्कण्टक राज्य के अधिकारी होंगे। आज अनेक गिद्ध आदि मांसाहारी जीव कर्ण की लाश को इधर-उधर घसीटेंगे॥३४।

रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः ।
अद्य राजा महत्कृच्छ्रं सन्त्यक्ष्यति युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥
सन्तापं मानसं वीरश्चिरमम्भृतमात्मनः ।
अद्य केशव राधेयमहं हत्वा सवान्धवम् ॥ ४१ ॥
नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
अद्याहमनुगान्कृष्ण कर्णस्य कृपणान्युधि ॥ ४२ ॥
हन्ता ज्वलनसङ्काशैः शरैः सर्पविषोपमैः ।
अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः ॥ ४३ ॥
संस्तरिष्यामि गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः ।
अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन ॥ ४४ ॥
प्रमथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः ।
अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम् ॥ ४५ ॥
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि ।
अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ॥ ४६ ॥
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च ।
अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ॥ ४७ ॥
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ।
अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः ॥ ४८ ॥
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ।
मम चैव कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ॥ ४९ ॥
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ।
अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ॥ ५० ॥

३८॥आज मैं सब राजाओं के आगे तीक्ष्ण विपाठ और क्षुरप्र आदि विविध बाणों से पापी कर्ण के शरीर को छिन्न-भिन्न करके उसका सिर धड़ से पृथक् कर दूँगा। आज मैं कर्ण को मारकर और उसके अनुचर बन्धुओं का संहार करके धर्मराज को आनन्दित करूँगा॥३९। ४२॥आज मेरे पराक्रम के प्रभाव और सर्पविष सदृश अग्नितुल्य अमोघ कङ्कपक्ष शोभित बाणों से रणभूमि मृत राजाओं के शरीरों द्वारा भर जायगी, अभिमन्यु को मारनेवाले शत्रुओं के सिर धड़ से पृथक् होंगे — उनके शरीर छिन्न भिन्न होंगे। आज दो ही बातें होंगी, या तो मैं, इस पृथ्वी को कर्ण और धृतराष्ट्र के पुत्रों से शून्य करके, बड़े भाई धर्मराज के हाथ में अर्पण करूँगा या आप इस पृथ्वी को अर्जुन से रहित देखेंगे ॥४३।४६॥हे कृष्णचन्द्र ! आज मैं सब योद्धाओं के सम्मुख कर्ण को मारकर अपने रथ, कौरवों के कोप, दिव्य बाण और गाण्डीव धनुष के ऋण से छुटकारा पाऊँगा । इन्द्र ने जैसे शम्बर दैत्य को मारा था वैसे ही आज कर्ण को मारकर मैं तेरह वर्ष से एकत्र हुए भारी दुःख से मुक्त हो जाऊँगा । आज मित्र कार्य के निमित्त यत्न करनेवाले सोमवंशी महारथी कर्णवध

प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकस्य च ।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव ॥ ५१ ॥
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे ।
अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ॥ ५२ ॥
युध्यन्तं कौरवान्सङ्ख्ये घातयन्तं च सूतजम् ।
भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥ ५३ ॥
धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावांस्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥ ५४ ॥
अहं धनुष्मानसुरान्सुरांश्च सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि ।
स्वबाहुवीर्याद्गमये पराभवं मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः ॥ ५५ ॥
शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः सर्वान्कुरून्बाह्लिकांश्चाभिहत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्निस्तथा दहेयं सगणान्प्रसह्य ॥ ५६ ॥
पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते धनुश्च दिव्यं विततं सबाणम् ।
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ५७ ॥
इत्येवमुक्त्वार्जुन एकवीरः क्षिप्तं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः ।
भीमंमुमुक्षुः समरे प्रयातः कर्णस्यकायाच्च शिरोजिहीर्षुः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

मैं कृतकृत्य होकर आनन्द मनाऊँगा॥४६।४९॥मैं जब कर्ण को और उसके पुत्र को मारकर विजय प्राप्त करूँगा तब वीर सात्यकि को अपार हर्ष होगा। मैं कर्ण को मारकर भीमसेन, नकुल और सहदेव को प्रसन्न करूँगा और वीर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा अन्य पाञ्चालों के ऋण से छुटकारा पाऊँगा। आज सब लोग देखें कि अर्जुन कुपित होकर प्रतिज्ञा पूर्ण करने के निमित्त कर्ण और कौरवों को मार रहा है॥४९।५३॥हे कृष्णचन्द्र ! मैं आपके आगे फिर अपनी प्रशंसा और पराक्रम का वर्णन करता हूँ। इस पृथ्वी पर धनुर्वेद का ज्ञाता, पराक्रमी, क्रोधी, क्षमाशील और दयावान् और कोई नहीं है। मैं धनुष हाथ में लेकर देवता, दैत्य और सब प्राणी आदि को एक साथ अपने बाहुबल से परास्त कर सकता हूँ। मेरा पौरुष सब शत्रुओं से बढ़कर है। गाण्डीव धनुष से बाण-वर्षा करके मैं अकेला ही, ग्रीष्म ऋतु में सूखी घास को जला रही अग्नि के समान, सब कौरवों और बाह्लीकों का नष्ट कर सकता हूँ। मेरी हथेलियों में तीक्ष्ण बाण और धनुष की रेखाएँ हैं, तलवों में रथ और ध्वजा के चिह्न विद्यमान् हैं। मुझ सरीखे शुभ-लक्षण-सम्पन्न पुरुष को कोई युद्ध में परास्त नहीं कर सकता। हे महाराज ! लोहितलोचन शत्रुनाशन अद्वितीय वीर अर्जुन श्रीकृष्ण से यों कहते हुए, भीमसेन की रक्षा ओर कर्ण के वध के निमित्त दृढ़ निश्चय करके, युद्ध-भूमि की ओर चले॥५४।५८॥

—:०:—

कर्णपर्व का चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

7217

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—समागमे पाण्डवसृञ्जयानां महाभये मामकानामगाधे ।
धनञ्जये तात रणाय याते कर्णेन तद्युद्धमथोऽत्र कीदृक् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच—तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि रणे समृद्धानि समागतानि ।
गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि नादैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥ २ ॥
महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं वादित्रनेमीनलशब्दवच्च ।
हिरण्यचित्रायुधविद्युतं च शरासिनाराचमहास्त्रधारम् ॥ ३ ॥
तद्भीमवेगं रुधिरौघवाहि खड्गाकुलं क्षत्रियजीवघाति ।
अनार्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं बभूव तत्संहरणं प्रजानाम् ॥ ४ ॥
एकं रथं सम्परिवार्य मृत्युं नयन्त्यनेके च रथाः समेताः ।
एकस्तथैकं रथिनं रथाग्र्यास्तथा रथश्चापि रथाननेकान् ॥ ५ ॥
रथं ससूतं सहयं च कश्चित्कश्चिद्रथी मृत्युवशं निनाय ।
निनाय चाप्येकगजेन कश्चिद्रथान्बहून्मृत्युवशे तथाश्वान् ॥ ६ ॥
रथान्ससूतान्सहयान्गजांश्च सर्वानरीन्मृत्युवशं शरौघैः ।
निन्ये हयांश्चैव तथा ससादीन्पदातिसङ्घांश्च तथैव पार्थः ॥ ७ ॥
कृपः शिखण्डी च रणे समेतौ दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् ।
श्रुतस्तथा द्रोणपुत्रेण सार्धं युधामन्युश्चित्रसेनेन सार्धम् ॥ ८ ॥
कर्णस्य पुत्रं तु रथी सुषेणं समागतं सृञ्जयश्चोत्तमौजाः ।
गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्तो महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत् ॥ ९ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मेरे पक्ष के निमित्त भयङ्कर पाण्डवों और सृञ्जयों के युद्ध में अर्जुन के जाने पर कर्ण के साथ उनका कैसा युद्ध हुआ ? उस युद्ध का वृत्तान्त तुम मुझसे कहो॥१॥सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! पाण्डवों और सृञ्जयों की सुसज्जित और विशाल ध्वजाओं से शोभित सेना,सुश्रृङ्खला के साथ, युद्धस्थल में उपस्थित हुई । वर्षा ऋतु में मेघ जैसे पवन सञ्चालित होकर गरजते हैं, वैसे ही वे सैनिक नगाड़े बजाने और सिंहनाद करने लगे । वह भयानक संग्राम असमय में होनेवाली, अनिष्ट करनेवाली,वर्षा के समान अत्यन्त क्रूर भाव से संहार करने लगा । बड़े बड़े गजराज मेघघटा के समान, अस्त्रशस्त्र वर्षा जल-धारा के समान, बाजों का शब्द, रथों की घरघराहट और तल शब्द मेघ गर्जन के समान, सुवर्ण चित्रित शस्त्र समूह चमक रही बिजलियों के समान और बाण खड्ग नाराच आदि अस्त्र शस्त्र बूँदों के गिरने के समान जान पड़ते थे । वह युद्ध बड़े वेग से हो रहा था । रक्त बह रहा था । खड्ग आदि शस्त्रों के प्रहार से असंख्य क्षत्रियों के जीवन नष्ट हो रहे थे॥२।४॥बहुत से रथी कहीं पर एक रथी को घेरकर मार रहे थे और कहीं पर एक ही महारथी अनेक रथी योद्धाओं को यमपुर भेज रहा था । कहीं एक रथी एक रथी को और कहीं अनेक रथी, अनेक रथी योद्धाओं को मार रहे थे । किसी रथी ने अपने प्रतिद्वन्द्वी रथी को सारथी और घोड़ों सहित मार डाला । कहीं किसी हाथी पर सवार योद्धा ने अनेक रथियों और घुड़सवारों को मार डाला । उस समय वीरवर अर्जुन तीक्ष्ण असंख्य बाण बरसाकर शत्रुदल के सारथी और घोड़ों सहित रथों, हाथियों, घुड़सवारों, घोड़ों और पैदलों को मार-मारकर यमपुर भेजने लगे॥५।७॥कृपाचार्य शिखण्डी से, दुर्योधन सात्यकि से, अश्वत्थामा श्रुतश्रवा से, चित्रसेन युधामन्यु से और कर्ण के पुत्र सुषेण पाञ्चाल वीर उत्तमौजा से

शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः ।
समार्पयत्कर्णपुत्रश्च शूरः पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥ १० ॥
रथर्षभः कृतवर्माणमार्छन्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी ।
पञ्चालानामधिपो याज्ञसेनिः सेनापतिः कर्णमार्छत्ससैन्यम् ॥ ११ ॥
दुःशासनो भारत भारती च संशप्तकानां पृतना समृद्धा ।
भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं भीमं समार्छत्तमसह्यवेगम् ॥ १२ ॥
कर्णात्मजं तत्र जघान वीरस्तथाच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य ।
तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ निनादयद्गां निनदेन खं च ॥ १३ ॥
सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां विलोक्य कर्णोऽथ तदार्तरूपः ।
क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजं च बाणैः सुधारैर्निशितैरकृन्तत् ॥ १४ ॥
स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कैर्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण ।
पार्ष्णिग्रहांश्चैव कृपस्य हत्वा शिखण्डिवाहं स ततोऽध्यरोहत् ॥ १५ ॥
कृपं तु दृष्ट्वा विरथं रथस्थो नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी ।
तं द्रौणिरावार्य रथं कृपस्य समुज्जह्रे पङ्कगतां यथा गाम् ॥ १६ ॥
हिरण्यवर्मा निशितैः पृषत्कैस्तावारमजानामनिलात्मजो वै ।
अतापयत्सैन्यमतीव भीमः काले शुचौ मध्यगतो यथार्कः ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलद्वन्द्वयुद्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

युद्ध करने लगे। साँड जैसे सिंह से युद्ध करे वैसे ही वीर सहदेव पाँसों के खेल में धूर्त गान्धारराज शकुनि से युद्ध करने के निमित्त दौड़े। नवयुवक नकुलनन्दन शतानीक कर्ण के पुत्र युवा वृषसेन के ऊपर बाण बरसाने लगे। महापराक्रमी वृषसेन भी नकुल के पुत्र को बाणों से पीड़ित करने लगे॥८।१०॥विचित्र युद्ध में निपुण नकुल कृतवर्मा से और पाण्डवों के सेनापति धृष्टद्युम्न सैन्य सहित वीर कर्ण से युद्ध करते हुए उनको बाणों से पीड़ित करने लगे। वीर दुःशासन संशप्तकगण को साथ लेकर, मुख फैलाये क्रूर काल के समान भयङ्कर, धनुर्द्धरश्रेष्ठ असह्य वेगवाले भीमसेन के साथ युद्ध करने लगे। महाबली उत्तमौजा ने बलपूर्वक बाणों से कर्णपुत्र सुषेण का सिर काट डाला। सुषेण का कटा हुआ सिर पृथ्वीतल और आकाश को प्रतिध्वनित करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा॥११।१३॥ यह देखकर कर्ण को बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। उन्होंने बाणों से उत्तमौजा के घोड़े मार डाले और उनके रथ और ध्वजा के टुकड़े टुकड़े कर डाले। उत्तमौजा तीक्ष्ण बाणों से और खड्ग से कृपाचार्य के रथ तथा चक्र-रक्षकों को नष्ट कर शिखण्डी के रथ पर सवार हो गये। कृपाचार्य को रथहीन देखकर रथ पर स्थित शिखण्डी ने उन पर बाण का प्रहार नहीं किया। इसी मध्य में कीचड़ में फँसी गाय के समान सङ्कट में पड़े हुए कृपाचार्य को, अपने रथ पर बैठा कर, अश्वत्थामा ने विपत्ति से उबार लिया। मध्याह्न-काल के समय तप रहे ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के समान सुवर्णकवचधारी भीमसेन भी आपके पुत्रों की सेना को अपने तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करके शत्रुओं का संहार करने लगे॥१४।१७॥

—:०:—

कर्णपर्व का पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमो अध्याय ॥ ७६ ॥

सञ्जय उवाच—अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः ।
महारणे सारथिमित्युवाच भीमश्चमूं वाहय धार्त्तराष्ट्रीम् ॥ १ ॥
त्वं सारथे याहि जवेन वाहैर्नयाम्येतान्धार्त्तराष्ट्रान्यमाय ।
संचोदितो भीमसेनेन चैवं ससारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् ॥ २ ॥
प्रायात्ततः सत्वरमुग्रवेगो यतो भीमस्तद्बलं गन्तुमैच्छत् ।
ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात् ॥ ३ ॥
भीमस्य वाहान्यमुदारवेगं समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः ।
ततः शरानापततो महात्मा चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ४ ॥
ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ।
ततो राजन्नागरथाश्वयूनां भीमाहतानां वरराजमध्ये ॥ ५ ॥
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र वज्राहतानामिव पर्वतानाम् ।
ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या निर्भिद्यन्तो भीमशरप्रवेकैः ॥ ६ ॥
भीमं समन्तात्समरेऽभ्यरोहन्वृक्षं शकुन्ता इव पुष्पहेतोः ।
ततोऽभियाते तव सैन्ये स भीमः प्रादुश्चक्रे वेगमनन्तवेगः ॥ ७ ॥
यथान्तकाले क्षपयन्दिधक्षुर्भूतान्तकृत्काल इवात्तदण्डः ।
तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं नाशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः ॥ ८ ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७६ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र ! उस महायुद्ध में असंख्य शत्रुसेना के मध्य घिरे हुए अकेले भीमसेन ने अपने सारथी विशोक से कहा—हे सूत ! तुम *वेग से घोड़ों को हाँककर दुर्योधन की इस सेना के* भीतर मुझे ले चलो । मैं अभी इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार डालता हूँ । हे महाराज ! भीमसेन की आज्ञा प्राप्तकर वह सारथी बड़े वेग से रथ को हाँकने लगा। भीमसेन जहाँ पर जाना चाहते थे वहीं पर विशोक ने उनको पहुँचा दिया । तब कुरुसेना के योद्धा लोग बहुत से रथ, हाथी, घोड़े, पैदल साथ लेकर चारों ओर से भीमसेन पर आक्रमण करने के निमित्त चले और वेग से जा रहे उनके रथ और श्रेष्ठ घोड़ों पर बाण बरसाने लगे॥ १।४॥ महाबली भीमसेन भी सुवर्ण-पुङ्ख शोभित बाणों से उस बाण वर्षा को व्यर्थ कर—शत्रुओं के बाणों के दो-दो तीन तीन टुकड़े कर—पृथ्वी पर गिराने लगे । वज्रपात से फटे हुए पर्वतों के समान भीमसेन के बाणों से विदीर्ण असंख्य हाथी, घोड़े, रथी योद्धा और पैदल सिपाही घोर हाहाकार *और आर्तनाद करने लगे । पुष्पों के मधु के लोभ से* पक्षियों के झुण्ड जैसे किसी बड़े वृक्ष की ओर जाते हैं, वैसे ही भीमसेन के बाणों से पीड़ित प्रधान रथी राजा लोग चारों ओर से भीमसेन की ओर चले और तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर को छिन्न भिन्न करने लगे॥ ४।७॥ हे महाराज ! इस प्रकार जब आपकी सेना ने घोर आक्रमण किया तब, प्रलयकाल में सब प्राणियों का संहार करने के निमित्त उद्यत दण्डपाणि काल के समान उग्र रूप रखकर भीमसेन बड़े वेग से चले । प्रलय के समय मुख फैलाकर सृष्टि का संहार करनेवाले काल के वेग को जैसे कोई नहीं सँभाल सकता, वैसे ही उस समय वेग से आ रहे भीमसेन के

व्यात्ताननस्यापततो यथैव कालस्य काले हरतः प्रजा वै ।
ततो बलं भारत भारतानां प्रदह्यमानं समरे महात्मना ॥ ९ ॥
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं महानिलेनाभ्रगणा यथैव ।
ततो धीमान्सारथिमब्रवीद्बली स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः ॥ १० ॥
सूताभिजानीहि स्वकान्परान्वा रथान्ध्वजांश्चापततः समेतान् ।
युध्यन्ह्यहं नाभिजानामि किञ्चिन्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः ॥ ११ ॥
अरीन्विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो मनो रथाग्रध्वजाग्राणि धुनोति मे भृशम् ।
राजातुरो नागमद्यत्किरीटी बहूनि दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत ॥ १२ ॥
एतद् दुःखं सारथे धर्मराजो यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये ।
नैनं जीवं नापि जानाम्यजीवं बीभत्सुं वा तन्ममाद्यातिदुःखम् ॥ १३ ॥
सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं विनाशयिष्ये परमप्रतीतः ।
एतन्निहत्याजिमध्ये समेतं प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य ॥ १४ ॥
सर्वांस्तूणानसायकानामवेक्ष्य किं शिष्टं स्यात्सायकानां रथे मे ।
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां ज्ञात्वा व्यक्तं तत्समाचक्ष्व सूत ॥ १५ ॥
विशोक उवाच षण्मार्गणानामयुतानि वीर क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः ।
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर त्रीण्येव च प्रदराणां स पार्थ ॥ १६ ॥

आगे आपकी सेना का कोई वीर योद्धा नहीं ठहर सका। भीमसेन के भय से सम्पूर्ण सेना वैसे ही भागने लगा, जैसे आँधी चलने से मेघ छिन्न भिन्न हो जाते हैं। भीमसेन को, सहार करते हुए, आते देखकर मारा जा रहा सेना भय से विह्वल हो उठी॥७।१०॥
उस समय महाबली भीमसेन ने आनन्दित होकर फिर अपने सारथी से कहा—हे विशोक ! मैं इस समय युद्ध में ऐसा लिप्त हो रहा हूँ कि मुझे यह नहीं जान पड़ता कि सम्मुख और आसपास उपस्थित रथों में कौन अपने पक्ष का है और कौन पराये पक्ष का है। तुम मुझे बतलाते चलो कि किस ओर कौन मित्र है, कौन शत्रु है, जिससे मैं असावधानता वश अपनी ही सेना को बाणों से नष्ट न कर डालूँ। चारों ओर शोकहीन शत्रुओं के रथों और ध्वजाओं को देखकर मैं क्रोधित हो रहा हूँ। आज धर्मराज को शत्रुओं ने बहुत सताया है और अर्जुन भी अब तक धर्मराज के समीप से लौटकर नहीं आये। इन्हीं कारणों से मैं शोक, क्षोभ और दुःख से ज्ञान शून्य सा हो रहा हूँ॥११।१२॥मुझे इसका बड़ा दुःख है कि धर्मराज मुझे छोड़कर शत्रुसेना के भीतर गये। मालूम नहीं, धर्मराज जीवित हैं या नहीं। कहीं ऐसा न हुआ हो कि पीड़ित धर्मराज की मृत्यु देखकर अर्जुन ने आत्म हत्या कर ली हो। अर्जुन अब तक लौटकर नहीं आये, इससे मेरे मन में अनेक प्रकार के संदेह हो रहे हैं। मैं अत्यन्त दुःख और क्रोध से पीड़ित हो रहा हूँ। अस्तु, मैं इस समय एकाग्र होकर सम्पूर्ण शत्रुसेना का संहार करके ही प्रसन्नता और शांति प्राप्त करूँगा। मेरे इस कार्य से तुम्हें भी आनन्द होगा। अब तुम सब तरकसों को देखकर मुझे यह बताओ कि मेरे रथ पर किस किस प्रकार के कितने कितने बाण बच रहे हैं॥१३।१५॥विशोक ने कहा—हे वीर ! तुम्हारे रथ में ■ अयुत (साठ हजार) बाण हैं। दस

अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं न यद्वहेच्छकटं षड्गवीयम् ।
एतद्विद्वन्मुञ्च सहस्रशोऽपि गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥ १७ ॥
प्रासाश्च मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च मा भैषीस्त्वं संक्षयादायुधानाम् ॥ १८ ॥

भीमसेन उवाच सूताद्यैनं पश्य भीमप्रयुक्तैः सञ्छिन्दद्भिः पार्थिवानां सुवेगैः।
छन्नं बाणैराहवं घोररूपं नष्टादित्यं मृत्युलोके न तुल्यम् ॥ १९ ॥
अद्यैतद्वै विदितं पार्थिवानां भविष्यति ह्याकुमारं च सूत ।
निमग्नो वा समरे भीमसेन एकः कुरून्वा समरे व्यजैषीत् ॥ २० ॥
सर्वे सङ्ख्ये कुरवो निष्पतन्तु मां वा लोकाः कीर्तयन्त्वाकुमारम् ।
सर्वानेकस्तानहं पातयिष्ये ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु ॥ २१ ॥
आशास्तारः कर्म चाप्युत्तमं ये तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु ।
आयात्विहाद्यार्जुनः शत्रुघाती शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥ २२ ॥
ईक्षस्वैतां भारतीं दीर्यमाणामेते कस्माद्विद्रवन्ते नरेन्द्राः ।
व्यक्तं धीमान्सव्यसाची नराग्र्यः सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः ॥ २३ ॥
पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक नागान्हयान्पत्तिसङ्घांश्च सङ्ख्ये ।
रथान्विकीर्णाञ्शरशक्तिताडितान्पश्यस्वैतान्रथिनश्चैव सूत ॥ २४ ॥
आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना ।
धनञ्जयस्याशनितुल्यवेगैर्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिजालैः ॥ २५ ॥

सहस्र क्षुरप्र बाण और इतने ही भल्ल बाण हैं। दो सहस्र नाराच बाण और तीन सहस्र प्रदर बाण हैं। इनके अतिरिक्त गदा, खड्ग, प्रास, मुद्गर, शक्ति, तोमर आदि शस्त्र भी सहस्रों हैं। तुम्हारे पास बचे हुए इतने शस्त्र हैं कि छकड़े में रखने से छः बली बैल भी उस छकड़े को नहीं खींच सकते। इसलिए तुम अपना बाहुबल दिखाते हुए निःसंशय होकर शत्रुओं पर शस्त्र चलाओ। शस्त्रों के समाप्त हो जाने की शङ्का मत करो॥१६।१८॥भीमसेन ने कहा—हे विशोक! आज देखना, मेरे हाथों से छूटे हुए और शत्रु राजाओं का संहार कर रहे बाणों से सम्पूर्ण रणभूमि भर जायगी। आकाश-मण्डल में सूर्य का प्रकाश नहीं देख पड़ेगा। यह रणभूमि यमलोक के समान भयानक हो उठेगी। आज शत्रुसेना के राजाओं के बच्चे बच्चे तक को मालूम हो जायगा कि भीमसेन के हाथों में इतना बल है। आज या तो मैं ही मारा जाऊँगा और या अकेला मैं सब कौरवसेना को परास्त कर दूँगा। आज मैं ऐसा कर्म करूँगा कि लोग मेरे बाल्यकाल से लेकर अब तक के गुणों का वर्णन करेंगे। मेरा मङ्गल चाहनेवाले देवगण मुझे इस समय विजय दें, सब विघ्नों को दूर करें॥१९।२२॥श्रीकृष्ण जिनके सारथी हैं वे महारथी अर्जुन, यज्ञ में बुलाये गये इन्द्र के समान, यहाँ आ जायँ। हे सूत! वह देखो, कौरव सेना छिन्न भिन्न हो गई और योद्धा राजा लोग चारों ओर भाग रहे हैं। इसका क्या कारण है? मुझे जान पड़ता है कि अर्जुन तीक्ष्ण बाणों से कौरव सेना को पीड़ित करते हुए आ रहे हैं। वह देखो, असंख्य ध्वजाओं से शोभित कौरवों की चतुरङ्गिणी सेना—अगणित बाण, शक्ति आदि शस्त्रों के प्रहार से पीड़ित होकर—भाग रही है॥२३।२४॥अर्जुन के वज्र तुल्य सुवर्णपुङ्ख अमोघ बाणों से मारी जा रही शत्रुसेना, हाहाकार करती हुई, चारों ओर चक्कर खा रही है।

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः पदातिसङ्घानतिमर्दयन्तः ।
समुह्यमानाः कौरवाः सर्व एव द्रवन्ति नागा इव दाहभीताः ॥ २६ ॥
हाहाकृताश्चैव रणे विशोक मुञ्चन्ति नादान्विपुलान्गजेन्द्राः ॥ २७ ॥

विशोक उवाच – किं भीम नैनं त्वमिहाश्रृणोषि विस्फारितं गाण्डिवस्यातिघोरम् ।
क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽद्य कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ विनष्टौ ॥ २८ ॥
सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः कपिर्ह्यसौ दृश्यते हस्तिसैन्ये ।
नीलाद्घनाद्विद्युतमुच्चरन्तीं तथा पश्य विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम् ॥ २९ ॥
कपिर्ह्यसौ वीक्ष्यते सर्वतो वै ध्वजाग्रमारुह्य धनञ्जयस्य ।
वित्रासयन्रिपुसङ्घान्विमर्दे बिभेम्यस्मादात्मनैवाभिवीक्ष्य ॥ ३० ॥
विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं विचित्रमेतच्च धनञ्जयस्य ।
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥ ३१ ॥
पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं पश्यस्व शङ्खं देवदत्तं सुघोषम् ।
अभीषुहस्तस्य जनार्दनस्य विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥ ३२ ॥
रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य ।
चक्रं यशोवर्धनं केशवस्य सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर ॥ ३३ ॥
महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः ।
किरीटिना तेन पुनः ससादिनः शरैर्निकृत्ताः कुलिशैरिवाद्रयः ॥ ३४ ॥
तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं महार्हमेतं द्विजराजवर्णम् ।
कौन्तेय पश्योरसि कौस्तुभं च जाज्वल्यमानं विजयां स्रजं च ॥ ३५ ॥

ये हाथियों, घोड़ों और रथों के झुण्ड पैदल सेना को रौंदते कुचलते भाग रहे हैं । दावानल से घबराये हुए हाथियों के समान ये कौरवदल के योद्धा भागते और हाहाकार करते हैं । नाराचों से घायल होकर बड़े-बड़े हाथी चिल्ला रहे हैं॥२५।२७॥विशोक ने कहा—हे वीर भीमसेन ! क्या तुम कुपित अर्जुन के हाथों से खींचे जा रहे गाण्डीव धनुष के घोर शब्द को नहीं सुन रहे हो ? अर्जुन के धनुष की ध्वनि ने क्या तुम्हारी श्रवण शक्ति नष्ट कर दी है ? वह देखो,तुम्हारी सब अभिलाषाओंको पूर्ण करता हुआ अर्जुनकी ध्वजाका वानर शत्रुओं की गजसेना के मध्य उन्हें डरवाता हुआ दिखाई दे रहा है । उसे देखकर मेरे हृदय में भी भय का सञ्चार हो रहा है।वह देखो,महाबली अर्जुनके धनुष की प्रत्यञ्चा श्याम घनघटा में चमक रही बिजली के समान शोभित हो रही है॥२८।३०॥अर्जुन का विचित्र किरीट और किरीट के मध्य में स्थित सूर्यतुल्य दिव्य बहुमूल्य मणि अपूर्व शोभा को प्राप्त हो रही है । उनके समीप ही रथ पर श्वेत वर्ण का, गम्भीर शब्द करनेवाला, दिव्य देवदत्त नामक शङ्ख शोभायमान है । वह देखो, घोड़ों की रास हाथ में लेकर समरभूमि में विचर रहे महात्मा कृष्णचन्द्र के समीप सूर्य-सदृश तेजोमय, केशव के यश को बढ़ानेवाला, यादवों के द्वारा पूजित, तीक्ष्ण, वज्रनाभ सुदर्शन चक्र विद्यमान् है॥३१।३३॥श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में प्रकाशमान कौस्तुभ मणि और वैजयन्ती माला सुशोभित हो रहे है । वह देखो, महाबली अर्जुन क्षुरप्र बाणों से हाथि-

ध्रुवं रथाग्र्यः समुपैति पार्थो विद्रावयन्सैन्यमिदं परेषाम् ।
सिताभ्रवर्णैरसितप्रयुक्तैर्हयैर्महार्हैं रथिनां वरिष्ठः ॥ ३६ ॥
रथान्हयान्पत्तिगणांश्च सायकैर्विदारितान्पश्य पतन्त्यमी यथा ।
तवानुजेनामरराजतेजसा महावनानीव सुपर्णवायुना ॥ ३७ ॥
चतुःशतान्पश्य रथानिमान्हतान्सवाजिसूतान्समरे किरीटिना ।
महेषुभिः सप्तशतानि दन्तिनां पदातिसादींश्च रथाननेकशः ॥ ३८ ॥
अयं समभ्येति तवान्तिकं बली निघ्नन्कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः ।
समृद्धकामोऽसि हतास्तवाहिता बलं तवायुश्च चिराय वर्धताम् ॥ ३९ ॥

भीमसेन उवाच--ददानि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः ।
दासीशतं चापि रथांश्च विंशतिं यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि भीमसेनविशोकसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

की, साखू के पेड़ के समान लम्बी, सूँड़ें काट-काट कर गिरा रहे हैं और विकट वज्र प्रहार से फटे हुए पर्वतों के समान गजराज, अपने सवारों के सहित मर-मरकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं। अवश्य ही श्रीकृष्ण-सञ्चालित श्वेत घोड़ों से शोभित रथ पर बैठे हुए महारथी श्रेष्ठ वीर अर्जुन शत्रुसेना को चारों ओर भगाते हुए रणस्थल में आ रहे हैं। वह देखो, गरुड़ के पङ्खों की प्रचण्ड वायु से उखड़कर गिरनेवाले महावन के वृक्षों के समान ये इन्द्रतुल्य तुम्हारे भाई अर्जुन के बाणों से विदीर्ण शत्रुपक्ष के असंख्य रथ, हाथी, घोड़े और पैदल पृथ्वी पर गिर रहे हैं॥३५।३७॥देखो, अर्जुन ने समर में सारथी और घोड़ों सहित के ये चार सौ रथ तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर डाले हैं। उन्हीं के बाणों से सात सौ हाथी, असंख्य घुड़सवार और पैदल योद्धा मारे जा चुके हैं। वह देखो, धूमकेतु ग्रह के समान कौरवों का नाश करते हुए बली अर्जुन तुम्हारे निकट आ रहे हैं। हे पाण्डव! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो गई, तुम्हारे शत्रु मारे गये। तुम्हारी आयु और बल बढ़े ॥३८।३९॥विशोक के ये वचन सुनकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—हे विशोक! तुमने अर्जुन के आने का प्रिय समाचार सुनाया है, इसलिए अत्यन्त प्रसन्न होकर मैं तुमको उसके पुरस्कार में सौ दासियाँ, बीस रथ और चौदह गाँव देता हूँ॥४०॥

—:०:—

कर्णपर्व का छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच –श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे ।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं नोदय वाजिनः ॥ १ ॥
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत् ।
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७७ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! समरभूमि में रथों की घरघराहट और सिंहनाद सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से शीघ्र रथ हाँकने के निमित्त कहा। श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! जहाँ पर भीमसेन युद्ध कर

तं यान्तमश्वैर्हिमशङ्खवर्णैः सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः ।
जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम् ॥ ३ ॥
रथाश्वमातङ्गपदातिसङ्घा बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च ।
संनादयन्तो वसुधां दिशश्च क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ॥ ४ ॥
तेषां च पार्थस्य च मारिषासीद्देहासुपाप्रक्षपणं सुयुद्धम् ।
त्रैलोक्यहेतोरसुरैर्यथासीद्देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ॥ ५ ॥
तैरस्तमुच्चावचमायुधं तदेकः प्रचिच्छेद किरीटमाली ।
क्षुरार्धचन्द्रैर्निशितैश्च भल्लैः शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून् ॥ ६ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि केतूनश्वान्रथान्पत्तिगणान्द्विपांश्च ।
ते पेतुरुर्व्यां बहुधा विरूपा वातप्रणुन्नानि यथा वनानि ॥ ७ ॥
सुवर्णजालावतता महागजाः सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः समाचिताश्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाचलाः ॥ ८ ॥
विदार्य नागाश्वरथान्धनञ्जयः शरोत्तमैर्वासववज्रसन्निभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा यथा मरुत्वान्बलभेदने पुरा ॥ ९ ॥
ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिन्दमः ।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा ॥ १० ॥

रहे हैं वहाँ मैं तुमको अभी पहुँचाता हूँ॥१।२॥अब उन्होंने मणि-मोतियों के साज से शोभित और सुवर्ण के जाल से अलङ्कृत घोड़ों को वायु के समान वेग से हाँक दिया। जम्भासुर को मारने के निमित्त जा रहे कुपित वज्रपाणि इन्द्र के समान अर्जुन को लेकर वे घोड़े वेग से चले। कौरवों की चतुरङ्गिणी सेना (रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों के झुण्ड) बाणों की सनसनाहट, पहियों की घरघराहट और टापों की धमक से पृथ्वी को कँपाती और शब्दायमान करती हुई आगे बढ़ी। विजयाभिलाषी अर्जुन को आते देखकर कौरवसेना के प्रधान-प्रधान वीर कुपित होकर उनकी ओर बढ़े। अब देह-पाप प्राणहारी घोर युद्ध होने लगा। त्रैलोक्य की रक्षा के निमित्त त्रिलोकीनाथ विष्णुने जैसे असुरों से युद्ध किया था, वैसे ही विजयी वीर अर्जुन कौरवदल के योद्धाओं से दारुण युद्ध करने लगे। अकेले अर्जुन क्षुरप्र, अर्धचन्द्र और तीक्ष्ण भल्ल बाणों से शत्रुओं के चलाये हुए छोटे बड़े शस्त्रों को काटकर उनके सिर और हाथ आदि अङ्गों को तथा छत्रों, चामरों, ध्वजाओं, घोड़ों, रथों, पैदलों और हाथियों को वैसे ही काट-काटकर गिराने लगे, जैसे घोर आँधी बड़े वन के वृक्षों को उखाड़कर तोड़-फोड़कर पृथ्वी पर लिटा देती है॥३।७॥वीरगण अर्जुन के बाणों से कट कटकर गिरने लगे। सुवर्णजाल शोभित,ध्वजा-पताका और योद्धाओं से युक्त बड़े-बड़े हाथी सुवर्णपुङ्खसंयुत बाणों के लगने से दावानल में प्रज्वलित पर्वतों के समान शोभाको प्राप्त हुए। हे भरत-कुलश्रेष्ठ ! महापराक्रमी अर्जुन इस प्रकार वज्र-सदृश बाणों से बहुत से हाथियों, घोड़ों और रथों को छिन्न-भिन्न करके—बल दानव को मारने के निमित्त जा रहे इन्द्र के समान कर्ण को मारने के विचार से शीघ्रता के साथ आगे बढ़ने लगे॥८।९॥वीर अर्जुन ने, सागर के भीतर मच्छ या मगर के समान, शत्रुसेना में प्रवेश किया। उत्साह-युक्त कौरवपक्ष के वीरगण अपार चतुरङ्गिणी सेना लेकर बड़े वेग से अर्जुन का सामना

तं दृष्ट्वास्तावका राजन्रथपत्तिसमन्विताः ।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥ ११ ॥
तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत् ।
सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः ॥ १२ ॥
ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम् ॥ १३ ॥
तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
अर्जुनो व्यधमत्सैन्यं महावातो घनानिव ॥ १४ ॥
तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिणः ।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १५ ॥
ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥ १६ ॥
ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः ।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः ॥ १७ ॥
तेषां चतुःशतान्वीरान्यतमानान्महारथान् ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥ १८ ॥
ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ १९ ॥
तेषां शब्दो महानासीद् द्रवतां वाहिनीमुखे ।
महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्यतः ॥ २० ॥
तां तु सेनां भृशं विद्ध्वा द्रावयित्वार्जुनः शरैः ।
प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकं हि मारिष ॥ २१ ॥

करने लगे । उनके चलने से वैसा ही तुमुल कोलाहल हुआ, जैसा क्षोभ को प्राप्त महासागर की लहरों से शब्द उत्पन्न होता है॥१०।१२॥इस प्रकार वे सिंह-सदृश पराक्रमी महारथी प्राणों का मोह छोड़कर अर्जुन के सम्मुख आये । प्रबल आँधी जैसे घोर मेघजाल को छिन्न-भिन्न करे वैसे ही अर्जुन, घोर बाण बरसा रहीं, उस सेना को अपने बाणों से विह्वल और नष्ट करने लगे । तब उन योद्धाओं ने फिर एकत्र होकर रथों से अर्जुन को घेर लिया । वे सब मिलकर तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को पीड़ित करने लगे । उनके बाणों से घायल अर्जुन ने क्रोध करके बाण-प्रहार से सहस्रों रथों, हाथियों और घोड़ों को मारना आरम्भ कर दिया ॥१३।१६॥अर्जुन के धनुष से छूटे हुए बाणों के असह्य प्रहार से महारथी लोग विह्वल, भयाकुल और निश्चेष्ट होकर अपने-अपने रथों में छिपने लगे । उनमें से विजय के निमित्त यत्न कर रहे चार सौ वीर महारथियों को अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से यमपुर भेज दिया। बचे हुए योद्धा अर्जुन के विविध बाणों की चोट न

तस्य शब्दो महानासीत्परानभिमुखस्य वै ।
गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥ २२ ॥
तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः ।
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥ २३ ॥
श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान् ।
त्यक्त्वा प्राणान्महाराज सेनां तव ममर्द ह ॥ २४ ॥
स वायुवीर्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे ।
वायुवद्व्यचरद्भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥
तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशाम्पते ।
व्यभ्रश्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥ २६ ॥
तां तु सेनां तदा भीमो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शरैरवचकर्तोग्रैः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥ २७ ॥
तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम् ।
व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये ॥ २८ ॥
तथार्दितान्भीमबलान्भीमसेनेन भारत ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥
सैनिकांश्च महेष्वासान्योधांश्च भरतर्षभ ।
समादिशन्रणे सर्वान्हत भीममिति स्म ह ॥ ३० ॥

सह सके और उनको छोड़कर चारों ओर भागने लगे। वे जब भागने लगे तब वैसा ही कोलाहल सुनाई पड़ने लगा जैसा पर्वत से टकराने पर जल-प्रवाह में शब्द उत्पन्न होता है॥१७।२०॥उस सेना को बाणों से अत्यन्त पीड़ित और नष्ट करके वीर अर्जुन फिर कर्ण की सेना की ओर वेग से चले; क्योंकि इस सेना के भागने से आगे का मार्ग निष्कण्टक हो गया था। पूर्व समय में जब गरुड़ ने नागों पर आक्रमण किया था तब नाग-मण्डली में जैसा कोलाहल हुआ था वैसा ही कोलाहल इस समय,अर्जुन को कर्ण की ओर जाते देखकर, कौरवसेना में होने लगा। हे राजेन्द्र! तब स्फूर्तिशाली भीमसेन उस महाकोलाहल को सुन-कर अर्जुन को देखने की इच्छा से बहुत ही प्रसन्न हुए॥२१।२३॥उनके आने का समाचार प्राप्त करते ही प्रतापी भीमसेन प्राणपण से आपकी सेना को मारने लगे। वेग और पराक्रम में वायु के समान भीमसेन उस समय सर्वत्र विचरनेवाले वायु के समान स्फूर्ति से सब ओर जाकर शत्रुओं को चौपट करने लगे। भीमसेन के पराक्रम से पीड़ित कौरवसेना, सागर में टूटी हुई नाव के समान, सङ्कट में पड़कर भागने लगी ॥२४।२६॥भीमसेन उस समय स्फूर्ति दिखाकर तीक्ष्ण बाणों से उस सेना को नष्ट करने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! भीमसेन के असाधारण बल को देखकर सब योद्धा भय से व्याकुल हो उठे। उन्हें भीमसेन प्रलयकाल में सर्व-संहार करनेवाले काल के समान जान पड़ने लगे। हे राजेन्द्र! भीमसेन को इस प्रकार कौरवसेना का संहार करते देखकर राजा दुर्योधनने अपने सैनिकों और महाधनुर्धर योद्धाओं से कहा—हे वीरो! तुम

तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः ।
प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः ॥ ३१ ॥
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः ।
गजाश्च बहुला राजन्नराश्च जयगृद्धिनः ॥ ३२ ॥
रथे स्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम् ।
स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन्समन्ततः ॥ ३३ ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।
परिवेषी यथा सोमः परिपूर्णो विराजते ॥ ३४॥
स रराज तथा संख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः ।
निर्विशेषो महाराज यथा हि विजयस्तथा ॥ ३५ ॥
तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन् ।
क्रोधरक्तेक्षणाः शूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥ ३६ ॥
तां विदार्य महासेनां शरैः सन्नतपर्वभिः ।
निश्चक्राम रणाद्भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि ॥ ३७ ॥
हत्वा दशसहस्राणि गजानामनिवर्तिनाम् ।
नृणां शतसहस्रे द्वे द्वे शते चैव भारत ॥ ३८ ॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि रथानां शतमेव च ।
हत्वा प्रास्यन्दयद्भीमो नदीं शोणितवाहिनीम् ॥ ३९ ॥
शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
नरमीनाश्वनक्रान्तां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥

सब मिलकर भीमसेन को मार डालो। मैं समझता हूँ, भीमसेन को मार लिया तो मानों सम्पूर्ण शत्रुसेना को मार लिया; क्योंकि फिर उसे नष्ट करना कठिन न होगा॥२७।३१॥हे नरनाथ! सब राजा लोग आपके पुत्र की यह आज्ञा पाते ही चारों ओर से भीमसेन पर बाणों की वर्षा करने लगे। भीमसेन बाणों से छिप गये। उधर जय की इच्छा रखनेवाले अनेक शूरों ने भीमसेन को हाथियों और रथों से घेर लिया। उन शूरों के मध्य में शूर-श्रेष्ठ भीमसेन नक्षत्रों के मध्यगत पूर्ण चन्द्र के समान शोभित हुए। परिपूर्ण चन्द्रमा जैसे मण्डल पड़ने पर शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही उस घेरे के मध्य भीमसेन शोभायमान हुए। क्रोध से लाल नेत्र करके भीमसेन की ओर देख रहे सब राजा लोग, उन्हें मार डालने के निमित्त, मिलकर उन पर बाण बरसाने लगे। उस समय भीमसेन ने अर्जुन के ही समान पराक्रम दिखलाया॥३१।३६॥मछली जैसे जल में जाल को तोड़कर निकल जाय वैसे ही तीक्ष्ण बाणों से उस महासेना को छिन्न-भिन्न करके वे उस घेरे से निकल गये। विमुख न होनेवाले दस सहस्र हाथियों, दो लाख दो सौ मनुष्यों, पाँच सहस्र घोड़ों और एक सौ रथों को नष्ट करके भीमसेन ने वैतरणी के समान, भीरु जनों के निमित्त भयङ्कर, रक्त की नदी बहा दी॥३६।३९॥वह नदी रथों के आवर्त से युक्त थी। उसमें हाथी ग्राह के समान, मनुष्य मीन

सञ्छिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नापहारिणीम् ।
ऊरुग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमावृताम् ॥ ४१ ॥
धनुःकाशां शरावापां गदापरिघकेतनाम् ।
हंसच्छत्रध्वजोपेतामुष्णीषवरफेनिलाम् ॥ ४२ ॥
हारपद्माकरां चैव भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
आर्यवृत्तवतीं सङ्ख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ ४३ ॥
योधग्राहवतीं सङ्ख्ये वहन्तीं पितृसादनम् ।
क्षणेन पुरुषव्याघ्र प्रावर्तयत निम्नगाम् ॥ ४४ ॥
यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तथा दुस्तरणीं घोरां भीरूणां भयवर्धनीम् ॥ ४५ ॥
यतो यतः पाण्डवेयः प्रविष्टो रथसत्तमः ।
ततस्ततोऽपातयत योधाञ्शतसहस्रशः ॥ ४६ ॥
एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
जहि मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम् ॥ ४८ ॥
ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान् ।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ४९ ॥
स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् ।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥

के समान, घोड़े नक्र के समान, कटे हुए हाथ नागों के समान देख पड़ते थे। उसमें योद्धाओं के अनेक आभूषण और रत्न भरे पड़े थे। वह लोगों के पाँव पकड़नेवाली, मज्जा की कीचड़ से भरी हुई थी। उसमें केश सेवार के स्थान, सिर शिलाखण्डों के स्थान, धनुष काशकुसुम के स्थान, बाण नीची-ऊँची भूमि के स्थान और पगड़ियाँ फेनपुञ्ज के स्थान देख पड़ती थीं॥४०। ४२॥उस नदी में गदा, परिघ आदि अनेक शस्त्र बह रहे थे और ध्वजा, छत्र आदि हँस से प्रतीत होते थे। हार कमल के पुष्पों के समान जान पड़ते थे। उसमें धूलि की लहरें उठ रही थीं। योद्धा रूप ग्राहों से परिपूर्ण और यमलोक को जा रही वह उस नदी भीरु जनों के निमित्त बड़ी दुस्तर थी। आर्यजनोचित अपने धर्म का पालन करनेवाले क्षत्रिय सहज ही उसके पार जा सकते थे। क्षण भर में भीमसेन ने ऐसी भयानक रक्त की नदी बहा दी। हे राजेन्द्र! महारथी भीमसेन जहाँ-जहाँ पहुँचे वहाँ-वहाँ उन्होंने सैकड़ों-सहस्रों योद्धाओं को मार डाला॥४३।४६॥हे महाराज! रण में भीमसेन के किये हुए इस अद्भुत कार्य को देखकर राजा दुर्योधन ने शकुनि से कहा—हे मामाजी! संग्राम में जनक्षय कर रहे महाबली भीमसेन को तुम शीघ्र मार डालो। भीमसेन को जीत लेने से ही पाण्डवों की सेना परास्त हो जायगी। हे राजेन्द्र! महाप्रतापी शकुनि यह सुनकर अपने भाइयों को साथ लेकर रण-

स न्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः ।
शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे ॥ ५१ ॥
प्रेषयामास नाराचान्रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशिनान् ।
वर्म भित्वा तु ते घोराः पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५२ ॥
न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः ।
सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं रुक्मविभूषितम् ॥ ५३ ॥
प्रेषयामास स रुषा सौबलं प्रति भारत ।
तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः ॥ ५४ ॥
चिच्छेद सप्तधा राजन्कृतहस्तो महाबलः ।
तस्मिन्निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशाम्पते ॥ ५५ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ।
तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् ॥ ५६ ॥
अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।
तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५७ ॥
द्वाभ्यां स सारथिं ह्यार्च्छद्भीमं सप्तभिरेव च ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद द्वाभ्यां छत्रं विशाम्पते ॥ ५८ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान्विव्याध सुबलात्मजः ।
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला ॥ ६० ॥

भूमि में भीमसेन के सम्मुख पहुँचे । तटभूमि जैसे सागर के वेग को रोकती है वैसे ही शकुनि भीमसेन को रोकने की चेष्टा करने लगे । शकुनि को तीक्ष्ण बाणों से अपने को रोकते देखकर भीमसेन उनकी ओर वेग से चले॥४७।५१॥तब शकुनि ने भीमसेन के वक्षस्थल और वाम पार्श्वमें कई सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण नाराच बाण मारे । वे कङ्कपत्रयुक्त बाण कवच को तोड़ते हुए भीमसेन के शरीर में घुस गये॥५१।५३॥इस प्रकार अत्यन्त घायल होने पर भीमसेन को क्रोध चढ़ आया और उन्होंने एक सुवर्णभूषित उग्र बाण शकुनि के ऊपर छोड़ा । महाबली शकुनि ने स्फूर्ति के साथ कई बाणों से उस बाण के सात टुकड़े कर डाले । इस प्रकार बाण को व्यर्थ होते देखकर क्रुद्ध भीमसेन ने हँसकर शकुनि का धनुष भल्ल बाण से काट डाला ॥५३।५६॥प्रतापी शकुनि ने वह कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष और सोलह भल्ल बाण हाथ में लिये । फिर दो बाणों से भीमसेन के सारथी को घायल करके सात बाणों से भीमसेन को पीड़ित किया, एक बाण से ध्वजा और दो बाणों से छत्र काट डाला । चार बाण चारों घोड़ों को मारे । हे महाराज! तब भीमसेन ने क्रोध करके सुवर्णदण्डशोभित लोहमयी एक उग्र शक्ति शकुनि के ऊपर फेंकी । नाग की जिह्वा के समान लपलपा रही वह शक्ति बड़े वेग से आकर शकुनि को लगी॥५६।६१॥कुपित शकुनिने सुवर्णभूषित वही

निपपात रणे तूर्णं सौबलस्य महात्मनः ।
ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम् ॥ ६१ ॥
भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशाम्पते ।
सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ६२ ॥
निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता ।
अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्तराष्ट्रैः समन्ततः ॥ ६३ ॥
न तु तं ममृषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम् ।
अन्यद्गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महाबलः ॥ ६४ ॥
मुहूर्तादिव राजेन्द्र च्छादयामास सायकैः ।
सौबलस्य बलं संख्ये त्यक्त्वाऽऽत्मानं महाबलः ॥ ६५ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ६६ ॥
हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ॥ ६७ ॥
शरैश्च बहुधा राजन्भीममार्छत्समन्ततः ।
प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ६८ ॥
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः ।
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ॥ ६९ ॥
निपपात तदा भूमौ किंचित्प्राणो नराधिपः ।
ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ७० ॥
अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ।
रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ॥ ७१ ॥

शक्ति लेकर भीमसेन को मारी। वह शक्ति भीमसेन की बाईं भुजा को चीरती हुई, आकाश से गिरी हुई बिजली के समान, भूमि पर गिर पड़ी। शकुनि का यह अद्भुत कार्य देखकर कौरवपक्ष के वीर सिंहनाद करने लगे। हे राजेन्द्र! कौरवों के उस सिंहनाद को बली भीमसेन नहीं सह सके। वे क्रुद्ध होकर, दूसरा धनुष लेकर, स्फूर्ति से तीक्ष्ण बाणों से फिर शकुनि की सेना को पीड़ित करने लगे ॥६१।६५॥ पराक्रमी पाण्डव ने शकुनि के सारथी और चारों घोड़ों को मारकर एक भल्ल बाण से ध्वजा काट डाली। बिना घोड़ों के रथ से उतर कर शकुनि, पृथ्वी पर खड़े होकर, धनुष चढ़ाकर भीमसेन पर बाण वर्षा करने लगे। उस समय शकुनि के नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे और वे बारम्बार साँसे ले रहे थे। प्रतापी भीमसेनने वेगसे शकुनिके प्रहारोंको व्यर्थ करके उनका धनुष काट डाला और फिर उनको अनेक तीक्ष्ण बाण ताक ताककर मारे ॥६६।६९॥ भीमसेन के बाणों से विह्वल शकुनि मृतप्राय होकर गिर

प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये ।
सौबले निर्जिते राजन्भीमसेनेन धन्विना ॥ ७२ ॥
भयेन महताऽऽविष्टः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षो मातुलं प्रति ॥ ७३ ॥
पराङ्मुखं तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत ।
विप्रजग्मुः समुत्सृज्य द्वैरथानि समन्ततः ॥ ७४ ॥
तान्दृष्ट्वा विद्रुतान्सर्वान्धार्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् ।
जवेनाभ्यापतद्भीमः किरन् शरशतान्वहून् ॥ ७५ ॥
ते वध्यमाना भीमेन धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ।
कर्णमासाद्य समरे स्थिता राजन्समन्ततः ॥ ७६ ॥
स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽभूत्सुमहाबलः ।
भिन्ननौका यथा राजन्द्वीपमासाद्य निर्वृताः ॥ ७७ ॥
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ।
तथा कर्णं समासाद्य तावकाः पुरुषर्षभ ॥ ७८ ॥
समाश्वस्ताः स्थिता राजन्संप्रहृष्टाः परस्परम् ।
समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शकुनिपराजये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

पड़े । उनको विह्वल और अचेत देखकर दुर्योधन वेग से उनके समीप गये और भीमसेन के सम्मुख ही मामा को रथ पर बिठाकर वहाँ से हटा ले गये । कौरव पक्ष के योद्धा और दुर्योधन के भाई, शकुनि को विह्वल देखकर, रण छोड़कर भीमसेन के भय से भागने लगे ॥६९।७२॥ राजा दुर्योधन भी शकुनि को भीमसेन से परास्त देखकर, भय के मारे, उन्हें लेकर, वेग से घोड़े हँकवाकर वहाँ से चल दिये । हे कुरुराज ! राजा को विमुख देखकर अन्य योद्धा भी प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं को छोड़कर भागने लगे । सब कौरवों को भागते देखकर भीमसेन वेग से बाण बरसाते हुए उनका पीछा करने लगे॥७३।७५॥ भीमसेन के बाणोंसे पीड़ित और मारी जा रही कौरवसेना ने विमुख होकर अपनी रक्षा के निमित्त पराक्रमी कर्ण के समीप जाकर दम लिया । तूफ़ान के समय नाविक लोग नाव टूट जाने पर किसी द्वीप को पाने से जैसे आश्वासित हों, वैसे ही वीर कर्ण को पाकर उनके दम मे दम आया । इस प्रकार कर्ण के द्वारा सुरक्षित होने पर कौरव-सेना फिर आश्वस्त और उत्साहित हुई । हे महाराज ! आपके योद्धा फिर प्रसन्नतापूर्वक प्राणपण से शत्रुओं के साथ युद्ध करने लगे॥७६।७९॥

—:o:—

कर्णपर्व का सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

अथ अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—ततो भग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनोऽब्रवीत्किं नु सौबलो वाऽपि सञ्जय ॥ १ ॥

कर्णो वा जयतां श्रेष्ठो योधा वा मामका युधि।
कृपो वा कृतवर्मा वा द्रौणिर्दुःशासनोऽपि वा ॥ २ ॥
अत्यद्भुतमहं मन्ये पाण्डवेयस्य विक्रमम् ।
यदेकः समरे सर्वान्योधयामास मामकान् ॥ ३ ॥
यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि ।
कुरूणामथ सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः ॥ ४ ॥
शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च सञ्जय ।
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा ॥ ५ ॥
राधेयो वाप्याधिरथिः कर्णः किमकरोद्युधि ।
पुत्रा वा मम दुर्धर्षा राजानो वा महारथाः ॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥ ६ ॥
सञ्जय उवाच—अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
जघान सोमकान्सर्वान्भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ७ ॥
भीमोऽप्यतिबलं सैन्यं धार्तराष्ट्रं व्यपोथयत् ।
अथ कर्णोऽब्रवीच्छल्यं पञ्चालान्प्रापयस्व माम् ॥ ८ ॥
द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।
यन्तारमब्रवीत्कर्णः पञ्चालानेव मां वह ॥ ९ ॥
मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान्महाजवान् ।
प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान्करूषांश्च महाबलः ॥ १० ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय ॥ ७८ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! पराक्रमी भीमसेनने जब इस प्रकार मेरी सेना को अकेले ही मार भगाया तब दुर्योधन, शकुनि, विजयशाली महारथी कर्ण, कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुःशासन और मेरे दल के अन्य योद्धाओं ने क्या कहा ? भीमसेन ने अकेले ही मेरे पक्ष के सब योद्धाओं से लड़कर उन्हें हटा दिया, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। भीमसेन का बाहुबल और पराक्रम मुझे तो अत्यन्त अद्भुत जान पड़ता है॥१।२॥शत्रुनाशन कर्ण सब कौरवों का कवच के समान रक्षक था। उसी के ऊपर कौरवों का कल्याण, प्रतिष्ठा और जीवन की आशा निर्भर थी। उसने पाण्डवों को परास्त करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। उस समय धनुर्धर-श्रेष्ठ कर्ण ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुरूप कार्य कर दिखाया या नहीं ? भीमसेन के पराक्रम से अपनी सेना को मरते और भागते देखकर कर्ण ने, मेरे दुर्धर्ष पुत्रों ने और अन्य महारथी राजाओं ने क्या किया ? हे सूत ! यह सब वृत्तान्त मुझसे कहो॥३।६॥सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! उस तीसरे पहर के समय प्रतापी कर्ण कुपित होकर सोमक सेना का संहार कर रहे थे और उधर महावीर भीमसेन भी दुर्योधन की विशाल सेना को नष्ट कर रहे थे। कर्ण ने जब अपनी सेना को भीमसेन के बाहुबल से विदग्ध होकर भागते देखा, तब वे शल्य से कहने लगे कि हे मद्रराज ! तुम मुझे शीघ्र पाञ्चाल-

प्रविश्य च महत्सैन्यं शल्यः परबलार्दनः ।
न्ययच्छत्तुरगान्हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ॥ ११ ॥
त रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन्विशाम्पते ॥ १२ ॥
ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १३ ॥
ततः शरशतैस्तीक्ष्णै कर्ण आकर्णनिःसृतैः ।
जघान पाण्डवबल शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥
तत्तथा समरे कर्म कुर्वाणमपराजितम् ।
परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १५ ॥
त शिखण्डी च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः ॥ १६ ॥
परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः ।
सात्यकिस्तु तदा कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः ॥ १७ ॥
अताडयद्रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च सप्तभिः ॥ १८ ॥
द्रौपदेयाश्चतु षष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ।
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥ १९ ॥
भीमसेनस्तु राधेय नवत्या नतपर्वणाम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबल ॥ २० ॥

सेना के सम्मुख ले चले॥७।९॥कर्ण की इच्छा के अनुसार महाबली शल्य—चेदि, पाञ्चाल और करूष देश की सेना के सम्मुख—वायु के समान वेग से जानेवाले श्वेत घोड़ों को हाँकने लगे। उस महासेना के भीतर पहुँचकर शल्य वहीं वहीं रथ पहुँचाने लगे जहाँ जहाँ शत्रुपक्ष के रथों को देखकर कर्ण जाने की इच्छा प्रकट करते थे। पाण्डव और पाञ्चालगण सूत-पुत्र के उस व्याघ्रचर्ममण्डित मेघ सदृश रथ को देख कर भय से विह्वल हो उठे॥१०।१२॥उस रथ के चलने से महाघोर शब्द उत्पन्न हो रहा था, जान पड़ता था, जैसे कोई पर्वत फट रहा है या मेघ गरज रहे हैं। तब महाबली कर्ण कान तक तान तानकर छोड़े गये सैकड़ों बाणों से, सहस्रों की संख्या में पाण्डव सेना का संहार करने लगे। अपराजित कर्ण को युद्ध स्थल में ऐसा अद्भुत कार्य करते देखकर शिखण्डी, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और सात्यकि आदि पाण्डवपक्ष के महारथियों ने चारों ओर से घेर लिया। वे सब कर्ण को मार डालने के निमित्त उन पर निरन्तर बाण बरसाने लगे॥१३। १७॥महावीर सात्यकि ने कर्ण के जत्रु स्थान में बीस तीक्ष्ण बाण मारे। इसी प्रकार शिखण्डी ने पच्चीस, धृष्टद्युम्न ने सात, द्रौपदी के पुत्रों ने चौंसठ, सहदेव ने सात, नकुल ने सौ और भीमसेन ने नब्बे तीक्ष्ण बाण मर्मस्थल में मारकर पीड़ित किया॥१७।

अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपद्धनुरुत्तमम् ।
मुमोच निशितान्बाणान्पीडयन्सुमहाबलः ॥ २१ ॥
तान्प्रत्यविध्यद्राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
सात्यकेस्तु धनुश्छित्त्वा ध्वजं च भरतर्षभ ॥ २२ ॥
तं तथा नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमसेनं ततः क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ २३ ॥
सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परन्तपः ॥ २४ ॥
विरथान्द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥
विमुखीकृत्य तान्सर्वाञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पञ्चालानहनच्छूरांश्चेदीनां च महारथान् ॥ २६ ॥
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्पयन् ॥ २७ ॥
तान्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः ।
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ॥ २८ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।
एतदत्यद्भुतं कर्म दृष्टवानस्मि भारत ॥ २९ ॥
यदेकः समरे शूरान्सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
यतमानान्परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः ॥ ३० ॥

२०॥कर्ण ने हँसकर, धनुष चढ़ाकर, इन सबको पाँच पाँच बाण मारे । महाबली कर्ण ने इस प्रकार तीक्ष्ण बाणों से शत्रुपक्ष के महारथियों को पीड़ित करके सात्यकि का धनुष और ध्वजा काट डाली और उनके हृदय में नव विकट बाण मारे । फिर क्रुद्ध होकर भीमसेन को तीस बाण मारकर एक भल्ल बाण से सहदेव की ध्वजा काट डाली और तीन बाणों से उनके सारथी को मार गिराया । क्षण भर में ही द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के रथ नष्ट कर डाले । हे महाराज ! इस प्रकार तीक्ष्ण बाणों से इन सब महारथियों को विमुख करके वीर कर्ण ने शूर पाञ्चालों को और महारथी चेदिगण को मारना प्रारम्भ कर दिया॥२१।२५॥महाबली चेदि, मत्स्य और पाञ्चालगण अकेले कर्ण के सम्मुख जाकर उन पर निरन्तर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे । उनके प्रहारों की परवा न करके महारथी सूतपुत्र बलपूर्वक उन्हें तीक्ष्ण बाणों से मारने और गिराने लगे । सिंह के भय से भाग रहे मृगों के समान भय-विह्वल होकर चेदि, मत्स्य और पाञ्चालगण कर्ण के आगे से भागने लगे॥२६।२९॥हे महाराज ! मैंने प्रतापी कर्ण का यह अद्भुत कर्म देखा कि उन्होंने अकेले ही पाण्डवपक्ष के सब महारथियों को, जो कि पूर्ण उद्योग से शत्रु को रोकने की चेष्टा कर रहे थे, बाणों से विमुख कर दिया। हे भारत! कर्ण की स्फूर्ति और पराक्रम देखकर सब देवता, सिद्ध और चारणगण बहुत सन्तुष्ट हुए और

पाण्डवेयान्महाराज शरैर्वारितवान्रणे ।
तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः ॥ ३१ ॥
तुतुषुर्देवताः सर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।
अपूजयन्महेष्वासा धार्तराष्ट्रा नरोत्तमम् ॥ ३२ ॥
कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम् ।
ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम् ॥ ३३ ॥
कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान् ।
ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः ॥ ३४ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महारथम् ।
तत्राक्रन्दो महानासीत्पञ्चालानां महारणे ॥ ३५ ॥
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः ।
तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः ॥ ३६ ॥
कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः ।
तत्राद्भुतं पुनश्चक्रे राधेयः शत्रुकर्शनः ॥ ३७ ॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम् ।
यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते ॥ ३८ ॥
तथा तत्पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते ।
कर्णोऽपि समरे राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३९ ॥
दहंस्तथौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम् ।
शिरांसि च महाराज कर्णांश्चैव सकुण्डलान् ॥ ४० ॥
बाहूँश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः ।
हस्तिदन्तत्सरून्खड्गान्ध्वजाञ्शक्तीर्हयान्गजान् ॥ ४१ ॥

महाधनुर्धर कौरवपक्षके योद्धाभी कर्णको सर्वश्रेष्ठमहारथी मानकर उनकी प्रशंसा करनेलगे॥३०।३३॥हे राजेन्द्र! गर्मियों में प्रज्वलित प्रचण्ड अग्नि जैसे सूखी घास को जला देती है वैसे ही महापराक्रमी कर्ण उस समय बाणों से शत्रुसेना का संहार करने लगे। पाण्डवपक्ष के सैनिकगण कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर उन्हें देखते ही चारों ओर भागने लगे। कर्ण के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर पाञ्चालगण हाहाकार और आर्तनाद करने लगे। उस महाघोर शब्द को सुनकर पाण्डवपक्ष के और सब सैनिक अत्यन्त भय-विह्वल हो उठे। उन्हें निश्चय हो गया कि कर्ण के समान योद्धा और कोई नहीं है॥३३।३७॥उस समय शत्रुदल-दमन कर्ण युद्धस्थल में ऐसा अद्भुत बल-वीर्य और पराक्रम प्रकट करने लगे कि पाण्डवपक्ष के सैनिक उनकी ओर देखने को भी समर्थ न हुए। जलप्रवाह जैसे पर्वत से टकराकर इधर उधर फैल जाता है वैसे ही वे कर्ण के सम्मुख से इधर-उधर भागने लगे। उस समय महाबाहु कर्ण प्रज्वलित प्रचण्ड अग्नि के समान पाण्डवसेना को भस्म करने लगे॥३७।३९॥ उनके धनुष से छूटे हुए बाणों से शत्रुओं के मस्तक,

रथांश्च विविधाञ्राजन्पताका व्यजनानि च ।
अक्षं च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च ॥ ४२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः ।
तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः ॥ ४३ ॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।
विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः ॥ ४४ ॥
रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।
नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम् ॥ ४५ ॥
घोरे शरान्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृंभिते ।
राधेयचापनिर्मुक्तैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ ४६ ॥
संछादिता महाराज पाण्डवानां महारथाः ।
ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनः पुनः ॥ ४७ ॥
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः ।
मृगसंघान्यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने ॥ ४८ ॥
पञ्चालानां रथश्रेष्ठान्द्रावयञ्शात्रवांस्तथा ।
कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन्सुमहायशाः ॥ ४९ ॥
कालयामास नरसैन्यं यथा पशुगणान्वृकः ।
दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखीम् ॥ ५० ॥
तत्राजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान्रवान् ।
दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः ॥ ५१ ॥
वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः ।
पञ्चालाऽपि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः ॥ ५२ ॥

कुण्डलशोभित कान, हाथ, हाथीदाँत की मूठवाले खड्ग, ध्वजा, शक्ति, हाथी, घोड़े, रथ, पताका, चामर, अक्ष, जोत, युग, पहिये आदि निरन्तर कट-कटकर गिरने लगे। कर्ण के बाणों से मरे हुए असंख्य हाथी-घोड़ों से और उनके रक्त मांस की कीचड़ से रणभूमि दुर्गम हो उठी। चतुरङ्गिणी सेना मारी और गिराई जाने से यह नहीं जान पड़ता था कि कौन स्थान समतल है और कौन स्थान ऊँचा-नीचा है। उस समय धूलि और कर्ण के बाणों से ऐसा अँधेरा छा गया कि योद्धाओं को अपने-पराये का पहचानना कठिन हो गया॥४१।

४५॥फिर महावीर कर्ण सुवर्णभूषित बाणों की वर्षा से पाण्डवपक्ष के महारथियों को पीड़ित करने लगे और वे लोग वारम्बार उनके आगे से भागने लगे। हे राजेन्द्र! वन में सिंह जैसे कुपित होकर मृगों को भगाता है वैसे ही वीर कर्ण भी महारथी पाञ्चालों को भगाने लगे। वे पशुओं को मारनेवाले भेड़िये के समान शत्रुसेना को भय विह्वल करके नष्ट करने लगे॥४६।

५०॥कौरव पक्ष के योद्धा पाण्डवों को समर-विमुख देखकर सिंहनाद करते हुए उनका पीछा करने लगे। उस समय राजा दुर्योधन ने आनन्दित होकर विविध

न्यवर्तन्त यथा शूरं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।
तान्निवृत्तान्रणे शूरान्राधेयः शत्रुतापनः ॥ ५३ ॥
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः ।
तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः ॥ ५४ ॥
निहताः सायकैः क्रोधाच्चेदयश्च परं शताः ।
कृत्वा शून्यान्रथोपस्थान्वाजिपृष्ठांश्च भारत ॥ ५५ ॥
निर्मनुष्यान्गजस्कन्धान्पादातांश्चैव विद्रुतान् ।
आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यः परन्तपः ॥ ५६ ॥
कालान्तकवपु' शूरः सूतपुत्रोऽभ्यराजत ।
एवमेतन्महाराज नरवाजिरथद्विपान् ॥ ५७ ॥
हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसूदनः ।
यथा भूतगणान्हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः ॥ ५८ ॥
तथा स सोमकान्हत्वा तस्थावेको महारथः ।
तत्राद्भुतमपश्याम पञ्चालानां पराक्रमम् ॥ ५९ ॥
वध्यमानाऽपि यत्कर्णं नाजहू रणमूर्धनि ।
राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ६० ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्च महाबलः ।
न्यहनत्पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६१ ॥
कर्णपुत्रौ तु राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ ।
निजघ्नाते बलं क्रुद्धौ पाण्डवानामितस्ततः ॥ ६२ ॥

बाजे बजाने की आज्ञा दी। तब महाधनुर्द्धर पाञ्चालगण शस्त्रहीन और पीड़ित होकर भी वीरों के समान प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध करने लगे। शत्रु विनाशन कर्ण भी उनको बारम्बार भगाने लगे॥५०।५४॥कर्ण ने कुपित होकर तीक्ष्ण बाणों से पाञ्चालसेना के बीस और चेदिसेना के सौ से अधिक श्रेष्ठ रथी योद्धाओं को मार डाला। उनके बाणों के प्रभाव से असख्य रथ तथा हाथियों और घोड़ों की पीठें वीरों से शून्य हो गईं, पैदल सेना भागने लगी। वीर कर्ण उस समय मध्याह्नकाल के प्रचण्ड सूर्य और यम के समान दिखाई पड़ने लगे॥५४।५९॥हे राजेन्द्र! शत्रुदलदलन कर्ण ने इस प्रकार रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदलों का सहार कर डाला। महाबली अनिवार्य काल जैसे प्राणियों का नाश करे, वैसे ही अकेले कर्ण सोमकगण का सहार करते हुए समरभूमि में विचरने लगे। उस समय हम लोगों ने पाञ्चालों का अद्भुत साहस और पराक्रम देखा कि वे इस प्रकार अत्यन्त पीड़ित होने पर भी युद्ध छोड़कर भागे नहीं। हे भारत! इसी समय राजा दुर्योधन, दु शासन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और शकुनि भी क्रुद्ध होकर इधर-उधर पाण्डवसेना को पीड़ित करते हुए विचरने लगे॥५९।६१॥कर्ण के बल विक्रम-सम्पन्न दोनों महारथी पुत्र भी क्रुद्ध होकर पाण्डवसेना का सहार करने लगे। उधर पाण्डवपक्ष के महारथी धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पाँचों पुत्र

तत्र युद्धं महच्चासीत्क्रूरं विशसनं महत् ।
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ६३ ॥
द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम् ।
एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानां ततस्ततः ॥
तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

और सात्यकि आदि भी क्रुद्ध होकर कौरवसेना का नाश करने लगे। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार उस महाभयानक संग्राम में कर्ण आदि वीरों के पराक्रम से पाण्डवों की और भीमसेन आदि के पराक्रम से कौरवों की असंख्य सेना मारी जाने लगी॥६३।६४॥

—:०:—

कर्णपर्व का अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

अथ ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच—अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम् ।
सूतपुत्रं च संक्रुद्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥ १ ॥
शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिपंकिलाम् ।
मनुष्यशीर्षपाषाणां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ॥ २ ॥
शूरास्थिचयसंकीर्णां काकगृध्रानुनादिताम् ।
छत्रहंसप्लवोपेतां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥ ३ ॥
हारपद्माकरवतीमुष्णीषवरफेनिलाम् ।
धनुःशरध्वजोपेतां नरक्षुद्रकपालिनीम् ॥ ४ ॥
चर्मवर्मभ्रमोपेतां रथोडुपसमाकुलाम् ।
जयैषिणां च सुतरां भीरूणां च सुदुस्तराम् ॥ ५ ॥
नदीं प्रावर्तयित्वा च बीभत्सुः परवीरहा ।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥

उनासी अध्याय ॥ ७९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे नरनाथ ! इधर अर्जुन रण में कर्ण को कुपित देखकर और कौरवों की चतुरङ्गिणी सेना को मारकर आगे बढ़े। उन्होंने शत्रुओं को मारकर रक्त की महानदी बहा दी। वह मांस-मज्जा की कीच और हड्डियों से परिपूर्ण, मनुष्यों के मस्तकरूप पाषाणों से युक्त, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से बने हुए तटोंवाली, छत्र रूप हंस और प्लव पक्षियों से शोभित नदी तटोंवाले वृक्ष ऐसे वीरों को (उखाड़ती) गिराती हुई बह रही थी॥१।२॥शूरों की हड्डियों से दुर्गम उस नदी के आसपास कौए और गिद्ध विकट शब्द कर रहे थे। हार कमल से, पगड़ियाँ फेनपुञ्ज सी, नरमुण्ड और रथ [डोंगी और नाव से] उसमें दिखाई दे रहे थे। धनुष-बाण आदि उसमें शरवन से प्रतीत होते थे और ढालें आवर्त(भँवर) सी चक्कर खाती बह रही थीं। ऐसी, कायरों के निमित्त दुस्तर और विजय चाहनेवाले शूरों के निमित्त सुगम,

अर्जुन उवाच—एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते ।
भीमसेनादयश्चैते योधयन्ति महारथम् ॥ ७ ॥
एते द्रवन्ति पञ्चालाः कर्णत्रस्ता जनार्दन ।
एष दुर्योधनो राजा श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ ८ ॥
कर्णेन भग्नान्पञ्चालान्द्रावयन्बहु शोभते ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ९ ॥
एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः ।
अवध्यमानास्तेऽस्माभिर्घातयिष्यन्ति सोमकान् ॥ १० ॥
एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः ।
सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन्बहु शोभते ॥ ११ ॥
तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम् ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन ॥ १२ ॥
राधेयो ह्यन्यथा पार्थान्सृंजयांश्च महारथान् ।
निःशेषान्समरे कुर्यात्पश्यतां नो जनार्दन ॥ १३ ॥
ततः प्रायाद्रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम् ।
कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ १४ ॥
प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः ।
आश्वासयन्रथेनैव पाण्डुसैन्यानि सर्वशः ॥ १५ ॥
रथघोषः स संग्रामे पाण्डवेयस्य सम्बभौ ।
वासवाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष ॥ १६ ॥

रक्तनदी बहाकर अर्जुन वासुदेव से यों कहने लगे ॥१।६॥हे कृष्णचन्द्र ! वह कर्ण के रथ की ध्वजा दिखाई दे रही है और भीमसेन आदि योद्धा उस महारथी से युद्ध कर रहे हैं। वह देखो, कर्ण के भय से पाञ्चालगण भाग रहे हैं। वह श्वेत छत्र से शोभित राजा दुर्योधन, कर्ण के भगाये हुए, पाञ्चालों को सता रहा है । महारथी कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा आदि वीरगण दुर्योधन की सहायता कर रहे हैं और वीरश्रेष्ठ कर्ण उन सबकी रक्षा कर रहा है॥७।१०॥हम लोग यदि इन वीरों को न मारेंगे तो ये अवश्य ही सब सोमक-सेना का संहार कर डालेंगे। वे रथ हाँकने में चतुर वीर शल्य कर्ण के रथ को हाँक रहे हैं। हे कृष्णचन्द्र ! अब आप मेरा रथ वहीं पर ले चलिए। मैंने निश्चय कर लिया है कि कर्ण को मारे बिना युद्धस्थल से नहीं लौटूँगा। मैं यदि इस समय कर्ण से युद्ध नहीं करूँगा तो वह हमारे सम्मुख ही पाण्डवदल के महारथियों और सृञ्जयों का संहार कर डालेगा ॥११।१३॥हे महाराज ! महामति श्रीकृष्ण अर्जुन के ये वचन सुनकर, उनको कर्ण के साथ द्वैरथयुद्ध करने में प्रवृत्त करनेके निमित्त, घोड़ों को शीघ्रता से हाँककर कर्ण के सम्मुख रथ ले चले। श्रीकृष्ण और अर्जुन को आते देखकर पाण्डवों की सब सेना आश्वासित हुई। अर्जुन के रथ के वेग से घोर शब्द होने लगा। ऐसा जान पड़ता था, जैसे वज्रपात से पर्वत फट रहे

महत्ता रथघोषेण पाण्डवः सत्यविक्रमः ।
अभ्ययादप्रमेयात्मा निर्जयंस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥
तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
मद्रराजोऽब्रवीत्कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः ॥ १८ ॥
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्समरे यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ १९ ॥
एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन्गाण्डिवं धनुः ।
तं हनिष्यसि चेदद्य तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ २० ॥
धनुर्ज्याचन्द्रताराङ्का पताका किङ्किणीयुता ।
पश्य कर्णार्जुनस्यैषा सौदामन्यम्बरे यथा ॥ २१ ॥
एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षमाणः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो वीराणां भयवर्धनः ॥ २२ ॥
एतच्चक्रं गदा शङ्खः शार्ङ्गं कृष्णस्य च प्रभो ।
दृश्यते पाण्डवरथे वाहयानस्य वाजिनः ॥ २३ ॥
एतत्कूजति गाण्डीवं विसृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः ॥ २४ ॥
विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ २५ ॥
एते परिघसङ्काशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्धृता रणशूराणां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥ २६ ॥

हो। सत्यविक्रमी अर्जुन कौरवसेना को छिन्न भिन्न और परास्त करते हुए, रथ और धनुष के शब्द के साथ, वेग से कर्ण के रथ की ओर जाने लगे॥१४।१७॥श्रीकृष्ण-सञ्चालित श्वेत घोड़ों से युक्त रथ पर आ रहे अर्जुन की ध्वजा देखकर मद्रराज शल्य कहने लगे—हे कर्ण! जिनको तुम पूछ रहे थे वे अर्जुन शत्रुवध करते आ रहे हैं। उनका श्रीकृष्ण सञ्चालित, श्वेत घोड़ों से शोभित, रथ वह आ रहा है। वे गाण्डीव धनुष को हाथ में लिए अर्जुन विराजमान हैं। इस समय तुम यदि इन वीरश्रेष्ठ को मार सकोगे तो हमारे पक्ष को विजय और कल्याण प्राप्त होगा॥१८।२०॥अर्जुन कौरवपक्ष के महारथियों को पीड़ित करते हुए तुम पर आक्रमण करने के निमित्त इधर ही चले आ रहे हैं। हे कर्ण! यह अर्जुन की पताका देखो जो कि धनुष, प्रत्यञ्चा, चन्द्र और नक्षत्र से अङ्कित है तथा जिसमें घुँघरू बँधे हुए हैं। वह आकाश में बिजली सी जँचती है। उनकी पताका के आगे यह भयानक वानर चारों ओर देख रहा है जिससे कि सैनिक भयभीत हो रहे हैं। अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण के ये चक्र, गदा, शङ्ख और शार्ङ्ग धनुष देख पड़ते हैं। अर्जुन के द्वारा खींचे गये गाण्डीव का यह शब्द हो रहा है। ये अर्जुन के तीक्ष्ण बाण हैं जो विपक्षियों को मार रहे हैं॥२१।२४॥वीरों के, लाल नेत्रों से, पूर्णचन्द्र-सदृश मुखों से युक्त सिरों से पृथ्वी भरी पड़ी है। ये

निरस्तजिह्वा नेत्रांता वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणा विशेरते ॥ २७ ॥
एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्या हैमवता गजाः ।
संछिन्नकुम्भाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा ॥ २८ ॥
गन्धर्वनगराकारा यथा वाते नरेश्वराः ।
विमानादिव पुण्यान्ते स्वर्गिणो निपतन्त्यमी ॥ २९ ॥
व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना ।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥ ३० ॥
त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन्वरान्रथान् ।
असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारत ॥ ३१ ॥
एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥ ३२ ॥
वर्जयन्सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनञ्जयः ।
त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥ ३३ ॥
न ह्यवस्थास्यते पार्थो युयुत्सुः केन चित्सह ।
त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ॥ ३४ ॥
विरथं धर्मराजं तु दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम् ।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान्युधामन्युमुत्तमौजसमेव च ।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ॥ ३६ ॥
सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परन्तपः ।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वपार्थिवान् ॥ ३७ ॥

वीरों की बड़ी-बड़ी भुजाएँ कट-कटकर गिर रही हैं। उनमें चन्दन लगा है और मुट्ठियों में शस्त्र हैं। ये देखो, सवारों समेत घोड़े मरे पड़े हैं जिनकी जिह्वायें और आँखें निकल आई हैं। ये बड़े-बड़े हाथी अर्जुन के बाणों की चोट खाकर, घायल हो-होकर, गिर रहे हैं॥२५।२७॥पुण्य घट जाने पर स्वर्गीय जीव जैसे विमानों से नीचे आ जाते हैं वैसे ही ये राजा लोग रथों से गिर रहे हैं। कौरवसेना को अर्जुन ने उसी प्रकार व्याकुल कर दिया है जिस प्रकार सिंह मृगों के छक्के छुड़ा देता है॥२८।३०॥इसलिए तुम उनसे युद्ध करने को उनके सम्मुख चलो। कौरवों की सेना शत्रुनाशन अर्जुन के भय से इधर-उधर भाग रही है। महावीर अर्जुन उसे छोड़कर तुम्हारी ही ओर आरहे हैं।स्पष्टजान पड़ता है कि कुपित अर्जुन इस समय तुम्हारे अतिरिक्त और किसी से युद्ध नहीं करेंगे॥३१।३३॥महावीर भीमसेन को पीड़ित, युधिष्ठिर को रथहीन घायल और विह्वल, शिखण्डी, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, उत्तमौजा, नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पाँचों पुत्र

त्वरितोऽभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम् ।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः ॥ ३८ ॥
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिंस्त्वत्तो ह्यन्यं धनुर्धरम् ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं यो वेलामिव धारयेत् ॥ ३९ ॥
न चास्य रक्षां पश्यामि पार्श्वतो न च पृष्ठतः ।
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः ॥ ४० ॥
त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे ।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ॥ ४१ ॥
समानो ह्यसि भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपेण च ।
सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महारणे ॥ ४२ ॥
लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा ।
वनस्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनञ्जयम् ॥ ४३ ॥
एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः ॥ ४४ ॥
द्रवतामथ तेषां तु नान्योऽस्ति युधि मानवः ।
भयहा यो भवेद्वीरस्त्वामृते सूतनन्दन ।
एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ॥ ४५ ॥
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकांक्षिणः ।
वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया ॥ ४६ ॥

आदि पाण्डवपक्ष के वीरों को पराजित देखकर अर्जुन के क्रोध का ठिकाना नहीं है। वे कौरवपक्ष के सब राजाओं का वध करने के निमित्त उद्यत जान पड़ते हैं। क्रोध से उनके नेत्र लाल हो रहे हैं। वे वेग से हमारी ही ओर आ रहे हैं॥३४।३७॥इसलिए तुम शीघ्र उनके सम्मुख चलो। इस लोक में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई कुपित अर्जुन के सम्मुख नहीं स्थित हो सकता। ऐसी दशा में एक तुम्हीं उन पर आक्रमण कर सकते हो। इस समय अर्जुन अकेले ही आ रहे हैं, न कोई उनका पृष्ठ रक्षक है और न कोई चक्ररक्षक है। इसलिए तुम अर्जुन-वध-रूप अपने कार्य को सिद्ध करने का यत्न करो॥३८।४०॥हे कर्ण! सागर के वेग को तट-भूमि के समान, तुम्हीं समर में श्रीकृष्ण और अर्जुन को रोक सकते हो। यह कार्य तुम्हीं को सौंपा गया है। तुम पराक्रम में भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के समान हो; इसलिए वेग से आ रहे अर्जुन को रोको। क्रोध से फुफकार रहे सर्प के समान, गरज रहे बली साँड़ के समान, वन में स्थित गरज रहे व्याघ्र के समान भयङ्कर अर्जुन को तुम मारो॥४१।४३॥वे अर्जुन के भय से विह्वल महारथी कौरवपक्ष के राजा लोग, प्राण-रक्षा के निमित्त, उनके आगे से भाग रहे हैं। हे सूतनन्दन! तुम्हारे बिना इस समय इन सबको बचानेवाला और कोई महारथी नहीं है। ये कौरवपक्ष के योद्धा तुम्हीं को इस भय से उबारने-वाला जानकर तुम्हारी शरण में आये हैं। हे वीर! तुमने जिस धैर्य से समर में असन्न दुर्जय वैदेह,

गान्धाराश्च यथा धृत्या जिताः संख्ये सुदुर्जयाः ।
तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥
वासुदेवं च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना ।
प्रत्युद्याहि महाबाहो पौरुषे महति स्थितः ॥ ४८ ॥

कर्ण उवाच—प्रकृतिस्थोऽसि मे शल्य इदानीं संमनस्तथा ।
प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धनञ्जयात् ॥ ४९ ॥
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे ।
एकोऽद्य निहनिष्यामि पाण्डवानां महाचमूम् ॥ ५० ॥
कृष्णौ च पुरुषव्याघ्रौ ततः सत्यं ब्रवीमि ते ।
नाहत्वा युधि तौ वीरौ व्यपयास्ये कथञ्चन ॥ ५१ ॥
शिश्ये वा निहतस्ताभ्यामनित्यो हि रणे जयः ।
कृतार्थोऽद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः ॥ ५२ ॥

शल्य उवाच—अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे महारथाः कर्ण रथप्रवीरम् ।
एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं विजेतुमेनं क इहोत्सहेत॥ ५३ ॥

कर्ण उवाच—नैतादृशो जातु बभूव लोके रथोत्तमो यावदुपश्रुतं नः ।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं महाहवे पश्य च पौरुषं मे ॥ ५४ ॥
रणे चरत्येष रथप्रवीरः सितैर्हयैः कौरवराजपुत्रः ।
स वाद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेतत्कर्णस्यान्तादेतदन्तास्तु सर्वे ॥ ५५ ॥

अम्बष्ठ, काम्बोज, नग्नजित् और गान्धारगणकी सेना को पराजित किया था, वही धैर्य धारण करके अपना पौरुष दिखाओ और प्रसन्नचित्त श्रीकृष्ण के साथ स्थित अर्जुन से युद्ध करने के निमित्त आगे बढ़ो॥४४।४८॥हे राजेन्द्र ! कर्ण ने ये वचन सुनकर कहा —हे महराज ! अब जाकर तुम्हारी बुद्धि ठिकाने आई। हे महाबाहो ! इस समय तुम्हारे हृदय से अर्जुन का भय दूर हुआ जान पड़ता है । अब तुम मेरे बाहुबल, अस्त्रशिक्षा और अभ्यास की निपुणता देखो । सत्य कहता हूँ,मैं अकेला ही पाण्डव सेना का संहार करके कृष्ण और अर्जुन को मारूँगा । उन दोनों वीरों को मारे बिना आज मैं युद्ध से नहीं लौटूँगा । युद्ध में जय पराजय का कोई निश्चय नहीं, इसलिए या मैं कृष्ण-अर्जुन को मारूँगा और या उनके बाणों से मरकर वीर शय्या पर सोऊँगा । या तो उन्हें मारकर या स्वयं मरकर, दोनों प्रकार से, मैं कृतार्थ होऊँगा॥४९।५२॥इस पर शल्य ने कहा—हे कर्ण ! बड़े-बड़े महारथी कहते हैं कि योद्धाओं में श्रेष्ठ अर्जुन रण में अजेय हैं । अकेले अर्जुन को ही कोई नहीं जीत सकता । फिर इस समय तो श्रीकृष्ण उनकी रक्षा कर रहे हैं । इस समय उन्हें कौन जीत सकता है?॥५३॥कर्ण ने कहा—हे शल्य ! मैंने भी सुना है कि ऐसा श्रेष्ठ योद्धा पृथ्वी पर कोई नहीं हुआ जैसे कि अर्जुन हैं। उन्हीं अद्वितीय वीर अर्जुन से मैं आज युद्ध करूँगा । आज महायुद्ध में तुम मेरे पौरुष को देखना । वह देखो, कौरव कुल के राजकुमार महारथी अर्जुन, श्वेत घोड़ों से शोभित रथ पर बैठे, रणभूमि में विचर रहे हैं । बस, आज या तो यही कर्ण को मारेंगे और या कर्ण

अखेदिनौ राजपुत्रस्य हस्तावकम्पमानौ जातकिणौ बृहन्तौ ।
दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः ॥ ५६ ॥
गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रानेकं यथा तान्प्रति योज्य चाशु ।
ते क्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम् ॥ ५७ ॥
अतोपयत्खाण्डवे यो हुताशं कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी ।
लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची ॥ ५८ ॥
श्वेताश्वयुक्तं च सुघोषमुग्रं रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः ।
महेषुधी चाक्षये दिव्यरूपे शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात् ॥ ५९ ॥
तथेन्द्रलोके निजघान दैत्यानसङ्ख्येयान् कालकेयांश्च सर्वान् ।
लेभे शङ्खं देवदत्तं स्म तत्र को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम् ॥ ६० ॥
महादेवं तोषयामास योऽस्त्रैः साक्षात्सुयुद्धेन महानुभावः ।
लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम् ॥ ६१ ॥
पृथक्पृथग्लोकपालाः समेता ददुर्महास्त्राण्यप्रमेयाणि सङ्ख्ये ।
यैस्ताञ्जघानाशु रणे नृसिंहः स कालकेयानसुरान्समेतान् ॥ ६२ ॥
तथा विराटस्य पुरे समेतान्सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा ।
जहार तद्गोधनमाजिमध्ये वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः ॥ ६३ ॥
तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम् ।
तमाह्वयन्साहसमुत्तमं वै जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य ॥ ६४ ॥

इन्हें मारने में समर्थ होगा। यदि मैं मारा गया तो फिर कौरवपक्ष का कोई योद्धा जीवित न बचेगा। युद्ध करते समय राजपुत्र अर्जुन की विशाल भुजाएँ न तो कभी काँपती हैं और न उनमें पसीना ही आता है। उनके हाथों में धनुष की प्रत्यञ्चा की रगड़ से घट्टे पड़ गये हैं। दृढ़ता से धनुष पकड़नेवाले अर्जुन धनुर्वेद को अच्छी प्रकार जानते हैं। सारांश यह कि सचमुच उनके समान योद्धा दूसरा नहीं है॥५४।५६॥ वे अनेक बाणों को लेकर एक ही बाण के समान सहज में एक साथ धनुष पर चढ़ाने और स्फूर्ति के साथ चलाते हैं। उनके अमोघ बाण कोस भर तक जाकर अपना कार्य करते हैं। उनके समान योद्धा पृथ्वी पर कौन है ! अतिरथी अर्जुन ने, कृष्ण की सहायता से, खाण्डव-वन देकर अग्नि को तृप्त किया। वहाँ अग्नि ने प्रसन्न होकर महात्मा कृष्ण को सुदर्शन चक्र और अर्जुन को गाण्डीव धनुष, भयानक शब्द करनेवाला रथ, श्वेत घोड़े, अक्षय तरकस और अन्य दिव्य शस्त्र देकर सम्मानित किया। अर्जुन ने इन्द्रलोक जाने के समय असंख्य दुर्जय कालकेय नामक दानवों का नाश किया और दिव्य देवदत्त शङ्ख प्राप्त किया। इसलिए पृथ्वी पर अर्जुन से बढ़कर पराक्रमी कौन है?॥५७।६०॥ महानुभाव अर्जुन ने किरातरूपधारी साक्षात् शङ्कर से युद्ध कर उन्हें अपने अस्त्रबल से प्रसन्न किया और उनसे वह पाशुपत नामक महाघोर दिव्य अस्त्र प्राप्त किया, जिससे त्रैलोक्य का नाश किया जा सकता है। इन्द्रलोक में सब लोकपालों ने एकत्र और प्रसन्न होकर अर्जुन को पृथक् पृथक् अपने अमोघ अस्त्र अर्पण किये और अर्जुन ने उन्हीं

अनन्तवीर्येण च केशवेन नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तः ।
वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः ॥ ६५ ॥
महात्मनः शङ्खचक्रासिपाणेर्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य ।
भयं न मे जायते साध्वसं च दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥ ६६ ॥
अतीव पार्थो युधि कार्मुकिभ्यो नारायणश्चाप्रति चक्रयुद्धे ।
एवंविधौ पाण्डववासुदेवौ चलेत्स्वदेशाद्धिमवान्न कृष्णौ ॥ ६७ ॥
उभौ हि शूरौ बलिनौ दृढायुधौ महारथौ संहननोपपन्नौ ।
एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तौ तु शल्य ॥ ६८ ॥
मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य ।
नैतच्चिरादाशु भविष्यतीदमत्यद्भुतं चित्रमतुल्यरूपम् ॥ ६९ ॥
एतौ च हत्वा युधि पातयिष्ये मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य ।
इति ब्रुवञ्शल्यममित्रहन्ता कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद ॥ ७० ॥
अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम् ।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ तथैव गान्धारपतिं सहानुजम् ॥ ७१ ॥

अस्त्रों से कालकेय आदि असुरों का संहार किया। विराट के नगर में अकेले अर्जुन ने हम सब महारथियों को हराया, हमारे वस्त्र छीन लिये और विराट की गायें लौटा लीं॥६१।६३॥ऐसे वीर्य गुण-सम्पन्न अर्जुन को, जब कि कृष्ण उनके सहायक हैं, मैं युद्ध के निमित्त बुला रहा हूँ और यह कहने में मुझे तनिक भी सकोच नहीं कि यह मेरा साहस परम प्रशंसनीय है। सब लोकों के जीव,मिलकर सहस्रों वर्षों में भी,जिनके गुणों का वर्णन नहीं कर सकते उन्हीं शङ्ख चक्र-खड्गपाणि विष्णु जिष्णु अनन्तवीर्य अप्रतिम नारायणावतारवसुदेव नन्दन कृष्ण को निरन्तर अर्जुन की रक्षा करने के निमित्त उपस्थित देखकर भी मैं नहीं घबराता॥६४। ६६॥अजेय कृष्ण और अर्जुन को एक साथ अपने विरुद्ध क्रुद्ध और युद्ध के निमित्त उद्यत देखकर मुझे खटका भी होता है। अर्जुन धनुष बाण के युद्ध में सभी क्षत्रिय राजपुत्रों से बढ़कर हैं और वैसे ही कृष्ण-चन्द्र चक्रयुद्ध में निपुण और सर्वश्रेष्ठ हैं। हिमालय चाहे अपने स्थान से विचलित हो जाय, किन्तु पाण्डव और वासुदेव कभी युद्ध से नहीं हट सकते। ये दोनों शूर, बली, दृढायुध, महावीर, दृढ शरीर, वीर, नर श्रेष्ठ हैं [और स्वर्गभ्रष्ट देवकुमार से प्रतीत होते हैं। अग्नि, आदित्य, इन्द्र, बृहस्पति, यमराज,काल, चन्द्रमा,पूषा, भगदेवता, मित्रावरुण,अश्विनीकुमार,मरुद्गण, वसुगण आदि सब देवता एक-एक करके या सब मिलकर युद्ध करें, तो भी बलपूर्वक कृष्ण और अर्जुन को नहीं जीत सकते]। हे शल्य! ऐसे प्रभावशाली कृष्ण और अर्जुन से युद्ध करने का साहस मेरे बिना और कौन कर सकता है? अर्जुन के साथ युद्ध करने की मेरी बहुत दिनों की इच्छा आज पूर्ण होगी। अब तुम मेरे रथ को शीघ्र अर्जुन और कृष्ण के सम्मुख ले चलो। मैं अर्जुन से डटकर युद्ध करूँगा। अभी तुम देखोगे कि मैं अर्जुन और कृष्ण को मारकर गिरा दूँगा,अथवा उनके हाथ से मरकर रण-शय्या पर विश्राम करूँगा। हे महाराज! शत्रुनाशन कर्ण शल्य से इस प्रकार कहकर मेघ गर्जन के समान भयङ्कर सिंहनाद करने लगे॥६७।७०॥इसके पश्चात् वे राजा दुर्योधन के समीप गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कर्ण का अभिनन्दन किया। तब कर्ण ने अपने रथ को अर्जुन

गुरोः सुतं चावरजं तथात्मनः पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान् ।
निरुध्यताभिद्रवताच्युतार्जुनौ श्रमेण संयोजयताशु सर्वशः ॥ ७२ ॥
यथा भवद्भिर्भृशविक्षतावुभौ सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः ।
तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं जिघांसवो वीरतराः समाययुः ॥ ७३ ॥
शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा धनञ्जयं कर्णनिदेशकारिणः ।
नदीनदं भूरिजलो महार्णवो यथा तथा तान्समरेऽर्जुनोऽग्रसत् ॥ ७४ ॥
न सन्दधानो न तथा शरोत्तमान्प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते ।
धनञ्जयास्त्रैस्तु शरैर्विदारिता हता निपेतुर्नरवाजिकुञ्जराः ॥ ७५ ॥
शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम् ।
न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः ॥ ७६ ॥
शरोत्तमान्संप्रहितान्महारथैश्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः ।
भूयश्च तानहनद्बाणसङ्घान्गाण्डीवधन्वायतपूर्णमण्डलम् ॥ ७७ ॥
यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगः सुखं विवस्वान् हरते जलौघान् ।
तथाऽर्जुनो बाणगणाग्निरस्य ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र ॥ ७८ ॥
तमभ्यधावद्विसृजन्कृपः शरांस्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम् ।
महारथो द्रोणसुतस्य सायकैरवाकिरंस्तोयधरा यथाचलम् ॥ ७९ ॥

की ओर वेग से हँकवाया । राजा दुर्योधन ने कृपाचार्य,कृतवर्मा,भाइयों सहित शकुनि, अश्वत्थामा, कर्ण के पुत्र और अपने भाइयों का अभिनन्दन करके उनसे और झुण्ड के झुण्ड हाथियों तथा घोड़ों के सवारों और पैदलों से कहा—हे वीरो ! तुम लोग वेग से जाओ, कृष्ण और अर्जुन को आगे बढ़ने से रोको, युद्ध करके थका दो । तुम लोग बाणों से जब अत्यन्त घायल कर दोगे तब मेरे सेनापति वीर कर्ण उन थके हुए दोनों वीरों को सहज में मार सकेंगे॥७१।७२॥ राजा की आज्ञा पाकर वे वीर शीघ्रता-पूर्वक,मार डालने के निमित्त, अर्जुन पर आक्रमण करने लगे । कर्ण की सहायता के निमित्त उद्यत वे महारथी वेग से जाकर अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे । किन्तु महासागर जैसे नद-नदियों को ग्रस लेता है, वैसे ही अर्जुन ने सहज ही कौरवपक्ष के वीरों का प्रयास व्यर्थ कर दिया। उस समय अर्जुन ऐसी स्फूर्त्ति कर रहे थे कि शत्रुओं को नहीं जान पड़ता था कि वे कब बाण निकालते हैं, और कब धनुष पर चढ़ाते और कब छोड़ते हैं। यही देख पड़ता था कि अर्जुन के बाणों से विदीर्ण होकर,मरकर असंख्य मनुष्य,हाथी और घोड़े पृथ्वी पर गिर रहे हैं। धनुष-रूपी मण्डल और बाण रूपी किरणों से युक्त महातेजस्वी अर्जुन उस समय प्रलयकाल के प्रचण्ड सूर्य्य के समान जान पड़ते थे । नेत्रों के रोगी जैसे सूर्य की ओर नहीं देख सकते,वैसे ही कौरवगण अर्जुन की ओर देख भी नहीं सकते थे॥७३।७६॥गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन ने हँसते-हँसते उन महारथियों की बाण-वर्षा को काट डाला। इस प्रकार वे बारम्बार शत्रुओं के बाणों को व्यर्थ करने लगे। ज्येष्ठ और आषाढ़ मास के मध्यवर्ती सूर्य अपनी किरणों से जैसे जल राशि को सुखाते हैं, वैसे ही वीर अर्जुन शत्रुओं के बाणों को नष्ट करके अपने तेज और पराक्रम से कौरव-सेना को भस्म करने लगे। इसी समय महावीर कृपाचार्य, कृतवर्मा,राजा दुर्योधन और महारथी अश्वत्थामा, ये वीर उसी प्रकार अर्जुन

जिघांसुभिस्तान् कुशलः शरोत्तमान् महाहवे सम्प्रहितान्प्रयत्नतः ।
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन् पराभिनद्वक्षांसि चेषुभिस्त्रिभिः ॥ ८० ॥
स गाण्डिवव्यायतपूर्णमण्डलस्तपन् रिपूनर्जुनभास्करो बभौ ।
शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो यथैव सूर्यः परिवेषवांस्तथा ॥ ८१ ॥
अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनञ्जयं पराभिनद् द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः ।
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिं ततः शरैश्च नाराचवरैरवाकिरत् ॥ ८२ ॥
तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण ।
हयांश्चतुर्भिश्च पुनस्त्रिभिर्ध्वजं धनञ्जयो द्रौणिरथादपातयत् ॥ ८३ ॥
स रोषपूर्णो मणिवज्रहाटकैरलंकृतं तक्षकभोगवर्चसम् ।
महाधनं कार्मुकमन्यदाददे यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तटात् ॥ ८४ ॥
स्वमायुधं चोपनिकीर्य भूतले धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः ।
समार्दयत्तावजितौ नरोत्तमौ शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ॥ ८५ ॥
कृपश्च भोजश्च तवात्मजाश्च ते शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम् ।
महारथाः संयुगमूर्धनि स्थितास्तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ॥ ८६ ॥
कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं हयान्ध्वजान्सारथिमेव पत्रिभिः ।
समार्पयद्बाहुसहस्रविक्रमस्तथा यथा वज्रधरः पुरा बलेः ॥ ८७ ॥
स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे ।
कृतः कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो यथापगेयः प्रथमं किरीटिना ॥ ८८ ॥

के ऊपर बाण बरसाने लगे, जिस प्रकार मेघ पर्वत के ऊपर जल बरसाते हैं॥७७।७९॥मारनेके निमित्त उद्यत रण-निपुण महारथियों ने यत्नपूर्वक जितने बाण छोड़े, उन सबको स्फूर्ति के साथ अपने बाणों से काटकर वीर अर्जुन ने सबके वक्षःस्थल में तीन तीन बाण मारे। उस समय मण्डलाकार गाण्डीव धनुष से शोभित और शत्रुओं को पीड़ित कर रहे सूर्य सदृश तेजस्वी अर्जुन बाण-रूपि किरणों से वैसे ही शोभित हुए जैसे ज्येष्ठ और आषाढ़ के मध्यवर्ती उग्ररूप सूर्य मण्डल के मध्य शोभा प्राप्त करते हैं॥८०।८१॥अब अश्वत्थामाने उग्र दस बाण अर्जुन को और तीन बाण श्रीकृष्ण को मारे। फिर चार नाराच बाण घोड़ों को मारकर ध्वजा पर स्थित वानर को अनेक बाण मारे। यह देखकर महावीर अर्जुन क्रोध से विह्वल हो उठे। उन्होंने तीन बाणों से अश्वत्थामा के सारथी का सिर काट डाला, चार बाणों से चारों घोड़े मार डाले और तीन बाणों से ध्वजा काटकर गिरा दी। अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर मणि-सुवर्ण और हीरों से अलंकृत,तक्षक नाग के फन के समान भयङ्कर, पर्वत-निवासी अजगर के समान दूसरा दृढ़ धनुष हाथ में लेकर अर्जुन वध के निमित्त उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। उसके पश्चात् वे निकट-वर्ती होकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से अर्जुन और श्रीकृष्ण को पीड़ित करने लगे॥८१।८५॥सूर्य को जैसे मेघ घेर लें वैसे ही कृपाचार्य,कृतवर्मा और दुर्योधन आदि महारथी भी बाण बरसाकर अर्जुन को रोकने लगे। सहस्रबाहु के समान पराक्रमी अर्जुन ने कृपाचार्य का धनुष बाण और ध्वजा काट डाली और सारथी तथा घोड़ों को भी मार डाला। इन्द्र ने जैसे राजा बलि

शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः ।
जघान चाश्वान्कृतवर्मणःशुभान्ध्वजं च चिच्छेद ततःप्रतापवान् ॥ ८९ ॥
स वाजिसूतेष्वसनान्सकेतनाञ्जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः ।
ततः प्रकीर्णं सुमहद्बलं तव प्रदारितं सेतुरिवाम्भसा यथा ॥ ९० ॥
ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशवश्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान् ।
ततः प्रयान्तं त्वरितं धनञ्जयं शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ॥ ९१ ॥
समन्वधावन्पुनरुत्थितैर्ध्वजै रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः ।
अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्धनञ्जयस्याभिमुखं महारथाः ॥ ९२ ॥
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरैर्विदारयन्तो व्यनदन्सुभैरवम् ।
ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं शरैस्तदाञ्जोगतिभिः सुतेजनैः ॥ ९३ ॥
कुरुप्रवीराः सह सृञ्जयैर्यथासुराः पुरा देवगणैस्तथाहवे ।
जयेप्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः पतन्ति नागाश्वरथाः परन्तप ॥ ९४ ॥
जगर्जुरुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक् ।
शरान्धकारे तु महात्मभिः कृते महामृधे योधवरैः परस्परम् ।
चतुर्दिशो वै विदिशश्च पार्थिव प्रभा च सूर्यस्य तमोवृतामवत् ॥ ९५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

को पीड़ित किया था वैसे ही अर्जुन भी सहस्रों बाण मारकर कृपाचार्य को पीड़ित करने लगे। पहले जैसे भीष्म पितामह अर्जुन के बाणों से व्यथित हुए थे, वैसे ही इस समय कृपाचार्य भी उनके असंख्य बाणों से चेष्टा-रहित हो गये॥८६।८८॥ महावीर अर्जुन ने दुर्योधन को सिंहनाद करते देखकर बाणों से उनकी ध्वजा और धनुष काट डाला। कृतवर्मा के घोड़ों को मारकर उनकी भी ध्वजा और धनुष के टुकड़े टुकड़े कर डाले। इसके उपरान्त वीर अर्जुन के बाणों से धनुष, ध्वजा, घोड़े, सारथी समेत रथ, सवारों सहित घोड़े तथा हाथी नष्ट होने और गिरने लगे। इस प्रकार अर्जुन जब स्फूर्ति से जनसंहार करने लगे तब जल-प्रवाह के वेग से टूटे सेतु के समान सम्पूर्ण सेना अर्जुन के बाणों से तितर बितर हो गई॥८९।९०॥ अर्जुन के सारथी कृष्णचन्द्र पीड़ित शत्रुसेना के वाम भाग में घुसकर रथ चलाने लगे। वृत्र को मारने के निमित्त जा रहे इन्द्र के समान अर्जुन को आगे बढ़ते देखकर शत्रुसेना के अन्य अनेक योद्धा, युद्ध करने की इच्छा से, ऊँची ध्वजाओंवाले सुसज्जित रथ बढ़ाकर उनके पीछे चले और बाण वर्षा करने लगे॥९१।९२॥ यह देखकर शिखण्डी, सात्यकि, नकुल और सहदेव आदि पाण्डवपक्ष के महारथी योद्धाओं ने जाकर उनको रोका। वे शत्रुओं को तीक्ष्ण बाणों से विदीर्ण करते हुए भयङ्कर सिंहनाद करने लगे। हे महाराज! तब कौरव और सृञ्जयगण कुपित होकर परस्पर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करने लगे। उस समय देवासुर-युद्ध के समान घोर संग्राम होने लगा। जय चाहनेवाले और स्वर्ग जाने के निमित्त उत्सुक वीरगण मारने मरने लगे। सहस्रों हाथी, घोड़े और मनुष्य मर-मरकर गिरने लगे। वीरगण तीक्ष्ण बाणों से परस्पर प्रहार करने लगे। उस महारण में महारथी योद्धाओं ने परस्पर इतने बाण बरसाये कि अँधेरा हो गया। बाणों के जाल ने चारों दिशाओं, चारों उपदिशाओं और सूर्य की प्रभा को छिपा दिया॥९३।९५॥

कर्णपर्व का उनासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७९ ॥

अथ अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

सञ्जय उवाच—राजन्कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम् ।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनञ्जयः ॥ १ ॥
विमृद्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान्धनञ्जयः ॥ २ ॥
ततोऽस्याम्बरमाश्रित्य शरजालानि भागशः ।
अदृश्यन्त तथान्ये च निजघ्नुस्तत्र वाहिनीम् ॥ ३ ॥
स पक्षिसङ्घाचरितमाकाशं पूरयञ्शरैः ।
धनञ्जयो महाबाहुः कुरूणामन्तकोऽभवत् ॥ ४ ॥
ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि ।
गात्राणि प्राच्छिनत्पार्थः शिरांसि च चकर्त ह ॥ ५ ॥
छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः ।
पातितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत्समावृता ॥ ६ ॥
धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वरथद्विपैः ।
संछिन्नभिन्नविध्वस्तैर्व्यङ्गाङ्गावयवैः स्तृता ॥ ७ ॥
सुदुर्गमा सुविषमा घोरात्यर्थं सुदुर्दृशा ।
रणभूमिरभूद्राजन्महावैतरणी यथा ॥ ८ ॥
ईषाचक्राक्षभग्नैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम् ।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैः स्तीर्णाभवन्मही ॥ ९ ॥
सुवर्णवर्णसन्नाहैर्योधैः कनकभूषणैः ।
आस्थिताः क्लृप्तवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः ॥ १० ॥

अस्सी अध्याय ॥ ८० ॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजराजेश्वर ! महाबली अर्जुन कौरवपक्ष के प्रधान प्रधान योद्धाओं को भीमसेन के ऊपर आक्रमण करते देखकर, सङ्कट-मग्न भाई को उबारने के निमित्त, बाणों से कर्ण की सेना को मारने लगे । उनके मारे हुए योद्धा यमपुर को जाने लगे॥१। २॥उनके असंख्य बाण पक्षियों के समान आकाश में जाते और आपकी सेना का संहार करते दिखाई पड़ने लगे । महावीर अर्जुन कौरवों के निमित्त काल होकर तीक्ष्ण क्षुरप्र, भल्ल, नाराच आदि बाणों से शत्रुसेना के सिरों और अङ्गों को काटने लगे । उस समय युद्ध-भूमि कटे हुए शरीरों, मस्तकों और कवचहीन योद्धाओं के कलेवरों से परिपूर्ण और अङ्गहीन घायल हाथियों, घोड़ों, रथों के गिरने से भीषण वैतरणी नदी के समान अत्यन्त दुर्गम और दुर्निरीक्ष्य हो उठी॥४।८॥बहुत से रथों के ईषा, पहिये, और अक्ष टूटकर इधर-उधर गिरने लगे । मरे हुए और अधमरे लोगों के ढेर लग गये । कोई रथ घोड़े और सारथी से शून्य थे, किसी रथ में केवल घोड़े रह गये और किसी रथ में केवल सारथी था—घोड़े नहीं थे । सुवर्ण के विचित्र जालों और लोहे के कवचों से शोभित, माला आदि सुवर्ण के

क्रुद्धाः क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यङ्गुष्ठप्रचोदिताः ।
चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः किरीटिना ॥ ११ ॥
पर्यस्तानीव शृङ्गाणि समृद्धानि महागिरेः ।
धनञ्जयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः ॥ १२ ॥
समन्ताज्जलदप्रख्यान्वारणान्मदवर्षिणः ।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान्भिन्दन्निवांशुमान् ॥ १३ ॥
हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः ।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ॥ १४ ॥
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत्फाल्गुनेन वै ।
व्यस्फारयद्वै गाण्डीवं सुमहद्भैरवारवम् ॥ १५ ॥
घोरवज्रविनिष्पेषं स्तनयित्नुरिवाम्बरे ।
ततः प्रादीर्यत चमूर्धनञ्जयशराहता ॥ १६ ॥
महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे ।
नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीवचोदिताः ॥ १७ ॥
अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन् ।
महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा ॥ १८ ॥
तथा तव महासैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम् ।
सम्पिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरीटिना ॥ १९ ॥
कृतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः ।
महावने मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा ॥ २० ॥

आभूषण पहने, भद्र जाति के, सदा मदोन्मत्त चार सौ हाथियों पर बैठे हुए योद्धा अर्जुन पर आक्रमण करने चले। महावतों ने क्रूरभाव से अङ्कुश मार मारकर उन्हें क्रुद्ध और उत्तेजित किया तब वे बड़े वेग से अर्जुन की ओर झपटे। परन्तु महावली अर्जुन ने देखते ही देखते उन सब हाथियों को, उनके महावतों और योद्धाओं के सहित, मार गिराया। अर्जुन के बाणों से विदीर्ण वे हाथी, पर्वत के फटे हुए सजीव शिखरों के प्राप्त हुआ। मरे गये हाथियों, घोड़ों, टूटे हुए रथों, शस्त्रअस्त्र-कवच-हीन होकर मरे हुए युद्धप्रिय वीरों और उनके बिखरे हुए शस्त्रों का ढेर लग जाने से चारों ओर जाने का मार्ग ही नहीं रहा। अर्जुन के गाण्डीव धनुष का वज्रपात और मेघ-गर्जन के समान घोर शब्द व टंकार कानों को व्यथित कर रहा था। तूफान में जहाज जैसे तूफान में तबाह होकर टूट जाता है, वैसे ही कौरव सेना भी अर्जुन के बाणों की चोट से

कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना ।
उत्सृज्य च महाबाहुं भीमसेनं तथा रणे ॥ २१ ॥
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ।
ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ॥ २२ ॥
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत ।
समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः ॥ २३ ॥
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम् ।
भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद्धनञ्जयः ॥ २४ ॥
नादयन्रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत ।
ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः ॥ २५ ॥
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनञ्जयः ।
ते तमभ्यर्दयन्बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ २६ ॥
आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत ।
अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ॥ २७ ॥
नियुक्तान्हि स तान्मेने यमायाशु किरीटिना ।
ततस्ते प्राद्रवञ्शूराः पराङ्मुखरथेऽर्जुने ॥ २८ ॥
तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् ॥ २९ ॥
अथान्यैर्दशभिर्भल्लैः शिरांस्येषामपातयत् ।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले ॥ ३० ॥

से बाँस का वन जैसे जले वही दशा बाण पीड़ित आपकी सेना की हुई । अर्जुन के बाणों से घायल होकर लोग चारों ओर भागने लगे । दावानल से डरे हुए मृग आदि जीव जैसे भागते हैं॥१८।२०॥वैसे ही कौरव-सेना घबराकर, महाबाहु भीमसेन को छोड़कर, रण भूमि से भाग खड़ी हुई । इस प्रकार बाणप्रहार से कौरवों को भगाकर अपराजित अर्जुन भीमसेन के समीप पहुँचे । हे राजेन्द्र ! विजयी अर्जुन पल भर भीमसेन के समीप ठहर गये । उनको अर्जुन ने यह सूचना दी कि अब धर्मराज सकुशल हैं, उनकी सब वेदना दूर हो गई है । यह कहकर, युद्ध के विषय में उनसे सम्मति करके और फिर रथघोष से पृथ्वीतल तथा आकाश को परिपूर्ण करते हुए अर्जुन कर्ण की ओर वेग से बढ़े॥२१।२५॥उस समय दुःशासन से छोटे दुर्योधन के दस भाई अर्जुन के सम्मुख आकर बाणों से उन्हें पीड़ित करने लगे, जैसे कोई किसी गजराज को जलती हुई लकड़ी मारे । वे वीर धनुष चढ़ाकर रणभूमि में नृत्य सा कर रहे थे । उन्हें अर्जुन के बाणों से शीघ्र ही यमलोक जानेवाला जानकर महात्मा कृष्णचन्द्र उनके वाम भाग में रथ ले चले । वे मूर्खतावश अर्जुन को विमुख जानकर गरजते और बाण बरसाते हुए उनका पीछा करने लगे॥२५।२८॥अर्जुन ने स्फूर्ति से नाराच और अर्धचन्द्र बाणों से उन दसों के घोड़े, सारथी, धनुष और ध्वजाएँ काट डालीं । फिर अन्य

तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः ।
तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश कौरवान् ॥ ३१ ॥
रुक्माङ्गदान्रुक्मपुङ्खैर्हत्वा प्रायादमित्रहा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दस भल्ल बाणों से उनके सिर भी काट डाले । क्रोध से लाल नेत्र किये और दाँतों से होंठ चबा रहे उनके मुख-मण्डल पृथ्वी पर आकाशस्थित तारागण के समान अथवा फूले हुए कमलपुष्पों के समान शोभायमान हुए । इस प्रकार सुवर्ण के आभूषणों से सजे हुए दस कौरवों को दस स्वर्णपुङ्ख बाणों से मारकर वीर अर्जुन आगे जाने लगे॥२९।३२॥

—:०:—

कर्णपर्व अस्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमो अध्याय ॥ ८१ ॥

सञ्जय उवाच—तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम् ।
युद्धायाभ्यद्रवन्वीराः कुरूणां नवती रथाः ॥ १ ॥
कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम् ।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥ २ ॥
कृष्णः श्वेतान्महावेगानश्वान्काञ्चनभूषणान् ।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान्प्रैषीत्कर्णरथं प्रति ॥ ३ ॥
ततः कर्णरथं यान्तमरिघ्नं तं धनञ्जयम् ।
बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥ ४ ॥
त्वरमाणांस्तु तान्सर्वान्ससूतेष्वसनध्वजान् ।
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ॥ ५ ॥
तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना ।
सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात्पुण्यक्षये तथा ॥ ६ ॥
ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तमम् ।
निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्तन्त फाल्गुनम् ॥ ७ ॥

इक्यासी अध्याय ॥ ८१ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन के सुवर्ण मणि और मोतियों से अलङ्कृत श्वेत घोड़ों को कर्ण के रथ की ओर चलाने लगे । तब आपके पक्ष के नब्बे वीर रथी अर्जुन को वेग से बढ़ते देखकर उनकी ओर दौड़ पड़े । वीर संशप्तकगण मरने-मारने की शपथ करके, अर्जुन को घेरकर, उन पर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥१।३॥महावीर अर्जुन ने इक्कीसे के साथ रोकने का यत्न कर [illegible] तीक्ष्ण बाणों से, सारथी [illegible] मार गिराया । पुण्य का [illegible] जैसे स्वर्गलोक के [illegible] वे भी अर्जुन के [illegible] गिर पड़े॥४।६॥ [illegible] और रथ लेकर [illegible]

तदायस्तमनुष्याश्वमुदीर्णवरवारणम् ।
पुत्राणां ते महासैन्यं समरौत्सीद्धनञ्जयम् ॥ ८ ॥
शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः ।
प्राच्छादयन्महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ॥ ९ ॥
तामन्तरिक्षे विततां शस्त्रवृष्टिं समन्ततः ।
व्यधमत्पाण्डवो बाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ १० ॥
ततो म्लेच्छाः स्थिता मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः ।
पार्श्वतो व्यहनन्पार्थं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ११ ॥
कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरप्रासशक्तिभिः ।
मुसलैर्भिन्दिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् ॥ १२ ॥
तां शस्त्रवृष्टिमतुलां द्विपहस्तैः प्रवेरिताम् ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्धचन्द्रैश्च फाल्गुनः ॥ १३ ॥
अथ तान्द्विरदान्सर्वान्नानालिङ्गैः शरोत्तमैः ।
सपताकध्वजारोहान्गिरीन्वज्रैरिवाहनत् ॥ १४ ॥
ते हेमपुङ्खैरिपुभिरर्दिता हेममालिनः ।
हताः पेतुर्महानागाः साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥ १५ ॥
ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद्विशाम्पते ।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम् ॥ १६ ॥
कुञ्जराश्च हता राजन्दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १७ ॥
रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा ।
गन्धर्वनगराकारा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ १८ ॥

और उन्हें रोककर उन पर निरन्तर शक्ति, ऋष्टि, प्रास, गदा, खड्ग, बाण आदि अस्त्र शस्त्र बरसाने लगे॥७।९॥सूर्यदेव जैसे किरणों से अँधेरे को दूर करते हैं, वैसे ही महावीर अर्जुन ने आकाश में विस्तृत उन शत्रुओं की शस्त्र-वर्षा और बाणों को काट डाला। फिर राजा दुर्योधन की आज्ञा प्राप्त कर उन्मत्त हाथियों पर सवार तेरह सौ म्लेच्छ एक ओर से आक्रमण करके अर्जुन के ऊपर कर्णी, नालीक, नाराच आदि बाण और प्रास, शक्ति, मूसल, भिन्दिपाल आदि तीक्ष्ण शस्त्र बरसाने लगे॥१०।१२॥वीर अर्जुन ने भल्ल और अर्ध चन्द्र बाणों से उन म्लेच्छों के शस्त्रों को व्यर्थ कर दिया और अपने विविध तीक्ष्ण बाणों से ध्वजा पताका-शोभित हाथियों और उनके सवार शूर म्लेच्छों को मारना प्रारम्भ किया। वे सुवर्ण माला से भूषित उन्मत्त हाथी अर्जुन के सुवर्णपुङ्ख युक्त बाणों से घायल और प्राणहीन होकर, वज्रपात से फटे हुए गिरि शिखरों के समान. गिरने और ज्वालामुखी पर्वतों के समान शोभायमान होने लगे॥१३।१५॥उस समय घायल और मर

अश्वारोहा महाराज धावमाना इतस्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः ॥ १९ ॥
तस्मिन्क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यत्सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद्युधि ॥ २० ॥
ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा परिवृतं राजन्भीमसेनः किरीटिनम् ॥ २१ ॥
हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान्कतिचिद्रथान् ।
जवेनाभ्यद्रवद्राजन्धनञ्जयरथं प्रति ॥ २२ ॥
ततस्तत्प्राद्रवत्सैन्यं हतभूयिष्ठमातुरम् ।
दृष्ट्वार्जुनं तदा भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥ २३ ॥
हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान् ।
भीमो व्यधमदभ्रान्तो गदापाणिर्महाहवे ॥ २४ ॥
कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोजनाम् ।
प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥ २५ ॥
ततो गदां नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत् ।
सा जघान बहूनश्वानश्वारोहांश्च मारिष ॥ २६ ॥
कार्ष्णायसतनुत्राणान्नरानश्वांश्च पाण्डवः ।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन्हताः ॥ २७ ॥

रहे मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि का आर्तनाद और गाण्डीव धनुष का भयानक शब्द रणभूमि में गूँज उठा। वीरों से पीठवाले असंख्य हाथी और घोड़े बाणों की चोट से विह्वल होकर चारों ओर भागने लगे। घोड़ों, योद्धाओं और सारथियों से शून्य गन्धर्वनगराकार सुसज्जित सहस्रों रथ इधर-उधर पड़े थे॥१६।१८॥ हे महाराज! घुड़-सवार योद्धा जहाँ भागकर जाते थे वहीं अर्जुन के बाण उन्हें मारते थे। उस समय हम लोगों ने अर्जुन का अद्भुत बाहुबल देखा। वे अकेले ही युद्ध करके गजारोही, अश्वारोही और रथी योद्धाओं को मार रहे थे। हे राजेन्द्र! उस समय फिर साहस करके हाथियों, घोड़ों और रथों के योद्धा लौट पड़े और गरज गरजकर अर्जुन को घेरने लगे॥१८।२०॥ हे महाराज! उस समय बली भीमसेन, अर्जुन को सेना के मध्य घिरे देखकर, कौरवपक्ष के बचे हुए रथी योद्धाओं को छोड़-कर, बड़े वेग से अर्जुन के रथ की ओर, उनकी सहायता करने के निमित्त दौड़े। कौरवसेना अर्जुन के ही पराक्रम से अधिकांश मर चुकी थी। अब भीमसेन को भी आते देखकर वह अल्पावशिष्ट पीड़ित सेना और भी भयभीत हो गई और भागने लगी। गदा हाथमें लिये भीम-सेन अर्जुन के निकट जाकर, अर्जुन के मारने से बच रहे, घुड़सवारों को मारने लगे॥२१।२४॥ दीवार, बड़े-बड़े महल और फाटक तोड़ सकनेवाली, कालरात्रि के समान अति उग्र और मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ों के प्राण हरनेवाली उनकी वह भयानक गदा स्फूर्ति के साथ बारम्बार हाथियों, घोड़ों और उनके सवारों पर चलने लगी। कवच धारण करनेवाले घोड़ों और उनके सवारों को भीमसेन उस गदा से चूर्ण करने लगे और

दन्तैर्दशन्तो वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः ।
भग्नमूर्धास्थिचरणाः क्रव्यादगणभोजनाः ॥ २८ ॥
असृङ्मांसवसाभिश्च तृप्तिमभ्यागता गदा ।
अस्थीन्यप्यश्नती तस्थौ कालरात्रीव दुर्दृशा ॥ २९ ॥
सहस्राणि दशाश्वानां हत्वा पत्तींश्च भूयसः ।
भीमोऽभ्यधावत्संक्रुद्धो गदापाणिरितस्ततः ॥ ३० ॥
गदापाणिं ततो भीमं दृष्ट्वा भारत तावकाः ।
मेनिरे समनुप्राप्तं कालदण्डोद्यतं यमम् ॥ ३१ ॥
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः ।
प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा ॥ ३२ ॥
विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम् ॥ ३३ ॥
गजान्सकङ्कटान्मत्तान्सारोहान्सपताकिनः ।
पततः समपश्याम सपक्षान्पर्वतानिव ॥ ३४ ॥
हत्वा तु तद्गजानीकं भीमसेनो महाबलः ।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात् ॥ ३५ ॥
हतं पराङ्मुखप्रायं निरुत्साहं परं बलम् ।
व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥ ३६ ॥
विलम्बमानं तत्सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम् ।
दृष्ट्वा प्राच्छादयद्बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥ ३७ ॥

वे आर्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। उनके सिर, हड्डी और पाँव आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग चूर चूर हो गये और वे रक्त से नहाकर, दाँतों से पृथ्वी को पकड़ते हुए, पृथ्वी पर लोटने लगे॥२५।२८॥मांसाहारी जीव प्रसन्नतापूर्वक उनका मांस खाने लगे। भीमसेन की वह भयानक गदा सेना के रक्त, मास और चर्बी से तृप्त होकर उनकी हड्डियों को भी चूर्ण करने लगी। महाबली भीमसेन इस प्रकार दस सहस्र घोड़ों, उनके सवारों और असंख्य पैदलों को मारकर गदा हाथ में लिये रणभूमि में शोभायमान हुए॥२९।३०॥गदापाणि भीमसेन को देखकर कौरवपक्ष के सैनिकों को जान पड़ा कि साक्षात् यमराज ही दण्ड हाथ में लेकर उनका संहार कर रहे हैं। बड़ा भारी मगर जैसे सागर में प्रवेश करे वैसे ही उन्मत्त हाथी के समान दुर्द्धर्ष कुपित भीमसेन कौरवों की गजसेना में फिर प्रवेश हुए। वहाँ जाकर उन्होंने क्षण भर में उसी गदा से हाथियों को भी चौपटकर डाला॥३१।३३॥हौदोंसे शोभित, ध्वजाओं से अलङ्कृत, योद्धाओं सहित बड़े बड़े हाथी—पक्षयुक्त पर्वतों के समान—मरकर घायल होकर पृथ्वी पर गिरते दिखाई पड़ने लगे। महावीर भीमसेन इस प्रकार गजसेना का संहार करके रथ पर बैठकर फिर अर्जुन के पीछे, उनकी रक्षा करते हुए, चले॥३४।३५॥उस समय कौरवों की सेना के अधिकांश योद्धा उत्साह-शून्य और युद्ध से विमुख हो गये। शस्त्रों के प्रहार

नराश्वरथमातङ्गा युधि गाण्डीवधन्वना ।
शरव्रातैश्चिता रेजुः कदम्बा इव केसरैः ॥ ३८ ॥
ततः कुरूणामभवदार्तनादो महान्नृप ।
नराश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥ ३९ ॥
हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम् ।
अलातचक्रवत्सैन्यं तदाभ्रमत तावकम् ॥ ४० ॥
ततस्तद्युद्धमभवत्कुरूणां सुमहद्बलैः ।
न ह्यत्रासीदनिर्भिन्नो रथः सादी हयो गजः ॥ ४१ ॥
आदीप्तमिव तत्सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम् ।
आसीत्सुशोणितक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ॥ ४२ ॥
तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम् ।
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ॥ ४३ ॥
अविषह्यं तु पार्थस्य शरसम्पातमाहवे ।
मत्वा न्यवर्तन्कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना ॥ ४४ ॥
ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः ।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥ ४५ ॥
अभ्यद्रवत तान्पार्थः किरञ्शरशतान्बहून् ।
हर्षयन्पाण्डवान्योधान्भीमसेनपुरोगमान् ॥ ४६ ॥
पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति ।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा ॥ ४७ ॥

मे पीड़ित होने के कारण उनमें युद्ध करने की शक्ति और साहस ही नहीं रहा। वह स्फूर्ति जाती रही। उन्हें निश्चेष्ट और निस्तेज देखकर वीर अर्जुन ने शस्त्रों और बाणों की वर्षा मे उन्हें ढक दिया। अर्जुन के असंख्य बाण लगने से मनुष्य, हाथी, रथ और घोड़े केसर-युक्त कदम्ब-कुसुम के समान जान पड़ने लगे ॥३६।३८॥ हे राजेन्द्र! मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के प्राण हरनेवाले अर्जुन के उन बाणों की वर्षा मे कौरवदल मे करुणापूर्वक हाहाकार सुनाई पड़ने लगा। इधर-उधर भागकर छिपने की चेष्टा कर रहे, भय विह्वल कौरव-सैनिक हाहाकार करते हुए, अलातचक्र के समान, भ्रमण करने लगे। अर्जुन ने ऐसी बाणवर्षा की कि कौरवदल में कोई रथी, हाथी, घोड़ा या उसका सवार अक्षत शरीर नहीं देख पड़ता था॥३९।४१॥ सैनिकों के कवच कट गये थे और शरीर रक्त से तर हो रहे थे। सम्पूर्ण सेना फूले हुए अशोक-वन के समान या दावानल मे जल रहे वन के सदृश जान पड़ती थी। हे महाराज! अर्जुन का वह अद्भुत बाहुबल और वेग-विक्रम देखकर कौरवगण कर्ण के जीवन से निराश हो गये। अर्जुन के बाणों का स्पर्श असह्य होने के कारण कौरवगण युद्ध करना छोड़ अर्जुन के आगे से हटने और अपनी रक्षा के निमित्त कर्ण को पुकारने लगे॥४२।४४॥ महापराक्रमी अर्जुन भी बाण वर्षा से उन्हें भगाने और भीमसेन प्रमुख पाण्डव सैनिकों को आनन्दित करने लगे। हे महाराज! तब आपके दुर्योधन आदि पुत्र अर्जुन के बाणों से विह्वल होकर कर्ण के

कुरवो हि महाराज निर्विषाः पन्नगा इव ।
कर्णमेवोपलीयन्त भयाद्गाण्डीवधन्वनः ॥ ४८ ॥
यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि मारिष ।
धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि यानि च ॥ ४९ ॥
तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप ।
उपालीयन्त सन्त्रासात्पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५० ॥
ताञ्शोणितपरिक्लिन्नान्विषमस्थाञ्शरातुरान् ।
मा भैष्टेत्यब्रवीत्कर्णो ह्यभीतो मामितेति च ॥ ५१ ॥
सम्भग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात्पार्थेन तावकम् ।
धनुर्विस्फारयन्कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया ॥ ५२ ॥
तान्प्रद्रुतान्कुरून्दृष्ट्वा कर्णः शस्त्रभृतां वरः ।
सञ्चिन्तयित्वा पार्थस्य वधे दध्रे मनः श्वसन् ॥ ५३ ॥
विस्फार्य सुमहच्चापं ततश्चाधिरथिर्वृषः ।
पञ्चालान्पुनराधावत्पश्यतः सव्यसाचिनः ॥ ५४ ॥
ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः ।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥ ५५ ॥
ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष ।
व्ययोजयन्त पञ्चालान्प्राणैः प्राणभृतां वर ॥ ५६ ॥
तत्र शब्दो महानासीत्पञ्चालानां महामते ।
वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सङ्कुलयुद्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

समाप गये। उस समय अथाह सङ्कट सागर में डूब रहे उन लोगों की रक्षा करनेवाले एक कर्ण ही द्वीप स्वरूप थे। कौरवदल के सब योद्धा, विषहीन सर्प के समान, अर्जुन का कुछ नहीं कर सके और उनके भय से विह्वल होकर कर्ण की शरण में गये॥४५।४८॥ सब प्राणी जैसे मृत्यु के भय से विषय भोगों को छोड़कर सब लोगों की एकमात्र गति धर्म का आश्रय लेते हैं, वैसे ही सेना सहित आपके पुत्रगण अर्जुन के भय से कर्ण की शरण में पहुँचे। कर्ण ने देखा कि वे लोग अर्जुन के बाणों से पीड़ित, रक्त से तर, भय विह्वल और विपत्तिग्रस्त होकर त्राहि त्राहि कर रहे हैं। अर्जुन के बाहुबल से भागी हुई आपकी सेना की यह दशा देखकर कर्ण ने उन्हें अभय दान दिया। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण, अर्जुन को मारने का निश्चय करके,धनुष की प्रत्यञ्चा बजाने लगे॥४९।५२॥वे क्रोध के मोर बारम्बार दीर्घ श्वास लेते हुए अर्जुन के सम्मुख ही पाञ्चालसेना पर आक्रमण करके उसका नाश करने लगे। यह देखकर पाण्डवपक्ष के महारथी राजा लोग क्रोध से लाल नेत्र करके कर्ण के ऊपर अमोघ तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे॥५३।५५॥इधर कर्ण सैकड़ों सहस्रों बाण छोड़कर वीर पाञ्चालों के प्राण हरने लगे। उस समय मित्र हितैषी कर्ण और मित्रों (पाण्डवों) के निमित्त प्राण देनेको उद्यत पाञ्चालगण परस्पर महाघोर युद्ध करने लगे पाञ्चालसेनामें भयङ्कर कोलाहल सुनाई पड़ने लगा॥

कर्णपर्व का बयासिवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८२ ॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

सञ्जय उवाच—ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु वरूथिना श्वेतहयेन राजन् ।
पाञ्चालपुत्रान्व्यधमत्सूतपुत्रो महेषुभिर्वात इवाभ्रसङ्घान् ॥ १ ॥
सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य ।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लैरवाकिरद्धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥ २ ॥
धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भिर्जघानाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये ।
हत्वा चाश्वान्सात्यकेः सूतपुत्रः कैकेयपुत्रं न्यवधीद्विशोकम् ॥ ३ ॥
तमभ्यधावन्निहते कुमारे कैकेयसेनापतिरुग्रकर्मा ।
शरैर्विधुन्वन्भृशमुग्रवेगैः कर्णात्मजं चाप्यहनत्प्रसेनम् ॥ ४ ॥
तस्यार्धचन्द्रैस्त्रिभिरुच्चकर्त प्रहस्य बाहू च शिरश्च कर्णः ।
स स्यन्दनाद्गामगमद्गतासुः परश्वधैः शाल इवावरुग्णः ॥ ५ ॥
हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः ।
प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥ ६ ॥
पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः ।
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन्स व्यवासृजद्बाणममित्रसाहम् ॥ ७ ॥
तमस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम् ।
शिखण्डिनः कार्मुकं च ध्वजं च छित्वा क्षुराभ्यां न्यपतत्सुजातः ॥ ८ ॥

बयासी अध्याय ॥ ८२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! महापराक्रमी कर्ण ने अर्जुन के प्रभाव से कौरवों को भागते देखकर, आँधी जैसे मेघमाला को छिन्न भिन्न करे वैसे ही, पाञ्चाल सेना को मारना और भगाना प्रारम्भ किया । कर्ण ने अञ्जलिक बाणों से जनमेजय के सारथी और घोड़ों को मारकर अनेक भल्ल बाणों से शतानीक और सुतसोम को पीड़ित किया और उनके धनुष भी काट डाले । फिर उन्होंने छः बाणों से धृष्टद्युम्न को घायल करके कई बाणों से उनके घोड़े मार डाले और फिर सात्यकि के घोड़ों को मारकर कैकेय राजकुमार विशोक को मार गिराया॥१।३॥कुमार विशोक की मृत्यु देखकर कैकेय सेना के सेनापति उग्रकर्मा कुपित होकर कर्ण की ओर दौड़े । उन्होंने उग्र वेगवाले बाणों से कर्ण के पुत्र प्रसेन को बरम्बार पीड़ित किया । कर्ण ने हँसकर तीन अर्धचन्द्र बाणों से उक्त सेनापति का सिर और दोनों हाथ काट डाले। वे प्राणहीन होकर कुल्हाड़ी से काटे गये शालवृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़े । रण में नृत्य सा कर रहे कर्णपुत्र ने धनुष चढ़ाकर सात्यकि को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करना प्रारम्भ किया । महावीर सात्यकि ने क्रोध से विह्वल होकर शीघ्र ही तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के पुत्र को मार गिराया॥४।६॥अपने पुत्र का वध देखकर महावीर कर्ण क्रोध और क्षोभ से विह्वल हो उठे । उन्होंने "अरे सात्यकि ! तुम मारे गये !" यों कहकर, उनको मारने के विचार से, एक अत्यन्त अनिवार्य विकट बाण वेग से छोड़ा । वीर शिखण्डी ने तीन बाणों से उस बाण को मध्य में ही काट डाला और कर्ण को तीन बाण कसकर मारे । महाबाहु कर्ण ने क्रोध से विह्वल होकर क्षुरप्र बाणों से शिखण्डी की ध्वजा और धनुष को

शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त ।
तथाभिनत्सुतसोमं शरेण सुसंशितेनाधिरथिर्महात्मा ॥ ९ ॥
अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः ।
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ कर्णं जहीत्यब्रवीद्राजसिंह ॥ १० ॥
ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो रथं रथेनाधिरथेर्जगाम ।
भये तेषां त्राणमिच्छन्सुबाहुरभ्याहतानां रथयूथपेन ॥ ११ ॥
विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं ज्यया समाहत्य तले भृशं च ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा जघान नागाश्वरथध्वजांश्च ॥ १२ ॥
प्रतिश्रुतः प्राहरदन्तरिक्षे गुहा गिरीणामपतन्वयांसि ।
यन्मण्डलज्येन विजृम्भमाणो रौद्रे मुहूर्तेऽभ्यपतत्किरीटी ॥ १३ ॥
तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन पृष्ठे रक्षन्पाण्डवमेकवीरः ।
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां कर्णाय यातावरिभिर्विमुक्तौ ॥ १४ ॥
तत्रान्तरे सुमहान्सूतपुत्रश्चक्रे युद्धं सोमकान्सम्प्रमृद्य ।
रथाश्वमातङ्गगणाञ्जघान प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च ॥ १५ ॥
तमुत्तमौजा जनमेजयश्च क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च ।
कर्णं बिभेदुः सहिताः पृषत्कैः संनर्दमानाः सह पार्षतेन ॥ १६ ॥
ते पञ्च पञ्चालरथप्रवीरा वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः ।
तस्माद्रथाच्च्यावयितुं न शेकुर्धैर्यात्कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः ॥ १७ ॥

काटकर छः उग्र बाणों से उन्हें भी विह्वल कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने धृष्टद्युम्न के पुत्र का सिर काटकर एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण सुतसोम को मारा॥७-९॥ हे महाराज ! इस प्रकार घोर संग्राम में धृष्टद्युम्न के पुत्र का वध होने पर महात्मा कृष्ण ने कहा — हे अर्जुन ! वीर कर्ण क्रोध करके सभी पाञ्चालों का नाश किये डालता है; इसलिए तुम चलकर उसको मारो। श्रीकृष्ण के वचन सुनकर महावीर अर्जुन हँसकर कर्ण के रथ की ओर वेग से बढ़े। कर्ण के द्वारा प्राप्त भय से पाञ्चालों की रक्षा के निमित्त वीर अर्जुन उग्र शब्द से युक्त गाण्डीव धनुष को चढ़ाकर, उसकी प्रत्यञ्चा को बजाते,तलशब्द करते चले। अर्जुन ने क्षण भर में इतने बाण छोड़े कि अन्धकार हो गया और असंख्य रथी,हाथी,घोड़े और उनके सवार मरने लगे तथा ध्वजाएँ कट कटकर गिरने लगीं। धनुष के उग्र शब्द से पर्वतों की कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं, आकाश में उड़नेवाले पक्षी नीचे गिर पड़े। उस रौद्र मुहूर्त में मण्डलाकार धनुष घुमाते और बाण बरसाते वीर अर्जुन शत्रुसेना पर आक्रमण करने लगे। पराक्रमी भीमसेन, अर्जुन की पीछे से रक्षा करते हुए, रथ को बढ़वाकर चले। वे दोनों राजपुत्र शीघ्रता के साथ कर्ण की ओर जाने लगे। मार्ग में फिर शत्रु सेना ने उनको रोका॥१०-१४॥इसी समय कर्ण भी सोमकों का संहार करते हुए,शत्रु-सेना के रथों,हाथियों, घोड़ों और पैदलों को मारने और गिराने लगे। उनके बाणों से भी सब दिशाएँ और आकाश व्याप्त हो गया। तब उत्तमौजा, जनमेजय, युधामन्यु, शिखण्डी और धृष्टद्युम्न, ये पाँचों पाञ्चालवीर सिंहनाद करते हुए तीक्ष्ण

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतांस्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान्पञ्चभिस्त्वभ्यहनत्पृषत्कैः कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८ ॥
तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात्पृथिवी विशीर्णेत्यतीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९ ॥
स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना भृशायतेनाधिरथिः शरान्सृजन् ।
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २० ॥
शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिनच्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥ २१ ॥
पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः ॥ २२ ॥
निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद्रथैः सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् ॥ २३ ॥
ततः शिनीनामृषभः शितैः शरैर्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून्बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयैस्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥ २४ ॥
कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५ ॥

बाणों से कर्ण को घायल करने लगे । किन्तु रूप-रस गन्ध-शब्द-स्पर्श ये पाँचों इन्द्रियों के विषय जैसे संयमी जितेन्द्रिय पुरुष को धैर्य से नहीं हटा सकते, वैसे ही वे पाँचों वीर कर्ण को रथ से नहीं गिरा सके ॥१५।१७॥ अब कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से उन वीरों के धनुष, ध्वजा, पताका, सारथी और घोड़ों को नष्ट कर दिया और असंख्य बाणों से उन्हें पीड़ित करके घोर सिंहनाद किया । उस समय सब लोग यह जानकर अत्यन्त खिन्न हुए कि शायद बाण बरसाकर पाञ्चाल वीरों को पीड़ित कर रहे और प्रत्यञ्चा-युक्त बाणों से शोभित हाथोंवाले कर्ण के धनुष के शब्द से पृथ्वी फट जायगी । महावीर कर्ण निरन्तर इन्द्रधनुष के समान बहुत ही लम्बे चौड़े विचित्र विजय धनुष को बारम्बार मण्डलाकार घुमाकर, प्रत्यञ्चा को खींचकर, बाण बरसा रहे थे जिससे वे किरण शोभित मण्डल युक्त प्रचण्ड सूर्यमण्डल के समान शोभायमान हो रहे थे ॥१८।२०॥ कर्ण ने शिखण्डी को बारह, उत्तमौजा को ... ... युधा... ... सोमक... । धृष्टद्युम्न को

तीन-तीन उग्र बाण मारे । हे राजेन्द्र ! सौम्य विषय जैसे जितेन्द्रिय पुरुष से हार जाते हैं, उसे अपने वश में नहीं कर सकते, वैसे ही पाञ्चाल देश के पाँचों महारथी वीर कर्ण के बल वीर्य से परास्त हो गये । वे मन्त्र-मुग्ध से होकर चेष्टाहीन हो गये । उस समय द्रौपदी के पाँचों पुत्र अपने मातुलों को कर्ण के द्वारा विपत्तिसागर में निमग्न देखकर, सुसज्जित रथ लेकर, रक्षा करनेके निमित्त उनके समीप पहुँचे । जैसे जहाज टूट जाने पर कोई मनुष्य नौकाओं के द्वारा विपन्न यात्रियों को उबार ले, वैसे ही उन पाँचों कुमारों ने अपने रथों पर बिठाकर मातुलों का उद्धार किया॥२१।२३॥हे महाराज! तब महारथी सात्यकि ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण के चलाये बाणों को काट कूट कर अनेक बाणों से कर्ण को छिन्न भिन्न कर डाला और फिर आपके बड़े पुत्र दुर्योधन को आठ लोहमय उग्र नाराच बाण मारे । उस समय महावीर कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण और राजा दुर्योधन, ये चारों महारथी मिलकर सात्यकि को तीक्ष्ण बाण-वर्षा से पीड़ित करने लगे

समाततेनेष्वसनेन कूजता भृशायतेनामितवाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः ॥ २६ ॥
पुनः समास्थाय रथान्सुदंशितः शिनिप्रवीरं जुगुपुः परन्तपाः ।
समेत्य पञ्चालमहारथ रणे मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७ ॥
ततोऽभवद्युद्धमतीव दारुणं तवाहितानां तव सैनिकैः सह ।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा यथा सुराणामसुरैः पुराभवत् ॥ २८ ॥
रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः ।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलुर्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा ॥ २९ ॥
तथागतं भीममभीस्तवात्मजः ससार राजावरजः किरञ्शरैः ।
तमभ्यधावत्त्वरितो वृकोदरो महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३० ॥
ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः ।
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयोरुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१ ॥
शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनैर्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम् ।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२ ॥
तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्धनुः क्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत् ।
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा शिरश्च कायात्प्रजहार सारथेः ॥ ३३ ॥
स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत् ।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत् ॥ ३४ ॥

॥२४।२५॥यादव वीर सात्यकि इन चारों महारथियों से युद्ध करने के कारण दिक्पालों से युद्धकर रहे दानव राज के समान शोभा को प्राप्त हुए। उनका शब्दायमान धनुष निरन्तर बाण बरसा रहा था, जिससे वे गगनमण्डल मध्यवर्ती शरद् ऋतु की दोपहरी के सूर्य के समान प्रचण्ड और दुर्द्धर्ष हो उठे। इसी मध्य में पाञ्चाल देश के महारथी लोग एकत्र होकर वैसे ही महाबली सात्यकि की रक्षा करने लगे, जैसे देवगण इन्द्र की रक्षा करें। हे राजेन्द्र! उस समय कौरवों और पाण्डवों का युद्ध देवासुर-संग्राम के समान महाभयानक हो उठा॥२६।२८॥हाथी, घोड़े, रथ और पैदल अगणित मरने लगे। विविध बाणों और शस्त्रों के प्रहार सह रहे असंख्य रथी, हाथी, घोड़े और पैदल रणभूमि में इधर-उधर दौड़ने और परस्पर मारने मरने लगे। कुछ सैनिक परस्पर प्रहारसे घायल होकर और वाहनोंकी पीठसे गिर कर आर्तनाद करनेलगे और कुछ सैनिक धर्मयुद्धमें अनेक बाणोंसे पीड़ित और प्राणहीनहोकर पृथ्वीपर गिरने लगे। इधर महावीर दुःशासन बाण-वर्षा करते हुए बड़े वेग से बढ़कर निर्भय भीमसेन के सम्मुख आये और उन्हें रोकने की चेष्टा करने लगे। सिंह जैसे अपने शिकार रुरु की ओर झपटता है, वैसे ही पराक्रमी भीमसेन बड़े वेग से दुःशासन की ओर चले॥२९।३०॥दोनों क्रुद्ध चिरविद्वेषी महावीर, शम्बरासुर और इन्द्रके समान, दारुण संग्राम करने लगे। जिनके गण्डस्थल से मद बरस रहा हो ऐसे दो कामोन्मत्त गजराज जैसे एक हथिनी के निमित्त भिड़कर परस्पर दाँतों से प्रहार करें, वैसे ही वे दोनों वीर विजय के निमित्त शरीर को विदीर्ण करनेवाले बाणों से प्रहार करने लगे। भीमसेन

ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम् ।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम् ॥ ३५ ॥
स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत् ।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

ने अवसर पाकर दो क्षुरप्र बाणों से दुःशासन के धनुष और ध्वजा को काट डाला और उनके मस्तक में वेग से एक बाण मारकर अन्य तीक्ष्ण बाण से उनके सारथी का सिर अलग कर दिया॥३१।३३॥राजकुमार दुःशासन ने शीघ्र दूसरा धनुष लेकर भीमसेन को बारह बाण मारे। वे उस समय रास पकड़कर आप ही घोड़ों को हाँक रहे थे और भीमसेन के ऊपर प्रहार भी कर रहे थे। दुःशासन ने भीमसेन को ताककर एक सूर्य किरण और अग्निशिखा सा उज्ज्वल, तेजोमय, हीरा रत्न आदि से शोभित, सुवर्णमण्डित, वज्र के समान अत्यन्त दुःसह, शत्रु के शरीर को विदीर्ण करनेवाला महा घोर बाण छोड़ा। वह भयानक बाण लगने से महारथी भीमसेन का शरीर विदीर्ण हो गया। वे विह्वल और मृतप्राय होकर, दोनों हाथ फैलाकर, रथ के ऊपर गिर पड़े। थोड़ी देर में सचेत होकर वे सिंहनाद करने लगे॥३४।३६॥

कर्णपर्व का बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच—तत्राकरोद्दुष्करं राजपुत्रो दुःशासनस्तुमुलं युध्यमानः ।
चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण षड्भिः शरैः सारथिमप्यविध्यत् ॥ १ ॥
स तत्कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः ।
ततोऽभिनद्बहुभिः क्षिप्रमेव वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा ॥ २ ॥
ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी शक्तिं चोग्रां प्राहिणोत्ते सुताय ।
तामापतन्तीं सहसातिघोरां दृष्ट्वा सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम् ॥ ३ ॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्महात्मा चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः ।
दृष्ट्वा तु तत्कर्म कृतं सुदुष्करं प्रापूजयन्सर्वयोधाः प्रहृष्टाः ॥ ४ ॥
अथाशु भीमं च शरेण भूयो गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः ।
चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै भृशं प्रजज्वाल रुषाभिवीक्ष्य ॥ ५ ॥

तिरासी अध्याय ॥ ८३ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! वीर दुःशासन रणभूमि में घोर कर्म करने लगे। उन्होंने एक बाण से भीमसेन का धनुष काट डाला। फिर उन्होंने स्फूर्ति से छः बाण भीमसेन के सारथी को और नव बाण भीमसेन को मारे। इसके उपरान्त अनेक तीक्ष्ण बाण मारकर वे भीमसेन को पीड़ित करने लगे॥१।२॥ असाधारण बल-वीर्यशाली भीमसेन क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने दुःशासन के ऊपर एक घोर तीक्ष्ण शक्ति फेंकी। वीर दुःशासन ने भारी उल्का के समान प्रज्वलित उस भयानक शक्ति को सहसा वेग से आते देखकर, तनिक भी विचलित हुए बिना ही, कानों तक खींचकर पूर्ण वेग से छोड़े गये दस बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले॥३।४॥यह देखकर कौरव पक्ष के सब लोग परम प्रसन्न हुए और दुःशासन के इस कार्य तथा कौशल की अत्यन्त प्रशंसा करने लगे। आपके पुत्र वीर दुःशासन ने फिर तीक्ष्ण बाणों से

विद्धोऽस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य सहस्व भूयोऽपि गदाप्रहारम् ।
उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोऽथ भीमो जग्राह तां भीमगदां वधाय ॥ ६ ॥
उवाच चाद्याहमहं दुरात्मन्पास्यामि ते शोणितमाजिमध्ये ।
अथैवमुक्तस्तनयस्तवोग्रां शक्तिं वेगात्प्राहिणोन्मृत्युरूपाम् ॥ ७ ॥
आविध्य भीमोऽपि गदां सुघोरां विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्तिः ।
सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि ॥ ८ ॥
स विक्षरन्नाग इव प्रभिन्नो गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद्वै ।
तयाहरद्दश धन्वन्तराणि दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य ॥ ९ ॥
तया हतः पतितो वेपमानो दुःशासनो गदया वेगवत्या ।
विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रक् विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः ॥ १० ॥
हयाः ससूता निहता नरेन्द्र चूर्णीकृतश्चास्य रथः पतन्त्या ।
दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे हृष्टाः पञ्चालाः सिंहनादानमुञ्चन् ॥ ११ ॥
तं पातयित्वाथ वृकोदरोऽथ जगर्ज हर्षेण विनादयन्दिशः ।
नादेन तेनाखिलपार्श्ववर्तिनो मूर्छाकुलाः पतितास्त्वाजमीढ ॥ १२ ॥
भीमोऽपि वेगादवतीर्य यानाद्दुःशासनं वेगवानभ्यधावत् ।
ततः स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी सापत्नकं यत्प्रयुक्तं सुतैस्ते ॥ १३ ॥
तस्मिन्सुघोरे तुमुले वर्तमाने प्रधानभूयिष्ठनरैः समन्तात् ।
दुःशासनं तत्र समीक्ष्य राजन्भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ १४ ॥

भीमसेन को बहुत घायल कर दिया। पराक्रमी भीमसेन दुःशासन के इस कार्य से क्रोध के मारे अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने दुःशासन से कहा—हे धृतराष्ट्र के पुत्र! तुमने तो मुझ पर जी भरकर प्रहार कर लिया; अब मेरी गदा की चोट सहन करने के निमित्त तैयार हो जाओ। इसके पश्चात् दुःशासन वध का निश्चय किये हुए भीमसेन ने गदा हाथ में ली। उन्होंने फिर दुःशासन से कहा—रे पामर दुरात्मा! सँभल जाओ, मैं आज इस समय तुम्हारी छाती का रक्त पीऊँगा। [इस प्रकार अपनी पिछली प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा]॥४।७॥वीर दुःशासन ने भीमसेन के ये वचन सुनकर साक्षात् मृत्यु स्वरूपिणी एक भयानक शक्ति लेकर उन पर फेंका। अत्यन्त कुपित होकर भीमसेन ने भी अपनी भयानक गदा के प्रहार से उस शक्ति को चूर्ण कर दिया। उसके पश्चात् वही गदा बड़े वेग से दुःशासन के मस्तक में ताककर मारी। मस्तक में गदा लगने से दुःशासन विह्वल होकर काँपते हुए रथ से दस धनुष (चार हाथ का एक धनुष) की दूरी पर जाकर गिरे। महावीर दुःशासन उस वेगवती गदा के प्रहार से काँपने और वेदना से अति विह्वल होकर पृथ्वीतल पर लोटने लगे। उनका कवच टूट गया, वस्त्र फट गये, माला टूट गई और गहने इधर-उधर गिर गये॥७।१०॥उनका रथ, सारथी और घोड़े भी उस गदा के गिरने से चूर्ण हो गये। यह देखकर पाण्डव और पाञ्चालगण आनन्द के मारे सिंहनाद करने लगे। महाबली भीमसेन भी दुःशासन को गिराकर बड़े हर्ष से, दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए, घोरतर सिंहनाद करने लगे। आस-पास के सब लोग

स्मृत्वाऽथ केशग्रहणं च देव्या वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः ।
अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य ॥ १५ ॥
जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः ।
तत्राह कर्णं च सुयोधनं च कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥ १६ ॥
निहन्मि दुःशासनमद्य पापं संरक्ष्यतामद्य समस्तयोधाः ।
इत्येवमुक्त्वा सहसाभ्यधावन्निहन्तुकामोऽतिबलस्तरस्वी ॥ १७ ॥
तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो महागजं केसरिको यथैव ।
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम् ॥ १८ ॥
रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ यत्नेन तस्मिन्प्रणिधाय चक्षुः ।
असिं समुद्यम्य सितं सुधारं कण्ठे पदाक्रम्य च वेपमानम् ॥ १९ ॥
उवाच तद्गौरिति यद् ब्रुवाणो हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम् ।
ये राजसूयावभृथे पवित्रा जाताः कचा याज्ञसेन्या दुरात्मन् ॥ २० ॥
ते पाणिना कतरेणावकृष्टास्तद् ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः ।
श्रुत्वा तु तद्भीमवचः सुघोरं दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य ॥ २१ ॥
जज्वाल भीमं स तदा स्मयेन संशृण्वतां कौरवसोमकानाम् ।
उक्तस्तदाजौ स तथा सरोषं जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः ॥ २२ ॥

अयं करिकराकारः पीनस्तनविमर्दनः ।
गोसहस्रप्रदाता च क्षत्रियान्तकरः करः ॥ २३ ॥

उनके भय तक सिंहनादसे मूर्च्छित होकर समरभूमिमें गिर पड़े। तब अचिन्त्य अद्भुत कर्म करनेवाले भीमसेन रथसे उतरकर बड़े वेगसे दुःशासनकी ओर दौड़े॥ ११। १३॥ उन असंख्य जनपूर्ण घोर रणस्थल में दुःशासन को देखकर भीमसेन को स्मरण हो आया कि दुर्योधन आदि ने पाण्डवों के साथ अनेक शत्रुता के व्यवहार किये हैं; पतिपरायणा द्रौपदी जब रजस्वला थी तब दुःशासन कुरु सभा में उन्हें घसीट लाया; उनके केश पकड़े और साड़ी उतार लेने की चेष्टा की। इस प्रकार के रोषों से भरे अनेक क्लेशों को स्मरण करके भीमसेन प्रचण्ड अग्नि के समान क्रोध से प्रज्वलित हो उठे ॥१४।१६॥ वे कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा आदि महारथियों को सुनाकर कहने लगे—मैं आज दुरात्मा दुःशासन को मारूँगा [उसका रक्तपान करूँगा], यदि किसी में शक्ति हो तो वह इस समय दुःशासन की रक्षा करे। महाबली भीमसेन दुःशासन को मारने के निमित्त वेग से उनके समीप पहुँच गये और, सिंह जैसे गजराज पर आक्रमण करे वैसे ही, दुर्योधन और कर्ण के सम्मुख ही दुःशासन को पकड़कर उन्होंने पटक दिया॥१७।१८॥ उनके पश्चात् कूदकर काँप रहे दुःशासन की छाती पर चढ़कर, कण्ठ पर पाँव रखकर, तीक्ष्ण खड्ग तानकर भीमसेन ने कहा—अरे पापी! तुमने पहले कर्ण और दुर्योधन के साथ प्रसन्न होकर 'बैल-बैल' कहकर हमारा उपहास किया था, उसका परिणाम अब देखो। बतलाओ, राजसूय यज्ञ के अवभृथ-स्नान से पवित्र हुए द्रौपदी के केश तुमने किस हाथसे पकड़े थे? तुमसे भीमसेन इस समय पूछता है॥१९। २१॥ महाबली भीमसेन के ये घोर वचन सुनकर और

अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः ।
पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकं च सभासदाम् ॥ २४ ॥

एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः ।
भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्यामुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान् ॥ २५ ॥
उवाच यस्यास्ति बलं स रक्षत्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः ।
दुःशासनं जीवितं प्रोत्सृजन्तमाक्षिप्य योधांस्तरसा महाबलः ॥ २६ ॥
एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण उत्पाटयामास भुजं महात्मा ।
दुःशासनं तेन स वीरमध्ये जघान वज्राशनिसन्निभेन ॥ २७ ॥
उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमावथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
ततो निपात्यास्य शिरोऽपकृत्य तेनासिना तव पुत्रस्य राजन् ॥ २८ ॥
सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान्प्रतिज्ञां भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम् ॥ २९ ॥
स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य ।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य पानात्पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात् ॥ ३० ॥
अन्यानि पानानि च यानि लोके सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः ।
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं ममाद्य चास्याहितलोहितस्य ॥ ३१ ॥
अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः ।
गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं किं वा कुर्यां मृत्युना रक्षितोऽसि ॥ ३२ ॥

उनका रौद्र रूप देखकर दुःशासन तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने लाल लाल नेत्र निकालकर अहङ्कारके साथ क्रोधपूर्ण स्वर से कहा—अरे भीमसेन ! यह हाथी की सूँड़ के समान और पीन स्तनों का मर्दन करनेवाला वह हाथ है, जिसने सहस्रों गोदान किये हैं और समर में क्षत्रियों का संहार किया है। कुरुसभा में सब सभासदों के, कौरव-श्रेष्ठों के और तुम पाण्डवों के सम्मुख मेरे इसी हाथ ने द्रौपदी के केश पकड़े थे ॥२१।२४॥ हे राजेन्द्र ! दुःशासन के ये वचन सुनकर भीमसेन ने बलपूर्वक रगड़कर, सिंहनाद करके, फिर कहा—मैं इस नीच का यह हाथ उखाड़ता हूँ, जिसमें शक्ति हो वह इसके जीवन की रक्षा करे। अब महाबली भीमसेन ने क्रोधान्ध होकर दुःशासन का वह हाथ तोड़ डाला और गला दबाकर उसे मार डाला॥२४।२७॥ काल-सदृश भीमसेन ने घोर कर्म करके दुःशासन के हृदय को चीरकर, स्वाद ले-लेकर, चारों ओर देखकर, बारम्बार दुःशासन का गर्म रक्त पीना प्रारम्भ कर दिया। कुपित भीमसेन कहने लगे—माता के दुग्ध में, अमृत में, घी दुग्ध में, मीठे जल में, रस में, जव और महुए की मदिरा में, किसी भी पीने के पदार्थ में ऐसा स्वाद नहीं प्राप्त हो सकता, जैसा स्वाद मुझे इस समय शत्रु के रक्त में प्राप्त हो हो रहा है॥२८।३१॥ निष्ठुर कर्म करनेवाले भीमसेन दुःशासन को मरा हुआ देखकर, अट्टहास करके, फिर कहने लगे—शोक है अरे नीच कि तुम मर गये, मृत्यु ने तुम्हें बचा लिया और अब मैं तुम्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता ! हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार कहकर दुःशासन की छाती पर से उठकर क्रूर भीमसेन

एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्तमास्वाद्यमानं नमतिप्रहृष्टम् ।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः ॥ ३३ ॥
ये चापि नासन्व्यथिता मनुष्यास्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रम् ।
भयाच्च संचुक्रुशुरस्वरैस्ते निमीलिताक्षा ददृशुः समन्ततः ॥ ३४ ॥
तं तत्र भीमं ददृशुः समन्ताद्दौःशासनं तद्रुधिरं पिबन्तम् ।
सर्वेऽपलायन्त भयाभिपन्ना न वै मनुष्योऽयमिति ब्रुवाणाः ॥ ३५ ॥
तस्मिन्कृते भीमसेनेन रूपे दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम् ।
सम्प्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ॥ ३६ ॥
युधामन्युं प्रद्रुतं चित्रसेनं सहानीकस्त्वभ्यगाद्राजपुत्रः ।
विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कैर्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः ॥ ३७ ॥
संक्रान्त भोग इव लेलिहानो महोरगः क्रोधविषं तिसृक्षुः ।
निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्यत्त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भिः ॥ ३८ ॥
ततःसुपुङ्खेन सुयन्त्रितेन सुसंशिताग्रेण शरेण शूरः ।
आकर्णमुक्तेन समाहितेन युधामन्युस्तस्य शिरो जहार ॥ ३९ ॥
तस्मिन्हते भ्रातरि चित्रसेने क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः ।
व्यद्रावयत्पाण्डवानामनीकं प्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः ॥ ४० ॥

भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम् ।
पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः ॥ ४१ ॥
शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत् ।
एष ते रुधिरं कण्ठात्पिबामि पुरुषाधम ॥ ४२ ॥

गेर अनन्द के नाचने और शत्रुओं को ललकारने लगे। उस समय जिसने भीमसेन की भयानक मूर्ति देखी वही व्यथित और भय से विह्वल होकर गिर पड़ा। जो मनुष्य नहीं भी गिरे उनके हाथ मे शस्त्र छूट पड़े। सब लोग मोहित से हो गये, उन्होंने आँखें मूँद ली। लोग भय के मारे अस्पष्ट स्वर से चिल्लाने लगे। जिन लोगों ने वहाँ भीमसेन को दुःशासन का रक्त पीते देखा, वे भय से विह्वल होकर "अरे यह मनुष्य नहीं, कोई राक्षस है!" कहते हुए चारों ओर भागने लगे ॥३२।३५॥ इसी मध्य में राजकुमार युधामन्यु ने सेना सहित भाग रहे चित्रसेन का पीछा किया। वेग से चित्रसेन के सम्मुख जाकर निडर युधामन्यु ने उनको तीक्ष्ण सात बाण मारे। महावीर चित्रसेन युधामन्यु के बाणों की चोट से, लात लगने से फुफकारकर चोट करनेवाले सर्प के समान, क्रुद्ध होकर लौट पड़े। उन्होंने युधामन्यु को तीन और उनके सारथी को छः बाण मारे। पराक्रमी युधामन्यु ने क्रोध से विह्वल होकर एक तीक्ष्ण बाण ताककर मारा। कान तक खींचकर छोड़े गये उस उग्र बाण ने चित्रसेन का सिर काट डाला॥३७।३९॥उनकी मृत्यु देखकर कर्ण अपना पौरुष प्रकट करने, शत्रुसेना को मारने और भगाने लगा। यह देखकर महावीर नकुल शीघ्रता के साथ कर्णसे युद्ध करने लगे। इधर पराक्रमी भीमसेन का क्रोध तब भी नहीं शान्त हुआ था। वे दुःशासन का रक्त पी चुकने के

ब्रूहीदानीं तु संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति ।
ये तदास्मान्प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति ॥ ४३ ॥
तान्वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ।
प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम् ॥ ४४ ॥
दंशनं चाहिभिः कृष्णैर्दाहं च जतुवेश्मनि ।
द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या ॥ ४५ ॥
द्रौपद्याः केशपक्षस्य ग्रहणं च सुदारुणम् ।
इष्वस्त्राणि च संग्रामेष्वसुखानि च वेश्मनि ॥ ४६ ॥
विराटभवने यश्च क्लेशोऽस्माकं पृथग्विधः ।
शकुनेर्धार्तराष्ट्रस्य राधेयस्य च मन्त्रिते ॥ ४७ ॥
अनुभूतानि दुःखानि तेषां हेतुस्त्वमेव हि ।
दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन ।
धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात्सपुत्रस्य सदा वयम् ॥ ४८ ॥
इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः ।
पुनराह महाराज स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ ॥ ४९ ॥
असृक्दिग्धो विस्रवच्छोहितास्यः क्रुद्धोऽत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी ।
दुःशासने यद्रणे संश्रुतं मे तद्वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ ॥ ५० ॥
अत्रैव दास्याम्यपरं द्वितीयं दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य ।
शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः शान्तिं लप्स्ये कौरवाणां समक्षम् ॥ ५१ ॥

पश्चात् उनके रक्त को अञ्जलि में भरकर ऊँचे स्वरसे, मृत दुःशासनको लक्ष्य करके, शत्रुओं को सुना-सुनाकर कहने लगे—रे दुष्ट दुःशासन! मैं इस समय राक्षस के समान तुम्हारा रक्त पी रहा हूँ; इस समय फिर प्रसन्नतापूर्वक "बैल-बैल" कहकर मेरा उपहास करो। पूर्व समय में जिन्होंने "बैल बैल" कहकर हमारे आगे नृत्य किया था, उन्हीं के आगे इस समय हम भी "बैल-बैल" कहकर उनका उपहास करते हुए नाच रहे हैं॥४०।४४॥ कर्ण और शकुनि की कुमन्त्रणा से दुर्योधन ने मुझे प्रमाणकोटि के ऊँचे भवन में सुलाकर जल में गिराया, भोजन में विष मिलाकर खिलाया और सर्पों से डसवाया। फिर लाक्षागृह में माता कुन्ती सहित ■■ पाँचों भाइयों को जला डालने की चेष्टा की, द्यूत क्रीड़ा में कपट से राज्य ले लिया, वनवास के निमित्त विवश किया, द्रौपदी के केश पकड़े और अब युद्ध ठानकर शस्त्र-बाण वर्षा से ये मार डालने की चेष्टा कर रहे हैं। इस प्रकार पुत्रों सहित धृतराष्ट्र की दुष्टता से हम अपने घर में, वन में और अज्ञातवास के समय राजा विराट के नगर में सदा दुःख ही भोगते रहे॥४५।४८॥ यह सब तुम्हारी ही करतूत है। हमने दुःख के सिवा सुख कभी नहीं जाना। हे राजेन्द्र! उस समय भीमसेन रक्त से तर हो रहे थे और रक्त पीने के कारण उनका मुख भी लाल हो रहा था। क्रोध के आवेश से भरे हुए विजयी भीमसेन, श्रीकृष्ण और अर्जुन के सम्मुख जाकर, कहने लगे—हे दोनों वीरो! दुःशासन वध के सम्बन्ध में मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण

एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो ननाद चोच्चै रुधिरार्द्रगात्रः ।
ननर्द चैवातिबलो महात्मा वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दु शासनवधे त्र्यशीतितमोऽध्याय ॥ ८३ ॥

हो चुकी। अब मैं इस रण यज्ञ के प्रधान पशु दुर्योधन को मारकर और उसके सिर को लात से ठुकरा कर दूसरी प्रतिज्ञा भी कौरवों के सम्मुख ही शीघ्र पूर्ण करूँगा। तभी मुझे शान्ति प्राप्त होगी। हे राजेन्द्र! महाबली भीमसेन, वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्र के समान प्रसन्न होकर घोर सिंहनाद करने और उछलने-कूदने लगे॥४८-५२॥

— • —

कर्णपर्व का तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमोऽध्याय ॥ ८४ ॥

सञ्जय उवाच—दुःशासने तु निहते तव पुत्रा महारथाः ।
महाक्रोधाविषा वीराः समरेष्वपलायिनः ॥ १ ॥
दश राजन्महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्शरैः ।
निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्धरः ॥ २ ॥
अलोलुपः सहः षण्ढो वातवेगसुवर्चसौ ।
एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ३ ॥
भीमसेनं महाबाहु मार्गणैः समवारयन् ।
स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात्तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ ।
तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारतान् ॥ ५ ॥
रुक्माङ्गदान्रुक्मपुङ्खैः पार्थो निन्ये यमक्षयम् ।
हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव ॥ ६ ॥
पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम् ।
ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महद्भयम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव ।
तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८ ॥

चौरासी अध्याय ॥ ८४ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! महावीर दुःशासन के मारे जाने पर भ्रातृशोक से पीड़ित निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्द्धर, अलोलुप, षंढ, सह, वातवेग और सुवर्चा नाम के आपके दस महारथी पुत्र क्रोध से विह्वल हो उठे। वे लोग भीमसेन को घेरकर चारों ओर से तीक्ष्ण बाण मारने और पीड़ित करने लगे॥१॥४॥कुपित काल के समान लाल नेत्र किये हुए भीमसेन ने बड़े वेग से दस सुवर्णभूषित भल्ल बाणों से, रण से कदापि भी विमुख न होनेवाले, उन दसों वीरों को मार डाला। उनके मारे जाने पर कौरव सेना कर्ण के सम्मुख ही भीमसेनके भयमें भागने लगी॥१-७॥ प्रजा-संहारक काल के समान भीमसेन के

उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिन्दमम् ।
मा व्यथां कुरु राधेय नैव त्वय्युपपद्यते ॥ ९ ॥
एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः ।
दुर्योधनश्च संमूढो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ १० ॥
दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना ।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः ॥ ११ ॥
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः ।
कृपप्रभृतयश्चैते हतशेषाः सहोदराः ॥ १२ ॥
पाण्डवा लब्धलक्षाश्च धनञ्जयपुरोगमाः ।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः ॥ १३ ॥
स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषेण समास्थितः ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ॥ १४ ॥
भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समाहितः ।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम् ॥ १५ ॥
जये स्याद्विपुला कीर्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये ।
वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव ॥ १६ ॥
त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः ॥
हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम् ॥ १७ ॥

पराक्रम देखकर महावीर कर्ण भयभीत हो गये। कर्ण के आकार से उनके मन का भाव जानकर चतुर शल्य ताड़ गये कि कर्ण भी भय से विह्वल हो रहे हैं। तब वे उस समय के योग्य हितोपदेश-युक्त वचन इस प्रकार बोले — हे वीरश्रेष्ठ कर्ण! तुम इस प्रकार भय-पीड़ित और विह्वल न होओ। यह तुम्हारे योग्य नहीं है। देखो, भीमसेन के भय से ये सब राजा भाग रहे हैं। दुर्योधन भी भाई के शोक से पीड़ित हो रहे हैं भीमसेन को दुःशासन का रक्त पीते देखकर वे शोक और भय से मोहित हो रहे हैं। बचे हुए दुर्योधन के भाई और कृपाचार्य आदि महारथी भी, शोकाकुल और खिन्न होकर, दुर्योधन के निकट उपस्थित हैं॥७।१२॥ अर्जुन आदि पाण्डवपक्ष के महारथी विजयप्राप्त करने से प्रबल होकर युद्ध करने के निमित्त तुम्हारे सम्मुख आ रहे हैं। इसलिए तुम भय छोड़कर पौरुष और साहस दिखाओ, क्षत्रिय-धर्म का पालन करनेके निमित्त अर्जुन के सम्मुख जाओ और युद्ध करो। राजा दुर्योधन ने सेनापति बनाकर युद्ध का सब भार तुम्हें सौंपा है। तुम अपनी शक्ति के अनुसार उस भार को वहन करो। युद्ध में विजय प्राप्त करने से चिरस्थायिनी कीर्ति प्राप्त होगी और रण में मरण होने से स्वर्ग लाभ प्राप्त होगा॥१३।१६॥ हे कर्ण! वह देखो, तुम्हारा पुत्र वीर वृषसेन, तुम्हें इसप्रकार मोह को प्राप्त देखकर, क्रोध करके वेग से पाण्डवों पर आक्रमण करने जा रहा है। हे राजेन्द्र! महातेजस्वी शल्य के ये वचन सुनकर महारथी कर्ण सावधान हुए। उन्होंने वीर क्षत्रिय

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधावदवस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तम् ।
वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान् ॥ १८ ॥
तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो रोषादमित्रं प्रतुदन्पृषत्कैः ।
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं पुरा जिघांसुर्मघवेव जम्भम् ॥ १९ ॥
ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकम्बुकं चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण ।
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं भल्लेन जाम्बूनदचित्रनद्धम् ॥ २० ॥
अथान्यदादाय धनुः स शीघ्रं कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत् ।
दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोऽपि कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः ॥ २१ ॥
शराभिघाताच्च रुषा च राजन्स्वया च भासास्त्रसमीरणाच्च ।
जज्वाल कर्णस्य सुतोऽतिमात्रमिद्धो यथाज्याहुतिभिर्हुताशः ॥ २२ ॥
कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः ।
वनायुजान्वै नकुलस्य शुभ्रानुदग्रगान्हेमजालावनद्धान् ॥ २३ ॥
ततो हताश्वादवरुह्य यानादादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम् ।
आकाशसङ्काशमसिं प्रगृह्य दोधूयमानः खगवच्चचार ॥ २४ ॥
ततोऽन्तरिक्षे च रथाश्वनागांश्चिच्छेद तूर्णं नकुलश्चित्रयोधी ।
ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा ॥ २५ ॥
द्विसाहस्राः पातिता युद्धशौण्डा नानादेश्याः सुभृताः सत्यसन्धाः ।
एकेन सङ्ख्ये नकुलेन कृत्ता जयेप्सुनानुत्तमचन्दनाङ्गाः ॥ २६ ॥

के समान युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इसी समय कर्ण के पुत्र वृषसेन कुपित होकर उग्ररूप दण्डपाणि काल के समान, गदा हाथ में लेकर सेना का संहार कर रहे भीमसेन के सम्मुख बाण बरसाते हुए चले। यह देखकर, जम्भासुर को मारने के निमित्त उद्यत इन्द्र के समान, वीर नकुल वृषसेन की ओर चले और तीक्ष्ण बाण मारकर प्रसन्नचित्त शत्रु को पीड़ित करने लगे॥१८।१९॥ नकुल ने क्षण भर में एक क्षुरप्र बाण से वृषसेन की बिल्लौर और सुवर्ण से चित्रित ध्वजा काट डाली और एक भल्ल बाण से उनका सुवर्णभूषित विचित्र धनुष भी काट डाला। तब दुःशासन का बदला लेने के विचार से दूसरा धनुष लेकर अस्त्रविद्या में निपुण वृषसेन ने नकुल को दिव्य अस्त्र-युक्त बाणों की वर्षा से पीड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। कुपित महारथी नकुल भी उल्का-सदृश प्रज्वलित भयानक बाण वृषसेन के ऊपर बरसाने लगे। अस्त्र-युद्ध में निपुण वृषसेन ने उग्र बाणों से नकुल के सब बाणों को व्यर्थ कर दिया। उनके बाणप्रहार से कुपित वृषसेन अपने तेज और अस्त्रों के प्रभाव से, आहुति पड़ने से प्रचण्ड अग्नि के समान, प्रज्वलित हो उठे॥२०।२१।२२॥ उन्होंने तीक्ष्ण बाणों से नकुल के सुवर्णालङ्कृत, वनायु देश में उत्पन्न, सुकुमार उज्ज्वल चारों घोड़ों को मार डाला। तब विचित्र योद्धा नकुल उस बिना घोड़ों के रथ से उतर पड़े और शीघ्र ही सुवर्ण-चित्रित शतचन्द्र-शोभित ढाल और नीली तीक्ष्ण तलवार लेकर आकाशचारी पक्षी के समान रणभूमि में विचरने और पैंतरे बदलने लगे॥२३।२४।२५॥ क्रुद्ध हुए नकुल ने उसी क्षण में वृष-

तमापतन्तं नकुलं सोऽभिपत्य समन्ततः सायकैः प्रत्यविध्यत् ।
स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कैर्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः ॥ २७ ॥
महाभये रक्ष्यमाणो महात्मा भ्रात्रा भीमसेनाकरोत्तत्र भीमम् ।
तं कर्णपुत्रो व्यधमन्तमेकं नराश्वमातङ्गरथाननेकान् ॥ २८ ॥
क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कैर्विव्याध वीरं नकुलं सरोषः ।
स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी महाहवे वृषसेनेन राजन् ॥ २९ ॥
क्रुद्धेन धावन्समरे जिघांसुः कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः ।
वितत्य पक्षौ सहसापतन्तं श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ ॥ ३० ॥
अवाकिरद्वृषसेनस्ततस्तं शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम् ।
स तान्मोघांस्तस्य कुर्वञ्शरौघाञ्चचार मार्गान्नकुलश्चित्ररूपान् ॥ ३१ ॥
अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य ।
महेषुभिर्व्यधमत्कर्णपुत्रो महाहवे चर्म सहस्रतारम् ॥ ३२ ॥
तं चायसं निशितं तीक्ष्णधारं विकोशमुग्रं गुरुभारसाहम् ।
द्विषच्छरीरान्तकरं सुघोरमाधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥ ३३ ॥
क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाहश्चकर्त खड्गं निशितैः सुवेगैः ।
पुनश्च दीप्तैर्निशितैः पृषत्कैः स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविध्यत् ॥ ३४ ॥

सेन की सहायता करनेवाले दो सहस्र योद्धाओं को काट-काटकर गिराना प्रारम्भ कर दिया। रथों, हाथियों और घोड़ों पर सवार वे योद्धा, अश्वमेध में यजमान के मारे हुए बलि-पशुओं के समान, खड्ग-प्रहार से कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे । उत्तम चन्दन प्राप्त करने के निमित्त जैसे कोई चन्दन वन को काटे, वैसे ही अकेले नकुल ने उन युद्धप्रिय, दुर्योधन के मित्र, सत्यसन्ध, अनेक देशों के क्षत्रियों को देखते ही देखते खड्ग के वार से पृथ्वी पर सुला दिया । पृथ्वी पर पैदल ही खड्ग के हाथ दिखाकर शत्रुसेना का संहार कर रहे नकुल को चारों ओर से अनेक महारथी और वीर वृषसेन असख्य तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से घायल करने लगे । किन्तु वीर नकुल उन बाणों की परवा न करके शत्रुसेना को मारते हुए विचरने लगे । बाणों के प्रहार से अत्यन्त घायल और क्रोध से अधीर हो रहे नकुल इस प्रकार रणभूमि में घोर जन-संहार करने लगे । महावीर भीमसेन भी, अपने भाई नकुल की रक्षा करते हुए, शत्रुसेना का संहार कर रहे थे। इसके उपरान्त महाबली नकुल को कौरव-सेना के असंख्य पैदलों, रथियों, घुड़सवारों और गजारोहियों का संहार करते देखकर वृषसेन ने तीक्ष्ण अठारह बाण उनको मारे ॥२६।२८॥ उन बाणों की गहरी चोट से पीड़ित नकुल क्रोध से अधीर हो उठे और वृषसेन को मार डालने के निमित्त उनकी ओर बड़े वेग से दौड़े । पर फैलाकर मांस-लोभ से अपने शिकार पर झपट रहे बाज के समान नकुल को एकाएक अपनी ओर आते देखकर वृषसेन ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से उनकी ढाल काट डाली । वीर नकुल वृषसेन के बाण-प्रहार की उपेक्षा करके विचित्र गति से आगे बढ़ने लगे । तब वृषसेन ने छः तीक्ष्ण बाण मारकर नकुल की वह तीक्ष्ण, सर्प-सदृश नङ्गी तलवार काट डाली । और उनकी छाती में कई बाण मारे॥२९।३४॥ रथ हीन नकुल खड्ग कट जाने से चिन्तित और पीड़ित होकर शीघ्र ही भीमसेन के रथ पर चढ़ गये और वहाँ से

कृत्वा तु तद्दुष्करमार्यजुष्टमन्यैर्नरैः कर्म रणे महात्मा ।
ययौ रथं भीमसेनस्य राजञ्शराभितप्तो नकुलस्त्वरावान् ॥ ३५ ॥
स भीमसेनस्य रथं हताश्वो माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः ।
अपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं सम्प्रेक्ष्यमाणस्य धनञ्जयस्य ॥ ३६ ॥
ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा ववर्ष ताविषुजालेन वीरः ।
महारथावेकरथे समेतौ शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ ॥ ३७ ॥
तस्मिन्रथे निहते पाण्डवस्य क्षिप्रं च खड्गे विशिखैर्निकृत्ते ।
अन्ये च संहृत्य कुरुप्रवीरास्ततो न्यघ्नञ्शरवर्षैरुपेत्य ॥ ३८ ॥
तौ पाण्डवेयौ परितः समेतान्संहूयमानाविव हव्यवाहौ ।
भीमार्जुनौ वृषसेनाय क्रुद्धौ ववर्षतुः शरवर्षं सुघोरम् ॥ ३९ ॥
अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनं च पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम् ।
अयं च नो बाधते कर्णपुत्रस्तस्माद्भवान्प्रत्युपयातु कार्ष्णिम् ॥ ४० ॥
स तन्निशम्यैव वचः किरीटी रथं समासाद्य वृकोदरस्य ।
अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीरमुपागतं शातय शीघ्रमेनम् ॥ ४१ ॥
इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये ।
कपिध्वजं केशवसंगृहीतं प्रैषीदुदग्रो वृषसेनाय वाहम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनयुद्धे नकुलपराजये चतुराशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

अत्यन्त घोर बाण बरसाने लगे । महापराक्रमी वृषसेन उन दोनों महारथी पाण्डवों को एक ही रथ पर देखकर, क्रुद्ध होकर, निरन्तर बाण बरसाने और उन्हें घायल करने लगे । कौरवदल के अन्य योद्धा भी एकत्र होकर भीमसेन और नकुल पर बाण वर्षा करने लगे । उस समय भीमसेन और अर्जुन भी क्रोध के मारे आहुति से प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित होकर वृषसेन को निरन्तर बाण वर्षा से पीड़ित करने लगे । अब भीमसेन ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! देखो, वृषसेन के बाणों से नकुल व्यथित और विह्वल हो रहे हैं । महावीर वृषसेन हम दोनों पर भी निरन्तर बाण छोड़ रहा है । इसलिए तुम शीघ्र ही इससे युद्ध करने के निमित्त आगे बढ़ो । हे नरनाथ ! महारथी अर्जुन यह सुनकर वृषसेन की ओर वेग से चले । तब नकुल ने भी अर्जुन से शीघ्र ही वृषसेन का वध करने के निमित्त कहा । वीर अर्जुन ने नकुल के वचन सुनकर वासुदेव से झटपट वृषसेन के सम्मुख रथ ले चलने को कहा॥३५।४२॥

कर्णपर्व का चौरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्याय ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच—नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं ।
विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम् ।
पवनधुतपताकाह्रादिनो वल्गिताश्वा वरपुरुषनियुक्तास्ते रथैः शीघ्रमायुः ॥ १ ॥

द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः।
द्विरदरथनराश्वान्सूदयन्तस्त्वदीयान्भुजगपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः॥ २ ॥
अथ तव रथमुख्यास्तान्प्रतीयुस्त्वरन्तः कृपहृदिकसुतौ च द्रौणिदुर्योधनौ च।
शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च द्विरदजलजघोषैः स्यन्दनैःकार्मुकैश्च ॥ ३ ॥
तव नृप रथिवीरास्तान्दशैकं च वीरान्नरवरशरवराग्रैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन् ।
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयुर्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैःकुलिन्दाः॥ ४ ॥
सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा रणाभिकामैः कृतिभिः समास्थिताः ।
सुवर्णजालैर्वितता बभुर्गजास्तथा यथा खे जलदाः सविद्युतः ॥ ५ ॥
कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः कृपं ससूताश्वमपीडयद्भृशम् ।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः सहैव नागेन पपात भूतले ॥ ६ ॥
कुलिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरैर्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः ।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दतस्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत ॥ ७ ॥
ततः कुलिन्देषु हतेषु तेष्वथ प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः ।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसम्भवान्परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः ॥ ८ ॥
अथाभवद्युद्धमतीव दारुणं पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः ।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधैर्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम् ॥ ९ ॥

पचासी अध्याय ॥ ८५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! तब द्रुपदराजके पाँचों पुत्र (धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, जनमेजय, युधामन्यु और उत्तमौजा),द्रौपदीके पाँचों पुत्र और वीर सात्यकि, नकुल को वृषसेन के बाणों से रथ-रहित,धनुष और खड्ग के कटने से शस्त्रहीन तथा अत्यन्त पीड़ित देख कर क्रोध करके शत्रुओं की चतुरङ्गिणी सेना का संहार करते हुए नकुल की सहायता करने के निमित्त चले। उनके रथ वेग से चले. वायु से पताकाएँ फहराने लगीं। उनके घोड़े मानो उड़ते हुए चले॥१।२॥इस प्रकार पाण्डवपक्ष के योद्धाओं को आते देखकर उनका सामना करने के निमित्त कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि सुत,वृक,क्राथ और देवावृध आदि कौरवपक्ष के महारथी भी स्फूर्ति से अपने रथों को बढ़ाते, प्रत्यञ्चा का शब्द करते और बाण बरसाते चले। ये सब वीर वज्र तुल्य बाणों से प्रहार करते हुए जब शत्रुओं की ओर चले तब पाण्डवपक्ष की कुलिन्द सेना मेघवर्ण पर्वत-शिखर तुल्य हाथियों को वेग से बढ़ाती हुई विपक्षियों को रोकने और घेरने की चेष्टा करने लगे॥३।४॥वे हाथी हिमाचल के वनों में उत्पन्न,मदमत्त,सुसज्जित और सुवर्ण-जाल से शोभित थे। उन पर रणनिपुण योद्धा बैठे हुए थे। वे हाथी बिजली से युक्त मेघों के समान शोभायमान हुए। कुलिन्दराज के पुत्र ने लोहे के दस तीक्ष्ण बाण मारकर सारथी और घोड़ों सहित कृपाचार्य को पीड़ित किया। कृपाचार्य ने तीक्ष्ण बाणों से उसे और उनके हाथी को मारकर गिरा दिया। तब कुलिन्द राजकुमार का छोटा भाई अपने बड़े भाई की मृत्यु से क्रुद्ध होकर आगे बढ़ा। उसने सूर्य-किरण सदृश चमकीले कई तोमर मारकर कृपाचार्य को पीड़ित किया और घोर सिंहनाद किया। यह देखकर वीरशकुनिने उसका सिर काट डाला॥५।७॥कुलिन्द-राजकुमारों के मारे जाने पर आपके महारथी लोग प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने

रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः परस्परं विप्रहताः पतन्क्षितौ ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः समाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः ॥ १० ॥
ततः शतानीकमतान्महागजांस्तथा रथान्पत्तिगणांश्च तान्बहून् ।
जघान भोजस्तु हयानथापतन्क्षणाद्विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः ॥ ११ ॥
अथापरे द्रौणिहता महाद्विपास्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः ।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवो निपातितास्तथा यथा वज्रहता महाचलाः ॥ १२ ॥
कुलिन्दराजावरजादनन्तरः स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत् ।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः शितैः शरीरं व्यहनद् द्विपं च तम् ॥ १३ ॥
स नागराजः सह राजसूनुना पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन् ।
महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा ॥ १४ ॥
कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः क्राथंससूताश्वरथं व्यपोथयत् ।
ततोऽपतत्क्राथशराभिघातितः सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः ॥ १५ ॥
रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः ।
सवाजिसूतेष्वसनध्वजस्तथा यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥ १६ ॥
वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत् ।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत् ॥ १७ ॥

लगे। अब फिर पाण्डवों और सृञ्जयों के साथ कौरवों का भीषण संग्राम होने लगा। एक दूसरे से आहत होकर रथी, घोड़े, हाथी और पैदल योद्धा पृथ्वी पर गिरने लगे॥८।१०॥इसके उपरान्त कृतवर्मा ने बाणों से शतानीक के साथ की असंख्य चतुरङ्गिणी सेना का संहार कर डाला। वीर अश्वत्थामा ने तीक्ष्ण बाणों से योद्धा, ध्वजा और शस्त्र सहित अन्य तीन हाथियों को मार डाला। वे कुलिन्द-सेना के हाथी वज्रपात से विदीर्ण पर्वतों के समान पृथ्वी पर गिर पड़े। कुलिन्द-राज के छोटे तीसरे पुत्र ने राजा दुर्योधन की छाती में कई तीक्ष्ण बाण मारे। दुर्योधन ने भी तीक्ष्ण बाणों से उसे और उसके हाथी को मार गिराया। वह गजराज अपने ऊपर बैठे हुए राजपुत्र के साथ गिर पड़ा। वर्षा ऋतु में इन्द्र के वज्रपात से फटे हुए गेरू के पर्वत से जैसे लाल जल बहता है वैसे ही उस हाथी के मुख और शरीर से रक्त बह चला॥११।१४॥कुलिन्दाधिपति का और एक पुत्र क्राथ की ओर हाथी को बढ़ाता हुआ चला। उस हाथी ने क्राथ के सारथी, रथ और घोड़ों को तहस-नहस कर दिया। क्राथ ने कुपित होकर तीक्ष्ण बाणों से उसे उसके हाथी को वैसे ही पृथ्वी पर गिरा दिया जैसे वज्रपात से कोई पर्वत फटकर गिर जाय। उसी समय हाथी पर बैठे हुए अन्य एक पहाड़ी कुलिन्द नन्दन ने तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से दुर्जय वीर योद्धा क्राथ को—सब रथ, सारथी, घोड़े, धनुष और ध्वजा के—छिन्न-भिन्न और प्राणहीन करके, आँधी से उखड़े बड़े वृक्ष के समान, पृथ्वी पर गिरा दिया॥१५।१६॥ तब वीर वृक ने उस हाथी पर सवार पहाड़ी कुलिन्द-नन्दन को बारह तीक्ष्ण बाण मारे। इस पर उस कुलिन्द के हाथी ने झपटकर पाँवों से वृक को रथ और घोड़ों समेत रौंद डाला। बभ्रु के बेटे के बाणों से विदीर्ण होकर हाथी अपने महावत समेत पृथ्वी पर गिर पड़ा। सहदेव के पुत्र से पीड़ित देवावृध का बेटा भी गिर गया। कुलिन्दराज का अन्य एक

स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत्तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम् ।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥ १८ ॥
विषाणगात्रावरयोधपातिना गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः ।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥ १९ ॥
ततः शतानीकहता महागजा हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः ।
सुपर्णवातप्रहता यथोरगास्तथा गता गां विवशा विचूर्णिताः ॥ २० ॥
ततोऽभ्यविद्ध्यद्बहुभिः शितैः शरैः कलिङ्गपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन् ।
ततोऽस्य कोपाद्विचकर्त नाकुलिः शिरः क्षुरेणाम्बुजसन्निभाननम् ॥ २१ ॥
ततः शतानीकमविध्यदायसैस्त्रिभिः शरैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः ।
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभिर्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः ॥ २२ ॥
तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः समीक्ष्य हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन् ।
पराक्रमज्ञास्तु धनञ्जयस्य ये हुतोऽयमग्नाविति ते तु मेनिरे ॥ २३ ॥
ततः किरीटी परवीरघाती हताश्वमालोक्य नरप्रवीरः ।
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये समीक्ष्य कृष्णं भृशविक्षतं च ॥ २४ ॥
समभ्यधावद्वृषसेनमाहवे स सूतजस्य प्रमुखे स्थितस्तदा ।
तमापतन्तं नरवीरमुग्रं महाहवे बाणसहस्रधारिणम् ॥ २५ ॥
अभ्यापतत्कर्णसुतो महारथं यथा महेन्द्रं नमुचिः पुरा तथा ।
ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं शितेन विद्ध्वा युधि कर्णपुत्रः ॥ २६ ॥

शूर पुत्र एकाएक अपने खूनी हाथी को बढ़ाकर शकुनि के ऊपर झपटा और तीक्ष्ण बाण मारने लगा। शकुनि ने जब देखा कि वह हाथी आक्रमण कर रहा है तब उसका सिर काट गिराया॥१७।१९॥ कौरव पक्ष के असंख्य हाथी, घोड़, रथ और पैदल नकुल नन्दन शतानीक के बाणों से विनष्ट हो-होकर, गरुड़ के पङ्खों की प्रचण्ड आँधी से विमर्दित सर्पों के समान,पृथ्वी पर गिरने लगे । इसी समय कलिङ्ग राज के पुत्र ने हँसकर शतानीक को कई तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित किया । शतानीक ने क्रुद्ध होकर क्षुरप्र बाण से उसका कमल कुसुम तुल्य मुख से शोभित सिर काट डाला । तब कर्ण के पुत्र वृषसेन ने लोहे के तीन उग्र बाण शतानीक को, इतने ही अर्जुन और भीमसेन को तथा बारह बाण श्रीकृष्ण को मार-कर सात बाण नकुल को मारे॥२०।२२॥वृषसेन का यह अलौकिक कार्य और अद्भुत स्फूर्ति देखकर कौरवगण बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे। किन्तु जो लोग अर्जुन के पराक्रम को विशेष रूप से जानते थे उन्होंने समझ लिया कि अग्नि में पड़े हुए व्यक्ति के समान वृषसेन अब जीवित नहीं बच सकता । महावीर अर्जुन अपने भाई नकुल को घोड़ों और रथ से हीन तथा श्रीकृष्ण को अत्यन्त घायल देखकर, वृषसेन पर कुपित होकर, बड़े वेग से शत्रु के रथ की ओर चले । कर्णके समीपस्थित वृषसेन ने जब सहस्रों बाण छोड़ रहे अर्जुन को उग्र रूप रखकर अपनी ओर आते देखा तब वे भी, पूर्वकाल में इन्द्र पर आक्रमण करनेवाले नमुचि दानव के समान, वेगपूर्वक उनके सम्मुख उपस्थित हुए॥२३।२६॥वृष-

ननाद नादं सुमहानुभावो विध्वेव शक्रं नमुचिः स वीरः ।
पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रैर्बाणैरविध्यद्भुजमूले तु सव्ये ॥ २७ ॥
तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्पुनश्च पार्थं दशभिर्जघान ।
पूर्वं यथा वृषसेनप्रयुक्तैरभ्याहतः श्वेतहयः शरैस्तैः ॥ २८ ॥
संरम्भमीषद्गमितो वधाय कर्णात्मजस्याथ मनः प्रदध्रे ।
ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात्कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे ॥ २९ ॥
मुमोच तूर्णं विशिखान्महात्मा वधे धृतः कर्णसुतस्य सङ्ख्ये ।
आरक्तनेत्रोऽन्तकशत्रुहन्ता उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा ॥ ३० ॥
दुर्योधनं द्रौणिमुखांश्च सर्वानहं रणे वृषसेनं तमुग्रम् ।
सम्पश्यतः कर्ण तवाद्य सङ्ख्ये नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः ॥ ३१ ॥
ऊनं च तावद्धि जना वदन्ति सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ ।
एको रथो मद्विहीनस्तरस्वी अहं हनिष्ये भवतां समक्षम् ॥ ३२ ॥
संरक्ष्यतां रथसंस्थाः सुतोऽयमहं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम् ।
पश्चाद्वधिष्ये त्वामपि सम्प्रमूढमहं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये ॥ ३३ ॥
तमद्य मूलं कलहस्य सङ्ख्ये दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ।
त्वामद्य हन्तास्मि रणे प्रसह्य अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः ॥ ३४ ॥
दुर्योधनस्याधमपूरुषस्य यस्यानयादेष महान्क्षयोऽभवत् ।
स एवमुक्त्वा विनिमृज्य चापं लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ ॥ ३५ ॥

सेन ने एक तीक्ष्ण बाण अर्जुन को मारकर घोर सिंह-नाद किया । फिर इन्द्र को घायल करनेवाले नमुचि के समान वृषसेन ने अर्जुन की बाईं भुजा को, जड़ में, कई उग्र बाणों से घायल करके नव बाणों से श्रीकृष्ण को और दस बाणों से अर्जुन को पीड़ित किया ॥२६।२८॥ वृषसेन के बाणों की चोट खाकर अर्जुन कुछ कुपित हो उठे । उनकी भ्रुकुटि त्रिकोणाकार होकर मस्तक में चढ़ गई; नेत्र लाल हो गये । वे वृषसेन को मारने का अभिप्राय करके अनेक बाण छोड़ने लगे । शत्रुनाशन अर्जुन ने कर्ण, अश्वत्थामा और राजा दुर्योधन को सुनाकर गर्व के साथ कहा—हे कर्ण ! मैं इस समय तुम्हारे सम्मुख ही उग्र कर्म कर रहे वृषसेन को तीक्ष्ण बाणों से मारकर यमपुर भेजता हूँ । सब लोग कहते हैं कि मेरा पुत्र अभिमन्यु जब अकेला, असहाय, रथहीन और शस्त्र-रहित था तब तुम सबने मिलकर उसे मारा था । किन्तु वृषसेन सशस्त्र और रथ पर स्थित है, तुम सब लोग भी उसकी सहायता करने के निमित्त निकट ही उपस्थित हो । लो, मैं तुम लोगों के सम्मुख ही वृषसेन को मारता हूँ; जिसमें शक्ति हो वह इसकी रक्षा करे ॥२९।३२॥ हे मूढ कर्ण ! मैं अर्जुन संग्राम में पहले वृषसेन को मारकर पीछे से इस कलह की जड़ और दुर्योधन का आश्रय पाकर गर्वित जो तू है, उसे भी मारूँगा और, इस जन-संहार के कारण-स्वरूप नराधम दुर्योधन को मेरे भाई भीमसेन मारेंगे ॥३३।३४॥ हे राजेन्द्र ! महारथी अर्जुन यों कहकर वृषसेन को ताककर उसके वध के निमित्त तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे । निःशङ्क अर्जुन ने हँसकर वृषसेन के मर्मस्थलों में दस बाण

ससर्ज बाणान्विशिखान्महात्मा वधाय राजन्कर्णसुतस्य सङ्ख्ये ।
विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कैर्मर्मस्वशङ्कं प्रहसन्किरीटी ॥ ३६ ॥
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च क्षुरैश्चतुर्भिर्निशितैः शिरश्च ।
स पार्थबाणाभिहतः पपात रथाद्विबाहुर्विशिरा धरायाम् ॥ ३७ ॥
सुपुष्पितो वृक्षवरोऽतिकायो वातेरितः शाल इवाद्रिशृङ्गात् ।
सम्प्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं रथात्सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ॥ ३८ ॥
रथं रथेनाशु जगाम रोषात्किरीटिनः पुत्रवधाभितप्तः ।
ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य कर्णो हतं श्वेतहयेन सङ्ख्ये ।
संरम्भमागम्य परं महात्मा कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनवधे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

मारे। फिर चार तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणों से क्रमशः वृषसेन के धनुष, दोनों हाथों और सिर को काट डाला। अर्जुन के बाणों से विदीर्ण वृषसेन, सिर और बाहुओं से रहित होकर, मरकर वैसे ही रथ से पृथ्वी पर गिर पड़े जैसे कोई फूला हुआ बड़ा शाल-वृक्ष वज्रपात से टूटकर पर्वतशिखर से गिर पड़े। अर्जुन के बाणों से मरे अपने महारथी वीर पुत्र को गिरते देखकर महावीर कर्ण शोक से पीड़ित और क्रोध से विह्वल हो उठे। वे बड़े वेग से अर्जुन के सम्मुख आ गये॥३५।३९॥

कर्णपर्व का पचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८५ ॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच— तमायान्तमभिप्रेक्ष्य वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं दुर्निवारं सुरैरपि ॥ १ ॥
अर्जुनं प्राह दाशार्हः प्रहस्य पुरुषर्षभः ।
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः शल्यसारथिः ॥ २ ॥
येन ते सह योद्धव्यं स्थिरो भव धनञ्जय ।
पश्य चैनं समायुक्तं रथं कर्णस्य पाण्डव ॥ ३ ॥
श्वेतवाजिसमायुक्तं युक्तं राधासुतेन च ।
नानापताकाकलिलं किङ्किणीजालमालिनम् ॥ ४ ॥
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ।
ध्वजं च पश्य कर्णस्य नागकक्षं महात्मनः ॥ ५ ॥

छियासी अध्याय ॥ ८६ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे महाराज! देवताओं के निमित्त भी दुर्द्धर्ष और अनिवार्य महाकाय कर्ण को, उमड़े हुए महासागर के समान, गरजते और आते देखकर पुरुषोत्तम वासुदेव ने हँसकर कहा—हे अर्जुन! जिसके साथ तुमको युद्ध करना है वह कर्ण, शल्य-सञ्चालित, रथ पर बैठा आ रहा है; सावधान हो जाओ। यह देखो, महारथी कर्ण किङ्किणी-जाल-मण्डित, विविध पताकाओं से अलङ्कृत, श्वेत घोड़ों

आखण्डलधनुःप्रख्यमुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
पश्य कर्णं समायान्तं धार्तराष्ट्रप्रियैषिणम् ॥ ६ ॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ।
एष मद्रेश्वरो राजा रथाग्रे पर्यवस्थितः ॥ ७ ॥
नियच्छति हयानस्य राधेयस्यामितौजसः ।
शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दं च दारुणम् ॥ ८ ॥
सिंहनादांश्च विविधाञ्शृणु पाण्डव सर्वतः ।
अन्तर्धाय महाशब्दान्कर्णेनामिततेजसा ॥ ९ ॥
दोधूयमानस्य भृशं धनुषः शृणु निःस्वनम् ।
एते दीर्यन्ति सगणाः पञ्चालानां महारथाः ॥ १० ॥
दृष्ट्वा केसरिणं क्रुद्धं मृगा इव महावने ।
सर्वयत्नेन कौन्तेय हन्तुमर्हसि सूतजम् ॥ ११ ॥
नहि कर्णशरानन्यः सोढुमुत्सहते नरः ।
सदेवासुरगन्धर्वांस्त्रींल्लोकान्सचराचरान् ॥ १२ ॥
त्वं हि जेतुं रणे शक्तस्तथैव विदितं मम ।
भीममुग्रं महात्मानं त्र्यक्षं शर्वं कपर्दिनम् ॥ १३ ॥
न शक्ता द्रष्टुमीशानं किं पुनर्योधितुं प्रभुम् ।
त्वया साक्षान्महादेवः सर्वभूतशिवः शिवः ॥ १४ ॥
युद्धेनाराधितः स्थाणुर्देवाश्च वरदास्तव ।
तस्य पार्थ प्रसादेन देवदेवस्य शूलिनः ॥ १५ ॥

से युक्त रथ आकाशचारी विमान के समान चला आ रहा है॥१-५॥ देखो, कर्ण की ध्वजा इन्द्र-धनुष के समान आकाश से बातें कर रही है। वह ध्वजा हस्तिकक्ष्या-चिह्नित है। नित्य दुर्योधन का प्रिय करनेवाला वीर कर्ण, जलधारा छोड़ रहे महामेघ के समान, बाण वर्षा करता आ रहा है। मद्रराज शल्य आगे बैठे हुए महातेजस्वी कर्ण के घोड़ों को हाँक रहे हैं। हे पाण्डव! कौरव-सेना में चारों ओर शङ्ख-दुन्दुभि आदि बाजे बज रहे हैं और योद्धा तरह तरह के सिंहनाद कर रहे हैं। महारथी कर्ण के धनुष का शब्द उन सब शब्दों को दबाकर चारों ओर विस्तृत हो रहा है॥६-१०॥ वन में कुपित सिंह को झपटते देखकर जैसे मृग भागते हैं, वैसे ही कर्ण को आते देखकर पाञ्चाल-सेना के महारथी और उनके अनुगामी योद्धा भाग रहे हैं। हे अर्जुन! इस समय तुम सब प्रकार से कर्ण को मारने का यत्न करो। कर्ण के तीक्ष्ण बाणों को और कोई नहीं सह सकता। मैं अच्छी भाँति जानता हूँ कि अकेला कर्ण क्या वस्तु है, तुम देव-दानव गन्धर्वगण सहित त्रिभुवन को, चराचर जगत् को, अकेले ही संग्राम में जीत सकते हो॥११-१३॥ देखो, भीम उग्र त्रिलोचन शर्व कपर्दी आदि नामों से प्रसिद्ध और सब जगत् का संहार करनेवाले रुद्र से युद्ध करना तो दूर रहा, कोई मनुष्य उनको ओर देख भी नहीं सकता।

जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा ।
श्रेयस्तेऽस्तु सदा पार्थ युद्धे जयमवाप्नुहि ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच— ध्रुव एव जयः कृष्ण मम नास्त्यत्र संशयः ।
सर्वलोकगुरुर्यस्त्वं तुष्टोऽसि मधुसूदन ॥ १७ ॥
चोदयाश्वान्हृषीकेश रथं मम महारथ ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्यति फाल्गुनः ॥ १८ ॥
अद्य कर्णं हतं पश्य मच्छरैः शकलीकृतम् ।
मां वा द्रक्ष्यसि गोविन्द कर्णेन निहतं शरैः ॥ १९ ॥
उपस्थितमिदं घोरं युद्धं त्रैलोक्यमोहनम् ।
यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥ २० ॥
एवं ब्रुवंस्तदा पार्थः कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
प्रत्युद्ययौ रथेनाशु गजं प्रति गजो यथा ॥ २१ ॥
पुनरप्याह तेजस्वी पार्थः कृष्णमरिन्दम ।
चोदयाश्वान्हृषीकेश कालोऽयमतिवर्तते ।
एवमुक्तस्तदा तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥
जयेन संपूज्य स पाण्डवं तदा प्रचोदयामास हयान्मनोजवान् ।
सपाण्डुपुत्रस्य रथो मनोजवः क्षणेन कर्णस्य रथाग्रतोऽभवत् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे वासुदेववाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ८६ ॥

तुमने उन्हीं महादेव को, उनसे युद्ध करके, सन्तुष्ट किया है। अन्य देवताओं ने भी प्रसन्न होकर तुम को वर और अस्त्र दिये हैं। हे पार्थ ! इन्द्र ने जैसे नमुचि दानव को मारा था वैसे उन देवदेव शूलपाणि के अनुग्रह से तुम भी कर्ण को मारो, विजय प्राप्त करो। तुम्हारा कल्याण हो॥१३।१६॥अर्जुन ने प्रसन्न होकर कहा—हे मित्र मधुसूदन ! तुम सब लोकों के गुरु मुझ पर प्रसन्न हो, इस कारण मुझे अवश्य ही विजय प्राप्त होगी। हे श्रीकृष्ण ! शीघ्र ही मेरे घोड़ों को कर्ण के रथ की ओर ले चलो। आज कर्ण को मारे बिना अर्जुन नहीं लौटेगा। हे गोविन्द ! आज तुम या तो कर्ण को मेरे बाणों से छिन्न-भिन्न और प्राणहीन देखोगे और या मुझे ही कर्ण के बाणों से मरकर रण शय्या पर शयन करते पाओगे। यह त्रैलोक्य को मोहित करनेवाला घोर युद्ध होगा। जब तक पृथ्वी रहेगी तब तक लोग इस युद्ध की चर्चा करेंगे॥१७।२०॥हे महाराज ! इस प्रकार कहते हुए वीर अर्जुन उसी प्रकार रथ हँकवाकर कर्ण की ओर चले जिस प्रकार मस्त हाथी दूसरे हाथी से युद्ध करने को जाता है। तेजस्वी शत्रुदमन अर्जुन फिर श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे मित्र ! शीघ्र घोड़ों को हाँकिए, समय व्यतीत हुआ जा रहा है, दिन थोड़ा ही रह गया है। अर्जुन के ये वचन सुनकर, उन्हें जय का निश्चय दिलाकर महात्मा कृष्ण ने मन और वायु के समान वेग से चलनेवाले घोड़ों को शीघ्रता से हाँक दिया। अर्जुन का रथ वायुवेग से चलकर क्षण भर में कर्ण के रथ के सम्मुख पहुँच गया॥२१।२३॥

कर्ण पर्व का छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच—वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः ।
पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत् ॥ १ ॥
रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुम् ।
युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनञ्जयम् ॥ २ ॥
तौ रथौ सूर्यसङ्काशौ वैयाघ्रपरिवारितौ ।
समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥ ३ ॥
श्वेताश्वौ पुरुषौ दिव्यावास्थितावरिमर्दनौ ।
शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि ॥ ४ ॥
तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वसैन्यानि मारिष ।
त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ५ ॥
रथज्यातलनिर्ह्रादैर्बाणसिंहरवैस्तथा ।
तौ रथावभ्यधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम् ॥ ६ ॥
ध्वजौ च दृष्ट्वा संसक्तौ विस्मयः समपद्यत ।
हस्तिकक्षं च कर्णस्य वानरं च किरीटिनः ॥ ७ ॥
तौ रथौ सम्प्रसक्तौ तु दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः सहस्रशः ।
चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैलावधूननम् ॥ ९ ॥

सतासी अध्याय ॥ ८७ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! वृषसेन की मृत्यु देखकर महाबली कर्ण क्रोध से विह्वल हो उठे। पुत्र-शोक के कारण उनकी आँखों में आँसू भर आये। क्रोध से नेत्र लाल करके तेजस्वी कर्ण युद्ध के निमित्त निकटवर्ती अर्जुन को ललकारते हुए उनके सम्मुख उपस्थित हुए। व्याघ्रचर्म-मण्डित, सूर्य के समान वे दोनों रथ—आमने-सामने होकर—उदय हुए दो सूर्यों के समान शोभा को प्राप्त हुए॥१।३॥ श्वेत घोड़ों से युक्त रथों पर विराजमान दोनों वीर आकाश में स्थित चन्द्र सूर्य के सदृश जान पड़ने लगे। त्रैलोक्य-विजय के निमित्त उद्यत इन्द्र और राजा बलि के समान उन दोनों वीरों को देखकर सभी सैनिकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। रथ, प्रत्यञ्चा, बाण, शङ्ख आदि के शब्द के साथ सिंहनाद करते हुए दोनों वीर और उनके अनुगामी क्षत्रियगण बड़े वेग से एक दूसरे की ओर चले। हस्तिकक्ष्या-शोभित कर्ण की और वानर-युक्त अर्जुन की ध्वजा देखकर सभी वीरों को बड़ा आश्चर्य हुआ॥४।७॥ उन दोनों श्रेष्ठ योद्धाओं को युद्ध के निमित्त उद्यत देखकर क्षत्रिय-गण सिंहनाद और साधुवाद से उनका अभिनन्दन करने लगे। कर्ण और अर्जुन के द्वन्द्वयुद्ध का उद्योग देखकर सहस्रों वीर पुरुष ताल ठोकने और धनुष-बाण का शब्द करने लगे। कौरवगण कर्ण के आस-पास एकत्र होकर सहस्रों बाजे और शङ्ख बजाने लगे

आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः ।
कर्णं प्रहर्षयिष्यन्तः शङ्खान्दध्मुश्च सर्वशः ॥ १० ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनञ्जयम् ।
तूर्यशङ्खनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ ११ ॥
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ।
बाहुशब्दैश्च शूराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥ १२ ॥
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ ।
प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिध्वजायुतौ ॥ १३ ॥
वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शङ्खशोभितौ ।
तूणीरवरसम्पन्नौ द्वावप्येतौ सुदर्शनौ ॥ १४ ॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ समदौ गोवृषाविव ।
चापविद्युद्ध्वजोपेतौ शस्त्रसम्पत्तियोधिनौ ॥ १५ ॥
चामरव्यजनोपेतौ श्वेतच्छत्रोपशोभितौ ।
कृष्णशल्यरथोपेतौ तुल्यरूपौ महारथौ ॥ १६ ॥
सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ रक्ताक्षौ हेममालिनौ ।
सिंहस्कन्धप्रतीकाशौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ ।
अन्योन्यवधमिच्छन्तावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ॥ १७ ॥
अन्योन्यमभिधावन्तौ गोष्ठे गोवृषभाविव ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ सुसंरब्धाविवाचलौ ॥ १८ ॥
आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ ।
इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्यचन्द्रसमप्रभौ ॥ १९ ॥

उसी प्रकार पाण्डवगण भी अर्जुनको उत्साहित करते हुए तुरही शङ्ख नगाड़े आदि के शब्द से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करने लगे॥८।११॥कर्ण और अर्जुन का समागम होने के समय चारों ओर वीरगण उछलने, वस्त्र उछालने चिल्लाने, गरजने और ताल-खम ठोकने लगे। उस समय कर्ण और अर्जुन दोनों महारथी रथों पर बैठे और दिव्य धनुष हाथ में लिये थे। दोनों ही बाण-शक्ति ध्वजा आदि से युक्त, कवच पहने, खड्ग तरकस बाँधे, शङ्ख लिये और दर्शनीय थे। दोनों के सारथी श्रीकृष्ण और शल्य थे। दोनों के शरीर में लाल चन्दन लगा हुआ था। दोनों छत्र और चामरों से शोभित थे॥१२।१६॥ दोनों के कन्धे सिंह के से ऊँचे, भुजाएँ विशाल, नेत्र लाल और छाती चौड़ी थी। दोनों का रूप एक सा था। दोनों सुवर्णमाला से शोभित, महाबली, एक दूसरे को मारने के निमित्त उद्यत और विजय की आकांक्षा रखनेवाले थे। दोनों मैदान में भिड़ रहे दो साँड़ों के समान, दो मस्त हाथियों के समान, विषैले सर्पशिशुओं के समान, मृत्यु और काल के समान, इन्द्र और वृत्रासुर के समान,॥१७।१९॥प्रलय

महाग्रहाविव क्रुद्धौ युगान्ताय समुत्थितौ ।
देवगर्भौ देवबलौ देवतुल्यौ च रूपतः ॥ २० ॥
यदृच्छया समायातौ सूर्याचन्द्रमसौ यथा ।
बलिनौ समरे दृप्तौ नानाशस्त्रधरौ युधि ॥ २१ ॥
तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ शार्दूलाविव धिष्ठितौ ।
बभूव परमो हर्षस्तावकानां विशाम्पते ॥ २२ ॥
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ।
समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनञ्जयौ ॥ २३ ॥
उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ ।
उभौ च बाहुशब्देन नादयन्तौ नभस्तलम् ॥ २४ ॥
उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च ।
उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २५ ॥
कार्तवीर्यसमौ चोभौ तथा दाशरथेः समौ ।
विष्णुवीर्यसमौ चोभौ तथा भवसमौ युधि ॥ २६ ॥
उभौ श्वेतहयौ राजन्रथप्रवरवाहिनौ ।
सारथीप्रवरौ चैव तयोरास्तां महारणे ॥ २७ ॥
ततो दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः समपद्यत ॥ २८ ॥
तव पुत्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ ।
परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनम् ॥ २९ ॥

करने के निमित्त उद्यत दो क्रुद्ध क्रूर ग्रहों के समान जान पड़ते थे । दोनों सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी, देवताओं के अंश से उत्पन्न, बल में देवताओं के तुल्य और देव-बालक से सुन्दर थे । दोनों वीर, अनेक शस्त्र धारण किये, सिंह के समान दर्प पूर्ण दृष्टि से परस्पर देख रहे थे । दोनों को देखकर पाण्डवों और कौरवों को अपार प्रसन्नता हो रही थी॥२०।२२॥वीर कर्ण और अर्जुन युद्ध में परिश्रम और अभ्यास किये हुए तथा विविध अस्त्रों के ज्ञाता थे । दोनों का पौरुष और बल जगत्प्रसिद्ध था । दोनों ही पराक्रम में शम्बर, इन्द्र,॥२३।२५॥कार्तवीर्य, श्रीरामचन्द्र, विष्णु और शङ्कर के समान थे । दोनों महारथियों के सारथी भी अद्वितीय निपुण शल्य और श्रीकृष्ण थे । दोनों के घोड़े भी श्वेत थे । दोनों ही तल शब्द, बाहु-शब्द, धनुष के शब्द और सिंहनाद से आकाश को प्रतिध्वनित कर रहे थे । उन्हें देखकर कोई यह निश्चय नहीं कर सका कि कौन जीतेगा । उन दोनों महारथियों को समरभूमि में देखकर सिद्ध-चारण लोग अत्यन्त विस्मित हुए॥२६।२८॥हे महाराज ! उस समय आपके महावीर सब पुत्र, सारी सेना और योद्धाओं के साथ, समर की शोभा बढ़ानेवाले कर्ण के आसपास आ खड़े हुए । उधर वैसे ही धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, चेकितान, प्रसन्नचित्त प्रभद्रकगण और बचे हुए अन्य नर युद्ध

तथैव पाण्डवा हृष्टा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ ३० ॥
तावकानां रणे कर्णो ग्लहो ह्यासीद्विशाम्पते ।
तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवत्तदा ॥ ३१ ॥
त एव सभ्यास्तत्रासन्प्रेक्षकाश्चाभवन्स्म ते ।
तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ ३२ ॥
ताभ्यां द्यूतं समासक्तं विजयायेतराय च ।
अस्माकं पाण्डवानां च स्थितानां रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥
तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ ।
अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ ३४ ॥
तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रवृत्राविव प्रभो ।
भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥ ३५ ॥
ततोऽन्तरिक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ ।
मिथोभेदाश्च भूतानामासन्कर्णार्जुनान्तरे ॥ ३६ ॥
व्यश्रूयन्त मिथो भिन्नाः सर्वलोकास्तु मारिष ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३७ ॥
प्रतिपक्षग्रहं चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे ।
द्यौरासीत्सूतपुत्रस्य पक्षे मातेव धिष्ठिता ॥ ३८ ॥
भूमिर्धनञ्जयस्यासीन्मातेव जयकांक्षिणी ।
गिरयः सागराश्चैव नद्यश्च सजलास्तथा ॥ ३९ ॥
वृक्षाश्चौषधयश्चैव व्याश्रयन्त परस्परम् ।
असुरा यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परन्तप ॥ ४० ॥

प्रिय योद्धा अर्जुन को घेरकर खड़े हुए । पाण्डवों की चतुरङ्गिणी सेना और योद्धा लोग अर्जुन की रक्षा करते हुए कर्ण के वध और अर्जुन के विजय लाभ की चेष्टा करने लगे । दुर्योधन आदि कौरव भी कर्ण की रक्षा और अर्जुन-वध का प्रयत्न करने लगे । विजय-लाभ के दाव में पाण्डवों ने अर्जुन का और कौरवों ने कर्ण का जीवन लगा दिया । दोनों ओर के लोग और अन्य प्राणी उन दोनों की अनिश्चित जय-पराजय का परिणाम देखने के निमित्त उत्सुकता से उपस्थित थे॥२९।३२॥हे राजेन्द्र! वे संग्राम में सुशोभित, क्रोध-पूर्ण, दोनों महावीर परस्पर प्रहार और संहार के निमित्त उद्यत होकर इन्द्र और वृत्रासुर के समान शोभायमान हुए । उस समय उनका रूप महाधूमकेतु ग्रहों के समान भयानक हो उठा । हे महाराज ! उस समय आकाश में उपस्थित प्राणियों में भी मत भेद हो गया । कुछ कर्ण का पक्ष लेकर और कुछ अर्जुन का पक्ष लेकर विवाद करने लगे । देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस, आदि सब प्राणियों के परस्पर-विरोधी दो दल हो गये । एक दल कर्ण की और दूसरा दल अर्जुन की विजय

ते कर्णं समपद्यन्त हृष्टरूपाः समन्ततः ।
मुनयश्चारणाः सिद्धा वैनतेया वयांसि च ॥ ४१ ॥
रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः ।
सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ ४२ ॥
वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षको मणिकस्तथा ।
सर्पाश्चैव तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः ॥ ४३ ॥
विषवन्तो महाराज नागाश्चार्जुनतोऽभवन् ।
ऐरावताः सौरभेया वैशालेयाश्च भोगिनः ॥ ४४ ॥
एतेऽभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पाश्च कर्णतः ।
ईहामृगा व्यालमृगा माङ्गल्याश्च मृगद्विजाः ॥ ४५ ॥
पार्थस्य विजये राजन्सर्वं एवाभिसंस्थिताः ।
वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वेऽश्विनौ तथा ॥ ४६ ॥
अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोऽथ दिशो दश ।
धनञ्जयस्य ते पक्षे आदित्याः कर्णतोऽभवन् ॥ ४७ ॥
विशः शूद्राश्च सूताश्च ये च सङ्करजातयः ।
सर्वशस्ते महाराज राधेयमभजंस्तदा ॥ ४८ ॥
देवास्तु पितृभिः सार्धं सगणाः सपदानुगाः ।
यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोऽर्जुनः ॥ ४९ ॥
ब्रह्म क्षत्रं च यज्ञाश्च दक्षिणाश्चार्जुनं श्रिताः ।
प्रेताश्चैव पिशाचाश्च क्रव्यादाश्च मृगाण्डजाः ॥ ५० ॥

प्राप्त होने की बात कह रहा था। नक्षत्रों सहित आकाश ने कर्ण का पक्ष लिया और पुत्र की विजय चाहनेवाली माता के समान पृथ्वी ने अर्जुन का पक्ष लिया। इसी प्रकार सागरों, पर्वतों, नदियों और जल में उत्पन्न होनेवाले जीव अर्जुन के पक्षपाती थे॥३६।४०॥ असुर, यातुधान, यक्ष और आकाशचारी पक्षियों ने कर्ण का पक्ष ग्रहण किया। मुनि, सिद्ध, चारण, गरुड़, अन्य सब पक्षी, रत्न, निधि, चारों वेद, इतिहास, उपवेद, उपनिषद्, रहस्य, संग्रह, वासुकि, चित्रसेन, तक्षक, मणिक और विषधर कद्रू के पुत्र महानाग, ऐरावत, सौरभेय और वैशालेय शुभ सर्प अर्जुन के पक्ष में हुए। पापप्रवृत्ति क्रूर सर्प कर्ण के पक्ष में हुए॥४०।४५॥ ईहामृग, व्यालमृग, शुभ पक्षी और शुभ पशु, सिंह, व्याघ्र आदि अर्जुन की विजय की इच्छा करने लगे। आठों वसु, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्रगण, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, सोम, पवन, दसों दिशा, अपने गणों समेत देवगण, पितृगण, ऋषिगण, तुम्बुरु आदि गन्धर्व, यमराज, कुबेर, वरुण, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, प्राधेय, मौनेय, अप्सराओं के झुण्ड के झुण्ड, गुह्यक,॥४५।४९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, यज्ञ, दक्षिणा आदि सब अर्जुन के पक्ष में हुए। उधर कुत्ते, गीदड़, गिद्ध आदि पक्षी, सब आदित्य, राक्षस, क्रूर पशु, वैश्य, शूद्र, सूत, वर्णसङ्कर जातियाँ, प्रेत, पिशाच, भूतगण, मांसाहारी पापप्रकृति जीव, क्षुद्र नाग आदि कर्ण के पक्ष में हुए। सुन्दर गन्ध और शुभ शकुन अर्जुन की ओर दिखाई पड़ने लगे। आका-

राक्षसाः सह यादोभिः श्वसृगालाश्च कर्णतः ।
देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोऽभवन् ॥ ५१ ॥
तुम्बुरुप्रमुखा राजन्गन्धर्वाश्च यतोऽर्जुनः ।
राधेयाः सहमौनेया गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ५२ ॥
ईहामृगाः पक्षिगणा द्विपाश्वरथपत्तिभिः ।
उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः ॥ ५३ ॥
दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम् ।
देवदानवगन्धर्वा नागयक्षाः पतत्रिणः ॥ ५४ ॥
महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः ।
तपो विद्यास्तथौषध्यो नानारूपबलान्विताः ॥ ५५ ॥
अन्तरिक्षे महाराज विनदन्तोऽवतस्थिरे ।
ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं प्रजापतिभिरेव च ॥ ५६ ॥
भवश्चैव स्थितो याने दिव्यं तं देशमागमत् ।
समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ ॥ ५७ ॥
अर्जुनो जयतां कर्णमिति शक्रोऽब्रवीत्तदा ।
जयतामर्जुनं कर्ण इति सूर्योऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥
हत्वार्जुनं मम सुतः कर्णो जयतु संयुगे ।
हत्वा कर्णं जयत्वद्य मम पुत्रो धनञ्जयः ॥ ५९ ॥
इति सूर्यस्य चैवासीद्विवादो वासवस्य च ।
पक्षसंस्थितयोस्तत्र तयोर्विबुधसिंहयोः ।
द्वैपक्ष्यमासीद्देवानामसुराणां च भारत ॥ ६० ॥

शचारी देव-गन्धर्व-राक्षस-अप्सरा आदि—ईहामृग, व्याल-मृग, हाथी, घोड़े, रथ, मेघ और वायु आदि वाहनों पर बैठकर—कर्ण और अर्जुन का युद्ध देखने के निमित्त आ गये। देव सिद्ध चारण आदि के सहस्रों सुसज्जित दिव्य विमानों से आकाश परिपूर्ण हो गया। हे महाराज! कर्ण अथवा अर्जुन की विजय चाहनेवाले देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, राक्षस, महर्षि, देवगण, स्वधा भोजी पितृगण, तपस्वी वेदपाठी महर्षि, ओषधियाँ, सिद्ध, अप्सरा आदि के झुण्ड भिन्न भिन्न पक्ष लेकर परस्पर झगड़ने लगे॥५०।५६॥ ब्रह्मर्षियों और प्रजापतियों सहित दिव्य तेज से युक्त ब्रह्मा और रुद्रदेव भी, दिव्य विमानों पर बैठकर, वह अद्भुत घोर युद्ध देखने के निमित्त आकाश में आ गये। तब इन्द्रदेव महाबली कर्ण और अर्जुन को युद्ध करने के निमित्त आमने-सामने देखकर कहने लगे—आज मेरे पुत्र अर्जुन कर्ण का वध करेंगे। सूर्यदेव ने कहा—नहीं, मेरे वीर पुत्र कर्ण युद्ध में अर्जुन को मारकर विजयलाभ से कृतकृत्य होंगे। इस प्रकार इन्द्र और सूर्य भी परस्पर विवाद करके अपने-अपने पुत्र के पक्ष में हो गये। हे महाराज! सत्य तो यह है कि कर्ण और अर्जुन के अपरिमित

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनञ्जयौ ।
अकम्पन्त त्रयो लोकाः सहदेवर्षिचारणाः ॥ ६१ ॥
सर्वे देवगणाश्चैव सर्वभूतानि यानि च ।
यतः पार्थस्ततो देवा यतः कर्णस्ततोऽसुराः ॥ ६२ ॥
रथयूथपयोः पक्षौ कुरुपाण्डववीरयोः ।
दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयम्भुवमचोदयन् ॥ ६३ ॥
कोऽनयोर्विजयी देव कुरुपाण्डवयोधयोः ।
समोऽस्तु विजयो देव एतयोर्नरसिंहयोः ॥ ६४ ॥
कर्णार्जुनविवादेन सर्वं संशयितं जगत् ।
स्वयम्भो ब्रूहि नस्तथ्यमेनयोर्विजयं प्रभो ॥ ६५ ॥
स्वयम्भो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः ।
तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम् ॥ ६६ ॥
व्यज्ञापयत देवेशमिदं मतिमतां वरः ।
पूर्वं भगवता प्रोक्तं कृष्णयोर्विजयो ध्रुवः ॥ ६७ ॥
तत्तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन्मम ।
ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम् ॥ ६८ ॥
विजयो ध्रुवमेवास्य विजयस्य महात्मनः ।
खाण्डवेये हुतभुक्तोषितः सव्यसाचिना ॥ ६९ ॥

बल को देखकर प्रजापति ब्रह्मा के मन में भी सन्देह होने लगा कि न जाने कर्ण अर्जुन को मारकर विजयी होगा अथवा अर्जुन कर्ण को मारकर यशस्वी होगा ॥५६।६०॥ हे महाराज! देवता ऋषि और चारण आदि सहित त्रिलोकी के सब जीव कर्ण और अर्जुन को संग्राम के निमित्त उद्यत देखकर, उनके अस्त्रबल से त्रिभुवन के भस्म होने की आशङ्का करके, भय से काँपने लगे। असुरों ने कर्ण का और देवगण सहित अन्यान्य प्राणियों ने अर्जुन का पक्ष लिया। इसके उपरान्त सब देवताओं और प्राणियों ने सब लोकों के पितामह प्रजापति ब्रह्मा से हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन्! कर्ण और अर्जुन दोनों तुल्यबल और अद्वितीय योद्धा हैं। इनमें विजयलक्ष्मी किसे प्राप्त होगी? हमारी समझ में तो इनमें कोई किसी को नहीं परास्त कर सकता; क्योंकि कोई किसी से कम नहीं है॥६१।६४॥ इसलिए ऐसा कीजिए कि ये युद्ध न करें। हे देव! इन दोनों का युद्ध होने से सारे जगत् के नाश की आशङ्का है और यही सोचकर हम लोग भय से विह्वल हो रहे हैं। आप कृपापूर्वक निश्चय करके बतलाइए कि इन दोनों में कौन विजय का अधिकारी है! हे भगवन्! हमारी इच्छा तो यह है कि आप दोनों का परस्पर परास्त न होना स्वीकार करें। हे राजेन्द्र!—उस समय इन्द्र देवताओं के ये वचन सुनकर ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे कहने लगे—हे भगवन्! पहले देवाधिदेव महादेव कह चुके हैं कि इस युद्ध में श्रीकृष्ण सहित अर्जुन ही विजयी होंगे। इसलिए आप भी मुझ पर प्रसन्न होकर रुद्र के वचन का अनुमोदन कीजिए। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करके

स्वर्गं च समनुप्राप्य साहाय्यं शक्र ते कृतम् ।
कर्णश्च दानवः पक्ष अतः कार्यः पराजयः ॥ ७० ॥
एवं कृते भवेत्कार्यं देवानामेव निश्चितम् ।
आत्मकार्यं च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर ॥ ७१ ॥
महात्मा फाल्गुनश्चापि सत्यधर्मरतः सदा ।
विजयस्तस्य नियतं जायते नात्र संशयः ॥ ७२ ॥
तोषितो भगवान्येन महात्मा वृषभध्वजः ।
कथं वा तस्य न जयो जायते शतलोचन ॥ ७३ ॥
यस्य चक्रे स्वयं विष्णुः सारथ्यं जगतः प्रभुः ।
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रोऽथ तपोधनः ॥ ७४ ॥
बिभर्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः ।
पार्थः सर्वगुणोपेतो देवकार्यमिदं यतः ॥ ७५ ॥
क्लिश्यन्ते पाण्डवा नित्यं वनवासादिभिर्भृशम् ।
सम्पन्नस्तपसा चैव पर्याप्तः पुरुषर्षभः ॥ ७६ ॥
अतिक्रमेच्च माहात्म्याद्दिष्टमप्यर्थपर्ययम् ।
अतिक्रान्ते च लोकानामभावो नियतं भवेत् ॥ ७७ ॥
न विद्यते व्यवस्थानं क्रुद्धयोः कृष्णयोः क्वचित् ।
स्रष्टारौ जगतश्चैव सततं पुरुषर्षभौ ॥ ७८ ॥
नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
अनियम्यौ नियन्तारावेतौ तस्मात्परन्तपौ ॥ ७९ ॥

प्रार्थना करता हूँ कि रुद्रदेव का कथन किसी प्रकार मिथ्या न हो॥६५।६८॥हे महाराज! इन्द्र की प्रार्थना सुनकर प्रजापति ब्रह्मा रुद्रदेव के सम्मुख ही कहने लगे—हे देवराज! खाण्डवप्रस्थ में अग्नि को तृप्त करनेवाले और देवलोक में आकर दानव-संहार करके तुम्हें यथोचित सहायता पहुँचानेवाले महारथी अर्जुन ही विजय प्राप्त करेंगे। अर्जुन देवपक्ष और कर्ण दानवपक्ष है, इसलिए कर्ण की हार और अर्जुन की जीत होनी ही चाहिए। अर्जुन कर्ण को परास्त करेंगे तो देवताओं का भी दानवविजय-रूप कार्य सिद्ध होगा। इसी लिए हम भी अर्जुन की विजय चाहते हैं; क्योंकि अपने कार्य की सिद्धि सबको इष्ट होती है। और देखो, वीर अर्जुन सदा धर्मपरायण, मनस्वी, बलवान्, शूर, कृतविद्य, महातेजस्वी, सब गुणों से अलङ्कृत और सम्पूर्ण धनुर्वेद के ज्ञाता हैं। नारायणावतार, साक्षात् भगवान् विष्णु, कृष्णचन्द्र उनके सहायक और सारथी हैं। इन कारणों से अर्जुन की ही विजय होगी॥६९।७६॥पाण्डवों ने कर्ण और दुर्योधन के कारण वनवास आदि के क्लेश सहे हैं। इसलिए अर्जुन ही विजयी होंगे। यही उचित भी है। हे इन्द्र! महावीर अर्जुन का तपोबल बहुत अधिक है। वे यदि बल वीर्य में कर्ण से परास्त होने लगेंगे तो अपने तपोबल से उसे नष्ट कर देंगे। श्रीकृष्ण और अर्जुन क्रुद्ध होकर लोक-मर्यादा का विचार नहीं करेंगे,

नैतयोस्तु समः कश्चिद्दिवि वा मानुषेषु वा ।
अनुगम्यास्त्रयो लोकाः सह देवर्षिचारणैः ॥ ८० ॥
सर्वदेवगणाश्चापि सर्वभूतानि यानि च ।
अनयोस्तु प्रभावेन वर्तते निखिलं जगत् ॥ ८१ ॥
कर्णो लोकानयं मुख्यानाप्नोतु पुरुषर्षभः ।
कर्णो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः ॥ ८२ ॥
वसूनां समलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात् ।
सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोकमवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥
इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोऽब्रवीद्वचः ।
आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनम् ॥ ८४ ॥
श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम् ।
तत्तथा नान्यथा तद्धि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥ ८५ ॥
इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष ।
विस्मितान्यभवन्राजन्पूजयाञ्चक्रिरे तदा ॥ ८६ ॥
व्यसृजंश्च सुगन्धीनि पुष्पवर्षाणि हर्षिताः ।
नानारूपाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥ ८७ ॥
दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः ।
देवदानवगन्धर्वाः सर्व एवावतस्थिरे ॥ ८८ ॥
रथौ तयोः श्वेतहयौ दिव्यौ युक्तौ महात्मनोः ।
यौ तौ कर्णार्जुनौ राजन्प्रहृष्टौ व्यवस्थितनाम् ॥ ८९ ॥

इससे त्रिभुवन का संहार हो जायगा । इस कारण अर्जुन ही विजयी होंगे॥७६।७८॥अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों पुरुषोत्तम, जगत् की सृष्टि करनेवाले प्राचीन ऋषि नर-नारायण हैं । ये जगत् के शासक और नियामक हैं । इनका नियन्ता कोई नहीं है । स्वर्ग या मनुष्य-लोक में, कहीं, इनके समान कोई नहीं है । देवर्षि, देवता, चारण आदि सभी प्राणी इनके अनुगत हैं । इन्हीं के प्रभाव से इस जगत् की उत्पत्ति और रक्षा होती है॥७९।८१॥अतएव इस महायुद्ध में इन्हीं की विजय हो । और, पुरुषश्रेष्ठ महारथी कर्ण स्वर्ग में देवताओं के साथ या वसुलोक में भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ रहकर सुख भोगें।॥ पृथ्वी-नाथ ! भवानीपति शङ्कर ने भी ब्रह्मा के इस कथन का सहर्ष अनुमोदन किया । तब त्रिलोकी के स्वामी इन्द्र ने, ब्रह्मा और महादेव के ये वचन सुनकर, वहाँ पर स्थित सब प्राणियों को सम्बोधन करके कहा—भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी ने जगत् के निमित्त हितकर जो कुछ कहा, वह तुम लोगों ने सुन लिया। वैसा ही होगा, उनका कथन मिथ्या नहीं हो सकता । तुम लोग व्याकुलता और चिन्ता को छोड़ो॥८२।८५॥हे महाराज ! इन्द्र के ये वचन सुनकर वहाँ उपस्थित सब प्राणियों को बड़ा आश्चर्य हुआ । वे लोग इन्द्र की प्रशंसा करने लगे । हर्षित देवगण सुगन्धित फूल बरसाने और तुरही आदि बाजे

समागता लोकवीराः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ कर्णशल्यौ च भारत ॥ ९० ॥
तद्भीरुसन्त्रासकरं युद्धं समभवत्तदा ।
अन्योन्यस्पर्धिनोरुग्रं शक्रशम्बरयोरिव ॥ ९१ ॥
तयोर्ध्वजौ वीतमलौ शुशुभाते रथे स्थितौ ।
राहुकेतू यथाकाशे उदितौ जगतः क्षये ॥ ९२ ॥
कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारमयी दृढा ।
पुरन्दरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या विराजते ॥ ९३ ॥
कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवान्तकः ।
दंष्ट्राभिर्भीषयन्माभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा ॥ ९४ ॥
युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।
कर्णध्वजमुपातिष्ठत्स्वस्थानाद्वेगवान्कपिः ॥ ९५ ॥
उत्पपात महावेगः कक्ष्यामभ्याहनत्तदा ।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥ ९६ ॥
सा किङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमायसी ।
अभ्यद्रवत्सुसंरब्धा हस्तिकक्ष्याथ तं कपिम् ॥ ९७ ॥
तयोर्घोरतरे युद्धे द्वैरथे द्यूत आहिते ।
प्राकुर्वतां ध्वजौ युद्धं पूर्वं पूर्वतरं तदा ॥ ९८ ॥

लगे। देवता, दैत्य और गन्धर्वगण उन दोनों वीरों का अद्भुत द्वन्द्व-युद्ध देखने के निमित्त आकाश में स्थित हुए। इसी समय श्वेत घोड़ों से शोभित महा-शब्द-युक्त दिव्य रथों पर विराजमान लोकप्रसिद्ध वीर श्रीकृष्ण, अर्जुन, कर्ण और शल्य अलग अलग अपने श्रेष्ठ शङ्खों को बजाने लगे। उनके साथ ही अन्य वीरों ने दोनों ओर शङ्ख बजाये॥८६।९०॥इसके उप-रान्त परस्पर लागडाँट रखनेवाले कर्ण और अर्जुन का, इन्द्र और शम्बरासुर के समान, कायरों के मन में भय उत्पन्न करनेवाला भयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों वीरों के रथों पर स्थित श्वेत ध्वजाएँ प्रलयकाल में उदित राहु और केतु ग्रहों के समान शोभा को प्राप्त हुईं। आशीविष सर्प के समान भयङ्कर, रत्नमयी, इन्द्र-धनुष के तुल्य, सुदृढ़ कर्ण की हस्तिकक्ष्याचिह्नित ध्वजा शोभित हो रही थी॥९१।९३॥ उधर अर्जुन की दिव्य ध्वजा पर स्थित, मुख फैलाये मृत्यु के समान, वानर दाँत निकालकर लोगों को डरवा रहा था और किरण युक्त प्रचण्ड सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य हो रहा था। इसी समय अर्जुन की ध्वजा में स्थित वानर, युद्ध की इच्छा करके, अपने स्थान से बड़े वेग से चलकर कर्ण की हस्तिकक्ष्या युक्त ध्वजा पर पहुँचा और गरुड़ जैसे सर्प को छिन्न-भिन्न करें वैसे ही प्रहार करके नखों और दाँतों से उसे नोचने लगा। किङ्किणी-मण्डित कालपाश तुल्य कर्ण की ध्वजा में स्थित हस्तिकक्ष्या भी वेग से क्रुद्ध होकर उस वानर की ओर चली। इस प्रकार उन दोनों वीरों का, जीवन की बाजी लगाकर होने-वाला घोर द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ होने के पहले ही उनकी

हया हयानभ्यहेषन्स्पर्धमानाः परस्परम् ।
अविध्यत्पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः ॥ ९९ ॥
शल्यश्च पुण्डरीकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत ।
तत्राजयद्वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ॥ १०० ॥
कर्णं चाप्यजयद् दृष्ट्या कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अथाब्रवीत्सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम् ॥ १०१ ॥
यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित् ।
किं करिष्यसि संग्रामे शल्य सत्यमथोच्यताम् ॥ १०२ ॥

शल्य उवाच—यदि कर्ण रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः ।
उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवपाण्डवौ ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच—एवमेव तु गोविन्दमर्जुनः प्रत्यभाषत ।
तं प्रहस्याब्रवीत्कृष्णः सत्यं पार्थमिदं वचः ॥ १०४ ॥
पतेद्दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः ।
शैत्यमग्निरियान्न त्वां हन्यात्कर्णो धनञ्जयः ॥ १०५ ॥
यदि चैतत्कथञ्चित्स्याल्लोकपर्यासनं भवेत् ।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥ १०६ ॥
इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन्कपिकेतनः ।
अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ १०७ ॥
मम नालमपर्याप्तौ कर्णशल्यौ जनार्दन ।
सपताकध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ॥ १०८ ॥

ध्वजाएँ परस्पर युद्ध करने लगीं॥९४।९८॥इसी प्रकार दोनों रथों के घोड़े भी परस्पर स्पर्धा प्रकट करते हुए हिनहिनाने लगे। श्रीकृष्ण ने शल्य की ओर और अर्जुन ने कर्ण की ओर आँखों से आँखें मिलाईं। कर्ण और शल्य दोनों की दृष्टि अर्जुन और श्रीकृष्ण की दृष्टि में दब गई। अब कर्ण ने हँसकर शल्य से कहा—हे मद्रराज ! यदि इस युद्ध में किसी प्रकार अर्जुन ने मुझे मार डाला तो तुम क्या करोगे॥९९।१०२॥ शल्य ने कहा—हे कर्ण ! जो अर्जुन ने तुमको मार डाला तो मैं अकेला ही श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को मारूँगा॥१०३॥सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज! इसी प्रकार अर्जुन ने गोविन्द से कहा कि हे कृष्णचन्द्र! यदि कर्ण किसी प्रकार मुझे मारने में समर्थ हुआ तो आप क्या करेंगे ? यह सुनकर श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा—हे अर्जुन ! सूर्य चाहे आकाश से गिर पड़े, भूमि के चाहे टुकड़े टुकड़े हो जायँ, सागर चाहे सूख जाय और अग्नि चाहे शीतल हो जाय, किन्तु कर्ण के हाथ से तुम्हारा वध नहीं हो सकता। और, यदि कर्ण किसी प्रकार तुम्हारा वध करने में समर्थ हो जायगा तो, निश्चय जानो, प्रलय हो जायगा। मैं बिना शस्त्र लिये हाथों से ही कर्ण और शल्य दोनों का वध करूँगा॥१०४।१०६॥हे राजेन्द्र ! श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर वीरवर अर्जुन हँसते हुए कहने लगे—हे श्रीकृष्ण ! कर्ण और शल्य दोनों मिलकर भी मेरा

सच्छत्रकवचं चैव सशक्तिशरकार्मुकम् ।
द्रष्टास्यद्य रणे कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥ १०९ ॥
अद्यैव सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम् ।
संचूर्णितमिवारण्ये पादपं दन्तिना यथा ॥ ११० ॥
अद्य राधेयभार्याणां वैधव्यं समुपस्थितम् ।
ध्रुवं स्वप्नेष्वनिष्टानि ताभिर्दृष्टानि माधव ॥ १११ ॥
द्रष्टासि ध्रुवमद्यैव विधवाः कर्णयोषितः ।
नहि मे शाम्यते मन्युर्यदनेन पुरा कृतम् ॥ ११२ ॥
कृष्णां सभागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घदर्शिना ।
अस्मांस्तथावहसता क्षिपता च पुनः पुनः ॥ ११३ ॥
अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया ।
वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥ ११४ ॥
अद्य ता मधुरा वाचः श्रोतासि मधुसूदन ।
दिष्ट्या जयसि वार्ष्णेय इति कर्णे निपातिते ॥ ११५ ॥
अद्याभिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यसि ।
कुन्तीं पितृष्वसारं च प्रहृष्टः सजनार्दन ॥ ११६ ॥
अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव ।
वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं च पाण्डवम् ॥ ११७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसमागमे द्वैरथे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७ ॥

सामना नहीं कर सकते। इन दोनों के एकत्रित पराक्रम को भी मैं अपने बाहुबल के बराबर नहीं समझता। आज आप रण में शीघ्र ही देखेंगे कि हाथी जैसे वृक्ष को तोड़-ताड़ डालता है वैसे ही मैं कर्णके रथ, सारथी, घोड़े, कवच, ध्वजा-पताका-छत्र और धनुष को बाणों से काट काट करके नष्ट कर दूँगा॥१०७।११०॥आज अवश्य ही कर्ण की स्त्रियाँ विधवा होंगी। रात्रि को उन्होंने अवश्य ही अनुचित स्वप्न देखे हैं। आप शीघ्र ही कर्ण की स्त्रियों को विधवावस्था मे विलाप करते देखेंगे। कर्ण ने पहले कुरुसभा में द्रौपदी को उपस्थित देखकर मूढ़तावश जो आक्षेप किये थे, हमारा उपहास किया था, उसे मैं भूला नहीं हूँ। अदूरदर्शी कर्ण ने पहले से आज तक हम पाण्डवों के साथ जो अनुचित व्यवहार किया है, उससे उत्पन्न क्रोध की अग्नि बराबर मेरे हृदय को जलाया करती है। आज कर्ण को मारकर मैं उस अग्नि को बुझाऊँगा। आप अभी देखेंगे कि मैं, फूले हुए पेड़ को चूर्ण करनेवाले मस्त हाथी के समान, कर्ण को मारकर पृथ्वी पर गिरा दूँगा॥१११।११४॥हे मधुसूदन! "अहे भाग्य की बात है जो हे वृष्णिवंशावतंस! आप विजयी हुए!" इस प्रकार के मधुर वचन आप स्वजनों के मुख से शीघ्र ही सुनेंगे। आज आप प्रसन्नतापूर्वक सुभद्रा को, अपनी बुआ कुन्ती को, आँखों में आँसू भरे हुए देवी द्रौपदी को और महाराज युधिष्ठिरको अमृत तुल्य वचनोंसे सान्त्वना देंगे॥११५।११७॥

—:०:—

कर्ण पर्व का सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८७ ॥

अथ अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

सञ्जय उवाच—तद्देवनागासुरसिद्धयक्षैर्गन्धर्वरक्षोऽप्सरसां च सङ्घैः ।
ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं बभौ वियद्विस्मयनीयरूपम् ॥ १ ॥
नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञैर्वादित्रगीतस्तुतिनृत्यहासैः ।
सर्वेऽन्तरिक्षं ददृशुर्मनुष्याः खस्थाश्च तद्विस्मयनीयरूपम् ॥ २ ॥
ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा वादित्रशङ्खस्वनसिंहनादैः ।
विनादयन्तो वसुधां दिशश्च स्वनेन सर्वान्द्विषतो निजघ्नुः ॥ ३ ॥
नराश्वमातङ्गरथैः समाकुलं शरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम् ।
अभीरुजुष्टं हतदेहसंकुलं रणाजिरं लोहितमाबभौ तदा ॥ ४ ॥
बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां यथा सुराणामसुरैः महाभवत् ।
तथा प्रवृत्ते तुमुले सुदारुणे धनञ्जयस्याधिरथेश्च सायकैः ॥ ५ ॥
दिशश्च सैन्यं च शितैरजिह्मगैः परस्परं प्रावृणुतां सुदंशितैः ।
ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः कृतेऽन्धकारे ददृशुर्न किञ्चन ॥ ६ ॥
भयातुरा एकरथौ समाश्रयंस्ततोऽभवत्त्वद्भुतमेव सर्वतः ।
ततोऽस्त्रमस्त्रेण परस्परं तौ विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ॥ ७ ॥

अट्ठासी अध्याय ॥ ८८ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! उस समय युद्ध दर्शनाभिलाषी असंख्य देवता, नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, गरुड, महर्षि और राजर्षि लोगों से परिपूर्ण आकाश-मण्डल की अद्भुत शोभा हुई। मनुष्य विस्मयपूर्ण दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगे। उसे मनोहर बाजों के शब्द, गीत, स्तुति, नृत्य, हास्य, बातचीत और अन्य मधुर शब्दों से युक्त देखकर उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। इसी प्रकार आकाश में स्थित देवगण आदि रणभूमि के अद्भुत दृश्य को देख रहे थे। हे महाराज ! इधर प्रसन्नचित्त कौरवों और पाण्डवों के योद्धा विविध बाजे और शङ्ख बजाकर, सिंहनाद करके, उस शब्द से पृथ्वी और आकाश को प्रतिध्वनित और परस्पर प्रहार से शत्रुओं को पीड़ित करने लगे॥१।३॥ चतुरङ्गिणी सेना से परिपूर्ण, मृत मनुष्यों हाथी-घोड़ों आदि के शरीरों से दुर्गम रणभूमि में रक्त ही रक्त हो गया। वहाँ सब वीर पुरुष ही उपस्थित थे और परस्पर बाण, खड्ग, शक्ति, ऋष्टि आदि शस्त्रों के दुःसह प्रहार कर रहे थे। कौरव और पाण्डव, प्राचीन देवासुर सग्राम के समान, दारुण युद्ध करने लगे। ऐसे युद्ध का आरम्भ होने पर कवचधारी कर्ण और अर्जुन परस्पर तीक्ष्ण बाण बरसाकर सब दिशाओं और शत्रुसेना को व्याप्त तथा पीड़ित करने लगे। उस समय बाण वर्षा से ऐसा अँधेरा हो गया कि दोनों ओर के लोगों को कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था॥४।६॥ तब दोनों पक्ष के योद्धा और सैनिक युद्ध छोड़कर, कर्ण और अर्जुन के समीप खड़े होकर, वह घोर युद्ध देखने लगे। अस्त्रों के प्रभाव से सर्वत्र अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ने लगे। पूर्व और पश्चिम की दो प्रचण्ड आँधियों के समान कर्ण और अर्जुन एक दूसरे के अस्त्र को अस्त्रबल से रोकने लगे। उस घने अँधेरे में, अन्धकार हरनेवाले चन्द्र और सूर्य के समान शोभा को प्राप्त, दोनों वीर चारों ओर किरणों के समान बाण बरसा रहे थे। रण से भागना क्षत्रियधर्म के नियम के विरुद्ध जानकर दोनों ओर के योद्धा उन दोनों महा-

घनान्धकारे वितते तमोनुदौ यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः ।
न चाभिसर्तव्यमिति प्रचोदिताः परे त्वदीयाश्च तथानतास्थिरे ॥ ८ ॥
महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः सुरासुराः शम्बरवासवाविव ।
मृदङ्गभेरीपणवानकस्वनैः ससिंहनादैर्नदतुर्नरोत्तमौ ॥ ९ ॥
शशाङ्कसूर्याविव मेघनिःस्वनैर्विरेजतुस्तौ पुरुषर्षभौ तदा ।
महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ सुवर्चसौ बाणसहस्रदीधिती ॥ १० ॥
दिधक्षमाणौ सचराचरं जगद्युगान्तसूर्याविव दुःसहौ रणे ।
उभावजेयावहितान्तकावुभावुभौ जिघांसू कृतिनौ परस्परम् ॥ ११ ॥
महाहवे वीतभयौ समीयतुर्महेन्द्रजम्भाविव कर्णपाण्डवौ ।
ततो महास्त्राणि महाधनुर्धरौ विमुञ्चमानाविषुभिर्भयानकैः ॥ १२ ॥
नराश्वनागानमितान्निजघ्नतुः परस्परं चापि महारथौ नृप ।
ततो विसस्रुः पुनरर्दिता नरा नरोत्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः ॥ १३ ॥
सनागपत्त्यश्वरथा दिशो दश तथा यथा सिंहहता वनौकसः ।
ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः कृपेण शारद्वतसूनुना सह ॥ १४ ॥
महारथाः पञ्च धनञ्जयाच्युतौ शरैः शरीरार्तिकरैरताडयन् ।
धनूंषि तेषामिषुधीन्ध्वजान्हयान्रथांश्च सूतांश्च धनञ्जयः शरैः ॥ १५ ॥
समं प्रमथ्याशु परान्समन्ततः शरोत्तमैर्द्वादशभिश्च सूतजम् ।
अथाभ्यधावंस्त्वरिताः शतं रथाः शतं गजाश्चार्जुनमाततायिनः ॥ १६ ॥

रथियों के समीप खड़े होकर वैसे ही शोभायमान हुए जैसे शम्बरासुर के समीप दानव और इन्द्र के समीप देवता शोभित हुए थे। चारों ओर मृदङ्ग, भेरी, पणव, नगाड़ और शङ्ख और वाहन आदि का शब्द गूँज उठने पर तेजस्वी कर्ण और अर्जुन घोर सिंहनाद करने लगे ॥७।९॥और गरज रहे मेघों के मध्य में चन्द्र सूर्य के समान शोभायमान हुए। मण्डलाकार घूम रहे दिव्य धनुषों के मण्डल में, किरणों के समान, बाण बरसा रहे तेजस्वी कर्ण और अर्जुन प्रलयकाल के दो सूर्यों के समान प्रचण्ड दिखाई पड़ने लगे। जान पड़ता था, वे सारे जगत् को भस्म कर देंगे। उनकी ओर देखना भी कठिन हो गया। दोनों ही महारथी, अजेय, शत्रुनाशन, कृतविद्य, युद्ध का पूर्ण अभ्यास रखनेवाले और परस्पर वध करने का दृढ़ सङ्कल्प किये हुए ये। कर्ण और अर्जुन, इन्द्र और जम्भासुर के समान, निडर होकर परस्पर प्रहार और युद्ध कर रहे थे॥१०।१२॥वे महाधनुर्द्धर दोनों वीर महास्त्रों का प्रयोग करके भयानक बाणों से असंख्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों को मारने और एक दूसरे को पीड़ित करने लगे। अब फिर सिंह-पीड़ित मृग आदि वनवासी पशुओं के समान दोनों ओर की चतुरङ्गिणी सेना उनके बाणों से व्यथित और भय-विह्वल होकर भागने लगी। तब राजा दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, कृपाचार्य और अश्वत्थामा, ये पाँचों महारथी मिलकर शरीर को चीरनेवाले तीक्ष्ण बाण मारकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को पीड़ित करने लगे ॥१३।१५॥वीरवर अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से एक साथ ही उन सबके धनुष, तरकस, ध्वजा और रथ काट डाले और घोड़े तथा सारथी मार डाले। यह अद्भुत कर्म करके उन्होंने कर्ण को भी बारह विकट बाण मारा॥१५।१६॥इसी समय शस्त्र हाथ में लिये सौ

शकास्तुषारा यवनाश्च सादिनः सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः ।
वरायुधान्पाणिगतैः शरैः सह क्षुरैर्न्यकृन्तन्प्रपतञ्छिरांसि च ॥ १७ ॥
हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतो धनञ्जयः शत्रुगणान्क्षितौ क्षिणोत् ।
ततोऽन्तरिक्षे सुरतूर्यनिःस्वनाः ससाधुवादाहृषितैः समीरिताः ॥ १८ ॥
निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः सुगन्धिगन्धाः पवनेरिताः शुभाः ।
तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं समीक्ष्य भूतानि विसिस्मियुस्तदा ॥ १९ ॥
तवात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ ।
अथाब्रवीद् द्रोणसुतस्तवात्मजं करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन् ॥ २० ॥
प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवैरलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम् ।
हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित्तथैव भीष्मप्रमुखा महारथाः ॥ २१ ॥
अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम् ।
धनञ्जयः शाम्यति वारितो मया जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ॥ २२ ॥
युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ ।
त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव ॥ २३ ॥

रथी योद्धा, सौ हाथियों के सवार और सौ घुड़सवार—मार डालने के विचार से—बड़े वेग से अर्जुन पर आक्रमण करने को चले। अर्जुन ने क्षुरप्र बाणों से उन शक, तुषार, यवन और काम्बोज जाति के वीरों को, मय उनके हाथों में स्थित शस्त्रों के, टुकड़े-टुकड़े करके पृथ्वी पर गिरा दिया। उन्होंने उनके सिर काट डाले और रथ, हाथी, घोड़े आदि उनके वाहनों को भी खण्ड-खण्ड कर डाला। उस समय अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न देवगण साधुवाद के साथ सुगन्धित वायु की सहायता से फूल बरसाने और तुरही आदि बाजे बजाने लगे। देवताओं और मनुष्यों के सम्मुख किये गये अर्जुन के उस अद्भुत पराक्रम को देखकर सब प्राणियों को बड़ा विस्मय हुआ॥१८।१९॥ किन्तु एक युद्ध का ही दृढ़ निश्चय किये हुए राजा दुर्योधन और कर्ण को न उससे विस्मय हुआ और न शङ्का या व्यथा हुई। इसी समय अश्वत्थामा ने दुर्योधन का हाथ अपने हाथ में लेकर, उन्हें समझाते हुए, यों कहा—हे महाराज दुर्योधन! प्रसन्न और शान्त होकर अब पाण्डवों से सन्धि कर लो। इस विरोध को दूर कर दो, जिससे सबका संहार हो रहा है। हे मित्र! इस युद्ध को धिक्कार है, जिसमें सबके गुरु, ब्रह्मा के तुल्य, सब श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता मेरे पिता मारे गये और भीष्म पितामह आदि अनेक महारथी योद्धा मृत्यु को प्राप्त हुए। मैं और मेरे मामा कृपाचार्य अवध्य हैं, इसी से हम दोनों अब तक जीते हैं। इसलिए सन्धि करके पाण्डवों के साथ मित्र भाव से चिरकाल तक पृथ्वी का राज्य करो। देखो, अर्जुन मेरे मना करने से युद्ध बन्द कर देंगे। कृष्णचन्द्र पहले से ही विरोध के विरोधी हैं, वे भी मान जायेंगे॥२०।२२॥ युधिष्ठिर धर्मात्मा और सभी प्राणियों के हितचिन्तक हैं, उन्हें सन्धि के निमित्त राजी कर लेना कुछ कठिन नहीं है। क्रोधी भीमसेन और नकुल-सहदेव युधिष्ठिर के वश में हैं, वे भी शान्त हो जायेंगे। मुझे निश्चय है कि पाण्डव, सन्धि का प्रस्ताव मानकर, युद्ध बन्द कर देंगे। यदि पाण्डवों से सन्धि कर लोगे तो तुम्हारी इस शुभ आकांक्षा से प्रजा का कल्याण होगा। इसलिए अब तुम युद्ध का विचार छोड़ दो। मरने से बचे हुए राजा लोग अपने नगरों को और बन्धु बान्धव

व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि बान्धवा निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः ।
न चेद्वचः श्रोष्यसि मे नराधिप ध्रुवं प्रतप्स्यसि हतोऽरिभिर्युधि ॥ २४ ॥
इदं च दृष्टं जगता सह त्वया कृतं यदेकेन किरीटमालिना ।
यथा न कुर्याद्बलभिन्न चान्तको न चापि धाता भगवान्न यक्षराट् ॥ २५ ॥
अतोऽपि भूयान्स्वगुणैर्धनञ्जयो न चातिवर्तिष्यति मे वचोऽखिलम् ।
तवानुयात्रां च सदा करिष्यति प्रसीद राजेन्द्र शमं त्वमाप्नुहि ॥ २६ ॥
ममापि मानः परमः सदा त्वयि ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदात् ।
निवारयिष्यामि च कर्णमप्यहं यदा भवान्सप्रणयो भविष्यति ॥ २७ ॥
वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणास्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम् ।
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं तदस्ति सर्वं तव पाण्डवेषु ॥ २८ ॥
निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः पुनश्च साम्ना समवाप्नुहि प्रभो ।
त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतां गते हितं कृतं स्याज्जगतस्त्वयातुलम् ॥ २९ ॥
स एवमुक्तः सुहृदा वचो हितं विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाऽब्रवीत् ।
यथा भवानाह सखे तथैव तन्ममापि विज्ञापयतो वचः शृणु ॥ ३० ॥

अपने घरों को लौट जायँ और सब सैनिकगण वैर भाव छोड़कर सुखी हों । हे नरेन्द्र ! जो तुम मेरी इस बात को नहीं मानोगे तो शत्रुगण तुम्हारा वध करेंगे और तुम पछताओगे । हे दुर्योधन ! अभी तुमने और सारे जगत् ने अर्जुन का पराक्रम देख लिया है । अकेले अर्जुन ने जो कार्य किया है उसे साक्षात् इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर या भगवान् ब्रह्मा भी नहीं कर सकते॥२३।२५॥हे कुरुराज ! ऐसे गुणी और पराक्रमी होने पर भी वीर अर्जुन मेरे वचन को नहीं टालेंगे, युद्ध बन्द कर देंगे । वीर अर्जुन, महाराज युधिष्ठिर के समान, तुम्हारे भी सदा आज्ञापालक रहेंगे । इसलिए हे राजेन्द्र ! मुझ पर प्रसन्न होकर शान्ति की इच्छा से सन्धि कर लो । हे महाराज ! मुझको सदा तुम्हारा अभिमान रहा है और तुम सदा मेरा सम्मान करते रहे हो, इसी से मैं तुमसे यह हित की बात कहता हूँ । तुम मेरे बहुत बड़े मित्र हो, उसी मित्रता के नाते मैं तुमको समझाता हूँ । देखो, मैं कर्ण को भी इस युद्ध से रोक सकता हूँ केवल तुम्हारे राजी होने की देरी है । कर्ण मेरे परम मित्र हैं और मैं उन्हें बड़े प्रेम और आदर की दृष्टि से देखता हूँ, इसलिए वे मेरी बात कभी न टालेंगे । बुद्धिमान् लोगों ने चार प्रकार की मैत्री कही है—एक सहज मैत्री, दूसरी सामनीति की मैत्री, तीसरी धन देकर की गई मैत्री और चौथी प्रताप देखकर की जानेवाली मैत्री । सो पाण्डव लोग इन चारों कारणों से तुम्हारे मित्र होने योग्य हैं, अर्थात् इन चारों कारणों से तुम्हें पाण्डवों से मित्रता करनी चाहिए । वे तुम्हारे भाई हैं । यदि तुम सामनीति से सन्धि करना चाहोगे तो वे तुम्हारे मित्र और हित चिन्तक बन जायँगे । इस प्रकार प्रसन्न होकर यदि तुम पाण्डवों से मित्रता कर लोगे तो उससे जगत् का बड़ा उपकार और हित करोगे॥२६।२९॥हे महाराज ! परम हित चिन्तक मित्र अश्वत्थामा के मुख से ये हित वचन सुनकर दम भर सोचकर, लम्बी साँस छोड़कर, दुर्योधन ने खेदपूर्ण भाव से कहा—हे मित्र ! तुमने जो कुछ कहा वह बिलकुल उचित है, किन्तु मैं जो कहता हूँ, वह भी सुनो । तुम्हारे सम्मुख ही दुर्मति भीमसेन ने, मेरे प्रिय भाई दुःशासन को सिंह के समान मारकर जो दुर्वचन कहे हैं, हमारा उपहास

निहत्य दुःशासनमुक्तवांश्च यः प्रसह्य शार्दूलवदेव दुर्मतिः ।
वृकोदरस्तद्धृदये मम स्थितं न तत्परोक्षं भवतः कुतः शमः ॥ ३१ ॥
न चापि कर्णं प्रसहेद्रणेऽर्जुनो महागिरिं मेरुमिवोग्रमारुतः ।
न चाश्वसिष्यन्ति पृथात्मजा मयि प्रसह्य वैरं बहुशो विचिन्त्य ॥ ३२ ॥
न चापि कर्णं गुरुपुत्रसंयुगादुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत ।
श्रमेण युक्तो महताद्य फाल्गुनस्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति ॥ ३३ ॥
तमेवमुक्त्वाप्यनुनीय चासकृत्तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान् ।
समाहिताभिद्रवताहितान्मम सबाणहस्ताः किमु जोषमासत ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामवाक्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

किया है, वह मेरे हृदय में काँटे के समान कसक रहा है। फिर सन्धि किस प्रकार हो सकती है ? मैंने पाण्डवों से बार-बार शत्रुता का व्यवहार किया है। मेरे उन व्यवहारों को याद करके पाण्डव कभी मेरे ऊपर विश्वास न करेंगे। इस समय कर्ण को संग्राम से रोकना भी उचित नहीं। उग्र आँधी जैसे सुमेरु पर्वत का कुछ नहीं बिगाड़ सकती, वैसे ही कर्ण के वेग और पराक्रम को अर्जुन कभी नहीं सँभाल सकता। अर्जुन इस समय थक चुका है, इसलिए कर्ण उसे बलपूर्वक मार डालेगा॥३०।३२॥ हे गुरुपुत्र ! तुम कर्ण से युद्ध से लौटने के निमित्त मत कहो। कर्ण अवश्य ही अर्जुन को मारेंगे, अर्जुन कर्ण को नहीं जीत सकता। हे नरेन्द्र ! आपके पुत्र दुर्योधन ने बारम्बार विनय करके, यों कहकर, अश्वत्थामा को समझा दिया। वे फिर अपने सैनिकों को उत्साहित और उत्तेजित करते हुए कहने लगे—हे वीरो ! इस प्रकार निश्चिन्त और निश्चेष्ट होकर चुपचाप क्या खड़े हो ? शीघ्र ही शत्रुओं पर आक्रमण करो और उन्हें मारो॥३३।३४॥

कर्णपर्व का अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८८ ॥

अथ ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

सञ्जय उवाच—तौ शङ्खभेरीनिनदे समृद्धे समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ ।
वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन् ॥ १ ॥
यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ प्रगृह्य दन्ताविव वाशितार्थे ।
तथा समाजग्मतुरुग्रवीर्यौ धनञ्जयश्चाधिरथिश्च वीरौ ॥ २ ॥
बलाहकेनेव महाबलाहको यदृच्छया वा गिरिणा यथा गिरिः ।
तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिःस्वनैः समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ ॥ ३ ॥
प्रवृद्धशृङ्गद्रुमवीरुदोषधी प्रवृद्धनानाविधनिर्झरौकसौ ।
यथाचलौ वा चलितौ महाबलौ तथा महास्त्रैरितरेतरं हतः ॥ ४ ॥

नवासी अध्याय ॥ ८९ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! शङ्ख, भेरी आदि का शब्द बाजे और होने लगा और पुरुषसिंह महाबली कर्ण तथा अर्जुन वैसे ही परस्पर क्रोध करके हुए युद्ध करने लगे, जैसे हिमवान् पर्वत के दो बड़े-बड़े दाँतोंवाले गजराज एक हथिनी के निमित्त परस्पर भिड़ जाते हैं। उस समय जान पड़ने लगा, जैसे पर्वत से पर्वत अथवा मेघ से मेघ टकरा रहे हैं॥१।३॥ झरने, वृक्ष, लता, ओषधि आदि से युक्त ऊँचे शिखर-

स सन्निपातस्तु तयोर्महानभूत्सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा ।
शरैर्विनुन्नाङ्गनियन्तृवाहयोः सुदुःसहोऽन्यैः कटुशोणितोदकः ॥ ५ ॥
प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ महाह्रदौ पक्षिगणैरिवावृतौ ।
सुसन्निकृष्टावनिलोद्धतौ यथा तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः ॥ ६ ॥
उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमावुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ ।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकैर्महेन्द्रवृत्राविव सम्प्रजघ्नतुः ॥ ७ ॥
सनागपत्त्यश्वरथे शुभे बले विचित्रवर्माभरणाम्बरायुधे ।
चकम्पतुर्विस्मयनीयरूपे वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे ॥ ८ ॥
भुजाः सवस्त्रांगुलयः समुच्छ्रिताः ससिंहनादैर्हृषितैर्दिदृक्षुभिः ।
यदर्जुनो मत्त इव द्विपो द्विपं समभ्ययादाधिरथिं जिघांसया ॥ ९ ॥
उदक्रोशन्सोमकास्तत्र पार्थं पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण श्रद्धां च राज्याद्धृतराष्ट्रसूनोः ॥ १० ॥
तथास्माकं बहवस्तत्र योधाः कर्णं तथा याहि याहीत्यवोचन् ।
जह्यर्जुनं कर्ण शरैः सुतीक्ष्णैः पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः ॥ ११ ॥
तथा कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं महेषुभिर्दशभिः सम्प्राविध्यत् ॥ १२ ॥
परस्परं तौ विशिखैः सुपुङ्खैस्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च ।
परस्परं तौ विभिदुर्विमर्दे सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ ॥ १३ ॥

वाले दो पर्वत जैसे चल रहे हों वैसे ही वे दोनों वीर शोभायमान हो रहे थे दोनों महाबलशाली महारथी परस्पर अस्त्रयुद्ध करके एक दूसरे को पीड़ित करने लगे। पूर्व समय में इन्द्र और दानवराज बलि ने जैसा युद्ध किया था वैसा ही युद्ध उस समय कर्ण और अर्जुन करने लगे। दोनों के तीक्ष्ण बाणों और दुःसह अस्त्रों से दोनों के घोड़े, सारथी और शरीर बहुत ही घायल हो गये और निरन्तर रक्त बहने लगा। हे नरनाथ! ध्वजा-युक्त दोनों रथ एकत्र होने से जान पड़ने लगा जैसे पद्म, उत्पल, मत्स्य, कच्छप आदि से युक्त और पक्षियों के कलरव से प्रतिध्वनित दो बड़े सरोवर वायु के वेग से उमड़कर परस्पर निकटवर्ती हो रहे हों॥४।६॥इन्द्र के समान पराक्रमी और इन्द्र-तुल्य महारथी दोनों वीर, इन्द्र और वृत्रासुर के समान, इन्द्र के वज्र के समान भयानक बाणों से परस्पर प्रहार करने लगे। अर्जुन और कर्ण के उस युद्ध को देखकर पृथ्वी मण्डल काँप उठा और विचित्र कवच, आभूषण तथा शस्त्र धारण किये हुए दोनों ओर के रथी, पैदल, घुड़सवार और हाथियों के सवार योद्धा विस्मित हो उठे। मार डालने के अभिप्राय से महावीर कर्ण अर्जुन की ओर और महारथी अर्जुन कर्ण की ओर वैसे ही वेग से चले, जैसे प्रतिद्वन्द्वी मस्त हाथी की ओर मस्त हाथी झपटता है। यह देखकर दोनों ओर के योद्धा प्रसन्न होकर सिंहनाद करने, वस्त्र उछालने और हाथ उठाने लगे॥७।९॥उस समय सोमकगण चिल्लाकर अर्जुन से कहने लगे—हे वीर अर्जुन! देरी न करो, शीघ्र ही दुष्ट कर्ण का सिर काटकर दुर्योधन की राज्य-लालसा को मिटा दो। इसी प्रकार कौरवपक्ष के योद्धा लोग कर्ण से कहने लगे—हे वीर कर्ण! शीघ्र बढ़कर तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को मारो, जिससे पाण्डवगण सदा के लिए वन में जाकर रहें। हे राजेन्द्र! तब महावीर कर्ण ने अर्जुन को दस तीक्ष्ण बाण मारे।

ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य ।
नाराचनालीकवराहकर्णान्क्षुरांस्तथा साञ्जलिकार्धचन्द्रान् ॥ १४ ॥
ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्पार्थेपवः कर्णरथं विशन्तः ।
अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम् ॥ १५ ॥
यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्ष कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः ।
तान्सायकैर्ग्रसते सूतपुत्रः क्षिप्तान्क्षिप्तान्पाण्डवस्याशु सङ्घान् ॥ १६ ॥
ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः ।
भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं प्रवृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः ॥ १७ ॥
योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः ।
शब्दश्च घोरोऽतिबभूव तत्र यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः ॥ १८ ॥
तद्वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं सवारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे ।
समुत्सृजन्सूतसुतः प्रतापवान्स तेन वह्निं शमयाम्बभूव ॥ १९ ॥
बलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः ।
ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः समन्ततो वै परिवार्य वारिणा ॥ २० ॥
तैश्चातिवेगात्स तथाविधोऽपि नीतः शमं वह्निरतिप्रचण्डः ।
बलाहकैरेव दिगन्तराणि व्याप्तानि सर्वाणि यथा नभश्च ॥ २१ ॥
तथा च सर्वास्तिमिरेण वै दिशो मेघैर्वृता न प्रदृश्येत किञ्चित् ।
अथापोवाह्याभ्रसङ्घान्समस्तान्वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात् ॥ २२ ॥

अर्जुन ने भी हँसते हुए दस बाण पार्श्वदेश में मारकर कर्ण को पीड़ित किया । इस प्रकार दोनों वीर एक दूसरे को तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित करने लगे॥१०।१३॥अर्जुन ने सिंहनाद करके गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा को स्वच्छ करके निरन्तर असंख्य नाराच, नालीक, वराहकर्ण, क्षुर, अञ्जलिक और अर्धचन्द्र बाण छोड़ना आरम्भ किया । सायङ्काल में पक्षी जैसे बसेरे के निमित्त मुख नीचा किये वेग से वृक्ष की ओर जाते हैं, वैसे ही अर्जुन के बाण कर्ण के रथ की ओर जाने लगे । अर्जुन ने कर्ण के ऊपर जिन जिन अस्त्रों को चलाया उन्हें सूत पुत्र ने एक एक करके काट डाला॥१४।१६॥तब महापराक्रमी अर्जुन ने कर्ण के ऊपर शत्रुनाशन आग्नेय अस्त्र छोड़ा । वह अस्त्र अग्नि की ज्वालाओं से पृथ्वी, आकाश, सूर्यमण्डल और दिशाओं को व्याप्त करके प्रज्वलित हो उठा । बाँस के वन में अग्नि लगने से जैसा शब्द होता है, वैसा ही घोर शब्द रणभूमि में उत्पन्न हुआ । योद्धाओं के वस्त्र जलने लगे और वे भागने लगे॥१७।१८॥ कर्ण ने आग्नेय अस्त्र को प्रज्वलित देखकर, उसे शान्त करने के निमित्त वारुण अस्त्र छोड़ा । कर्ण के उस अस्त्र के प्रभाव से आकाश में एकाएक मेघ घिर आये और उनके जल बरसाने से वह अर्जुन के अस्त्र की अग्नि बुझ गई । उस समय मेघ जाल से आकाश और सब दिशाएँ व्याप्त होने के कारण घना अँधेरा छा गया॥१९।२२॥अर्जुन ने स्फूर्ति से वायव्य अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्र के प्रभाव से उत्पन्न वायु ने क्षण भर में मेघों को छिन्न भिन्न कर दिया । अब दुर्द्धर्ष वीर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष, उसकी प्रत्यञ्चा और बाणों को अभि-

ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावम् ।
गाण्डीवं ज्यां विशिखांश्चानुमन्त्र्य धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ २३ ॥
ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्धचन्द्रा नालीकनाराचवराहकर्णाः ।
गाण्डीवतः प्रादुरासन्सुतीक्ष्णाः सहस्रशो वज्रसमानवेगाः ॥ २४ ॥
ते कर्णमासाद्य महाप्रभावाः सुतेजना गार्ध्रपत्राः सुवेगाः ।
गात्रेषु सर्वेषु हयेषु चापि शरासने युगचक्रे ध्वजे च ॥ २५ ॥
निर्भिद्य तूर्णं विविशुः सुतीक्ष्णास्तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते ।
शराचिताङ्गो रुधिरार्द्रगात्रः कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः ॥ २६ ॥
दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा ।
महेन्द्रशस्त्राभिमुखान्विमुक्तांश्छित्त्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसङ्घान् ॥ २७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ जघान सङ्ख्ये रथनागपत्तीन् ।
अमृष्यमाणश्च महेन्द्रकर्मा महारणे भार्गवास्त्रप्रतापात् ॥ २८ ॥
पञ्चालानां प्रवरांश्चापि योधान्क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी ।
बाणैर्विव्याधाहवे सुप्रमुक्तैः शिलाशितै रुक्मपुङ्खैः प्रसह्य ॥ २९ ॥
तत्पञ्चालाः सोमकाश्चापि राजन्कर्णेनाजौ पीड्यमानाः शरौघैः ।
क्रोधाविष्टा विव्यधुस्तं समन्तात्तीक्ष्णैर्बाणैः सूतपुत्रं समेताः ॥ ३० ॥
तान्सूतपुत्रो निजघान बाणैः पञ्चालानां रथनागाश्वसङ्घान् ।
अभ्यर्दयद्बाणगणैः प्रसह्य विध्वा हर्षात्सङ्गरे सूतपुत्रः ॥ ३१ ॥
ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ।
क्रुद्धेन सिंहेन यथेभयूथा महावने भीमबलेन तद्वत् ॥ ३२ ॥

मन्त्रित करके इन्द्र का प्रिय वज्रास्त्र प्रकट किया। अति कुपित अर्जुन के उस अस्त्र के प्रभाव से, उनके गाण्डीव धनुष से, निरन्तर असंख्य तीक्ष्ण वज्र तुल्य क्षुरप्र, अञ्जलिक, अर्धचन्द्र, नालीक, नाराच और वराहकर्ण बाण निकलने लगे॥२३।२४॥वे वज्रसदृश बाण कर्ण के शरीर, घोड़े, धनुष, रथ, युग, चक्र, ध्वजा आदि को चीरते हुए, गरुड के भय से भागे हुए सर्पों के समान, पृथ्वी में प्रवेश करने लगे। महारथी कर्ण अर्जुन के बाणों से व्याप्त हो गये, उनका शरीर रक्त से भीग गया। तब क्रोध से लाल हो रही आँखें निकालकर, महासागर के गर्जन शब्द के समान गम्भीर शब्द करनेवाले धनुष को झुकाकर, वीर कर्ण ने घोर भार्गवास्त्र प्रकट किया। उस अस्त्र के प्रभाव से अर्जुन के अस्त्र का प्रभाव नष्ट हो गया॥२५।२७॥ और पाण्डवपक्ष के असंख्य मनुष्य, हाथी और घोड़े मरने लगे। कर्ण कुपित होकर सुवर्णपुङ्ख युक्त तीक्ष्ण अमोघ बाणों से पाञ्चाल और सोमकगण के प्रधान-प्रधान योद्धाओं को मारने लगे॥२८।२९॥वे भी कर्ण के बाणों से अत्यन्त पीडित होकर, क्रोध करके, तीक्ष्ण बाण बरसाकर चारों ओर से कर्ण को घायल करने लगे। पराक्रमी कर्ण भी उत्साहपूर्वक बाण बरसाकर बलपूर्वक पाञ्चाल सेना के रथी, गजारोही और अश्वारोही सैनिकों को मारने और घायल करने लगे। वे, वन में महाबली क्रुद्ध केसरी के मारे हुए हाथियों के

पञ्चालानां प्रवरान्संनिहत्य प्रसह्य योधानखिलानदीनः ।
ततः स राजन्विरराज कर्णो यथाम्बरे भास्कर उग्ररश्मिः ॥ ३३ ॥
कर्णस्य मत्वा तु जयं त्वदीयाः परां मुदं सिंहनादांश्च चक्रुः ।
सर्वे ह्यमन्यन्त भृशाहतौ च कर्णेन कृष्णाविति कौरवेन्द्र ॥ ३४ ॥
तत्तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य कर्णस्य वीर्यं च परैरसह्यम् ।
दृष्ट्वा च कर्णेन धनञ्जयस्य तथाजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥ ३५ ॥
ततस्त्वमर्षी क्रोधसन्दीप्तनेत्रो वातात्मजः पाणिना पाणिमाच्छेत् ।
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्धममर्षितो निःश्वसञ्जातमन्युः ॥ ३६ ॥
कथं नु पापोऽयमपेतधर्मः सूतात्मजः समरेऽद्य प्रसह्य ।
पञ्चालानां योधमुख्याननेकान्निजघ्निवांस्तव जिष्णो समक्षम् ॥ ३७ ॥
पूर्वं देवैरजितं कालकेयैः साक्षात्स्थाणोर्बाहुसंस्पर्शमेत्य ।
कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटिन्नथेषुभिर्दशभिः प्रागविध्यत् ॥ ३८ ॥
त्वया क्षिप्तांश्चाग्रसद्बाणसङ्घानाश्चर्यमेतत्प्रतिभाति मेऽद्य ।
कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं यथाब्रवीत्षण्ढतिलान्स्म वाचः ॥ ३९ ॥
रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा ।
संस्मृत्य सर्वं तदिहाद्य पाप जह्याशु कर्णं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४० ॥
कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटिन्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः ।
यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषीर्ग्रासं ददत्खाण्डवे पावकाय ॥ ४१ ॥
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्वमहं चैनं गदया पोथयिष्ये ।
अथाब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थं दृष्ट्वा रथेषून्प्रतिहन्यमानान् ॥ ४२ ॥

समान, छिन्न-भिन्न और प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिरने लगे॥३०।३२॥महारथी कर्ण इस प्रकार अपने बल वीर्य और अस्त्र ज्ञान के प्रभाव से पाञ्चाल सेना के प्रधान प्रधान वीरों को मारकर आकाश में स्थित प्रचण्ड किरण युक्त सूर्य के समान शोभित हुए। हे राजेन्द्र! उस समय कौरवपक्ष के योद्धा कर्ण को विजयी जानकर प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करने लगे। उन्होंने समझा कि महारथी कर्ण ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को तेज प्रहार और अस्त्र से विमुख कर दिया॥३३। ३४॥उस समय महाबली भीमसेन महारथी कर्ण के पराक्रम को अत्यन्त असह्य और अर्जुन के बाणों तथा अस्त्रों को व्यर्थ देखकर, क्रोध से लाल नेत्र करके, हाथ से हाथ मलते और बार बार लम्बे श्वास लेते हुए कहने लगे—हे अर्जुन! इस समय यह नृशंस अधर्मी सूतपुत्र तुम्हारे सम्मुख ही कैसे बलपूर्वक प्रधान-प्रधान पाञ्चाल वीरों को मार रहा है? पहले महादेवजी के प्रभाव से दुर्जय कालकेय, निवातकवच आदि असुर भी तुमको नहीं हरा सके थे। आज यह सूतपुत्र कैसे तुमको दस बाण मारकर पीड़ित कर सका? ॥३५।३८॥यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि कर्ण तुम्हारे सभी बाणों को व्यर्थ कर रहा है। हे धनञ्जय! इस दुर्मति कर्ण ने द्रौपदी का जैसा अपमान किया था और कुरु सभा में षण्ढतिल कहकर हमारा जैसा उपहास किया था, वह सब स्मरण

अमीमृदत्सर्वपातेऽद्य कर्णो ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भो किरीटिन् ।
स वीर किं मुह्यसि नावधत्से नदन्त्येते कुरवः सम्प्रहृष्टाः ॥ ४३ ॥
कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे तवास्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम् ।
यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः ॥ ४४ ॥
दम्भोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु तया धृत्या जहि कर्णं त्वमद्य ।
अनेन चास्य क्षुरनेमिनाद्य सञ्छिन्धि मूर्धानमरेः प्रसह्य ॥ ४५ ॥
मया विसृष्टेन सुदर्शनेन वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः ।
किरातरूपी भगवान्सुधृत्या त्वया महात्मा परितोषितोऽभूत् ॥ ४६ ॥
तां त्वं पुनर्वीर धृतिं गृहीत्वा सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम् ।
ततो महीं सागरमेखलां त्वं सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम् ॥ ४७ ॥
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसङ्घां यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम् ।
स एवमुक्तोऽतिबलो महात्मा चकार बुद्धिं हि वधाय सौतेः ॥ ४८ ॥
स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां स्मृत्वा तथात्मानमवेक्ष्य सर्वम् ।
इहात्मनश्चागमने विदित्वा प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥ ४९ ॥
प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः ।
तन्मेऽनुजानातु भवान्सुराश्च ब्रह्मा भवो वेदविदश्च सर्वे ॥ ५० ॥

करके तुम शीघ्र ही इसको मारो। शत्रु वध के विषय में क्यों उपेक्षा कर रहे हो ? यह लापरवाही या सुस्ती का समय नहीं है। तुमने पहले खाण्डव वन में अग्नि देव को तृप्त करने के निमित्त जिस धैर्य से वहाँ के सब प्राणियों को मारा और परास्त किया था, उसी धैर्य को धारण करके इस समय कर्ण को मारो। तुम न मारोगे, तो मैं अभी गदा से इसका मस्तक चूर्ण कर दूँगा॥३९।४२॥इसी समय श्रीकृष्ण ने भी कर्ण के प्रभाव से अर्जुन के अमोघ अस्त्र-युक्त बाणों को व्यर्थ होते देखकर, उन्हें उत्साहित करने के निमित्त, यों कहा—हे अर्जुन! क्या कारण है कि कर्ण तुम्हारे सम्मुख ही अपने अस्त्रों और बाणों से तुम्हारे अस्त्रों और बाणों को व्यर्थ कर रहा है ? तुम इस समय मोहित क्यों हो रहे हो ? तुम क्या नहीं देखते कि तुम्हारे अस्त्रों को कर्ण के अस्त्र बल से नष्ट होते देख कर सब कौरव प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करते हुए कर्ण को सम्मानित और उत्साहित कर रहे हैं ? तुम मन लगाकर कर्ण को मारने का प्रयत्न क्यों नहीं करते ? तुमने जिस धैर्य से युग युग में तमोगुणी घोर असुरों को और बलगर्वित दाम्भिक राक्षसों को मारा है, जिस धैर्य से किरात रूप भगवान् शङ्कर से युद्ध करके उनको सन्तुष्ट किया है, उसी धैर्य से इस अनुचर सहायक-गण सहित कर्ण को इस समय मारो॥४२।४५॥तुम कर्ण वध के निमित्त और भी श्रेष्ठ अस्त्र छोड़ सकते हो, अथवा मेरे दिये हुए इस तीक्ष्ण पैने सुदर्शन चक्र को लो और नमुचि को जैसे इन्द्र ने मारा था, वैसे ही शत्रु का सिर काट डालो। इस प्रकार शीघ्र शत्रु को मारकर यह समृद्ध नगर-ग्राम युक्त समुद्रों सहित पृथ्वी और उसका निष्कण्टक साम्राज्य धर्मराज को अर्पण करके स्वयं अतुल यश प्राप्त करो॥४६।४८॥हे महाराज! भीमसेन और श्रीकृष्ण के यों प्रेरणा करने पर वीर अर्जुन कर्ण को मारने के निमित्त प्रयत्नशील हुए। अपने असाधारण पराक्रम और यथार्थ रूप को तथा पृथ्वीतल पर अपने जन्म लेने के कारण को स्मरण

इत्युच्य देवं स तु सव्यसाची नमस्कृत्वा ब्रह्मणे सोऽमितात्मा ।
तदुत्तमं ब्राह्ममसह्यमस्त्रं प्रादुश्चक्रे मनसा यद्विधेयम् ॥ ५१ ॥
तदस्य हत्वा विरराज कर्णो मुक्त्वा शरान्मेघ इवाम्बुधाराः ।
समीक्ष्य कर्णेन किरीटिनस्तु तथाजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥ ५२ ॥
ततोऽमर्षी बलवान्क्रोधदीप्तो भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसन्धम् ।
ननु त्वाहुर्वेदितारं महास्त्रं ब्राह्मं विधेयं परमं जनास्तत् ॥ ५३ ॥
तस्मादन्यद्योजय सव्यसाचिन्निति स्मोक्तोऽयोजयत्सव्यसाची ।
ततो दिशः प्रदिशश्चापि सर्वाः समावृणोत्सायकैर्भूरितेजाः ॥ ५४ ॥
गाण्डीवमुक्तैर्भुजगैरिवोग्रैर्दिवाकरांशुप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ।
सृष्टास्तु बाणा भरतर्षभेण शतं शतानीव सुवर्णपुङ्खाः ॥ ५५ ॥
प्राच्छादयन्कर्णरथं क्षणेन युगान्तवह्न्यर्ककरप्रकाशाः ।
ततश्च शूलानि परश्वधानि चक्राणि नाराचशतानि चैव ॥ ५६ ॥
निश्चक्रमुर्घोरतराणि योधास्ततो ह्यहन्यन्त समन्ततोऽपि ।
छिन्नं शिरः कस्यचिदाजिमध्ये पपात योधस्य परस्य कायात् ॥ ५७ ॥
भयेन सोऽप्याशु पपात भूमावन्यः प्रणष्टः पतितं विलोक्य ।
अन्यस्य सासिर्निपपात कृत्तो योधस्य बाहुः करिहस्ततुल्यः ॥ ५८ ॥
अन्यस्य सव्यः सह वर्मणा च क्षुरप्रकृत्तः पतितो धरण्याम् ।
एवं समस्तानपि योधमुख्यान्विध्वंसयामास किरीटमाली ॥ ५९ ॥

करके अर्जुन ने कहा—हे यादवश्रेष्ठ ! अब मैं जगत् के कल्याण और कर्ण के वध के निमित्त अत्यन्त भयानक अस्त्र का प्रयोग करता हूँ, आप मुझे उसके निमित्त अनुमति दें । मैं उस अस्त्र के प्रयोग के निमित्त ब्रह्मा, शङ्कर, वेदज्ञ ब्राह्मणगण और देवगण आदि से भी अनुमति चाहता हूँ॥४८।५०॥हे राजेन्द्र ! महाबली अर्जुनने भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम कर,मनमें ध्यान करके,अत्यन्त घोर दुस्सह ब्रह्मास्त्र प्रकट किया । उस समय महावीर कर्ण ने मेघ की जलधारा के समान निरन्तर अस्त्र युक्त बाण बरसाकर अर्जुन के उस अस्त्र को शान्त कर दिया॥५१।५२॥पराक्रमी भीमसेन यह देखकर क्रोध से अधीर हो उठे । उन्होंने कहा—हे अर्जुन! लोग तुमको ब्रह्मास्त्र जाननेवाला अद्वितीय योद्धा कहते हैं । इसलिए तुम फिर अनिवार्य ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करो । यह सुनकर महावीर अर्जुन ने कुपित होकर अनिवार्य ब्राह्म अस्त्र प्रकट किया । उस समय गाण्डीव धनुष से सर्प तुल्य, सूर्य किरणों के समान चमकीले, अस्त्र-युक्त सैकड़ों तीक्ष्ण बाण एक साथ छूटने लगे और उन प्रलय सूर्य की किरणों के समान बाणों ने दिशा-उपदिशाओं को छा लिया॥५२।५४॥देखते ही देखते कर्ण का रथ उन बाणों से घिर गया । अर्जुन के धनुष से—अस्त्र के प्रभाव से—असंख्य नाराच, शूल, परशु और चक्र निकल निकलकर चारों ओर कौरव सेना पर गिरने और उसे नष्ट करने लगे॥५५।५७॥उस समय अर्जुन के बाणों से योद्धाओं के सिर कटने और उनके धड़ पृथ्वी पर गिरते देखकर बहुत से सैनिक भय से ही व्याकुल होकर मृत्यु को प्राप्त हो गये । किसी वीर का हाथी की सूँड़ के समान

शरैः शरीरान्तकरैः सुघोरैर्दौर्योधनं सैन्यमशेषमेव ।
वैकर्तनेनापि तथाजिमध्ये सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः ॥ ६० ॥
ते घोषिणः पाण्डवमभ्युपेयुः पर्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः ।
ततः सकृष्णं च किरीटिनं च वृकोदरं चाप्रतिमप्रभावः ॥ ६१
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य ननाद घोरं महता स्वरेण ।
सकर्णबाणाभिहतः किरीटि भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च ॥
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः शरान्दशाष्टौ च समुद्ववर्ह ।
स केतुमेकेन शरेण विध्वा शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ।
ततः स मुक्तैर्दशभिर्जघान सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम्
स राजपुत्रो विशिरा विबाहुर्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः
हतो रथाग्रादपतत्स रुग्णः परश्वधैः शाल इवावकृत्तः
पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विध्वा
चतु शतान्द्विरदान्सायुधान्वै हत्वा रथानष्टशताञ्जघान
सहस्रशोऽश्वांश्च पुनः ससादीनष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान्
कर्णं ससूतं सरथं सकेतुमदृश्यमञ्जोगतिभिः प्रचक्रे
अथाक्रोशन्कुरवो वध्यमाना धनञ्जयेनाधिरथिं समन्तात्
मुञ्चाभिविध्यार्जुनमाशु कर्ण बाणैः पुरा हन्ति कुरून्सम .
स चोदितः सर्वयत्नेन कर्णो मुमोच बाणान्सुबहूनभीक्ष्णम्

दाहना हाथ, मय खड्ग के, कटकर गिर पड़ा और किसी योद्धा का बायाँ हाथ क्षुरप्र बाण से, मय ढाल के, कटकर धरती पर लोटने लगा। हे राजेन्द्र! महावीर अर्जुन इस प्रकार प्राणनाशक भयानक बाणों से दुर्योधन की सेना के जवानों और योद्धाओं को मारने लगे॥५७।५९॥इसी समय महारथी कर्ण भी मेघ के समान जलधारा के समान असंख्य बाण छोड़ने लगे। अब उन्होंने भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्ण को तीन तीन बाणों से घायल करके घोर सिंहनाद किया ॥५९।६२॥अर्जुन स्वयं घायल होकर, श्रीकृष्ण और भीमसेन की ओर देखकर, क्रोध से विह्वल हो उठे। वे कर्ण के प्रहार को न सह सके। उन्होंने एक साथ अठारह बाण छोड़े। तीन बाण कर्ण को, चार बाण को और एक बाण कर्ण की ध्वजा पर मारकर दस बाण, कर्ण के सहायक सु नामक राजपुत्र को मारे। वह काटे गये शाल वृक्ष के समान उसका सिर कट गया, हाथ ध्वजा, सारथी, घोड़े आदि सब फिर पराक्रमी अर्जुन ने अपनी ... क्रम से तीन, आठ, दो, चार को मारे। इसके पश्चात् चार सौ सशस्त्र रथी योद्धाओं को, घोड़ों को और आठ सहस्र में अर्जुन ने मारकर गिरा दि और ध्वजा भी अर्जुन के अदृश्य सी हो गई॥६५।६७॥ पीड़ित होकर कौरवगण ...

ते पाण्डुपञ्चालगणान्निजघ्नुर्मर्मच्छिदः शोणितपांसुदिग्धा ।
तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ॥ ६९ ॥
निजघ्नतुश्चाहितसैन्यमुग्रमन्योन्यमप्यस्त्रविदौ महास्त्रैः ।
अथोपयानस्त्वरितो दिदृक्षुर्मन्त्रौषधीभिर्निरुजो विशल्यः ॥ ७० ॥
कृतः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठैर्युधिष्ठिरस्तत्र सुवर्णवर्मा ।
तथोपयातं युधि धर्मराजं दृष्ट्वा मुदा सर्वभूतान्यनन्दन् ॥ ७१ ॥
राहोर्विमुक्तं विमलं समग्रं चन्द्रं यथैवाभ्युदितं तथैव ।
दृष्ट्वा तु मुख्यावथ युध्यमानौ दिदृक्षवः शूरवरावरिघ्नौ ॥ ७२ ॥
कर्णं च पार्थं च विलोकयन्तः खस्था महीस्थाश्च जनाऽवतस्थुः ।
स कार्मुकज्यातलसंनिपात: सुमुक्तबाणस्तुमुलो बभूव ॥ ७३ ॥
घ्नतोस्तथान्योन्यमिषुप्रवेकैर्धनञ्जयस्याधिरथेश्च तत्र ।
ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा सुघोषमच्छिद्यत पाण्डवस्य ॥ ७४ ॥
तस्मिन्क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः समाचिनोत्क्षुद्रकाणां शतेन ।
निर्मुक्तसर्पप्रतिमैरभीक्ष्णं तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः ॥ ७५ ॥
षष्ट्या बिभेदाशु च वासुदेवमनन्तरं फाल्गुनमष्टभिश्च ।
पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद मरुत्सुतं चायुतशः शरास्त्यैः ॥ ७६ ॥
कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च पार्थानुजान्सोमकान्पातयंश्च ।
प्राच्छादयंस्ते विशिखैः पृषत्कैर्जीमूतसङ्घा नभसीव सूर्यम् ॥ ७७ ॥

वीरश्रेष्ठ कर्ण ! तुम निरन्तर बाण मारकर शीघ्र अर्जुन को मारो, नहीं तो ये क्षण भर में ही सब कौरवपक्ष के वीरों का नाश कर डालेंगे। भय विह्वल कौरवों के ये वचन सुनकर वीर कर्ण यत्नपूर्वक मर्मभेदी बाण बरसाने और पाञ्चालों तथा पाण्डवदल के अन्य वीरों को मारने लगे॥६७।६९॥हे राजेन्द्र ! धनुर्धरश्रेष्ठ महा वर्णी वे दोनों वीर इस प्रकार अस्त्र युक्त बाणों से एक दूसरे को और शत्रुपक्ष के सैनिकों को पीड़ित करने लगे। चिकित्सकों के यत्न और मन्त्र तथा औषधों के प्रभाव से सुस्थ और विशल्य होकर धर्मराज युधिष्ठिर भी, इसी मध्य में, कर्ण और अर्जुन का संग्राम देखने के निमित्त स्वर्ण का कवच पहनकर रणभूमि में आ गये। सब लोग उनको, राहु के ग्रास से छूटे हुए पूर्णचन्द्र के समान, वहाँ आते देखकर बड़े प्रसन्न हुए॥६९।७२॥हे राजेन्द्र ! उस समय स्वर्गवासी और पृथ्वीतल के रहनेवाले लोग एकटक कर्ण और अर्जुन के उस घोर और अद्भुत युद्ध को देखने लगे। परस्पर प्रहार कर रहे वे दोनों वीर उस समय निरन्तर प्रत्यञ्चा खींचने और तल ध्वनि करते हुए तरह तरह के तीक्ष्ण बाण छोड़कर अपना रणकौशल और पौरुष दिखा रहे थे। इसी मध्य में अर्जुन के पूर्ण बल से बार-बार खींचने के कारण गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा टूट गई और उससे उच्च घोर शब्द गूँज उठा॥७२।७४॥ कर्ण ने यह अवसर पाकर सैकड़ों क्षुद्रक बाण अर्जुन को मारे और फिर केंचुल छोड़े हुए सर्प के समान, तीक्ष्ण, तेल से स्वच्छ किये गये, कङ्कपत्र से भित साठ बाण श्रीकृष्ण को मारकर आठ बाण वीर अर्जुन को मारे। फिर वे भीमसेन को मर्मभेदी बाण मारकर

आगच्छतस्तान्विशिखैरनेकैर्व्यष्टम्भयत्सूतपुत्रः कृतास्त्रः ।
तैरस्तमस्त्रं विनिहत्य सर्वं जघान तेषां रथवाजिनागान् ॥ ७८ ॥
तथा तु सैन्यप्रवरांश्च राजन्नभ्यर्दयन्मार्गणैः सूतपुत्रः ।
ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ॥ ७९ ॥
सिंहेन क्रुद्धेन यथा श्वयूथ्या महाबला भीमबलेन तद्वत् ।
पुनश्च पञ्चालवरास्तथान्ये तदन्तरे कर्णधनञ्जयाभ्याम् ॥ ८० ॥
प्रस्कन्दन्तो बलिना साधुमुक्तैः कर्णेन बाणैर्निहताः प्रसह्य ।
जयं मत्वा विपुलं वै त्वदीयास्तलान्निजघ्नुः सिंहनादांश्च नेदुः ॥ ८१ ॥
सर्वे ह्यमन्यन्त वशे कृतौ तौ कर्णेन कृष्णाविति ते विमर्दे ।
ततो धनुर्ज्यामवनाम्य शीघ्रं शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य ॥ ८२ ॥
सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो रणे पार्थः कौरवान्प्रत्यगृह्णात् ।
ज्यां चानुमृज्याभ्यहनत्तलत्रे बाणान्धकारं सहसा च चक्रे ॥ ८३ ॥
कर्णं च शल्यं च कुरूंश्च सर्वान्बाणैरविध्यत्प्रसभं किरीटी ।
न पक्षिणो बभ्रमुरन्तरिक्षे तदा महास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥ ८४ ॥
वायुर्वियत्स्थैरीरितो भूतसङ्घैरुवाह दिव्यः सुरभिस्तदानीम् ।
शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कैर्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत् ॥ ८५ ॥
ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तैर्विध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविध्यत् ।
स पार्थबाणासनवेगमुक्तैर्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ८६ ॥

अर्जुन की ध्वजा पर बाण बरसाते हुए उनके अनुगामी सोमकों का संहार करने लगे॥७४।७७॥उस समय सोमकगण क्रोध करके दौड़े और मेघ जैसे सूर्य-मण्डल को ढक लेते हैं, वैसे ही कर्ण के ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे। अस्त्रविद्या विशारद कर्ण ने क्षण भर में अपने तीक्ष्ण बाणों से उन्हें रोककर चेष्टारहित कर दिया, उनकी की हुई शस्त्र-वर्षा को व्यर्थ कर दिया और उनके हाथी घोड़े रथ आदि वाहनों को मार गिराया। उनके प्रधान-प्रधान सैनिक कर्ण के बाणों से पीड़ित और विह्वल होकर, सिंह के मारे हुए कुत्तों के समान, आर्तनाद करते हुए मर मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। कर्ण ने वेग से आये हुए पाञ्चालों को तीक्ष्ण बाणों से मारकर गिरा दिया॥७८।८०॥यह देख अपने को रण में विजयी जानकर कौरव लोग तलध्वनि और सिंहनाद करने लगे। उस समय कर्ण का असह्य पराक्रम देखकर सभी को मालूम पड़ने लगा कि अब श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्ण से परास्त हुए। कर्ण के बाणों से अत्यन्त घायल पराक्रमी अर्जुन ने क्रोध करके स्फूर्ति के साथ गाण्डीव को झुकाकर उस पर अपने बाहुबल को सँभाल सकनेवाली दृढ़ प्रत्यञ्चा क्षण भर में चढ़ा दी। धनुष की डोरी को हाथ से साफ करके क्रोध से अधीर हो रहे अर्जुन ने पल भर में अपने बाणों से कर्ण के बाणों को काट डाला॥८१।८३॥और फिर हँसकर सुतीक्ष्ण अस्त्र युक्त बाणों से कर्ण, शल्य तथा अन्य कौरवों को पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। उस समय अर्जुन के अस्त्र और बाणों के प्रभाव से आकाश में अँधेरा छा गया और पक्षियों का उड़ना भी बंद हो गया। आकाश में स्थित देवता अर्जुन के श्रम-निवारण के निमित्त सुगन्धित पवन चलाने लगे। महावीर अर्जुन ने हँसकर

विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः ।
प्रक्रीडमानोऽथ श्मशानमध्ये रौद्रे मुहूर्ते रुधिरार्द्रगात्रः ॥ ८७ ॥
ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं शरैर्बिभेदाधिरथिर्धनञ्जयम् ।
शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान्प्रवेशयामास जिघांसयाच्युतम् ॥ ८८ ॥
ते वर्म भित्त्वा पुरुषोत्तमस्य सुवर्णचित्रा न्यपतन्सुमुक्ताः ।
वेगेन गामाविविशुः सुवेगाः स्नात्वा च कर्णाद्विमुखाः प्रतीयुः ॥ ८९ ॥
तान्पञ्चभल्लैर्दशभिः सुमुक्तैस्त्रिधा त्रिधैकैकमथोच्चकर्त ।
धनञ्जयास्त्रैर्न्यपतन्पृथिव्यां महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥ ९० ॥
ततः प्रजज्वाल किरीटमाली क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः ।
तथा विनुन्नाङ्गमवेक्ष्य कृष्णं सर्वेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः ॥ ९१ ॥
स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः ।
मर्मस्वविध्यत्स चचाल दुःखाद्दैवादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः ॥ ९२ ॥
ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च रवेः प्रभा कर्णरथश्च राजन् ।
अदृश्यमासीत्कुपिते धनञ्जये तुषारनीहारवृतं यथा नभः ॥ ९३ ॥
स चक्ररक्षानथ पादरक्षान्पुरः सरान्पृष्ठगोपांश्च सर्वान् ।
दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नः समुद्यतान्सरथान्सारभूतान् ॥ ९४ ॥

शल्य के कवच में दस बाण मारे और फिर कर्ण को क्रम से बारह और सात बाणों से घायल किया। अर्जुन के धनुष से बड़े वेग से निकले हुए बाणों की गहरी चोट से कर्ण का शरीर विदीर्ण हो गया और रक्त बहने लगा। उस समय वे प्रलय के समय महाश्मशान में स्थित रक्त-चर्चित रुद्रदेव के समान जान पड़ने लगे ॥८४।८७॥वीर कर्ण ने इन्द्र सदृश अर्जुन को तीन बाणों से अत्यन्त घायल करके श्रीकृष्ण को मार डालने के अभिप्राय से उनके ऊपर विषैले सर्प के समान भयानक पाँच बाण छोड़े। वे पाँचों बाण वास्तव में तक्षक तनय अश्वसेन नामक महानाग के पक्ष के घोर सर्प थे। वे कर्ण के धनुष से छूटकर श्रीकृष्ण के सुवर्ण-भूषित कवच को तोड़ते और शरीर को फाड़ते हुए वेग से पाताल में प्रवेश कर गये और वहाँ भोगवती गङ्गा के जल में स्नान करके जब फिर शीघ्रता से कर्ण के समीप आने लगे तब अर्जुन ने राह में ही दस भल्ल बाणों से एक-एकके तीन तीन टुकड़े कर डाले॥८८।९०॥इससे वे गरुड़ के काटे हुए सर्पों के समान पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय श्रीकृष्ण को कर्ण के नाग बाणों से पीड़ित और अत्यन्त घायल देखकर अर्जुन क्रोध से, सूखी घास को जलाने के निमित्त उद्यत अग्नि के समान, प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने कान तक भरपूर खींचकर छोड़े गये, अग्नि-सदृश, शरीरान्त कर डालनेवाले अनेक बाण ताक-ताककर कर्ण को मारे। उन बाणों की चोट से उत्पन्न क्लेश के कारण कर्ण काँप उठे; परन्तु वे अत्यन्त धैर्य धारण करने के कारण रथ से गिरे नहीं। हे राजेन्द्र! उस समय महापराक्रमी अर्जुन क्रुद्ध होकर बाण बरसाने लगे, जिनसे सब दिशा, उपदिशा, सूर्य का प्रकाश और कर्ण का रथ छिप गया। उन सुवर्ण पुङ्ख चित्रित बाणों से अर्जुन ने कर्ण के मर्मस्थलों और अङ्ग प्रत्यङ्गों को व्याप्त कर दिया। ऐसा जान पड़ने लगा कि कर्ण का रथ बरस रही बर्फ से ढका हुआ पर्वत है। अकेले महावीर अर्जुन ने इसी समय दुर्यो

द्विसाहस्रान्समरे सव्यसाची कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम ।
क्षणेन सर्वान्सरथाश्वसूतान्निनाय राजन्क्षयमेकवीरः ॥ ९५ ॥
ततोऽपलायन्त विहाय कर्णं तवात्मजाः कुरवो येऽवशिष्टाः ।
हतानपाकीर्य शरक्षतांश्च लालप्यमानांस्तनयान्पितॄंश्च ॥ ९६ ॥
स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्या भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः ।
न विव्यथे भारत तत्र कर्णः प्रहृष्ट एवार्जुनमभ्यधावत् ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे ऊननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

धन के भेजे हुए कर्ण के पार्श्वरक्षक, चक्ररक्षक, पादरक्षक, पृष्ठरक्षक और अग्रगामी योद्धाओं को—जो दो सहस्र थे—मय घोड़े, सारथी और रथ के, क्षण भर में मार गिराया॥९१।९४॥उनमें से जो लोग अर्जुन के बाणों के मारे भय विह्वल होकर भागे, वे भी नहीं बचे । तब आपके पुत्र और बचे हुए कौरवदल के योद्धा कर्ण को छोड़कर आर्तनाद करते हुए भागे पिता पुत्र को और पुत्र पिता को अर्जुन के बाणों से घायल होते, मरते और आर्तनाद करते देखकर भी, उसे छोड़कर, भागने लगा । अर्जुन उन सबको अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से भगाने और पीड़ित करने लगे । कर्ण स्वयं अर्जुन के बाणों से घायल थे, तथापि रणभूमि से नहीं हटे । वे अर्जुन के रथ की ओर वेग से चले॥९५।९७॥

कर्णपर्व का नवासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८९ ॥

अथ नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

सञ्जय उवाच—ततः प्रयाताः शरपातमात्रमवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः ।
विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ताद्धनञ्जयास्त्रं समुदीर्यमाणम् ॥ १ ॥
तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो वियद्गतं घोरतरैः शरैस्तत् ।
क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं वधाय कर्णस्य महाविमर्दे ॥ २ ॥
उदीर्यमाणं स्म कुरून्दहन्तं सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैर्ममर्द ।
कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं विस्फारयित्वा विसृजञ्छरौघान् ॥ ३ ॥
रामादुपात्तेन महामहिम्ना ह्याथर्वणेनारिविनाशनेन ।
तदर्जुनास्त्रं व्यधमद्दहन्तं कर्णस्तु बाणैर्निशितैर्महात्मा ॥ ४ ॥
ततो विमर्दः सुमहान्बभूव तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन् ।
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कैर्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः ॥ ५ ॥

नब्बे अध्याय ॥ ९० ॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! महावीर अर्जुन के भयानक अस्त्र और बाण वर्षा के प्रभाव से कौरवगण भागकर दूर जा खड़े हुए और देखने लगे कि अर्जुन का अस्त्र बिजली के समान प्रकाश करता हुआ चारों ओर फैल रहा है । तब वीर कर्ण ने अपने वध के निमित्त वधत अर्जुन के अस्त्र युक्त बाणों से कौरवों को पीड़ित और विमुख होते देखकर, सुदृढ़ प्रत्यञ्चा से युक्त अपना विजय नामक श्रेष्ठ धनुष चढ़ाकर, सुवर्णपुङ्ख बाणों को भार्गव के दिये हुए शत्रुनाशन अमोघ आथर्वण अस्त्र से युक्त किया और उन्हीं बाणों से अर्जुन के उस दिव्य अस्त्र का प्रभाव नष्ट कर दिया । अब वीर कर्ण अनेक अस्त्र युक्त तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को घायल

तत्रास्त्रसङ्घातसमावृतं तदा बभूव राजंस्तुमुलं स्म सर्वतः ।
तत्कर्णपार्थौ शरवृष्टिसङ्घैर्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ ६ ॥
ततो जालं बाणमयं महान्तं सर्वेऽद्राक्षुः कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यं च भूतं ददृशुस्तदा ते बाणान्धकारे तुमुलेऽथ किंचित् ॥ ७ ॥
तौ सन्दधानावनिशं च राजन्समस्यन्तौ चापि शराननेकान् ।
सन्दर्शयेतां युधि मार्गान्विचित्रान्धनुर्धरौ तौ विविधैः कृतास्त्रैः ॥ ८ ॥
तयोरेवं युध्यतोराजिमध्ये सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित् ।
पार्थः कदाचित्त्वधिकः किरीटी वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा तयोस्तं युधि सम्प्रहारं परस्परस्यान्तरमीक्षमाणयोः ।
घोरं तयोर्दुर्विषहं रणेऽन्यैर्योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन् ॥ १० ॥
ततो भूतान्यन्तरिक्षस्थितानि तौ कर्णपार्थौ प्रशशंसुर्नरेन्द्र ।
भोः कर्ण साध्वर्जुन साधु चेति वियत्सु वाणी श्रूयते सर्वतोऽपि ॥ ११ ॥
तस्मिन्विमर्दे रथवाजिनागैस्तदाभिघातैर्दलिते हि भूतले ।
ततस्तु पातालतले शयानो नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२ ॥
राजंस्तदा खाण्डवदाहमुक्तो विवेश कोपाद्वसुधातलं यः ।
अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन सन्दृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३ ॥

करने लगे॥१।४॥जैसे दो मस्त हाथी परस्पर दाँतों से प्रहार करें, वैसे ही अर्जुन और कर्ण एक दूसरे को बाणों से पीड़ित करते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। दोनों ने अस्त्र-बलसे बाण बरसाकर रणभूमि के आकाश मण्डल को व्याप्त कर दिया। घोर बाण-वर्षा से चारों ओर अँधेरा हो जाने पर कौरवों और सोमकों को बाणों के अतिरिक्त और कोई वस्तु या प्राणी नहीं सूझ पड़ता था। दोनों धनुर्द्धर वीर निरन्तर तीक्ष्ण बाणों को धनुष पर चढ़ाते और छोड़ते हुए युद्ध कौशल, अस्त्र-बल और विविध विचित्र गतियाँ दिखला रहे थे ॥५।८॥उस भयानक युद्धमें बल वीर्य,पौरुष और अस्त्र-माया के प्रभाव से कभी कर्ण अर्जुन से बढ़ जाते थे और कभी अर्जुन कर्ण से बढ़ जाते थे। उन एक दूसरे के छिद्र (असावधानता या प्रहार करने के अवसर) को खोज रहे महावीरों का महाघोर और औरों के निमित्त असह्य संग्राम देखने से अन्य वीरों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय आकाश में स्थित सब प्राणी कर्ण और अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। आकाश में "हे कर्ण, शाबाश !" "हे अर्जुन, शाबाश !" ऐसी वाणियाँ चारों ओर सुनाई पड़ने लगीं॥९।११॥अत्यन्त घोर युद्ध होने के कारण इधर उधर दौड़ रहे रथों, हाथियों और घोड़ों के द्वारा युद्धभूमि विदलित सी हो उठी। हे राजेन्द्र ! पहले खाण्डव-दाह के समय जिसकी माता को अर्जुन ने मार डाला था वह अर्जुन का वैरी अश्वसेन नाग पाताल में रहता था। अर्जुन पर अपार क्रोध रखनेवाला वही नाग इस समय आकाश में जाकर कर्ण और अर्जुन का घोर युद्ध देख रहा था। उसने सोचा कि अपने वैरी दुरात्मा अर्जुन से बदला लेने का यही अवसर है। यों सोचकर माया-बल से बाण का रूप धारण कर वह शीघ्रता के साथ कर्ण के तरकस में प्रवेश कर गया। [कर्ण के सर्पा-नाम के आकार का एक महा भयानक बाण था। वह अलग एक तरकस में रक्खा था। उसी बाण में वह नागराज प्रवेश कर गया।]॥१२।१४॥हे महाराज !

अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै पार्थस्य वैरप्रतियातनाय ।
सञ्चिन्त्य तूणं प्रविवेश चैव कर्णस्य राजञ्शररूपधारी ॥ १४ ॥
ततोऽस्त्रसङ्घातसमाकुलं तदा बभूव जन्यं विततांशुजालम् ।
तत्कर्णपार्थौ शरसङ्घवृष्टिभिर्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ १५ ॥
तद्बाणजालैकमयं महान्तं सर्वेऽत्रसन्कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यत्किञ्चिद्ददृशुः सम्पतद्वै बाणान्धकारे तुमुलेऽतिमात्रम् ॥ १६ ॥
ततस्तौ पुरुषव्याघ्रौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
त्यक्तप्राणौ रणे वीरौ युद्धश्रममुपागतौ ॥
समुत्क्षेपैर्वीक्ष्यमाणौ सिक्तौ चन्दनवारिणा ॥ १७ ॥
सवालव्यजनैर्दिव्यैर्दिविस्थैरप्सरोगणैः ।
शक्रसूर्यकराब्जाभ्यां प्रमार्जितमुखावुभौ ॥ १८ ॥
कर्णोऽथ पार्थं न विशेषयद्यदा भृशं च पार्थेन शराभितप्तः ।
ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य ॥ १९ ॥
ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः सुसञ्चितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् ।
रौद्रं शरं सन्नतमुग्रधौतं पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तम् ॥ २० ॥
सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं सुवर्णतूणीरशयं महार्चिषम् ।
आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः पार्थोन्मुखः सन्दधे चोत्तमौजाः ॥ २१ ॥
प्रदीप्तमैरावतवंशसम्भवं शिरो जिहीर्षुर्युधि सव्यसाचिनः ।
ततः प्रजज्वाल दिशो नभश्च उल्काश्च घोराः शतशः प्रपेतुः ॥ २२ ॥

दोनों वीरों ने चमक रहे, अस्त्र तेज से युक्त, तीक्ष्ण बाणों से जब आकाश को व्याप्त कर दिया और घना अँधेरा छा गया, तब कौरव और सोमकगण उस अन्धकार को देखकर भयभीत हो गये। आकाश की यह दशा थी कि चारों ओर बाण छा जाने से कोई पक्षी भी उड़ता नहीं देख पड़ता था। इस प्रकार निरन्तर बाण बरसाने के कारण वे दोनों, जीवन की ममता छोड़कर युद्ध करनेवाले, वीर थक गये। उस समय अप्सराएँ स्वर्ग मे समीप आकर दोनों वीरों के ऊपर शीतल चन्दन जल छिड़कने लगीं और चँवर डुलाकर उनकी थकन मिटाने लगीं। इन्द्र और सूर्य ने अपने-अपने पुत्र के मुख का पसीना अपने हाथों से पोंछ डाला। उस समय भी दोनों वीर परस्पर क्रोधपूर्ण टेढ़ी दृष्टि से देख रहे थे॥१५।१८॥हे राजेन्द्र ! कर्ण का शरीर जब अर्जुन के बाणों से अत्यन्त छिन्न भिन्न हो गया और वे वेदना से विह्वल होने के कारण अर्जुन से अधिक बल-वीर्य दिखाने मे असमर्थ हो गये, तब उन्हें उसी एक तूणीरशायी विकट नागबाण की याद आई। वह महातेजोमय बाण ऐरावत नाग के वंश का था। कर्ण ने उसे अर्जुन को ही मारने के निमित्त सुवर्ण के तूणीर में चन्दन चूर्ण के भीतर रख छोड़ा था। कर्ण नित्य उस शत्रुनाशन, रौद्ररूप, सर्पमुख बाण की पूजा करते थे। उन्होंने उस समय उसी उग्र बाण को धनुष पर चढ़ाकर, कान तक खींचकर, छोड़ना चाहा। अर्जुन का सिर काटने के निमित्त कर्ण ने जब वह बाण धनुष पर चढ़ाया तब सब दिशाओं महित

तस्मिंस्तु नागे धनुषि प्रयुक्ते हाहाकृता लोकपालाः सशक्राः ।
न चापि तं बुबुधे सूतपुत्रो बाणे प्रविष्टं योगबलेन नागम् ॥ २३ ॥
दशशतनयनोऽहिं दृश्य बाणे प्रविष्टं निहत इति सुतो मे स्रस्तगात्रो बभूव।
जलजकुसुमयोनिः श्रेष्ठभावो जितात्मा
त्रिदशपतिमवोचन्मा व्यथिष्ठा जये श्रीः ॥ २४ ॥
ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रम् ।
न कर्ण ग्रीवामिषुरेष लप्स्यते समीक्ष्य सन्धत्स्व शरं शिरोघ्नम् ॥ २५ ॥
अथाब्रवीत्क्रोधसंरक्तनेत्रो मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी ।
न सन्धत्ते द्विःशरं शल्य कर्णो न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति ॥ २६ ॥
इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम् ।
हतोऽसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिपन्नुवाच चोच्चैर्गिरमूर्जितां वृषः ॥ २७ ॥
स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमः सुघोरः ।
गुणच्युतः कर्णधनुःप्रमुक्तो वियद्गतः प्राज्वलदन्तरिक्षे ॥ २८ ॥
तं प्रेक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु त्वरान्वितं स त्वरयैव लीलया ।
पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स प्रावेशयत्पृथिवीं किञ्चिदेव ॥ २९ ॥
क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचिवर्णाः ।
ततोऽन्तरिक्षे सुमहान्निनादः सम्पूजनार्थं मधुसूदनस्य ॥ ३० ॥

आकाश मण्डल प्रज्वलित सा हो उठा, सैकड़ों उल्काएँ आकाश से गिरने लगीं और इन्द्र आदि लोकपाल व्याकुल होकर हाहाकार करने लगे। क्रोध से अधीर कर्ण ने उस बाण की ओर देखा भी नहीं। [जिस समय उन्होंने बाण को धनुष पर चढ़ाया उस समय उनका मुख आड़ा हो रहा था। उन्हें क्या मालूम कि इस बाण के पिछले भाग में अश्वसेन नाग योग-बल से प्रवेश हुआ है और अब यह बाण सजीव है। दूसरी ओर दृष्टि होने से कर्ण को मालूम नहीं हुआ कि वे नाग को धनुष पर उल्टा चढ़ा रहे हैं। उसका मुख पीछे और पूँछ आगे थी।] हे महाराज! अर्जुन के वैरी उस भयानक नाग को बाण में प्रविष्ट देखकर इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने समझा कि अब मेरा पुत्र मारा गया। तब ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा—हे सुरेन्द्र! मलिन न होओ; विजयश्री अर्जुन को ही प्राप्त होगी॥२०।२४॥ यह सुनि शल्यने कर्ण को [दूसरी ओर दृष्टि करके] उल्टा बाण चढ़ाते देखकर कहा— हे वीर कर्ण! तुमने उल्टा बाण चढ़ाया है। इसलिए देखकर फिर से शत्रुनाशन बाण का सन्धान करो, जिससे यह शत्रु की गर्दन काट सके। यह सुनकर, क्रोध से लाल नेत्र किये हुए, मनस्वी कर्ण ने कहा—हे शल्य! कर्ण किसी बाण को दुबारा धनुष पर नहीं चढ़ाता, एक ही बार चढ़ाता और एक ही बार छोड़ता है। मुझ सरीखे लोग कूट-युद्ध नहीं करते। विजयाभिलाषी कर्ण ने यों कहकर अनेक वर्षों से पूजित और यत्नपूर्वक रक्खा हुआ वह बाण बड़े वेग से छोड़ा और जोर से कहा—अरे अर्जुन! तू अब मरा!॥२५।२७॥ हे नरनाथ! अग्नि और सूर्य के समान प्रकाशमान वह भयङ्कर बाण कर्ण के धनुष से छूटकर आकाश में पहुँचा और प्रज्वलित हो उठा। महामति कृष्णचन्द्र ने आकाश में प्रज्वलित उस बाण को बड़े वेग से आते देखकर

दिव्याश्च वाचः सहसा बभूवुर्दिव्यानि पुष्पाण्यथ सिंहनादाः ।
तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य ॥ ३१ ॥
ततः शरः सोऽभ्यहनत्किरीटं तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः ।
अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं धरावियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥ ३२ ॥
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः शरेण मूर्ध्नः प्रजहार सूतजः ।
दिवाकरेन्दुज्वलनप्रभत्विषं सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितम् ॥ ३३ ॥
पुरन्दरार्थं तपसा प्रयत्नतः स्वयं कृतं यद्विभुना स्वयम्भुवा ।
महार्हरूपं द्विषतां भयङ्करं बिभर्तुरत्यर्थसुखं सुगन्धिनम् ॥ ३४ ॥
जिघांसते देवरिपून्सुरेश्वरः स्वयं ददौ यत्सुमना किरीटिने ।
हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः ॥ ३५ ॥
सुरोत्तमैरप्यविषह्यमर्दितुं प्रसह्य नागेन जहार यद्वृषः ।
स दुष्टभावो वितथप्रतिज्ञः किरीटमत्यद्भुतमर्जुनस्य ॥ ३६ ॥
नागो महार्हं तपनीयचित्रं पार्थोत्तमाङ्गात्प्रहरत्तरस्वी ।
तद्धेमजालावततं सुघोषं जाज्वल्यमानं निपपात भूमौ ॥ ३७ ॥
तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना प्रदीप्तमर्चिष्मदथो क्षितौ प्रियम् ।
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ॥ ३८ ॥
स वै किरीटं बहुरत्नभूषितं जहार नागोऽर्जुनमूर्धतो बलात् ।
गिरेः सुजातांकुरपुष्पितद्रुमं महेन्द्रवज्रः शिखरोत्तमं यथा ॥ ३९ ॥

एकाएक पाँव से दबाकर अर्जुन के रथ को, मय पहियों के, पृथ्वी में कुछ धँसा दिया। अर्जुन के सुवर्ण जाल-शोभित और चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत घोड़े घुटनों के बल बैठ गये। इस प्रकार बाण को लक्ष्यभ्रष्ट करके अर्जुन को बचाने के निमित्त जब कृष्णचन्द्र ने रथ को धरती में धँसा दिया तब आकाश में स्थित सब प्राणी उनकी प्रशंसा, सिंहनाद और पुष्प वर्षा करने लगे॥२८।३१॥रथ धँस जाने के कारण अर्जुन अपने पूर्व स्थान से कुछ नीचे चले गये थे इसलिए वह कर्ण का नागबाण बलपूर्वक अर्जुन के सिर पर शोभित, रत्न और सुवर्ण से अलङ्कृत किरीट भर गिराकर चला गया। ऐसा जान पड़ा, जैसे वज्र ने पर्वत के सुन्दर अङ्कुर और फूले हुए वृक्षों से शोभित शिखर को तोड़कर गिरा दिया हो। हे महाराज! सुवर्ण-चित्रित, मोती मणि हीरे आदि से युक्त वह अर्जुन का किरीट सूर्य, चन्द्र, अग्नि और ग्रहों के समान तेजोमय, सुदृढ और असाधारण था। उस त्रिभुवन-प्रसिद्ध किरीट को भगवान् ब्रह्मा ने तपस्यापूर्वक इन्द्र के निमित्त बनाया था॥३२।३४॥इन्द्र ने प्रसन्न होकर वह महामूल्य और शत्रुओं के निमित्त घोररूप भयङ्कर किरीट अर्जुन को उस समय दिया था, जिस समय वे देवताओं के शत्रु दानवों को मारने के निमित्त चले थे। हे राजेन्द्र! कर्ण ने नागबाण से उस किरीट को चूर्ण करके भी कोई साधारण कार्य नहीं किया। शङ्कर का पिनाक धनुष, वरुण का पाश, इन्द्र का वज्र और कुबेर का दण्ड य लोकपालों के दिव्य अमोघ शस्त्र भी उस किरीट को चूर्ण नहीं कर सकते थे। बाणरूपधारी विषैले नागराज के वेग से चूर्ण होकर

मही वियद्द्यौः सलिलं च वायुना प्रसह्यमुग्रं विनिघूर्णितं यथा ।
अतीव शब्दो भुवनेषु वै तदा जनाऽव्यवस्यन्व्यथिताश्च चस्खलुः ॥ ४० ॥
विना किरीटं शुशुभे स पार्थः श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः ।
ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा स्वमूर्धजानव्यथितस्तदार्जुनः ॥
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥ ४१ ॥

गोकर्णा सुमुखी कृते इषुणा गोपुत्रसम्प्रेषिणा ।
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोऽसुप्रभम् ॥
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै ।
गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम् ॥ ४२ ॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः ।
महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात् ॥ ४३ ॥
तं चापि दृष्ट्वा तपनीयचित्रं किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य ।
इयेष गन्तुं पुनरेव तूणं दृष्टश्च कर्णेन ततोऽब्रवीत्तम् ॥ ४४ ॥
मुक्तस्त्वयाहं त्वसमीक्ष्य कर्ण शिरो हृतं यन्न मयार्जुनस्य ।
समीक्ष्य मां मुञ्च रणे त्वमाशु हन्तास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च ॥ ४५ ॥
स एवमुक्तो युधि सूतपुत्रस्तमब्रवीत्को भवानुग्ररूपः ।
नागोऽब्रवीद्विद्धि कृतागसं मां पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥ ४६ ॥
यदि स्वयं वज्रधरोऽस्य गोप्ता तथापि याता पितृराजवेश्मनि ।
कर्ण उवाच—न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य बलं समास्थाय जयं बुभूषेत् ॥ ४७ ॥

वह प्रकाशपूर्ण तेजोमय सुन्दर किरीट, पृथ्वी पर गिरते समय,॥३५।३७॥अस्ताचल के नीचे जा रहे लाल-लाल सूर्य-बिम्ब के समान शोभायमान हुआ। उस समय घोर शब्द से सब दिशाएँ गूँज उठीं और विह्वल होकर सब लोग सोचने लगे कि क्या प्रचण्ड आँधी ने बलपूर्वक पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और सागर को तोड़-फोड़ डाला या उलट दिया है! उस भयङ्कर शब्द को सुनकर लोग व्याकुल हो गये॥३८।४०॥ [illegible] महाराज! उस समय साँवले युवा अर्जुन, सिर पर किरीट न रहने से, ऊँचे शिखरवाले नीलपर्वत के समान जान पड़ने लगे। उस दुर्घटना [illegible] अर्जुन तनिक भी व्यथित नहीं हुए। उन्होंने केशों को समेटकर श्वेत पट्ट बाँध लिया, जिससे वे उदय हो रहे सूर्य की किरणों से शोभित उदयाचल के समान शोभायमान हुए। कर्ण ने ताककर जिसे छोड़ा था वह बाण रूप अर्जुन का वैरी नाग अर्जुन के सिर को काटने में असमर्थ होने के कारण, उनके किरीट को ही चूर्ण करके, फिर लौट पड़ा॥४१।४२॥उसने कर्ण के तरकस में फिर प्रवेश करना चाहा; किन्तु महारथी कर्णने उस महानागको देख लिया। तब वह नाग कर्णसे कहने लगा—हे महारथी कर्ण! तुमने मुझे बिना देखे ही छोड़ा था, इसी से मैं अर्जुन के सिर को नहीं काट सका। अब तुम फिर से मुझे देखकर धनुष पर चढ़ाओ। ओर छोड़ो, तो मैं अवश्य ही अपने और तुम्हारे शत्रु अर्जुन को मार डालूँगा॥४३।४५॥हे राजेन्द्र! सर्प के ये वचन सुनकर कर्ण ने पूछा—तुम कौन हो? तुम्हारा रूप तो बड़ा ही उग्र देख पड़ता है। नाग ने

न सन्दध्यां द्विः शरं चैव नाग यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम् ।
तमाह कर्णः पुनरेव नागं तदाजिमध्ये रविसूनुसत्तमः ॥ ४८ ॥
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिर्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम् ।
इत्येवमुक्तो युधि नागराजः कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम् ॥ ४९ ॥
स्वयं प्रायात्पार्थवधाय राजन्कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः ।
ततः कृष्णः पार्थमुवाच सङ्ख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५० ॥
स एवमुक्तो मधुसूदनेन गाण्डीवधन्वा रिपुवीर्यसाहः ।
उवाच को ह्येष ममाद्य नागः स्वयं य आयाद्गरुडस्य वक्त्रम् ॥ ५१ ॥
कृष्ण उवाच- योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं सन्तर्पयाणेन धनुर्धरेण ।
वियद्गतो जननीगुप्तदेहो मत्वैकरूपं निहतास्य माता ॥ ५२ ॥
स एष तद्वैरमनुस्मरन्वै त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् ।
नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥ ५३ ॥
सञ्जय उवाच—ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषाच्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः ।
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं स च्छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥ ५४ ॥
गते च तस्मिन्भुजगे किरीटिना स्वयं विभुः पार्थिव भूतलादथ ।
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥ ५५ ॥

कहा—हे कर्ण ! अर्जुन ने पहले मेरी माता को मार डाला था, तभी से उस अपने अपराधी के साथ मेरी शत्रुता है। इस समय यदि वज्रपाणि इन्द्र भी अर्जुन की रक्षा करेंगे, तो भी मैं उसे मारे बिना न रहूँगा ॥४६।४७॥कर्ण ने कहा—हे नागराज ! कर्ण कदापि दूसरे के बल से जय प्राप्त करना नहीं चाहता। चाहे ऐसे-ऐसे सौ अर्जुन को मारना हो, तो भी मैं एक बाण को दो बार धनुष पर चढ़ाने का नहीं। मैं अपने यत्न, क्रोध, बल और अस्त्र से अर्जुन को मारूँगा; तुम यथेष्ट स्थान को जाओ॥४७।४९॥हे महाराज ! कर्ण के ये वचन सुनकर क्रोध के कारण नाग उन्हें सहन नहीं कर सका। वह स्वयं उग्र अस्त्र के रूप से अर्जुन को मारने के निमित्त वेग से चला। तब श्रीकृष्ण ने उसे आते देखकर कहा—हे अर्जुन ! अपने पुराने वैरी इस नाग को शीघ्र मार डालो। गाण्डीव धनुष को धारण करनेवाले अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! यह कौन नाग है, जो आने आप गरुड़ के मुख में जाने के समान मेरे समीप आ रहा है ? ॥४९।५१॥श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! तुमने खाण्डव वन जलाने के निमित्त देकर जब अग्नि को तृप्त किया था तब इस नागराज अश्वसेन की माता इसे निगलकर बचाने के निमित्त आकाश में जा रही थी। तुमने इसकी माता का सिर काट डाला, परन्तु उसके शरीर में छिपे हुए इस नाग को नहीं देख पाया और यह निकल गया। इस समय उसी वैर को स्मरण करके यह वास्तव में अपनी ही मृत्यु के निमित्त तुम्हारे मारने का अभिप्राय करके आ रहा है। हे शत्रुनाशन ! देखो, यह आकाश से गिरी हुई उल्का के समान बड़े वेग से आ रहा है॥५२।५३॥सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! तब महावीर अर्जुन ने क्रोध से मुख फेरकर आकाश मार्ग में पक्षी के समान आ रहे उस नाग के छः बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर डाले। नाग के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने स्वयं उतरकर दोनों हाथों से अर्जुन के रथ को पृथ्वी के भीतर से निकाल

तस्मिन्मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः ।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो धनञ्जयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥ ५६ ॥
ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तैर्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य ।
नाराचमाशीविषतुल्यवेगमाकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ ५७ ॥
स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य प्राणान्निरस्यन्निव साधु मुक्तः ।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥ ५८ ॥
ततो वृषो बाणनिपातकोपितो महोरगो दण्डविघट्टितो यथा ।
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम् ॥ ५९ ॥
जनार्दनं द्वादशभिः पराभिनन्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम् ।
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च ॥ ६० ॥
तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित् ।
परःशतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रमस्तथा यथेन्द्रो बलमोजसा रणे ॥ ६१ ॥
ततः शराणां नवतिं तदार्जुनः ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम् ।
तैः पत्रिभिर्विद्धतनुः स विव्यथे तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः ॥ ६२ ॥
मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम् ।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभिर्धनञ्जयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥ ६३ ॥
महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः कृतं यदस्योत्तमवर्म भास्वरम् ।
सुदीर्घकालेन ततोऽस्य पाण्डवः क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ६४ ॥

लिया। उस समय महावीर कर्ण ने क्रोधपूर्ण टेढ़ी दृष्टि से अर्जुन को देखकर उनको मयूरपक्ष-शोभित तीक्ष्ण दस बाण मारे॥५४।५६॥ अर्जुन ने भी पहले बारह वराहकर्ण बाण मारकर फिर कान तक खींचकर एक अत्यन्त उग्र विषैले नाग के समान नाराच बाण कर्ण के ऊपर छोड़ा। वह उत्तम बाण कर्ण के विचित्र कवच को तोड़कर शरीर के भीतर प्रवेश हो गया और मानों कर्ण के प्राणों को निकालने की चेष्टा करता हुआ, उनका रक्त पीकर, रक्त से तर होकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया। कर्ण भी डण्डे की चोट खाकर कुपित सर्प के समान वह बाण लगने से क्रोधान्ध हो उठे। महाविषैला सर्प जैसे विष उगलता है वैसे ही वीर कर्ण स्फूर्ति के साथ अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे॥५७।५९॥ उन्होंने बारह बाण श्रीकृष्ण को और निन्यानवे बाण अर्जुन को मारकर फिर एक घोर बाण से उनके शरीर को विदीर्ण कर डाला। यह अद्भुत कर्म करके महारथी कर्ण गरजने और हँसने लगे। कर्ण के उस हर्ष को अर्जुन नहीं सह सके। इन्द्र के समान पराक्रमी और मर्मज्ञ अर्जुन कर्ण के मर्मस्थलों में सैकड़ों तीक्ष्ण बाण मारने लगे। इन्द्र ने जैसे बल नामक दैत्य को पीड़ित किया था वैसे ही अर्जुन ने फिर कर्ण को कालदण्ड-सदृश तीक्ष्ण नब्बे बाण मारे। वज्र प्रहार से फटे हुए पर्वत की सी दशा को प्राप्त होकर वीर कर्ण उन बाणों के प्रहार से अत्यन्त व्यथित हो उठे॥६०।६२॥ अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण का बहुमूल्य हीरा सुवर्ण मणि-मोती आदि से शोभित मुकुट और कुण्डल काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये। फिर क्षण भर में ही अर्जुन ने कर्ण का सुदृढ़,

न सन्दध्यां द्विः शरं चैव नाग यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम् ।
तमाह कर्णः पुनरेव नागं तदाजिमध्ये रविसूनुसत्तमः ॥ ४८ ॥
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिर्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम् ।
इत्येवमुक्तो युधि नागराजः कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम् ॥ ४९ ॥
स्वयं प्रायात्पार्थवधाय राजन्कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः ।
ततः कृष्णः पार्थमुवाच सङ्ख्ये महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५० ॥
स एवमुक्तो मधुसूदनेन गाण्डीवधन्वा रिपुवीर्यसाहः ।
उवाच को ह्येष ममाद्य नागः स्वयं य आयाद्गरुडस्य वक्त्रम् ॥ ५१ ॥
कृष्ण उवाच— योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं सन्तर्पयाणेन धनुर्धरेण ।
वियद्गतो जननीगुप्तदेहो मत्वैकरूपं निहतास्य माता ॥ ५२ ॥
स एष तद्वैरमनुस्मरन्वै त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम् ।
नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥ ५३ ॥
सञ्जय उवाच— ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषाच्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः ।
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं स छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥ ५४ ॥
गते च तस्मिन्भुजगे किरीटिना स्वयं विभुः पार्थिव भूतलादथ ।
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥ ५५ ॥

कहा—हे कर्ण ! अर्जुन ने पहले मेरी माता को मार डाला था, तभी से उस अपने अपराधी के साथ मेरी शत्रुता है । इस समय यदि वज्रपाणि इन्द्र भी अर्जुन की रक्षा करेंगे, तो भी मैं उसे मारे बिना न रहूँगा ॥४६।४७॥ कर्ण ने कहा—हे नागराज ! कर्ण कदापि दूसरे के बल से जय प्राप्त करना नहीं चाहता । चाहे ऐसे ऐसे सौ अर्जुन को मारना हो, तो भी मैं एक बाण को दो बार धनुष पर चढ़ाने का नहीं । मैं अपने यत्न, क्रोध, बल और अस्त्र से अर्जुन को मारूँगा; तुम यथेष्ट स्थान को जाओ॥४७।४९॥ हे महाराज ! कर्ण के ये वचन सुनकर क्रोध के कारण नाग उन्हें सहन नहीं कर सका । वह स्वयं उग्र अस्त्र के रूप से अर्जुन को मारने के निमित्त वेग से चला । तब श्रीकृष्ण ने उसे आते देखकर कहा—हे अर्जुन ! अपने पुराने वैरी इस नाग को शीघ्र मार डालो । गाण्डीव धनुष को धारण करनेवाले अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! यह कौन नाग है, जो आज आप गरुड़ के मुख में जाने के समान मेरे समीप आ रहा है ? ॥४९।५१॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! तुमने खाण्डव वन जलाने के निमित्त देकर जब अग्नि को तृप्त किया था तब इस नागराज अश्वसेन की माता इसे निगलकर बचाने के निमित्त आकाश में जा रही थी । तुमने इसकी माता का सिर काट डाला; परन्तु उसके शरीर में छिपे हुए इस नाग को नहीं देख पाया और यह निकल गया । उस समय उसी वैर को स्मरण करके यह वास्तव में अपनी ही मृत्यु के निमित्त तुम्हारे मारने का अभिप्राय करके आ रहा है । हे शत्रुनाशन ! देखो, यह आकाश से गिरी हुई उल्का के समान बड़े वेग से आ रहा है॥५२।५३॥ सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र ! तब महावीर अर्जुन ने क्रोध से मुख फेरकर आकाश मार्ग में पक्षी के समान आ रहे उस नाग के छः बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर डाले। नाग के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने स्वयं उतरकर दोनों हाथों से अर्जुन के रथ को पृथ्वी के भीतर से निकाल

तस्मिन्मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः ।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो धनञ्जयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥ ५६ ॥
ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तैर्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य ।
नाराचमाशीविषतुल्यवेगमाकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ ५७ ॥
स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य प्राणान्निरस्यन्निव साधु मुक्तः ।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥ ५८ ॥
ततो वृषो बाणनिपातकोपितो महोरगो दण्डविघट्टितो यथा ।
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम् ॥ ५९ ॥
जनार्दनं द्वादशभिः पराभिनन्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम् ।
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च ॥ ६० ॥
तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित् ।
परःशतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रमस्तथा यथेन्द्रो बलमोजसा रणे ॥ ६१ ॥
ततः शराणां नवतिं तदार्जुनः ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम् ।
तैः पत्रिभिर्विद्धतनुः स विव्यथे तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः ॥ ६२ ॥
मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम् ।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभिर्धनञ्जयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥ ६३ ॥
महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः कृतं यदस्योत्तमवर्म भास्वरम् ।
सुदीर्घकालेन ततोऽस्य पाण्डवः क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ६४ ॥

लिया। उस समय महावीर कर्ण ने क्रोधपूर्ण टेढ़ी दृष्टि से अर्जुन को देखकर उनको मयूरपक्ष-शोभित तीक्ष्ण दस बाण मारे॥५४।५६॥ अर्जुन ने भी पहले बारह वराहकर्ण बाण मारकर फिर कान तक खींचकर एक अत्यन्त उग्र विषैले नाग के समान नाराच बाण कर्ण के ऊपर छोड़ा। वह उत्तम बाण कर्ण के विचित्र कवच को तोड़कर शरीर के भीतर प्रवेश हो गया और मानो कर्ण के प्राणों को निकालने की चेष्टा करता हुआ, उनका रक्त पीकर, रक्त से तर होकर पृथ्वी में प्रवेश हो गया। कर्ण भी डण्डे की चोट खाकर कुपित सर्प के समान वह बाण लगने से क्रोधान्ध हो उठे। महाविषैला सर्प जैसे विष उगलता है वैसे ही वीर कर्ण स्फूर्ति के साथ अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे॥५७।५९॥ उन्होंने बारह बाण श्रीकृष्ण को और निन्नानवे बाण अर्जुन को मारकर फिर एक घोर बाण से उनके शरीर को विदीर्ण कर डाला। यह अद्भुत कर्म करके महारथी कर्ण गरजने और हँसने लगे। कर्ण के उस हर्ष को अर्जुन नहीं सह सके। इन्द्र के समान पराक्रमी और मर्मज्ञ अर्जुन कर्ण के मर्मस्थलों में सैकड़ों तीक्ष्ण बाण मारने लगे। इन्द्र ने जैसे बल नामक दैत्य को पीड़ित किया था वैसे ही अर्जुन ने फिर कर्ण को कालदण्ड-सदृश तीक्ष्ण नब्बे बाण मारे। वज्र प्रहार से फटे हुए पर्वत की भाँति उन बाणों के प्रहार से अत्यन्त कष्ट को प्राप्त होकर वीर कर्ण व्यथित हो उठे॥६०।६२॥ अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण का बहुमूल्य हीरा सुवर्ण मणि-मोती आदि से शोभित मुकुट और कुण्डल काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये। फिर क्षण भर में ही अर्जुन ने कर्ण का सुदृढ़,

स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत् ।
स विव्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो यथातुरः पित्तकफानिलज्वरैः ॥ ६५ ॥
महाधनुर्मण्डलनिःसृतैःशितैः क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च ।
ततक्ष कर्णं बहुभिः शरोत्तमैर्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥ ६६ ॥
दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः ।
बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः क्षरन्प्रपातैरिव रक्तमम्भः ॥ ६७ ॥
ततोऽर्जुनः कर्णमवक्रगैर्नवैः सुवर्णपुङ्खैः सुदृढैरयस्मयैः ।
यमाग्निदण्डप्रतिमैः स्तनान्तरे पराभिनत्क्रौञ्चमिवाद्रिमग्निजः ॥ ६८ ॥
ततः शरावापमपास्य सूतजो धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम् ।
ततो रथस्थः स मुमोह च स्खलन्प्रशीर्णमुष्टिः सुभृशाहतः प्रभो ॥ ६९ ॥
न चार्जुनस्तं व्यसने तदेपिवान्निहन्तुमार्यः पुरुषव्रते स्थितः ।
ततस्तमिन्द्रावरजः सुसम्भ्रमादुवाच किं पाण्डव हे प्रमाद्यसे ॥ ७० ॥
नैवाहितानां सततं विपश्चितः क्षणं प्रतीक्षन्त्यपि दुर्बलीयसाम् ।
विशेषतोऽरीन्व्यसनेषु पण्डितो निहत्य धर्मं च यशश्च विन्दते ॥ ७१ ॥
तदेकवीरं तव चाहितं सदा त्वरस्व कर्णं सहसाभिमर्दितुम् ।
पुरा समर्थः समुपेति सूतजो भिन्धि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः ॥ ७२ ॥

बहुमूल्य,चमकीला कवच भी काट कूटकर गिरा दिया। उस कवच को अनेक कारीगरों ने बहुत दिनों में बनाया था। इसके पश्चात् कुपित अर्जुन ने कर्ण के कवच रहित शरीर को चार बाणों से अत्यन्त घायल कर दिया। सान्निपात ग्रस्त और मृत्यु के मुख में शीघ्र ही जानेवाला पुरुष जैसे वात पित्त कफ ज्वर से पीड़ित होता है वैसे ही कर्ण उन बाणों की चोट से व्याकुल हो उठे। उसी समय वीर अर्जुन ने शीघ्र ही गाण्डीव धनुष से, पूर्ण बल के साथ, असंख्य बाण छोड़कर मर्मस्थलों में कर्ण को पीड़ित करना आरम्भ किया ॥६३।६५॥ अर्जुन के विविध तीक्ष्ण बाण उग्र वेग से आकर कर्ण के शरीर में प्रवेश होने लगे और कर्ण के शरीर से निरन्तर रक्त बहने लगा। उस समय उस गेरू के पर्वत के समान कर्ण की शोभा हुई, जिसमें अनेक झरनों से लाल जल बह रहा हो। महावीर अर्जुन ने फिर, क्रौञ्च पर्वत को तोड़नेवाले कार्त्तिकेय समान, अग्नि शिखा और कालदण्ड के समान उग्र और सुवर्ण-पुङ्ख शोभित तीक्ष्ण बाण कर्ण के हृदय में मारे। उन बाणों से कर्ण का वक्ष स्थल घायल हो गया। कवच हीन होने के कारण वे अर्जुन के बाणों की चोट से ऐसे विह्वल हो उठे कि उनकी मुट्ठी ढीली पड़ गई, दस्ताना और इन्द्रधनुष के समान धनुष भी हाथ से छूटने लगा। ऐसा जान पड़ा कि मोहित और मूर्छित कर्ण रथ से नीचे गिर पड़ेंगे॥६६। ६९॥ उस समय वीर अर्जुन ने आर्य पुरुष और क्षत्रिय के धर्म का खयाल करके पीड़ित शत्रु के ऊपर प्रहार करना नहीं चाहा। तब श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! यह क्या? ऐसा अनुचित क्यों कर रहे हो? बुद्धिमान् लोग शत्रु को निर्बल पाकर शीघ्र ही उस पर वार करते हैं, क्षण भर भी नहीं रुकते। ऐसे ही अवसरों में तो प्रबल शत्रु मारा जा सकता है। चतुर लोग शत्रु को ऐसी ही सङ्कट की अवस्था में मारकर धर्म और यश प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम इसी अवसर में अपने प्रधान प्रबल शत्रु और अद्वितीय वीर कर्ण

ततस्तदेवेत्यभिपूज्य सत्वरं जनार्दनं कर्णमविध्यदर्जुनः ।
शरोत्तमैः सर्वकुरूत्तमस्त्वरंस्तथा यथा शम्बरहा पुरा बलिम् ॥ ७३ ॥
साश्वं तु कर्णं सरथं किरीटी समाचिनोद्भारत वत्सदन्तैः ।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुङ्खैः ॥ ७४ ॥
स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः समाचितः सोऽधिरथिर्विभाति ।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलिर्यथाचलश्चन्दनकाननायुतः ॥ ७५ ॥
शरैः शरीरे बहुभिः समर्पितैर्विभाति कर्णः समरे विशाम्पते ।
महीरुहैराचितसानुकन्दरो यथा गिरीन्द्रः स्फुटकर्णिकारवान् ॥ ७६ ॥
स बाणसङ्घान्बहुधा व्यवासृजन्विभाति कर्णः शरजालरश्मिवान् ।
स लोहितो रक्तगभस्तिमण्डलो दिवाकरोऽस्ताभिमुखो यथा तथा ॥ ७७ ॥
बाह्वन्तरादाधिरथेर्विमुक्तान्बाणान्महाहीनिव दीप्यमानान् ।
व्यध्वंसयन्नर्जुनबाहुमुक्ताः शराः समासाद्य दिशः शिताग्राः ॥ ७८ ॥
ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं बाणान्विमुञ्चन्कुपिताहिकल्पान् ।
विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः कृष्णं च षड्भिः कुपिताहिकल्पान् ॥ ७९ ॥
ततः किरीटी भृशमुग्रनिःस्वनं महाशरं सर्पविषानलोपमम् ।
अयस्मयं रौद्रमहास्त्रसंभृतं महाहवे क्षेप्तुमना महामतिः ॥ ८० ॥
कालो ह्यदृश्यो नृप विप्रकोपान्निदर्शयन्कर्णवधं ब्रुवाणः ।
भूमिस्तु चक्रं ग्रसतीत्यवोचत्कर्णस्य तस्मिन्वधकाल आगते ॥ ८१ ॥

को शीघ्र मारने का यत्न करो । इन्द्र ने जैसे नमुचि दानव को मारा था वैसे ही तुम कर्ण को मार डालो, नहीं तो यह महावीर बहुत शीघ्र सँभलकर, पहले के ही समान प्रबल हो उठेगा॥७०।७२॥श्रीकृष्ण की आज्ञा मानकर अर्जुन ने स्फूर्ति के साथ कर्ण के मर्मस्थलों में फिर तीक्ष्ण बाण मारना आरम्भ कर दिया। इन्द्र ने जैसे पहले राजा बलि को पीड़ित किया था वैसे ही महावीर अर्जुन पूर्ण बल लगाकर कर्ण और उनके घोड़ों सहित रथ को विकट वत्सदन्त बाणों से छेदने लगे । अर्जुन ने निरन्तर इतने बाण छोड़े कि सब दिशाओं को उन बाणों ने छा लिया । चौड़ी छातीवाले वीर कर्ण —सारे शरीर में अर्जुन के वत्सदन्त बाण लगने से और घावों के रक्त से भीग जाने से—फूले हुए अशोक, पलाश, सेमर और चन्दन के वन से व्याप्त बड़े पर्वत के समान शोभायमान हुए ॥७३।७५॥शरीर भर में शर-जाल चुभने के कारण कर्ण उस पर्वत के समान प्रतीत होने लगे, जिसके शिखरों और कन्दराओं में असंख्य फूले हुए कनेर आदि के वृक्ष लगे हों। हे महाराज ! वीर कर्ण भी क्षण भर में सचेत होकर, धैर्य धारण करके, अर्जुन के ऊपर फिर बाण बरसाने लगे । उस समय वे अस्ताचल को जा रहे लाल सूर्य के समान जान पड़ने लगे । उनका घूम रहा मण्डलाकार धनुष ही मण्डल सा जान पड़ता था और निरन्तर निकल रहे बाण किरणों के समान थे । कर्ण के छोड़े हुए चमकीले महानाग-सदृश बाणों को अर्जुन के तीक्ष्ण बाण काट-काटकर गिराने लगे ॥७६।७८॥धैर्य धारण करके, कुपित सर्प के तुल्य उग्र बाण बरसा रहे, कर्ण ने दस बाण अर्जुन को

ततस्तदस्त्रं मनस प्रनष्ट यद्भार्गवोऽस्मै प्रददौ महात्मा ।
चक्रं च वामं ग्रसते भूमिरस्य प्राप्ते तस्मिन्वधकाले नृवीर ॥ ८२ ॥
ततो रथो घूर्णितवान्नरेन्द्र शापात्तदा ब्राह्मणसत्तमस्य ।
ततश्चक्रमपतत्तस्य भूमौ स विह्वल समरे सूतपुत्रः ॥ ८३ ॥
स वेदिकश्चैत्य इवातिमात्र सुपुष्पितो भूमितले निमग्न ।
घूर्णे रथे ब्राह्मणस्याभिशापाद्रामादुपात्ते त्वविभाति चास्त्रे ॥ ८४ ॥
छिन्ने शरे सर्पमुखे च घोरे पार्थेन तस्मिन्विषसाद कर्ण· ।
अमृष्यमाणो व्यसनानि तानि हस्तौ विधुन्वन्स विगर्हमाणः ॥ ८५ ॥
धर्मप्रधानं किल पाति धर्म इत्यब्रुवन्धर्मविद सदैव ।
वय च धर्मे प्रयताम नित्य चर्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतं च ॥ ८६ ॥
स चापि निघ्नाति न पाति भक्तान्मन्ये न नित्य परिपाति धर्म· ।
एव ब्रुवन्प्रस्खलिताश्वसूतो विचाल्यमानोऽर्जुनबाणपातैः ॥
मर्माभिघाताच्छिथिल· क्रियासु पुन पुनर्धर्ममसौ जगर्ह ॥ ८७ ॥
तत· शरैर्भीमतरैरविध्यत्त्रिभिराहवे ।
हस्ते कृष्ण तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभि· ॥ ८८ ॥

और छ बाण श्रीकृष्ण को मारे। तब महारथी अर्जुन ने कुपित होकर, महा भयानक रौद्र अस्त्र से युक्त करके, सर्प के विष और अग्नि के समान प्राण हरनेवाला, लोहमय, उग्र शब्द करनेवाला एक विकट बाण छोड़ना चाहा।।७९।८०।।हे महाराज! कर्ण की मृत्यु का समय निकट आ गया। काल ने अदृश्य भाव से कर्ण को यह सुना दिया कि हे कर्ण! ब्राह्मण के शाप से पृथ्वी तुम्हारे रथ का पहिया ग्रसना चाहती है। यह सुनते ही कर्ण को वह घोर अस्त्र भूल गया जो महात्मा परशुराम से प्राप्त हुआ था और जिसके सम्बन्ध में परशुराम ने कहा था कि यह तुम्हारी मृत्यु के समय भूल जायगा। उधर पृथ्वी भी कर्ण के रथ का बायाँ पहिया ग्रसने लगी। ब्राह्मण के शाप से कर्ण का रथ घूमने लगा। अस्त्र भी, विस्मृत होकर, कर्ण को इस बात की सूचना देने लगा कि उनकी मृत्यु का समय आ गया।।८१।८२।।फूले हुए चौतरे सहित ऊँचे चैत्य वृक्ष (गाँव की सूचना देनेवाला, वेदी युक्त, ऊँचा और बड़ा वृक्ष चैत्य वृक्ष कहलाता था) के समान कर्ण का रथ, पहिया धँस जाने से, नीचे बैठ गया। हे राजेन्द्र! इस प्रकार नागबाण व्यर्थ गया, अस्त्र भूल गया, रथ के पहिये को पृथ्वी ने पकड़ लिया और स्वयं कर्ण ब्राह्मण के शाप से मोहित हो गये। उस समय इन अनिवार्य विपत्तियों को न सह सकने के कारण, किं कर्तव्य विमूढ़ होकर, महामति कर्ण धर्म की निन्दा करने लगे। वे हाथ मसलते हुए कहने लगे—अहो, धर्मज्ञ लोगों के मुख से मैं सुनता आया हूँ कि धर्म सदा धर्मात्मा की रक्षा करता है। हम शास्त्रानुसार यथाशक्ति धर्म का आचरण और उसके पालन का यत्न करते आये हैं, किन्तु वह धर्म हमारी रक्षा नहीं करता, बल्कि संहार ही कर रहा है। इससे मुझे जान पड़ता है कि धर्म सदा धर्मात्मा की रक्षा नहीं करता अथवा कर ही नहीं सकता। हे भरतकुलभूषण महाराज! कर्ण के घोड़े और सारथी, दोनों स्खलित विचलित होने लगे। अर्जुन के बाण लगने से वे स्वयं विचलित हो उठे और मर्मस्थलों में चोट पहुँचने से युद्ध में शिथिल प्रयत्न होकर बारम्बार धर्म

ततोऽर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान् ।
इन्द्राशनिसमान्घोरानसृजत्पावकोपमान् ॥ ८९ ॥
निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन्पृथिवीतले ।
कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत् ॥ ९० ॥
बलेनाथ स संस्तभ्य ब्रह्मास्त्रं समुदैरयत् ।
ऐन्द्रं ततोऽर्जुनस्यापि तं दृष्ट्वाभ्युपमन्त्रयत् ॥ ९१ ॥
गाण्डीवं ज्यां च बाणांश्च सोऽनुमन्त्र्य परन्तपः ।
व्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ ९२ ॥
ततस्तेजोमया बाणा रथात्पार्थस्य निःसृताः ।
प्रादुरासन्महावीर्याः कर्णस्य रथमन्तिकात् ॥ ९३ ॥
तान्कर्णस्त्वग्रतो न्यस्तान्मोघांश्चक्रे महारथः ।
ततोऽब्रवीद्वृष्णिवीरस्तस्मिन्नस्त्रे विनाशिते ॥ ९४ ॥
विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान् ।
ततो ब्रह्मास्त्रमत्युग्रं संमन्त्र्य समयोजयत् ॥ ९५ ॥
छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः ।
ततः कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः ॥ ९६ ॥
द्वितीयां च तृतीयां च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा ।
षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीं च तथाष्टमीम् ॥ ९७ ॥
नवमीं दशमीं चास्य तथा चैकादशीं वृषः ।
ज्याशतं शतसन्धानः स कर्णो नावबुध्यते ॥ ९८ ॥

की निन्दा करने लगे॥८४।८७॥अब कर्ण ने धैर्य धरकर अपने को सँभाला और अत्यन्त घोर तीन बाण श्रीकृष्ण के हाथों में मारकर सात उग्र बाणों से अर्जुन को भी घायल किया। तब अर्जुन ने अग्नि तुल्य, इन्द्र के वज्र के समान, सत्रह बाण बड़े वेग से कर्ण को मारे। वे बाण कर्ण के शरीर को छिन्न भिन्न करके पृथ्वी में प्रवेश हो गये। उन बाणों के प्रहार से कर्ण का आत्मा तक काँप उठा, किन्तु उन्होंने यथा-शक्ति अपने को सँभालकर पराक्रम की चेष्टा दिखाई। कर्ण ने ब्रह्मास्त्र को स्मरण करके उसे प्रकट किया तब उसे शान्त करने के निमित्त अर्जुन ने ऐन्द्र अस्त्र को प्रकट किया॥८८।९१॥उन्होंने गाण्डीव धनुष, प्रत्यञ्चा और बाणों को ऐन्द्र अस्त्र के मन्त्र से अभि-मन्त्रित करके जल बरसानेवाले इन्द्र के समान बाण बरसाना आरम्भ किया। अर्जुन के रथ से तेजोमय तीव्र बाण निकलकर कर्ण के रथ के निकट प्रकट होने लगे। महारथी कर्ण ने अस्त्र बल से अर्जुन के उन बाणों को व्यर्थ कर दिया॥९२।९४॥कर्ण को अर्जुन के अस्त्र-तेज से मुक्त और अस्त्र का प्रभाव विनष्ट हुआ देख-कर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! और श्रेष्ठ अस्त्र छोड़ो, कर्ण तुम्हारे अस्त्र युक्त बाणों को व्यर्थ कर रहा है। तब अर्जुन ने बड़े भयङ्कर अनिर्वचनीय ब्रह्मास्त्र को प्रकट किया। वे बाणों को अस्त्र युक्त करके उन से कर्ण को पीड़ित करने लगे। कर्ण ने [illegible] के

ततो ज्यां विनिधायान्यामभिमन्त्र्य च पाण्डवः ।
शरैरवाकिरत्कर्णं दीप्यमानैरिवाहिभिः ॥ ९९ ॥
तस्य ज्याच्छेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे ।
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १०० ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन्सव्यसाचिनः ।
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात्स्ववीर्यमनिदर्शयन् ॥ १०१ ॥
ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण च पीडितम् ।
अभ्यसेत्यब्रवीत्पार्थमातिष्ठास्त्र व्रजेति च ॥ १०२ ॥
ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम् ।
अश्मसारमयं दिव्यमभिमन्त्र्य परन्तप ॥ १०३ ॥
रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान् ।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप ॥ १०४ ॥
ततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः ।
चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तुमियेष सः ॥ १०५ ॥
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना ।
गीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरङ्गुलम् ॥ १०६ ॥
ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः क्रोधादश्रूण्यवर्तयत् ।
अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १०७ ॥

साथ तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन के धनुष का डोरा काट डाली । उन्होंने इसी प्रकार क्रम से ग्यारह प्रत्यञ्चाएँ काट डालीं, परन्तु कुछ न हुआ, क्योंकि अर्जुन के धनुष में सौ प्रत्यञ्चाएँ थीं और कर्ण को यह प्रतीत ही नहीं था॥९५।९८॥अर्जुन ने फिर अन्य डोरी धनुष पर चढ़ाकर, उसे अस्त्र मन्त्र से अभिमन्त्रित करके, प्रज्वलित अग्निशिखा और विषैले सर्प के समान बाणों से कर्ण को व्याप्त करना आरम्भ किया। अर्जुन ने इतनी स्फूर्ति की कि कर्ण को उनकी प्रत्यञ्चा कटने का और नई प्रत्यञ्चा चढ़ने का समाचार ही नहीं प्रतीत हुआ । उस समय वीरवर कर्ण ने अस्त्रों से अर्जुन के अस्त्रों को नष्ट करके उनसे अधिक पराक्रम प्रकट किया॥९९।१०१॥कर्ण को असाधारण पराक्रम दिखाकर अर्जुन की अपेक्षा प्रबल और अर्जुन को कर्ण के अस्त्र से पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! शीघ्र ही कर्ण को मारने के निमित्त और श्रेष्ठ अस्त्र छोड़ो । तब अर्जुन ने अग्नि और वज्र के तुल्य, घोर सर्प विष के समान, बाण को रौद्र अस्त्र से युक्त करके कर्ण के ऊपर छोड़ना चाहा । हे महाराज ! इसी समय कर्ण के रथ चक्र को पृथ्वी ने पूरा पूरा ग्रस लिया । यह देखकर महावीर कर्ण शीघ्र रथ से उतरकर रथ का पहिया पृथ्वी से निकालने लगे । उन्होंने दोनों हाथों से पकड़कर रथ के पहिये को ऊपर उठाना चाहा तो पर्वत वन कानन आदि सहित सातों द्वीपों से युक्त पृथ्वी चार अङ्गुल ऊपर उठ आई, परन्तु ब्राह्मण के शाप के कारण पृथ्वी ने पहिये को न छोड़ा॥१०२।१०६॥अर्जुन के कुपित होकर प्रहार करने पर उद्यत और पहिये का इस

भो भो पार्थ महेष्वास मुहूर्तं परिपालय ।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ॥ १०८ ॥
सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम ।
पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसन्धिं विसर्जय ॥ १०९ ॥
न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि ।
ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु ॥ ११० ॥
विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव ।
प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ ॥ १११ ॥
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथार्जुन ।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥ ११२ ॥
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः ।
त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥ ११३ ॥
अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः ।
दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि ॥ ११४ ॥
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज ।
न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि ॥ ११५ ॥
न वासुदेवात्त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम् ।
त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः ।
अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्तं क्षम पाण्डव ॥ ११६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णरथभ्रमने नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

प्रकार पृथ्वीके मुखमें पड़ा हुआ देखकर विवश कर्णके, क्रोध के मारे, आँसू निकल आये । उन्होंने कहा—हे अर्जुन! जब तक मैं धँसेहुए अपने रथके पहियेको निकालता हूँ तब तक ठहर जाओ। दैवयोगसे मेरे रथका बायाँ पहिया पृथ्वी में घुस गया है । इस अवसरमें प्रहार करना कायरों और नीच पुरुषोंका काम है । तुम्हें ऐसा निन्दित कार्य न करना चाहिए॥१०७।११०॥ हे अर्जुन ! तुम भारी योद्धा और रण निपुण कहलाते हो; तुम्हें श्रेष्ठकार्य ही करना चाहिए । क्षत्रियधर्म का पालन करनेवाले आर्य पुरुष कदापि ऐसे पुरुष पर प्रहार नहीं करते, जो शरणागत हो, शस्त्रहीन हो या शस्त्र रख चुका हो, प्रार्थना कर रहा हो, रण से विमुख हो, जिसके केश (भय के मारे) खुल गये हों, जो ब्राह्मण हो, हाथ जोड़ रहा हो, जिसके समीप बाण न रह गये हों, जिसका कवच टूटगया हो और जिसका शस्त्र गिरपड़ा हो या टूट गया हो॥ हे पाण्डव! तुम पृथ्वीपर सबसे बढ़कर शूर, साधु चरित्र, युद्ध धर्मके ज्ञाता, दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले, युद्ध करने में सहस्रबाहु अर्जुनके तुल्य, महात्मा और अमित पराक्रमी कहलाते हो॥१११।११४॥ इसलिए हे महाबाहो! तुम मुझे इतना अवकाश दो कि मैं इस पहियेको पृथ्वीसे निकाल लूँ। तुम रथपर सवार हो, मैं पृथ्वी पर खड़ा और विकल हो रहा हूँ। ऐसी दशा में मुझे मारना तुम्हारे योग्य काम नहीं। मैं ये वचन डरकर नहीं कह रहा हूँ। श्रीकृष्णसे या तुमसे मैं बिल्कुल नहीं डरता। तुम क्षत्रियों के श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हो, इसी लिए मैं तुमसे यह धर्म सङ्गत अनुरोध करता हूँ कि क्षणभर ठहरजाओ॥११५।११६॥

कर्णपर्व का नब्बेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९० ॥

अथ एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

सञ्जय उवाच—तमब्रवीद्वासुदेवो रथस्थो राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मं ।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम् ॥ १ ॥
यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभायामानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च ।
दुःशासनः शकुनिः सौवलश्च न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः ॥ २ ॥
यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम् ।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात्क ते धर्मस्तदा गतः ॥ ३ ॥
वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे ।
न प्रयच्छसि यद्राज्यं क ते धर्मस्तदा गतः ॥ ४ ॥
यद्भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः ।
आचरत्त्वन्मते राजा क ते धर्मस्तदा गतः ॥ ५ ॥
यद्वारणावते पार्थान्सुप्ताञ्जतुगृहे तदा ।
आदीपयस्त्वं राधेय क ते धर्मस्तदा गतः ॥ ६ ॥
यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम् ।
सभायां प्राहसः कर्ण क ते धर्मस्तदा गतः ॥ ७ ॥
यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम् ।
उपप्रेक्षसि राधेय क ते धर्मस्तदा गतः ॥ ८ ॥

इक्यानबे अध्याय ॥ ९१ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! कर्ण के यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे—हे राधेय ! बड़ी बात, जो तुम यहाँ इस समय धर्म का स्मरण कर रहे हो ! प्रायः देखा जाता है कि नीच प्रकृति के पुरुष सङ्कट आ पड़ने पर दैव की ही निन्दा करते हैं; अपने दुष्कर्मों पर दृष्टि नहीं डालते । [पाण्डव सदा धर्म का पालन करते रहे हैं और इसी से इस समय धर्म उन्हें जय और अभ्युदय दे रहा है । उनके विरोधी कौरव धर्म को छोड़कर अधर्म मार्ग पर चलते रहे, इसी कारण उनका नाश हो रहा है ।] हे कर्ण ! जब एक वस्त्र धारण किये हुए द्रौपदी को रजस्वला दशा में तुम, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि आदि सम्मति करके सभा में घसीट लाये थे तब तुम्हें धर्म का खयाल क्यों नहीं हुआ ? जिस समय दुर्मति शकुनि ने तुम्हारी सम्मति से—जुए से अनभिज्ञ—राजा युधिष्ठिर को बुलाकर जीता और सर्वस्व ले लिया, उस समय तुम्हारी यह धर्मबुद्धि कहाँ चली गई थी ? ॥ १।३ ॥ हे कर्ण ! वनवास की अवधि बीत जाने पर तेरहवें वर्ष के उपरान्त तुम लोगों ने धर्मराज को उनका राज्य नहीं दिया । उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? जब तुम्हारी सम्मति से राजा दुर्योधन ने भीमसेन को विष-युक्त भोजन खिलाकर, सर्पों से कटवाकर, मार डालने की चेष्टा की थी तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? वारणावत में, लाक्षाभवन में अग्नि लगाकर सो रहे पाण्डवों को जलाकर मार डालने की जब चेष्टा की गई थी तब तुम्हारा धर्म कहाँ था ? ॥ ४।६ ॥ हे कर्ण ! जब तुमने दुःशासन के अधीन हो रही रजस्वला द्रौपदी से सभा में दुर्वचन कहे थे, उपहास और अपमान किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? हे राधेय ! अनार्य-कर्म करनेवाले कौरव जिस समय निरपराध द्रौपदी

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ।
पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्व गजगामिनीम् ।
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ९ ॥
राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाह्वयसि पाण्डवान् ।
यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ १० ॥
यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः ।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः ॥ ११ ॥
यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि किं सर्वथा तालुविशोषणेन ॥ १२ ॥
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि ।
नलो ह्यक्षैर्निर्जितः पुष्करेण पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात् ॥ १३ ॥
प्राप्तास्तथा पाण्डवा बाहुवीर्यात्सर्वैः समेताः परिवृत्तलोभाः ।
निहत्य शत्रून्समरे प्रवृद्धान्ससोमका राज्यमवाप्नुयुस्ते ॥ १४ ॥
तथा गता धार्तराष्ट्रा विनाशं धर्माभिगुप्तैः सततं नृसिंहैः ।
॥ १५ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ।
क्रोधात्प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत ॥ १६ ॥
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ।
ततोऽब्रवीद्वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ॥ १७ ॥

को सता रहे थे उस समय तुम सब देखा किये। उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? द्रौपदी की दुर्दशा देखकर तब तुमने कहा था कि "हे द्रौपदी! पाण्डवगण विनष्ट होकर सदा के लिए नरकवासी हो चुके हैं इसलिए अब तुम अन्य पति पसन्द कर लो", तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥७।१०॥ जब तुमने राज्य के लोभ से पाण्डवों को दूसरी बार जुए के निमित्त बुलवाया था और शकुनि के द्वारा जीता था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जिस समय तुम अनेक महारथियों ने घेरकर अकेले बालक अभिमन्यु का वध किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब तुमने इन सब अवसरों पर धर्म का ख्याल नहीं किया तब इस समय धर्म धर्म पुकारने से क्या होगा? ॥११।१२॥ इस समय लाख धर्म धर्म पुकारो और धर्म का आचरण करो, परन्तु जीते नहीं बच सकते। पूर्व समय में जैसे नल को उनके भाई पुष्कर ने द्यूत-क्रीड़ा में पहले जीत लिया था—राज्य हर लिया था और पीछे नल ने उसे हराकर यश और अपना राज्य फिर प्राप्त किया था, वैसे ही इस समय निर्लोभ धर्म सा पाण्डवगण भी सोमकगण सहित अपने बाहुबल से प्रबल शत्रुओं को मारकर फिर राज्य के अधिकारी होंगे। धर्म के द्वारा रक्षित वीर पाण्डवों के हाथ से धृतराष्ट्र के पुत्रगण अवश्य मारे जायेंगे॥१३।१५॥ सञ्जय कहते हैं—हे महाराज! श्रीकृष्ण के यों कहने पर वीर कर्ण लज्जा से सिर नीचा करके चुप हो रहे। क्रोध के मारे उनके दोनों ओठ फड़कने लगे। वे धनुष लेकर बड़े वेग और पराक्रम के साथ अर्जुन से युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—

दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ।
एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात्तदार्जुनः ॥ १८ ॥
मन्युमभ्याविशद्घोरं स्मृत्वा तत्तु धनञ्जयः ।
तस्य क्रुद्धस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ॥ १९ ॥
प्रादुरासंस्तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
तत्समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनञ्जयम् ॥ २० ॥
अभ्यवर्षत्पुनर्यत्नमकरोद्रथसर्जने ।
ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ २१ ॥
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहार च पाण्डवः ।
ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः ॥ २२ ॥
मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत्प्रजज्वाल तेजसा ।
वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् ॥ २३ ॥
जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः ।
पाण्डवेयस्त्वसम्भ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् ॥ २४ ॥
अपोवाह तदाभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः ।
ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ २५ ॥
आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया ।
योज्यमाने ततस्तस्मिन्बाणे धनुषि पूजिते ॥ २६ ॥
चचाल पृथिवी राजन्सशैलवनकानना ।
ववौ सशर्करो वायुर्दिशश्च रजसावृताः ॥ २७ ॥

हाहाकारश्च संजज्ञे सुराणां दिवि भारत ।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ॥ २८ ॥
विषादं परमं जग्मुः पाण्डवा दीनचेतसः ।
स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः ॥ २९ ॥
भुजान्तरं प्राप्य धनञ्जयस्य विवेश वल्मीकमिवोरगोत्तमः ।
स गाढविद्धः समरे महात्मा विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः ॥ ३० ॥
चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः क्षितेः प्रकम्पे च यथाचलोत्तमः ।
तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो रथाङ्गमुर्वीगतमुज्जिहीर्षुः ॥ ३१ ॥
रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां शशाक दैवान्न महाबलोऽपि ।
ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां जग्राह बाणं यमदण्डकल्पम् ॥ ३२ ॥
ततोऽर्जुनः प्राञ्जलिकं महात्मा ततोऽब्रवीद्वासुदेवोऽपि पार्थम् ।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण न यावदारोहति वै रथं वृषः ॥ ३३ ॥
तथैव सम्पूज्य स तद्वचः प्रभोस्ततः शरं प्रज्वलितं प्रगृह्य ।
जघान कक्षाममलार्कवर्णां महारथे रथचक्रे विमग्ने ॥ ३४ ॥
तं हस्तिकक्षाप्रवरं च केतुं सुवर्णमुक्तामणिवज्रपृष्ठम् ।
ज्ञानप्रकर्षोत्तमशिल्पियुक्तैः कृतं सुरूपं तपनीयचित्रम् ॥ ३५ ॥
जयास्पदं तव सैन्यस्य नित्यममित्रवित्रासनमीड्यरूपम् ।
विख्यातमादित्यसमं स्म लोके त्विषा समं पावकभानुचन्द्रैः ॥ ३६ ॥
ततः क्षुरप्रेण सुसंशितेन सुवर्णपुङ्खेन हुताग्निवर्चसा ।

प्रज्वलित हो रहा था। जिस समय कर्ण ने उस बाण को धनुष पर चढ़ाया उस समय वन पर्वत सहित पृथ्वी काँप उठी, कङ्कड़ियाँ उड़ाती हुई घोर आँधी चलने लगी, सब दिशाओं में अँधेरा छा गया और आकाश में देवगण हाहाकार करने लगे। कर्ण को वह उग्र बाण चढ़ाते देखकर पाण्डवगण दीनभाव को प्राप्त और खिन्न हो गये॥२५॥२९॥कर्ण का छोड़ा वह अत्यन्त तीक्ष्ण और इन्द्र के वज्र सा बाण वेग से आकर अर्जुन की छाती में, बिल के भीतर सर्प के समान, घुस गया। अर्जुन उस बाण की गहरी चोट से, भूकम्प में पर्वत के समान, काँप उठे। मुट्ठी शिथिल हो जाने से गाण्डीव धनुष भी छूटने लगा। अर्जुन को चक्कर आ गया। वे मूर्छित हो गये। फिर इसी मध्य में क[illegible] पहिया निकालने का यत्न करने लगे। परन्तु दैववश उनका अपरिमित बल कुछ काम न आया, पहिया नहीं निकला॥२९।३२॥उधर अर्जुन सावधान हुए। उन्होंने कर्ण को मारने के निमित्त यमदण्ड-सदृश एक आञ्जलिक बाण लिया। कृष्णचन्द्र ने भी अर्जुन से कहा—हे पार्थ! रथ पर चढ़ने के पहले ही इस बाण से कर्ण का सिर काट डालो। महावीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण का कहा मानकर पहले एक प्रज्वलित अग्नि-सदृश सुवर्ण पुङ्ख युक्त क्षुरप्र बाण से कर्ण के रथ की ध्वजा काट डाली॥ महारथी कर्ण के रथ की वह हस्तिकक्ष्या चिह्न ध्वजा सूर्य के समान प्रकाशमान थी। उसे अनेक कारीगरों ने सुवर्ण मणि मोती हीरा आदि से अलङ्कृत करके बड़े यत्न से बनाया था। हे महाराज! आपकी सेना को सदा विजय देनेवाली, शत्रुओं के मन में

स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः ।
देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य तेजः सूर्यः खं वितत्याविवेश ॥ ५५ ॥
तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः सन्दृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे ।
ततः शङ्खान्पाण्डवा दध्मुरुच्चैर्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन ॥ ५६ ॥
तथैव कृष्णश्च धनञ्जयश्च हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ ।
तं सोमकाःप्रेक्ष्य हतं शयानं सैन्यैः सार्धं सिंहनादान्प्रचक्रुः ॥ ५७ ॥
तूर्याणि सञ्जघ्नुरतीव हृष्टा वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च ।
संवर्धयन्तश्च नरेन्द्रयोधा पार्थं समाजग्मुतीव हृष्टाः ॥ ५८ ॥
बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्यन्नन्योन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः ।
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि वा विपन्नं कृत्तं रथात्सायकैरर्जुनस्य ॥ ५९ ॥
महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम् ।
रराज कर्णस्य शिरो निकृत्तमस्तङ्गतं भास्करस्येव बिम्बम् ॥ ६० ॥

शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः ।
विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान् ॥ ६१ ॥
प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः ॥ ६२ ॥
अस्तं गच्छन्यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति ।
तथा जीवितमादाय कर्णस्येषुर्जगाम सः ।
अपराह्णेऽपराह्णेऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६३ ॥

तेजस्वी कर्ण का उन्नत शरीर भी प्राणहीन होकर वैसे ही पृथ्वी पर गिर पड़ा, जैसे गेरू के झरनों से युक्त किसी पर्वत का ऊँचा शिखर इन्द्र के वज्र से फटकर गिर पड़े। हे राजेन्द्र, महावीर कर्ण जब गिर पड़े तब उनके शरीर से एक ज्योति निकली जो आकाश मण्डल को प्रकाशित और व्याप्त करता हुई सूर्य मण्डल में समा गई। यह अद्भुत घटना देख कर सब मनुष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। महावीर अर्जुन ने जब कर्ण को मार डाला तब पाण्डवों को असीम आनन्द हुआ। श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा अन्य पाण्डव पक्ष के लोग जोर से अपने अपने शङ्खों को बजाने लगे। सेना सहित पाञ्चाल सोमकगण भी कर्ण को रणशय्या में शयन करते देखकर सिंहनाद करने, ॥५४।५७॥ उछलने, हाथ तथा वस्त्र उछालने और तुरही नगाड़े आदि बाजे बजाने लगे। सब पाण्डवपक्ष के योद्धा अत्यन्त प्रसन्न हो कर अर्जुन के समीप आकर उनका संवर्द्धना करने लगे। कुछ लोग खुशी के मारे नाचने, एक दूसरे से लिपटने और गरज गरज कर कहने लगे कि बड़े भाग्य की बात है, जो आज कर्ण अर्जुन के हाथ से मारा गया। हे महाराज! जैसे घोर आंधी से पर्वत उलट गया हो, या यज्ञ के अन्त में अग्नि शान्त हुई हो, वैसे ही अर्जुन के बाण से प्राणहीन होकर पड़े हुए कर्ण की शोभा हुई। कर्ण का कटा हुआ सिर अस्त हुआ सूर्य बिम्ब जान पड़ता था॥५८।६०॥ कर्ण के शरीर में

छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः ।
उपर्युपरि सैन्यानामस्य शत्रोस्तदञ्जसा ।
शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः सोऽप्यहरद् द्रुतम् ॥ ६४ ॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराजश्छिन्नध्वजेनाथ ययौ रथेन ॥ ६५ ॥
हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त भयार्दिता गाढविद्धाश्च सङ्ख्ये ।
अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम् ॥ ६६ ॥
सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः सहस्रपत्रप्रतिमाननं शुभम् ।
सहस्ररश्मिर्दिनसंक्षये यथा तथापतत्कर्णशिरो वसुन्धराम् ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णवधे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

बाण ही वन देख पड़ते थे। रक्त से सारा शरीर भींग गया था। उनकी लाश किरणों से शोभित सूर्य के समान शोभायमान हो रही थी। इस प्रकार कर्ण-रूप सूर्य ने पहले बाण रूप किरण से शत्रुसेना को बहुत ही सन्ताप पहुँचाया; किन्तु अन्त को काल-रूप अर्जुन ने (सन्ध्या-काल की तरह) उन्हें बल पूर्वक अस्त कर दिया। अस्त हो रहे सूर्य जैसे प्रकाश को लेकर चले जाते हैं, वैसे ही अर्जुन का बाण भी कर्ण के प्राण ले गया॥६१।६४॥कर्ण के मरने पर मद्रराज शल्य टूटी ध्वजावाला रथ लेकर युद्धभूमि से चले गये। हे महाराज! कौरव सेनाके लोग अत्यन्त घायल, पीड़ित और शङ्कित होकर अर्जुन की प्रभापुञ्ज पूर्ण वानर- युक्त ध्वजा को बार-म्बार देखते हुए भय के मारे चारों ओर बड़े वेग से भागने लगे॥६५।६७॥

—०—

कर्णपर्व का इक्यानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९१ ॥

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच—शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः।
ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे रथेन संछिन्नपरिच्छदेन ॥ १ ॥
निपातितस्यन्दनवाजिनागं बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम् ।
दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो दीनो मुहुर्निःश्वसन्नार्तरूपः ॥ २ ॥
कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां शराचितं शोणितदिग्धगात्रम् ।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं दिदृक्षवः सम्परिवार्य तस्थुः ॥ ३ ॥

बानवे अध्याय ॥ ९२ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे राजेन्द्र! महापराक्रमी अर्जुन ने जब शूरश्रेष्ठ कर्ण को मार गिराया तब मद्रराज शल्य,कौरव-सेना को अत्यन्त पीड़ित देख-कर, वह ध्वजाहीन रथ लेकर वेग से चल दिये। कुरुराज दुर्योधन असंख्य हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और रथों सहित वीरवर कर्ण को मरा हुआ देखकर—दीन दुःखित होकर—आँखों में आंसू भरकर बार-म्बार लम्बे लम्बे श्वास छोड़ने लगे। योद्धा लोग बाणों से छिदे हुए, रक्त से तर, अपनी इच्छा से पृथ्वी पर गिरे हुए सूर्य के समान कर्ण को देखने के निमित्त आये और चारों ओर से उनकी लाश को घेरकर खड़े हो गये॥१।३॥ उस समय कोई

प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मितास्तथापरे शोकहता इवाभवन् ।
परे त्वदीयाश्च परस्परेण यथा यथैषां प्रकृतिस्तथाभवन् ॥ ४ ॥
प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं धनञ्जयेनाभिहतं महौजसम् ।
निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवुर्हतर्षभगाव इवाजने वने ॥ ५ ॥
भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन नादं कृत्वा रोदसी कम्पयानः ।
आस्फोटयन्वल्गते नृत्यते च हते कर्णे त्रासयन्धार्तराष्ट्रान् ॥ ६ ॥
तथैव राजन्सोमकाः सृञ्जयाश्च शङ्खान्दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे ।
परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः सूतात्मजे वै निहते तदानीम् ॥ ७ ॥
कृत्वा विमर्दं महदर्जुनेन कर्णो हतः केसरिणेव नागः ।
तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण वैरस्यान्तं गतवांश्चापि पार्थः ॥ ८ ॥
मद्राधिपश्चापि विमूढचेतास्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन ।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन्सबाष्पदुःखाद्वचनं बभाषे ॥ ९ ॥
विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम् ।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भिर्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः ॥ १० ॥
नैतादृशं भारत युद्धमासीद्यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव ।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णावन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये ॥ ११ ॥
दैवं ध्रुवं पार्थवशात्प्रवृत्तं यत्पाण्डवान्पाति हिनस्ति चास्मान् ।
तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः ॥ १२ ॥

(अर्जुन आदि) आनन्दित हो रहे थे, कोई (कायर लोग) भयभीत हुए हुए थे। कोई (कौरवदल के लोग) विषादग्रस्त हो रहे थे और कोई (दर्शक लोग) विस्मित हो रहे थे। महाबली अर्जुन ने कवच, आभूषण, शस्त्र, वस्त्र आदि छिन्न भिन्न करके महारथी कर्ण को मार डाला। यह सुनकर कौरवगण वैसे ही भागने लगे जैसे निर्जन वन में सिंह के द्वारा यूथपति साँड़ के मारे जाने पर गायों के झुण्ड भागते हैं॥४।५॥उस समय पराक्रमी भीमसेन सिंहनाद और बाहुशब्द से आकाश और पृथ्वी को परिपूर्ण करके आपके पुत्रों के मन में भय का सञ्चार करते हुए आनन्द के मारे नाचने लगे। सोमक और सृञ्जय आदि वीरगण हर्ष के मारे शङ्ख बजाने और एक दूसरे को गले से लगाने लगे। हे महाराज ! इस प्रकार महाबली अर्जुन, सिंह जैसे हाथी को मार डालता है वैसे ही, कर्ण को मारकर बदला लेकर, प्रतिज्ञा पूर्ण करके विजय कीर्ति के अधिकारी हुए ॥६।८॥ उधर मद्रराज शल्य मोहित से होकर[सृञ्जय-सोमकगण की की हुई अवहेला और उपहास को सहते हुए] वह ध्वजाहीन रथ लेकर दुर्योधन के समीप पहुँचे। वे आँखों में आँसू भरकर गद्गद स्वर से कहने लगे— हे कुरुराज ! असंख्य रथ, हाथी, घोड़े और योद्धा मारे जाने से आपकी सेना यम राज्य के समान हो रही है। आज कर्ण ने अर्जुन के साथ जैसा अद्भुत युद्ध किया है वैसा युद्ध और कभी न हुआ होगा। कर्ण ने पहले श्रीकृष्ण, अर्जुन और अन्य आपके शत्रुओं को पीड़ित कर दिया था॥९।११॥किन्तु दैव ही हमारे प्रतिकूल होकर पाण्डवों की रक्षा और हमारा नाश कर रहा है। यही कारण है कि आपकी ओर

कुवेरवैवस्वतवासवानां तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः ।
वीर्येण शौर्येण वलेन तेजसा तैस्तैस्तु युक्ता विविधैर्गुणौघैः ॥ १३ ॥
अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रास्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः ।
तान्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्पर्याश्वस त्वं न सदास्ति सिद्धिः ॥ १४ ॥
एतद्वचो मद्रपतेर्निशम्य स्वं चाप्यनीतं मनसा निरीक्ष्य ।
दुर्योधनो दीनमना विसंज्ञः पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यप्रत्यागमने द्विनवतितमोऽध्याय. ॥ ९२ ॥

से युद्ध करनेवाले—कुबेर, यमराज, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं के समान—प्रभावशाली, पराक्रमी शूर वीर गुणी योद्धाओं को बलपूर्वक शत्रुओं ने मार डाला। आपका प्रयोजन सिद्ध करने के निमित्त जो नरेन्द्र लड़े हैं वे अवध्य से थे (अर्थात् कोई मनुष्य युद्ध में उन्हें मार नहीं सकता था); तथापि वे पाण्डवों के हाथ से मारे गये। यह भाग्य का दोष है। इसलिए अब आप शोक न कीजिए, ढाढ़स बाँधिए। सबको सदा विजय नहीं मिलती, कार्यसिद्धि पर्याय क्रम से कभी कभी होती है॥१३।१४॥ हे महाराज! शल्य के ये वचन सुनकर, अपने अन्याय और पाण्डवों के साथ किये गये दुर्व्यवहार को स्मरण करके, दुर्योधन बहुत दुखी हुए। उनकी आँखों में आँसू भर आये। वे अचेतसे होकर दीनभावसे बार बार श्वास लेने लगे॥१५॥

कर्णपर्व का बानवे अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९२ ॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—तस्मिंस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे दग्धस्य रौद्रेऽहनि विद्रुतस्य ।
बभूव रूपं कुरुसृञ्जयानां बलस्य बाणोन्मथितस्य कीदृक् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो महाक्षयः ।
घोरे मनुष्यदेहानामाजौ च गजवाजिनाम् ॥ २ ॥
यत्र कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ।
तदा तव सुतान्राजन्नाविवेश महद्भयम् ॥ ३ ॥
न सन्धातुमनीकानि न चैवाशु पराक्रमे ।
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कर्हिचित् ॥ ४ ॥
वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवे यथा ।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ॥ ५ ॥

तिरानबे अध्याय ॥ ९३ ॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! कर्ण और अर्जुन के उस संग्राम में कर्ण के मारे जाने पर बाणों से छिन्न भिन्न होकर भाग रहे कौरवों और सृञ्जयों की क्या दशा हुई? यह तुम वर्णन करो॥१॥ सञ्जय ने कहा—हे महाराज! उस दिन के संग्राम में मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के भयङ्कर संहार का वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनिए। वीर कर्ण के मारे जाने पर महावीर अर्जुन का सिंहनाद सुनकर आपके पुत्र बहुत ही भयभीत हो गये। उस समय कौरवपक्ष का कोई भी वीर सेना को लौटाकर जहाँ की तहाँ स्थापित नहीं कर सका। किसी में इतनी सामर्थ्य न रही कि वह अपना पराक्रम प्रकट

सूतपुत्रे हते राजन्वित्रस्ताः शस्त्रविक्षताः ।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहैरिवार्दिताः ॥ ६ ॥
भग्नशृङ्गा वृषा यद्वद्भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
प्रत्यपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ ७ ॥
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ।
सूतपुत्रे हते राजन्पुत्रास्ते दुद्रुवुर्भयात् ॥ ८ ॥
विस्रस्तयन्त्रकवचाः कान्दिग्भूता विचेतसः ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तो वीक्षमाणा भयार्दिताः ॥ ९ ॥
मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ।
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च सम्भ्रमात् ॥ १० ॥
हयानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ।
आरुह्य जवसम्पन्नाः पदातीन्प्रजहुर्भयात् ॥ ११ ॥
कुञ्जरैः स्यन्दनाः क्षुण्णाः सादिनश्च महारथैः ।
पदातिसङ्घाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भयार्दितैः ॥ १२ ॥
व्यालतस्करसङ्कीर्णे सार्थहीना यथा वने ।
सूतपुत्रे हते राजंस्तत्र योधास्तथाभवन् ॥ १३ ॥
हतारोहा यथा नागाश्छिन्नहस्ता यथा नराः ।
सर्वे पार्थमयं लोकं सम्पश्यन्तो भयार्दिताः ॥ १४ ॥

कर सके॥२।४॥शङ्का से आकुल, शस्त्र प्रहार से अत्यन्त घायल, सिंह पीड़ित मृगयूथ के समान अनाथ कौरव सेना उसी प्रकार अपनी रक्षा करने में समर्थ पुरुष को ढूँढने लगी, जिस प्रकार सागर के मध्य जहाज टूट जाने पर यात्री लोग पार पहुँचाने के निमित्त व्याकुल होते हैं, सारी सेना के लोग अर्जुन के बाणों से जर्जर होकर—जिनके सींग टूट गये हों उन साँड़ों के समान और जिनके दाँत तोड़ दिये गये हों उन सर्पों के समान—भागने लगी॥५।७॥कर्ण और वृषसेन आदि वीरों के मारे जाने पर भय के मारे आपके पुत्रों का यह हाल हुआ कि वे अचेत से होकर भाग रहे थे, उनके यन्त्र कवच शस्त्र आदि अस्त-व्यस्त होकर गिर गये थे, उन्हें यह नहीं सूझता था कि किस दिशा को जायँ। वे एक दूसरे को रौंदते गिराते चले जा रहे थे, घूम घूमकर देखते जाते थे और उनमें से हर एक यही समझ रहा था कि अर्जुन और भीमसेन मेरी ही ओर आ रहे हैं। अनेक लोग भय और व्याकुलता से गिरकर मर गये॥८।१०॥अनेक योद्धा महारथी पैदलों को वहीं छोड़कर हाथियों, घोड़ों और रथों को शीघ्र भगाये चले जा रहे थे। बेतहाशा भागते समय हाथियों ने रथों को तोड़ डाला, महारथियों के रथों ने घुड़सवारों को कुचल डाला और भय से भाग रहे घोड़ों ने पैदलों को रौंद डाला। घोर सर्पों और लुटेरों से परिपूर्ण वन में साथियों से छूटे हुए असहाय मनुष्य की जो दशा होती है वही दशा, कर्ण के मरने पर, आपके योद्धाओं की हुई। कर्ण के मरने पर कौरव सेना के लोग, बिना सवार के हाथी और छिन्न बाहु मनुष्य के समान, विह्वल होकर दुनियाँ में भागने

सम्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान्भीमसेनभयार्दितान् ।
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हाहाकृत्वेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
नातिक्रमेच्च मां पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
जघने सर्वसैन्यानां शनैरश्वान्प्रचोदय ॥ १६ ॥
युध्यमानं हि कौन्तेयं हनिष्यामि न संशयः ।
नोत्सहेन्मामतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥ १७ ॥
अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम् ।
अन्यान्शिष्टांस्तथा शत्रून्कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ १८ ॥
तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः ।
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥ १९ ॥
रथाश्वनागहीनास्तु पादातास्तव मारिष ।
पञ्चविंशतिसाहस्रा युद्धायैव व्यवस्थिताः ॥ २० ॥
तान्भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
बलेन चतुरङ्गेण संवृत्याजघ्नतुः शरैः ॥ २१ ॥
प्रत्ययुध्यन्त समरे भीमसेनं सपार्षतम् ।
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ॥ २२ ॥
अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ॥ २३ ॥
न तान्रथस्थो भूमिष्ठान्धर्मापेक्षी वृकोदरः ।
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यव्यपाश्रयः ॥ २४ ॥

लगे । उन्हें सब ओर पाण्डव ही पाण्डव दिखाई दे रहे थे॥११।१४॥हे महाराज ! राजा दुर्योधन ने सब को भीमसेन के भय से पीड़ित होकर जब इस प्रकार भागते देखा तब सारथी से कहा—हे सारथी ! तुम सेना के मध्य में धीरे-धीरे मेरा रथ ले चलो । धनुष लेकर खड़े हुए मुझको लाँघकर अर्जुन आगे नहीं बढ़ सकता । मैं इस समय युद्ध में अर्जुन, कृष्ण, अभिमानी भीमसेन और बचे हुए अन्य शत्रुओं को मारकर कर्ण का बदला लूँगा । समुद्र जैसे तटभूमि को लाँघकर आगे नहीं बढ़ सकता, वैसे ही अर्जुन मेरे आगे से नहीं जा सकता॥१५।१८॥दुर्योधन का सारथी उनके, शूर और आर्य क्षत्रिय के योग्य, वचन सुनकर धीरे धीरे सुवर्ण-भूषित घोड़ों को बढ़ाने लगा । उस समय रथी, घुड़सवार और गजारोही योद्धाओं के अलावा पचीस सहस्र पैदल योद्धा कौरव सेना में बच रहे थे । ये सब दुर्योधन को युद्ध के निमित्त उद्यत देखकर लौट पड़े और पाण्डवों की ओर चले । यह देखकर भीमसेन और धृष्टद्युम्न को क्रोध चढ़ आया । उन्होंने उन पैदलों को चारों ओर से, चतुरङ्गिणी सेना द्वारा, घेरकर बाणों से मारना आरम्भ किया । पैदल योद्धा भी प्राणों का मोह छोड़कर धृष्टद्युम्न और भीमसेन को, उनके नाम ले-लेकर, ललकारने और युद्ध करने लगे ॥१९।२२॥कुपित भीमसेन,युद्धधर्म का खयाल करके, गदा हाथ में लेकर, रथ से उतर पड़े और आप भी

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अवधीत्तावकान्सर्वान्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ २५ ॥
पदातिनोऽपि सन्त्यक्त्वा प्रियं जीवितमात्मनः ।
भीममभ्यद्रवन्सङ्ख्ये पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २६ ॥
आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
विनेशुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ॥ २७ ॥
श्येनवद्विचरन्भीमो गदाहस्तो महाबलः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानवपोथयत् ॥ २८ ॥
हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य तस्थौ तत्र महाबलः ॥ २९ ॥
धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ।
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥ ३० ॥
जवेनाभ्यपतन्हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ।
तस्याश्वसादीन्सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ॥ ३१ ॥
समभ्यधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमभून्महत् ।
धनञ्जयोऽपि चाभ्येत्य रथानीकं तव प्रभो ॥ ३२ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं विक्षिपन्धनुः ।
कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ॥ ३३ ॥
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ।
विप्रहीणरथाश्चैव शरैश्च परिकर्षिताः ॥ ३४ ॥

पैदल खड़े होकर पैदलों से युद्ध करने लगे। अपने बाहुबल का आश्रय रखनेवाले भीमसेन सुवर्णभूषित गदा से उन शत्रुओं को, दण्डपाणि यमराज के समान मारने और गिराने लगे॥२३।२५॥वे सब पैदल भी प्राणों का मोह छोड़कर भीमसेन की ओर वेग से चले, जैसे पतङ्ग अग्नि की ओर झपटते हैं। भीमसेन के समीप जाते ही वे लोग मृत्यु के निकटवर्ती प्राणियों के समान, मरने लगे। गदा हाथ में लिये हुए महाबली भीमसेन ने बाज के समान झपट झपटकर उन पचीसों सहस्रको गिरा दिया॥ भीमसेन इसप्रकार पैदल सेनाका संहार करके धृष्टद्युम्न के साथ रणभूमि में अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए॥२६।२९॥उधर हमारे पक्ष की जो बची हुई रथसेना थी उसे अर्जुन मारने लगे। दुर्योधन की सेना को मार रहे सात्यकि, नकुल और सहदेव उत्साहपूर्वक वेग से शकुनि की ओर चले। शकुनि के साथ चार घुड़सवारों का रिसाला था। उसे वे वीर तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। उस समय फिर घनघोर युद्ध होने लगा। महारथी अर्जुन रथी योद्धाओं के समीप पहुँचकर त्रिलोक प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष को बजाने लगे॥३०।३३॥कौरवपक्ष के योद्धा लोग श्रीकृष्ण-सञ्चालित श्वेत घोड़ों से युक्त रथ और योद्धा अर्जुन को देखते ही भागने लगे। उधर महावीर भीमसेन और महारथी धृष्टद्युम्न भी उन बाण प्रहार से विह्वल पचीस सहस्र पैदलों का संहार करके शीघ्र

पञ्चविंशतिसाहस्राः कालमार्छन्पदातयः ।
हत्वा तान्पुरुषव्याघ्रः पञ्चालानां महारथः ॥ ३५ ॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महामनाः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य न चिरात्प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥
महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणतापनः ।
पारावतसवर्णाश्वं कोविदारमयं ध्वजम् ॥ ३७ ॥
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन्भयात् ।
गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ॥ ३८ ॥
न चिरात्प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ।
चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ॥ ३९ ॥
हत्वा त्वदीयं सुमहत्सैन्यं शङ्खांस्तथाऽधमन् ।
ते सर्वे तावकान्प्रेक्ष्य द्रवतोऽपि पराङ्मुखान् ॥ ४० ॥
अभ्यवर्तन्त संरब्धान्वृषाञ्जित्वा यथा वृषाः ।
सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव सैन्यस्य पाण्डवः ॥ ४१ ॥
व्यवस्थितः सव्यसाची चुक्रोध बलवान्नृप ।
धनञ्जयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥ ४२ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।
तत एनाञ्शरव्रातैः सहसा समवाकिरत् ॥ ४३ ॥
तमसा संवृते नाथ न स्म किञ्चिद्व्यदृश्यत ।
अन्धकारीकृते लोके रजोभूते महीतले ॥ ४४ ॥
योधाः सर्वे महाराज तावकाः प्राद्रवन्भयात् ।
सम्भज्यमाने सैन्ये तु कुरुराजो विशाम्पते ॥ ४५ ॥

ही भीमसेन के समीप पहुँचे। कबूतर के रङ्ग के सफेद घोड़ों से युक्त और कोविदार-चिह्न युक्त ध्वजा से शोभित रथ पर धृष्टद्युम्न को और महाधनुर्धर भीमसेन को आते देखकर कौरव सेना के योद्धा भय-विह्वल होकर भागने लगे॥३३।३८॥उधर शीघ्र शस्त्र चलानेवाले स्फूर्तिशाली गान्धारराज शकुनि और उसकी घुड़सवार सेना का पीछा कर रहे यशस्वी नकुल, सहदेव और सात्यकि भी वहाँ आ पहुँचे। चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्र आपकी सेना के अधिक अंश को नष्ट करके अलग अलग शङ्ख बजाने लगे। साँड़ जैसे अपने प्रतिद्वन्द्वी साँड़ को भागते देखकर और भी वेग से उसका पीछा करता है, वैसे ही ये सब वीर महारथी अपने शत्रुओं के भागने पर भी उन्हें मारते हुए उनका पीछा करने लगे॥३८।४२॥इसी समय महापराक्रमी अर्जुन मार से बचे हुए कौरवयोद्धाओं को [फिर लौटकर युद्ध करने के निमित्त उद्यत] देखकर क्रोध से जल उठे। वे उन वीरों के सम्मुख आकर अपना त्रिलोक-प्रसिद्ध गाण्डीव चढ़ाकर बाण बरसाने लगे। उस समय पृथ्वी पर उठी हुई धूल ने और अन्धकार में अत्यन्त

स विह्वलाद्भिश्च गतासुभिश्च प्रध्वस्ततत्रमायुधचर्मखङ्गैः ।
वज्रापविद्धैरिव चाचलोत्तमैर्विभिन्नपाषाणमहाद्रुमौषधैः ॥ ३ ॥
प्रविद्धघण्टांकुशतोमरध्वजैः सहेमजाले रुधिरौघसम्प्लुतैः ।
शराभिन्नैः पतितैस्तुरङ्गमैः श्वसद्भिरार्तैः क्षतजं वमद्भिः ॥ ४ ॥
दीनं स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रैर्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः ।
तथापविद्धैर्गजवाजियोधैर्वलापविद्धैरथ वीरसङ्घैः ॥ ५ ॥
मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैः ।
मन्दांशुभिश्चैव मही महाहवे नूनं यथा वैतरणीव भाति ॥ ६ ॥
गजैर्निकृत्तैर्वरहस्तगात्रैरुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्याम् ।
विशीर्णदन्तैः क्षतजं वमद्भिः स्फुरद्भिरार्तैः करुणं नदद्भिः ॥ ७ ॥
निकृत्तचक्रेषुयुगैः सयोक्तृभिः प्रविद्धतूणीरपताककेतुभिः ।
सुवर्णजालावततैर्भृशाहतैर्महारथौघैर्जलदैरिवावृता ॥ ८ ॥
यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः ।
विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधैर्वृताप्रशान्तैरिव तावकैर्मही ॥ ९ ॥
शरप्रहाराभिहतैर्महाबलैरवेक्षमाणैः पतितैः सहस्रशः ।
दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भिर्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलप्रदीप्तैः ॥ १० ॥

चौरानवे अध्याय ॥ ९४ ॥

सञ्जय कहते हैं कि हे महाराज ! मद्रराज शल्य ने राजा दुर्योधन को सेना के लौटाने का यत्न करते देखकर, दीन, भय विह्वल और मोहग्रस्त भाव से, उन्हें सम्बोधन करके कहा॥१॥—हे महाराज! देखो, मारे गये वीर मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों की लाशों से रणभूमि व्याप्त हो रही है। कहीं पर बाणों से विदीर्ण पर्वताकार हाथी पड़े हुए हैं, जिनमें कुछ मर गये हैं और कुछ अधमरे तड़प रहे हैं। उनके कवच, योद्धा और योद्धाओं के शस्त्र छिन्न भिन्न हो गये हैं। जिनके घण्टा, ध्वजा-पताका, अङ्कुश, तोमर, सुवर्ण जाल और हौदे आदि सामान अस्त-व्यस्त और नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं, शरीर रक्त से भीग रहे हैं, वे हाथी उन वज्र विदीर्ण पर्वतों के समान जान पड़ते हैं, जिनकी शिलाएँ चूर्ण हो गई हों और वृक्ष टूट गये हों। कहीं पर बाणों से विदीर्ण घोड़े पड़े हुए चिल्ला रहे हैं। उनके मुखों से रक्त बह रहा है और वे दीन, त्रास युक्त भाव से नेत्र निकाले पड़े तड़प रहे हैं। इन दृश्यों से रणभूमि महाभयङ्कर हो रही है। पड़े हुए मरे और अधमरे हाथियों, घोड़ों, रथों योद्धाओं, घुड़सवारों, पैदलों और टूटे हुए रथों से रणभूमि पटी पड़ी है। हाथियों की सूँड़ें और अन्य अङ्ग कट गये हैं और वे पृथ्वी में पड़े तड़प रहे हैं॥२।७॥ श्रेष्ठ रथ योद्धा, घुड़सवार, हाथियों के सवार और पैदल सम्मुख युद्ध में शत्रुओं के प्रहार से मारे गये हैं। उनके कवच, आभूषण, वस्त्र, शस्त्र आदि अस्त-व्यस्त और इधर उधर बिखरे पड़े हैं जिनसे रणभूमि नक्षत्र तारागणयुक्त आकाशखण्ड सी शोभायमान हो रही है। बुझी हुई अग्नि के समान महाबली वीर योद्धा शत्रुओं के बाणों से मरे हुए पड़े हैं। उनमें जो अधमरे हैं, वे पड़े-पड़े चारों ओर देख रहे हैं

प्रनष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भिर्मही बभूवानुगतैरिवार्चिभिः ।
कर्णार्जुनाभ्यां शरभिन्नगात्रैर्हतैः प्रवीरैः कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ११ ॥
शरास्तु कर्णार्जुनबाहुमुक्ता विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान् ।
प्राणान्निरस्याशु महीं प्रतीयुर्महोरगा वासमिवाभिनम्राः ॥ १२ ॥
हतैर्मनुष्याश्वगजैश्च सङ्ख्ये शरापविद्धैश्च रथैर्नरेन्द्र ।
धनञ्जयस्याधिरथेश्च मार्गणैरगम्यरूपा वसुधा बभूव ॥ १३ ॥
रथैर्वरेपून्मथितैः सुकल्पैः सयोधशस्त्रैश्च वरायुधैर्ध्वजैः ।
विशीर्णयोक्त्रैर्विनिकृत्त बन्धनैर्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः ॥ १४ ॥
विमुक्तशस्त्रैश्च तथा ह्युपस्करैर्हतानुकर्षैर्विनिपन्नबन्धनैः ।
प्रभग्ननीडैर्मणिहेमभूषितैः स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः ॥ १५ ॥
विकृष्यमाणैर्जवनैस्तुरङ्गमैर्हतेश्वरै राजरथैः सुकल्पितैः ।
मनुष्यमातङ्गरथाश्वराशिभिर्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः ॥ १६ ॥
सहेमपट्टाः परिघाः परश्वधाः शिताश्च शूला मुसलानि मुद्गराः ।
पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा गदाश्च जाम्बूनदपट्टनद्धाः ॥ १७ ॥
चापानि रुक्माङ्गदभूषणानि शराश्च कार्तस्वरचित्रपुङ्खाः ।
ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः प्रासाश्च दण्डैः कनकावभासैः ॥ १८ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि शङ्खाश्छिन्नापविद्धाश्च स्रजो विचित्राः ।
कुथाः पताकाम्बरभूषणानि किरीटमालामुकुटाश्च शुभ्राः ॥ १९ ॥

॥८।१०॥ कर्ण और अर्जुन के हाथों से छूटे हुए बाण हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों को विदीर्ण करके, उनके प्राणों को हरते हुए, पृथ्वी में प्रवेश हो गये हैं, जैसे महानाग बिल में प्रवेश होते हैं। जिधर-जिधर कर्ण और अर्जुन के रथ गये हैं, उधर उधर बाण-विदीर्ण रक्त से नहाये हुए असंख्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के ढेर लग गये हैं, जिनसे यह पृथ्वी अत्यन्त दुर्गम और भयानक हो रही है॥११।१३॥बाणों से छिन्न भिन्न हुए सुसज्जित बड़े बड़े रथ टूटे फूटे पड़े हैं। उनके सारथी, घोड़े और योद्धा भी मर गये हैं। ध्वजा, शस्त्र, तरकस, पताका, पहिये, जुआ, युग, त्रिवेणु, बन्धन, ईषादण्ड और अनुकर्ष आदि उनके सामान भी बाणों ॥ छिन्न भिन्न होकर अस्त-व्यस्त पड़े हैं। उन मणि सुवर्ण-भूषित रथों के आसन, बैठने के स्थान और कूबर फट फट गये हैं। ऐसे रथ, आकाश में शरद् ऋतु के मेघखण्डों के समान, रणभूमि में पड़े दिखाई देते हैं। राजाओं के सुसज्जित रथों को, स्वामी के मारे जाने पर, वेगगामी घोड़े खींचते हुए इधर उधर फिर रहे हैं। वे रथ पड़े हुए मनुष्य, हाथी, रथ, घुड़सवार आदि को कुचलते रौंदते चले जा रहे हैं और कहीं पर अटक कर उलट जाते हैं॥१४।१६॥हे राजेन्द्र ! रणभूमि में पड़े हुए सहस्रों सुवर्णालङ्कृत परश्वध, तीक्ष्ण शूल, मूसल, मुद्गर, परिघ आदि शस्त्र चतुरङ्गिणी सेना के जाने आने से चूर्ण हो गये हैं। इसी प्रकार चमकीले खड्ग, उनकी चित्र-विचित्र म्यानें, ढालें, सुवर्ण पट्ट-भूषित गदाएँ, सुवर्ण से अलङ्कृत धनुष, सुवर्ण पुङ्ख युक्त बाण, तीक्ष्ण ऋष्टियाँ, उनके रत्नजटित कोश, कटारें, सुवर्ण की मूठ या डण्डीवाले प्रास आदि शस्त्र इधर उधर पड़े हैं। चमकीले छत्र, श्वेत चँवर, शङ्ख,

प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च राजन्प्रवालमुक्तानरत्नाश्च हाराः ।
आपीडकेयूरवराङ्गदानि ग्रैवेयनिष्काः ससुवर्णसूत्राः ॥ २० ॥
मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि ।
गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि ॥ २१ ॥
देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चैव ।
स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य व्याप्याशु लोकान्यशसा गतास्ते ॥ २२ ॥
निवर्त दुर्योधन यान्तु सैनिका व्रजस्व राजञ्शिविराय मानद ।
दिवाकरोऽप्येष विलम्बते प्रभो पुनस्त्वमेवात्र नरेन्द्र कारणम् ॥ २३ ॥
इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो दुर्योधनं शोकपरीतचेताः ।
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणमार्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम् ॥ २४ ॥
तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति ।
निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् ॥ २५ ॥
नराश्वमातङ्गशरीरजेन रक्तेन सिक्तां च तथैव भूमिम् ।
रक्ताम्बरस्रक्तपनीययोगान्नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्याम् ॥ २६ ॥
प्रच्छन्नरूपां रुधिरेण राजन्रौद्रे मुहूर्तेऽतिविराजमाने ।
नैवावतस्थुः कुरवः समीक्ष्य प्रव्राजिता देवलोकाय सर्वे ॥ २७ ॥

छिन्न भिन्न बहुमूल्य मालाएँ, विचित्र कम्बल, आसन, पताका ध्वजा, वस्त्र, पगड़ियाँ, आभूषण, किरीट, मुकुट, कलगी, माला, मूँगे मोती के हार, केयूर, सुवर्णसूत्र समलंकृत गले में पहनने के निष्क, मणि हीरा मोती प्रभृति विविध बहुमूल्य रत्न आदि का ढेर लगा हुआ है। राजाओं के सुख भोग में पले हुए शरीर, कटे हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग और चन्द्रबिम्ब से सिर जहाँ तहाँ पड़े हैं॥१७।२१॥ वीर राजा और क्षत्रिय लोग मरकर, विविध भोग, सुख-सामग्री और शरीर छोड़कर, अपने धर्म का पालन करके, पृथ्वी पर अक्षय महायश छोड़ कर स्वर्ग को चले गये हैं। इसलिए हे कुरुराज दुर्योधन! तुम भी अब युद्ध बन्द कर दो, शिविर को चलो, सैनिकों को लौटाओ। देखो, सूर्यदेव अस्ताचल के शिखर पर पहुँच गये। आगे तुम्हारी इच्छा। हे महाराज! शोक से व्याकुल शल्य ने यों कहकर "हाय कर्ण! हाय कर्ण!" कह रहे विषाद-ग्रस्त दुर्योधन को समझाकर युद्ध से लौटाया॥२२।२४॥ अश्वत्थामा और अन्य राजाओं ने भी दुर्योधन को ढाढ़स बँधाया। इसके उपरान्त सब लोग संग्राम बन्द करके, अर्जुन के यश से समुज्ज्वल दिव्य रथ और उसकी ऊँची ध्वजा को बारम्बार देखते हुए, शिविर की ओर चल दिये। स्वर्गगमन के निमित्त दृढ़ निश्चय करके सम्मुख युद्ध में मारे गये वीर मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीरों से इतना रक्त बहा था कि उसके प्रवाह से सारी रणभूमि भीग रही थी। वह रणभूमि लाल रङ्ग के वस्त्र, माला और सुवर्ण के आभूषण धारण किये हुए, सबके लिए रमणीय, वेश्या के समान सर्व जन गम्य होकर शोभित हो रही थी। उस रौद्र समय में, सन्ध्याओं के सन्धिकाल में, कौरवगण उस भयङ्कर स्थान में नहीं स्थित हो सके। [जैसे एक समय पाँचों पाण्डव द्यूतक्रीड़ा में कौरवों से हार जाने पर हस्तिनापुर से दुःखित होकर चले थे वैसे ही आज कौरवगण भी दुःखित, उदास और विह्वल होकर रणभूमि से चले।]॥२५।२७॥ कर्ण के मारे

वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः ।
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ २८ ॥
गाण्डीवमुक्तस्तु सुवर्णपुङ्खैः शिलाशितैः शोणितदिग्धवाजैः ।
शरैश्चिताङ्गो युधि भाति कर्णो हतोऽपि सन्सूर्य इवांशुमाली ॥ २९ ॥
कर्णस्य देहं रुधिरावसिक्तं भक्तानुकम्पी भगवान्विवस्वान् ।
स्पृष्ट्वांशुभिर्लोहितरक्तरूपः सिष्णासुरभ्येति परं समुद्रम् ॥ ३० ॥
इतीव सञ्चिन्त्य सुरर्षिसङ्घाः सम्प्रस्थिता यान्ति यथा निकेतनम् ।
सञ्चिन्तयित्वा जनता विसस्रुर्यथासुखं खं च महीतलं च ॥ ३१ ॥
तदद्भुतं प्राणभृतां भयङ्करं निशम्य युद्धं कुरुवीरमुख्ययोः ।
धनञ्जयस्याधिरथेश्च विस्मिताः प्रशंसमानाः प्रययुस्तदा जनाः ॥ ३२ ॥

शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षितवाससम् ।
गतासुमपि राधेयं नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ३३ ॥
तप्तजाम्बूनदनिभं ज्वलनार्कसमप्रभम् ।
जीवन्तमिव तं शूरं सर्वभूतानि मेनिरे ॥ ३४ ॥
हतस्यापि महाराज सूतपुत्रस्य संयुगे ।
वित्रेसुः सर्वतो योधाः सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ३५ ॥
हतोऽपि पुरुषव्याघ्र जीववानिव लक्ष्यते ।
नाभवद्विकृतिः काचिद्धतस्यापि महात्मनः ॥ ३६ ॥

जाने से दुःखित कौरवगण सूर्यमण्डल को लाल और अस्त होते देखकर, "हाय कर्ण ! हाय कर्ण !" कह कर विलाप-पश्चात्ताप करते हुए, शीघ्रता के साथ अपने शिविरों को चल दिये। हे महाराज ! अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए, सुवर्णपुङ्ख-युक्त, तीक्ष्ण और रक्त से तर असंख्य बाण वीर कर्ण के शरीर भर में लगे थे। वह अद्वितीय वीर मर जाने पर भी किरण-जाल-शोभित सूर्य के समान जान पड रहा था। रक्त से तर कर्ण के शरीर को रक्तवर्ण करों (किरणों, पक्षान्तर में हाथों) से स्पर्श करके पुत्र स्नेह सा दिखा रहे भगवान् सूर्यदेव मानों स्नान करने के निमित्त ही पश्चिम-समुद्र को गये॥२८।३१॥ यह समझकर देवता और ऋषिगण भी अपने-अपने लोकों को चल दिये। दर्शक रूप से आई हुई सारी भीड, कर्ण और अर्जुन के भयङ्कर संग्राम को देखकर, विस्मित होकर उसी की चर्चा और प्रशंसा करती हुई अपने-अपने स्थानों को जाने लगी। हे राजेन्द्र ! बाणों से कवच कट गया था, सारा शरीर रक्त से सन रहा था, ऐसी दशा में भी—मृत्यु हो जाने पर भी—कर्ण को शोभा और तेज ने नहीं छोड़ा था। तपे हुए सुवर्ण और बाल-सूर्य के समान प्रभापूर्ण कर्ण को देखकर सबको यही जान पड़ता था कि वे मरे नहीं हैं॥३२।३४॥ सिंह को देखकर जैसे मृग भय भीत होते हैं वैसे ही मरे हुए कर्ण को भी देखकर योद्धाओं के मन में त्रास उत्पन्न हो जाता था। वीर कर्ण के मर जाने पर भी देखने से जान पड़ता था कि वे बोलना ही चाहते हैं। सुन्दर वेष और सुडौल ग्रीवा से युक्त कर्ण का मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमा के

चारुवेषधरं वीरं चारुमौलिशिरोधरम् ।
तन्मुखं सूतपुत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ॥ ३७ ॥
नानाभरणवान्राजंस्तप्तजाम्बूनदाङ्गदः ।
हतो वैकर्तनः शेते पादपोऽङ्कुरवानिव ॥ ३८ ॥
कनकोत्तमसङ्काशो ज्वलन्निव विभावसुः ।
स शान्तः पुरुषव्याघ्रः पार्थसायकवारिणा ॥ ३९ ॥
यथा हि ज्वलनो दीप्तो जलमासाद्य शाम्यति ।
कर्णाग्निः समरे तद्वत्पार्थमेघेन शामितः ॥ ४० ॥
आहृत्य च यशो दीप्तं सुयुद्धेनात्मनो भुवि ।
विसृज्य शरवर्षाणि प्रताप्य च दिशो दश ॥ ४१ ॥
सपुत्रः समरे कर्णः स शान्तः पार्थतेजसा ।
प्रताप्य पाण्डवान्सर्वान्पञ्चालांश्चास्त्रतेजसा ॥ ४२ ॥
वर्षित्वा शरवर्षेण प्रताप्य रिपुवाहिनीम् ।
श्रीमानिव सहस्रांशुर्जगत्सर्वं प्रताप्य च ॥ ४३ ॥
हतो वैकर्तनः कर्णः सपुत्रः सहवाहनः ।
अर्थिनां पक्षिसङ्घस्य कल्पवृक्षो निपातितः ॥ ४४ ॥
ददानीत्येव योऽवोचन्न नास्तीत्यर्थितोऽर्थिभिः ।
सद्भिः सदा सत्पुरुषः स हतो द्वैरथे वृषः ॥ ४५ ॥
यस्य ब्राह्मणसात्सर्वं वित्तमासीन्महात्मनः ।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीद्यस्य स्वमपि जीवितम् ॥ ४६ ॥

समान जान पड़ता था। विविध आभूषण और सुवर्ण के भुजबन्द पहने हुए कर्ण, किसी काट डाले गये शाखा प्रशाखा युक्त बड़े वृक्ष के समान, रण शय्या पर पड़े थे॥३५।३८॥हे नरेन्द्र! अपने तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित कर्ण इस प्रकार अर्जुन के बाणों के जल से बुझ गये। प्रज्वलित अग्नि को जैसे जल बुझा देता है वैसे ही कर्ण पावक को पार्थ मेघ ने बुझा दिया। हे महाराज! घोर युद्ध करके पृथ्वी पर अक्षय यश छोड़कर पुत्र सहित वीर कर्ण अर्जुन के बाण से मारे गये॥३९।४२॥महातेजस्वी कर्ण ने श्रीमान् सूर्यदेव के समान, अस्त्र तेज और बाण वर्षा से सब पाञ्चालों तथा पाण्डवों को अत्यन्त पीड़ित किया, असंख्य शत्रुसेना को मारा [और अर्जुन को भी प्राण सङ्कट की अवस्था तक पहुँचा दिया]। परन्तु अन्त को पुत्र सहित वीर कर्ण अर्जुन के हाथ से मारे गये। हे नरनाथ! जिस सत्पुरुष दानवीर ने माँगने पर "देता हूँ" के अतिरिक्त नकार कभी मुख से नहीं निकाला, वही प्रार्थियों का कल्पवृक्ष कर्ण द्वन्द्व युद्ध में अर्जुन के हाथ से मारा गया॥४२।४५॥ सज्जन लोग कर्ण को महात्मा और सत्पुरुष कहकर उनका सम्मान किया करते थे। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को अर्पण कर रक्खी थी। वे ब्राह्मणों के निमित्त जीवन तक दे देने को तैयार रहते थे। वही स्त्रियों का प्यार और जगत्प्रसिद्ध दाता कर्ण अर्जुन

सदा स्त्रीणां प्रियो नित्यं दाता चैव महारथः ।
स वै पार्थास्त्रनिर्दग्धो गतः परमिकां गतिम् ॥ ४७ ॥
यमाश्रित्याकरोद्वैरं पुत्रस्ते स गतो दिवम् ।
आदाय तव पुत्राणां जयाशां शर्म वर्म च ॥ ४८ ॥
हते कर्णे सरितो न प्रसस्रुर्जगाम चास्तं सविता दिवाकरः ।
ग्रहश्च तिर्यग्ज्वलनार्कवर्णः सोमस्य पुत्रोऽभ्युदियाय तिर्यक् ॥ ४९ ॥
नभः पफालेव ननाद चोर्वी ववुश्च वाताः परुषाः सुघोराः ।
दिशो बभूवुर्ज्वलिताः सधूमा महार्णवाः सस्वनुश्चुक्षुभुश्च ॥ ५० ॥
सकाननाश्चाद्रिचयाश्चकम्पिरे प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च सर्वे ।
बृहस्पतिः सम्परिवार्य रोहिणीं बभूव चन्द्रार्कसमो विशाम्पते ॥ ५१ ॥
हते तु कर्णे विदिशोऽपि जज्वलुस्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः ।
पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा निशाचराश्चाप्यभवन्प्रहृष्टाः ॥ ५२ ॥
शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत् ।
तदान्तरिक्षे सहसैव शब्दो बभूव हाहेति सुरैर्विमुक्तः ॥ ५३ ॥
स देवगन्धर्वमनुष्यपूजितं निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जुनः ।
रराज राजन्परमेण वर्चसा यथा पुरा वृत्रवधे शतक्रतुः ॥ ५४ ॥
ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना शरन्नभोमध्यदिवाकरार्चिषा ।
पताकिना भीमनिनादकेतुना हिमेन्दुशङ्खस्फटिकावभासिना ॥ ५५ ॥

के बाण से प्राणहीन होकर परमगति को प्राप्त हो गये। जिनके आश्रय पर आपके पुत्र दुर्योधन ने प्रबल पाण्डवों से वैर ठाना था, वे कौरवों के कवच (रक्षक) वीर कर्ण आपके पुत्रों की विजय की आशा और कल्याण लेकर स्वर्गगामी हो गये॥४६। ४८॥ हे कुरुकुलतिलक ! जिस समय महावीर कर्ण मारे गये उस समय एकाएक नदियों के प्रवाह रुक गए, सूर्य मलिन होकर अस्त हो गये, सब दिशाओं में धुआँ सा छा गया और दिग्दाह दिखाई दिया। सूर्य के समान प्रज्वलित होकर सोम पुत्र श्वेतग्रह (बुध) वक्र भाव से आकाश में उदित दिख पड़ा। आकाश विचलित सा हो उठा। पृथ्वी घोर शब्द करती हुई काँपने लगी। कठोर आँधी चलने लगी। महासागर क्षोभ को प्राप्त होकर घोर शब्द करने लगे। वनों सहित बड़े बड़े पर्वत हिल उठे। इन उत्पातों से सब प्राणी अत्यन्त व्यथित और विह्वल हो उठे। बृहस्पति ग्रह सूर्य चन्द्र के समान प्रज्वलित होकर रोहिणी को पीड़ित करने लगा॥४९। ५१॥ आकाश और दिशाएँ अन्धकार से परिपूर्ण हो गईं और अग्निपुञ्ज सी उल्काएँ गिरने लगीं। निशाचर आज अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे राजेन्द्र ! जिस समय महापराक्रमी अर्जुन ने अग्रलिप्त बाण से कर्ण का सिर काट डाला उस समय अन्तरिक्ष में देवगण हाहाकार करने लगे॥५२। ५३॥ देवता, गन्धर्व, मनुष्य आदि सब जिनकी पूजा और प्रशंसा किया करते थे, उन अपने प्रबल शत्रु कर्ण को युद्ध में मारकर महापराक्रमी अर्जुन, वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्र के समान, महान् तेज और प्रभाव से युक्त हुए। भयानक शब्द और

महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ महेन्द्रवीर्यप्रतिमानपौरुषौ ।
सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमैरलंकृतावप्रतिमेन रंहसा ॥ ५६ ॥
नरोत्तमौ केशवपाण्डुनन्दनौ तदा हि तावग्निदिवाकराविव ।
रणाजिरे वीतभयौ विरेजतुः समानयानाविव विष्णुवासवौ ॥ ५७ ॥
ततो धनुर्ज्यातलवाणनिःस्वनैः प्रसह्य कृत्वा च रिपून्हतप्रभान् ।
सञ्छादयित्वा तु कुरूञ्शरोत्तमैः कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च ॥ ५८ ॥
हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ मनांस्यरीणामवदारयन्तौ ।
सुवर्णजालावततौ महास्वनौ हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः ॥
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः ॥ ५९ ॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवान्वनादयत् ॥ ६० ॥
वित्रस्ताश्चाभवन्सर्वे कौरवा राजसत्तम ।
शङ्खशब्देन तेनाथ माधवस्यार्जुनस्य च ॥ ६१ ॥
तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ वनानि शैलान्सरितो गुहाश्च ।
वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां युधिष्ठिरं नन्दयतां वरिष्ठौ ॥ ६२ ॥
ततः प्रयाताः कुरवो जवेन श्रुत्वैव शङ्खस्वनमीर्यमाणम् ।
विहाय मद्राधिपतिं पतिं च दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥ ६३ ॥
महाहवे तं बहु रोचमानं धनञ्जयं भूतगणाः समेताः ।
तदान्वमोदन्त जनार्दनं च दिवाकरावभ्युदितौ यथैव ॥ ६४ ॥

ध्वजा पताका से युक्त, इन्द्र के रथ के समान, महा वेग-सम्पन्न, सुवर्ण मणि मोती हीरा विद्रुम आदि बहुमूल्य रत्नों से अलङ्कृत विशाल श्रेष्ठ रथ के ऊपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन, सूर्य और अग्नि के समान, विष्णु और इन्द्र के समान रणभूमि में शोभायमान हुए॥५४।५७॥वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ बर्फ, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिक के समान श्वेत रथ पर बैठे हुए निर्भय विचर रहे थे। धनुष की डोरी और हथेली के अघात से उत्पन्न शब्द तथा रथ के पहियों की घरघराहट से बलपूर्वक शत्रुओं को विह्वल विवर्ण करके, बाण वर्षा से शत्रुओं को विमुख और परास्त करके, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने-अपने शङ्ख बजाये। उस शङ्ख-ध्वनि ने शत्रुओं के हृदय में भय और सन्ताप उत्पन्न कर दिया॥५८।६०॥हे महाराज!यादवपति श्रीकृष्ण और पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन ने सुवर्णजाल से अलङ्कृत, गम्भीर शब्द उत्पन्न करनेवाले, श्वेत शङ्खों का बजाकर मानों त्रिभुवन में अपनी विजय की घोषणा कर दी। पाञ्चजन्य और देवदत्त नामक शङ्ख का शब्द पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सब दिशाओं को व्याप्त करके सर्वत्र फैल गया। उस शङ्खध्वनि से वन, नदी, पर्वत, कन्दरा आदि सब स्थान प्रतिध्वनित हो उठे और आपके पुत्र सहित सब कौरव सेना भय-विह्वल हो उठी।इसप्रकार शङ्खबजाते हुए दोनों वीर युधिष्ठिर का अभिनन्दन करने के निमित्त, कर्ण वध के समाचार से उन्हें आनन्दित करने के निमित्त, उनकी ओर चले। कौरवगण उस शङ्खध्वनि को सुन-

समाचितौ कर्णशरैः परन्तपावुभौ व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ ।
तमो निहत्याभ्युदितौ यथामलौ शशाङ्कसूर्यौ दिवि रश्मिमालिनौ ॥ ६५ ॥
विहाय तान्बाणगणानथागतौ सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ ।
सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ सदस्यहूतानिव विष्णुवासवौ ॥ ६६ ॥
तौ देवगन्धर्वमनुष्यचारणैर्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि ।
जयाभिवृद्ध्या परयाभिपूजितौ हते तु कर्णे परमाहवे तदा ॥ ६७ ॥
यथानुरूपं प्रतिपूजितावुभौ प्रशस्यमानौ स्वकृतैर्गुणौघैः ।
ननन्दतुस्तौ ससुहृद्गणौ तदा बलं नियम्येव सुरेशकेशवौ ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि रणभूमिवर्णने नामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

कर ऐसे व्याकुल हुए कि शल्य और राजा दुर्योधन को छोड़कर भागने लगे॥६१।६३॥उस समय उदय हुए दो सूर्यों के समान शोभायमान और कर्ण के बाणों से छिदे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन के समीप जाकर सब योद्धा हार्दिक आनन्द प्रकट करते हुए उनका अभिनन्दन करने लगे। सुहृद्गण सहित वे, विष्णु और इन्द्र के समान, दोनों वीरवर अत्यन्त प्रसन्न हुए॥६४।६६॥मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, देवता, महर्षि, नाग, चारण, सिद्ध आदि सब श्रीकृष्ण सहित अर्जुन को विजयाशीर्वाद देने लगे। इस प्रकार लोगों से प्रशंसा प्राप्त करके बान्धवों सहित दोनों महात्मा, बल-वध के पश्चात् विष्णु और इन्द्र के समान, अत्यन्त आनन्दित हुए॥६७।६८॥

—०—

कर्णपर्व का चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सञ्जय उवाच — हते वैकर्तने राजन्कुरवो भयपीडिताः ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वाः पर्यापेतुः सहस्रशः ॥ १ ॥
कर्णं तु निहतं दृष्ट्वा शत्रुभिः परमाहवे ।
भीता दिशो व्यकीर्यन्त तावकाः क्षतविक्षताः ॥ २ ॥
ततोऽवहारं चक्रुस्ते योधाः सर्वे समन्ततः ।
निवार्यमाणाश्चोद्विग्नास्तावका भृशदुःखिताः ॥ ३ ॥
तेषां तन्मतमाज्ञाय पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अवहारं ततश्चक्रे शल्यस्यानुमते नृप ॥ ४ ॥
कृतवर्मा रथैस्तूर्णं वृतो भारत तावकैः ।
नारायणावशेषैश्च शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ५ ॥

पञ्चानवे अध्याय ॥ ९५ ॥

सञ्जय कहते हैं—हे महाराज ! इस प्रकार महारथी कर्ण के मारे जाने पर कौरवदल के महारथी शत्रुओं के बाणों से अत्यन्त घायल और भयविह्वल होकर सब ओर देखते हुए भागने लगे। आपके पुत्र ने बारम्बार उन्हें रोकने की चेष्टा की, परन्तु व्याकुलता के मारे कोई नहीं रुका। तब उनका अ-

गान्धाराणां सहस्रेण शकुनिः परिवारितः ।
हतमाधिरथिं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ६ ॥
कृपः शारद्वतो राजन्नागानीकेन भारत ।
महामेघनिभेनाशु शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ७ ॥
अश्वत्थामा ततः शूरो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
पाण्डवानां जयं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ८ ॥
संशप्तकावशिष्टेन बलेन महता वृतः ।
सुशर्मापि ययौ राजन्वीक्ष्यमाणो भयार्दितः ॥ ९ ॥
दुर्योधनोऽपि नृपतिर्हतसर्वस्वबान्धवः ।
ययौ शोकसमाविष्टश्चिन्तयन्विमना बहु ॥ १० ॥
छिन्नध्वजेन शल्यस्तु रथेन रथिनां वरः ।
प्रययौ शिबिरायैव वीक्ष्यमाणो दिशो दश ॥ ११ ॥
ततोऽपरे सुबहवो भारतानां महारथाः ।
प्राद्रवन्त भयत्रस्ता ह्रियाविष्टा विचेतसः ॥ १२ ॥
असृक्क्षरन्तः सोद्विग्ना वेपमानास्तथातुराः ।
कुरवो दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ॥ १३ ॥
प्रशंसन्तोऽर्जुनं केचित्केचित्कर्णं महारथाः ।
व्यद्रवन्त दिशो भीताः कुरवः कुरुसत्तम ॥ १४ ॥
तेषां योधसहस्राणां तावकानां महामृधे ।
नासीत्तत्र पुमान्कश्चिद्यो युद्धाय मनो दधे ॥ १५ ॥

इच्छा जानकर, शल्य की सम्मति से, राजा दुर्योधन ने युद्ध बन्द करने की आज्ञा दे दी॥१।४॥उस समय महारथी कृतवर्मा, बची हुई नारायणी सेना और कौरव सेना लेकर, शिविर की ओर भागे। शूर अश्वत्थामा, पाण्डवों की विजय देखकर, बारम्बार श्वास लेते हुए शिविर की ही ओर चले। कृपाचार्य भी मेघदल तुल्य गजसेना लेकर शिविर की ही ओर चले। गान्धार देश के सहस्रों घुड़सवार योद्धाओं को लेकर गान्धार-राज शकुनि शिविर की ही ओर भागे॥५।८॥भय पीड़ित शूर सुशर्मा भी, बचे हुए संशप्तकगण के साथ, वेग से शिविर की ही ओर भागे। जिसका सर्वस्व लुट गया हो उस पुरुष के समान व्याकुल और कर्ण तथा दुःशासन की मृत्यु से शोकाकुल राजा दुर्योधन भी पछताते और बारम्बार परिणाम को सोचते हुए विवश होकर शिविर की ओर चले। श्रेष्ठ रथी मद्रराज शल्य भी कर्ण के ध्वजा रहित रथ को लेकर, भय के मारे चारों ओर देखते हुए, शिविर की ओर चले। इसी प्रकार कर्ण की मृत्यु से भय-विह्वल, नेत्रों में आँसू भरे, काँप रहे, व्याकुल हुए हुए अन्यान्य कौरवपक्ष के महारथी भी भाग खड़े हुए॥९।१२॥कोई कर्ण की प्रशंसा कर रहा था, कोई अर्जुन को साधुवाद दे रहा था। हे नरेन्द्र! उन सहस्रों योद्धाओं में एक भी ऐसा नहीं था, जो उस समय युद्ध करना चाहता हो॥१३।१५॥बात यह है कि कर्ण के मारे जाने

हते कर्णे महाराज निराशाः कुरवोऽभवन् ।
जीवितेष्वपि राज्येषु दारेषु च धनेषु च ॥ १६ ॥
तान्समानीय पुत्रस्ते यत्नेन महता विभु ।
निवेशाय मनो दध्रे दुःखशोकसमान्वितः ॥ १७ ॥
तस्याज्ञां शिरसा योधाः परिगृह्य विशाम्पते ।
विवर्णवदना राजन्न्यविशन्त महारथाः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शिविरप्रयाणे पञ्चनवतितमोऽध्याय ॥ ९५ ॥

पर कौरवगण जीवन, राज्य, स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति आदि से निराश हो गये। शोक और दुःख से व्याकुल दुर्योधन ने यत्नपूर्वक उन सबको लौटा लाकर शिविरों में विश्राम करने की आज्ञा दी। दीन, विषादग्रस्त, भय विह्वल महारथी लोग भी राजा दुर्योधन की आज्ञा शिरोधार्य करके, वारम्वार अर्जुन की विजय और कर्ण वध का वृत्तान्त सोचते हुए, शिविरों में जाकर विश्राम करने लगे॥१५।१८॥

कर्णपर्व का पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९५ ॥

अथ षण्णवतितमोऽध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच—तथा निपतिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते ।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनञ्जय ।
वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति मानवाः ॥ २ ॥
वज्रेण निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा ।
त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः ॥ ३ ॥
तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करम् ।
निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः ॥ ४ ॥
वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम् ।
निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि ॥ ५ ॥
वर्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः ।
द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः ॥ ६ ॥

छियानवे अध्याय ॥ ९६ ॥

सञ्जय ने कहा कि हे नरनाथ! महामति श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गले से लगाकर आनन्द प्रकट करते हुए कहा—हे अर्जुन! इन्द्र ने जैसे वज्र से वृत्रासुर का संहार किया था वैसे ही इस समय तुमने दुर्जय महारथी कर्ण को उग्र बाण से मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की॥१।३॥ अब सब मनुष्य, वृत्रवध के वृत्तान्त के समान, कर्णवध की चर्चा करेंगे। इस समय धर्मराज से जाकर यशस्कर कर्णवध का समाचार कहना हमारा प्रधान कर्तव्य है। तुम बहुत दिनों से चाहते थे कि कर्ण को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो, सो आज वह तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई। अब चलकर धर्मराज से यह समाचार कहो। और उनसे

भृशं तु गाढविद्धत्वान्नाशकत्स्थातुमाहवे ।
ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान्पुरुषर्षभः ॥ ७ ॥
तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः ।
पर्यावर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम् ॥ ८ ॥
एवमुक्त्वार्जुनं कृष्णः सैनिकानिदमब्रवीत् ।
परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः ॥ ९ ॥
धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम् ।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥
यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै ।
तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः ॥ ११ ॥
स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम् ।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम् ॥ १२ ॥
शयानं राजशार्दूल काञ्चने शयनोत्तमे ।
अगृह्णीतां च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ ॥ १३ ॥
तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षाद्श्रूण्यवर्तयत् ।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥
उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिन्दम ।
वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे ॥ १५ ॥
तत्तस्मै तद्यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः ।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुपुङ्गव ॥ १६ ॥

ऋण से अपने को मुक्त करो। पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर तुम्हारा और कर्ण का सग्राम देखने के निमित्त रण भूमि में आये थे, परन्तु अत्यन्त घायल और वेदना से पीड़ित होने के कारण शिविर को चले गये हैं ॥४।७॥ हे राजेन्द्र! महावीर अर्जुन यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर के समीप जाने को उद्यत हुए। अर्जुन का रथ फेरकर श्रीकृष्ण सैनिकों से कहने लगे—हे योद्धाओ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम लोग सुसज्जित और सुशृङ्खला युक्त होकर शत्रुओं के सम्मुख यहीं स्थित रहो, सम्भव है, वे लोग फिर लौटकर आक्रमण करें। हे नरेन्द्र! महात्मा श्रीकृष्ण ने योद्धाओं से यों कहकर धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी और नकुल सहदेव से कहा—हे वीरो! मैं और अर्जुन दोनों कर्ण वध का वृत्तान्त सुनाने के निमित्त धर्मराज के समीप जाते हैं। जब तक हम लौटकर न आवें तब तक तुम लोग यत्नपूर्वक यहीं ठहरो॥८।११॥ उक्त वीरों ने कृष्णचन्द्र के ये वचन सुनकर उनके कथन का अनुमोदन किया और कहा—आप जाइए। महात्मा कृष्णचन्द्र अर्जुन को साथ लेकर शिविर में पहुँचे। वहाँ सुवर्णभूषित श्रेष्ठ शय्या पर शयन कर रहे धर्मराज को देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उनके चरण छुए॥१२।१३॥ शत्रुनाशन महाबाहु युधिष्ठिर ने दोनों वीरों के मुख पर हर्ष के चिह्न देखकर समझ लिया कि कर्ण मार डाला गया।

ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत् ।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः ॥ १७ ॥
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
त्वं चापि कुशली राजन्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८ ॥
मुक्ता वीरक्षयादस्मात्संग्रामाल्लोमहर्षणात् ।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव ॥ १९ ॥
हतो वैकर्तनो राजन्सूतपुत्रो महारथः ।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि भारत ॥ २० ॥
यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत्पुरुषाधमः ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम् ॥ २१ ॥
शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव ।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुभिः शरैः ॥ २२ ॥
हतामित्रामिमामुर्वीमनुशाधि महाभुज ।
यत्तो भूत्वा सहास्माभिर्भुङ्क्ष्व भोगांश्च पुष्कलान् ॥ २३ ॥
सञ्जय उवाच — इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः ।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥
दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र वाक्यं चेदमुवाच ह ।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन ॥ २५ ॥
त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम् ।
न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रमादजम् ॥ २६ ॥

उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगे। उन्होंने उठकर दोनों को गले से लगाया और पूछा कि वीरवर कर्ण किस प्रकार मारा गया। अर्जुन सहित श्रीकृष्ण ने कर्णवध का वृत्तान्त आदि से अन्त तक धर्मराज के आगे वर्णन किया॥१३।१६॥इसके उपरान्त कुछ मुसकाकर, हाथ जोड़कर, कृष्णचन्द्र ने कहा—आज बड़े ही भाग्य की बात है कि पाँचो पाण्डव इस लोमहर्षण भयानक संग्राम से सकुशल छुटकारा पा गये। अब आप समयोचित अन्य कार्य कीजिए। बड़े ही भाग्य की बात है कि कर्ण मारा गया, आप विजयी हुए और आपके अभ्युदय और सौभाग्य की वृद्धि हुई॥१७।२०॥जो नराधम द्यूतक्रीड़ा में आपको द्रौपदी तक को दाँव पर रखकर हार जाते देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ था—जिस नीच ने उस समय द्रौपदी का उपहास और पाण्डवों का अपमान किया था, उस कर्ण का रक्त आज पृथ्वी ने पी लिया। आपका यह शत्रु बाणों से विदीर्ण और प्राणों से हीन होकर रणभूमि में पड़ा हुआ है। अब रणस्थल में चलकर अपने नेत्रों से उसकी दुर्दशा देख लें। आज आपका राज्य निष्कण्टक हुआ। अब आप हम लोगों के साथ यत्न पूर्वक इस पृथ्वी का शासन कीजिये और विशाल साम्राज्य का सुख भोगिए॥२१।२३॥सञ्जय कहते हैं कि हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण के वचन सुनकर, अत्यन्त आनन्दित होकर, धर्मा–

प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठ साङ्गदं दक्षिणं भुजम् ।
उवाच धर्मभृत्पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ ॥ २७ ॥
नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन मे ।
धर्मात्मानौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ २८ ॥
असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम ।
कथामेतां महाभाग कथयामास तत्त्ववित् ॥ २९ ॥
तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोऽयं धनञ्जयः ।
जिगायाभिमुखः शत्रून्न चासीद्विमुखः क्वचित् ॥ ३० ॥
जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं न त्वस्माकं पराजयः ।
यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ३१ ॥
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च महात्मा गौतमः कृपः ।
अन्ये च बहवः शूरा ये च तेषां पदानुगाः ॥ ३२ ॥
त्वद्बुद्ध्या निहते कर्णे हता गोविन्द सर्वथा ।
इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु रथं हेमविभूषितम् ॥ ३३ ॥
श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्मनोजवैः ।
आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ ३४ ॥
प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा ।
कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्त्र्य ततः प्रियम् ॥ ३५ ॥
अभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ ।
स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥

कहा—हे श्रीकृष्ण ! आज मेरे भाग्य की सीमा नहीं है । तुम अर्जुन के सारथी और सहायक बने थे, इसी कारण अर्जुन कर्ण को मार सके। तुम्हारी ही बुद्धि और प्रभाव से कर्ण मारा गया, इसी कारण कर्ण का मारा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है॥२४।२६॥ हे राजेन्द्र ! धर्मपरायण राजा युधिष्ठिर ने यों कहकर, श्रीकृष्ण का अङ्गद शोभित दाहना हाथ अपने हाथ में लेकर, फिर उन दोनों वीरों से कहा—हे वीर पुरुषो ! मैंने देवर्षि नारद के मुख से सुना है और महर्षि वेदव्यास ने भी मुझसे बारम्बार कहा है कि तुम दोनों प्राचीन ऋषि महात्मा नर नारायण हो॥२७। २९॥ हे कृष्ण ! तुम्हारे प्रसाद से ही अर्जुन ने शत्रुओं के सम्मुख जाकर उनको परास्त किया और वे कभी संग्राम से विमुख नहीं हुए । तुम अर्जुन के सारथी हुए हो तो हम लोग अवश्य जय प्राप्त करेंगे। हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारी ही बुद्धि और प्रभाव से भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण ऐसे महारथी मारे गये हैं और अब बचे हुए कौरवपक्ष के कृपाचार्य आदि अन्य योद्धा भी शीघ्र ही मरेंगे॥३०।३२॥ हे राजेन्द्र ! धर्मनन्दन युधिष्ठिर इतना कहकर काली पूँछ के, मन के समान वेगवाले सफ़ेद रंग के, सुवर्ण मण्डित, घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर, सेनाओं को साथ लेकर, श्रीकृष्ण और अर्जुन से प्रिय बातें करते हुए रणस्थल का परिदर्शन करने के निमित्त चले ।

यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतो वृतम् ।
चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः ॥ ३७ ॥
गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः ।
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यन्ते वै वृषं नदा ॥ ३८ ॥
संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतम् ।
सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
सञ्जातप्रत्ययोऽतीव वीक्ष्य चैनं पुनः पुनः ।
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ॥ ४० ॥
अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह ।
त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥ ४१ ॥
हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं राधेयमतिमानिनम् ।
निराशोऽद्य दुरात्मासौ धार्तराष्ट्रो भविष्यति ॥ ४२ ॥
जीविते चैव राज्ये च हते राधात्मजे रणे ।
त्वत्प्रसादाद्वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ॥ ४३ ॥
दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च विजयी पाण्डुनन्दनः॥ ४४ ॥
त्रयोदशसमास्तीर्णा जागरेण सुदुःखिताः ।
स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज ॥ ४५ ॥
एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनम् ।
अर्जुनं च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥
सञ्जय उवाच — दृष्ट्वा च निहतं कर्णं सपुत्रं पार्थसायकैः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने च स महीपतिः ॥ ४७ ॥

उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि महावीर कर्ण असंख्य बाण लगने से, केसर-परिवृत कदम्ब कुसुम के समान, वीरशय्या पर पड़े हुए हैं॥३३।३७॥सुगन्ध तैल पूर्ण सहस्रों दीपक उनके आसपास जल रहे हैं, जिनमे उनका शरीर जगमगा रहा है। अर्जुन के बाणों से उनका कवच छिन्न भिन्न हो गया है। कर्ण के पुत्र भी मरे हुए पड़े हैं। धर्मराज ने बारम्बार कर्ण को देखकर यह निश्चय कर लिया कि अब उनके शरीर में प्राण नहीं हैं। फिर वे श्रीकृष्ण और अर्जुन की बारम्बार प्रशंसा करते हुए कहने लगे—हे माधव! तुम्हारे सहायक और रक्षक होने के कारण ही आज मैं अपने भाइयों सहित राजा के पद का अधिकारी हुआ। आज कर्ण के मारे जाने से दुर्मति दुर्योधन राज्य और जीवन से निराश हो गया होगा ॥३८।४२॥केवल तुम्हारे अनुग्रह से ही आज हम कृतकार्य हुए। हम लोगों ने वन में तेरह वर्ष अत्यन्त क्लेश से व्यतीत किये हैं। मुझे तो कर्ण के डर से एक रात्रि को भी भाँति-भाँति निद्रा नहीं आई। ...

समेत्य च महाराज कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ॥ ४८ ॥
नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः ॥ ४९ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपञ्चालसृञ्जयाः ।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ॥ ५० ॥
ते वर्धयित्वा नृपतिं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
जितकाशिनो लब्धलक्ष्या युद्धशौण्डाः प्रहारिणः॥ ५१ ॥
स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वाग्भिः कृष्णौ परन्तपौ ।
जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महारथाः ॥ ५२ ॥
एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्किमर्थमनुशोचसि ॥ ५३ ॥
वैशम्पायन उवाच—श्रुत्वैतदप्रियं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
पपात भूमौ निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ५४ ॥
तथा सा पतिता देवी गान्धारी दीर्घदर्शिनी ।
शुशोच बहुलालापैः कर्णस्य निधनं युधि ॥ ५५ ॥
तां पर्यगृह्णाद्विदुरो नृपतिं सञ्जयस्तथा ।
पर्याश्वासयतां चैव तावुभावेव भूमिपम् ॥ ५६ ॥
तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं कुरुयोषितः ।
स दैवं परमं मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ॥ ५७ ॥

तुम्हारी कृपा से ही कर्ण मारा गया और मैं अब सुख की निद्रा सोऊँगा॥४३।४६॥हे राजेन्द्र ! धर्मपुत्र युधिष्ठिर इस प्रकार बार बार अर्जुन सहित श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे। सञ्जय कहते हैं—अर्जुन के बाणों से पुत्र सहित कर्ण को मरा हुआ देखकर युधिष्ठिर ने यह समझा कि उनका फिर से जन्म हुआ। इसके उपरान्त महारथी नकुल, सहदेव, भीमसेन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चालगण और सृञ्जय गण स्तुतियोग्य पूजनीय श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा और राजा युधिष्ठिर की सवर्द्धना करते हुए, उनके साथ, बड़े हर्ष से अपने अपने शिविर को गये ४७।५०॥हे नरेन्द्र ! केवल आपकी कुमन्त्रणा और दुर्नीति से ही ऐसा लोमहर्षण हत्याकाण्ड हुआ है ! अब आप क्यों वृथा शोक और पश्चात्ताप कर रहे हैं?॥५१।५३॥वैशम्पायन ने कहा—हे जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र सञ्जय के मुख से कर्ण-वध रूप अप्रिय अशुभ समाचार सुनते ही अचेत होकर, कटे हुए वृक्ष के समान, पृथ्वी पर गिर पड़े। दूर-दर्शिनी देवी गान्धारी भी पृथ्वी पर गिरकर कर्ण के निमित्त अनेक प्रकार से विलाप करने लगीं। तब सञ्जय और विदुर ने धृतराष्ट्र को पकड़कर उठाया और होश में लाकर उन्हें समझाना आरम्भ किया। कुरुकुल की स्त्रियों ने गान्धारी को उठाकर समझाया॥५४।५७॥चिन्ता और शोक से व्याकुल राजा धृतराष्ट्र, विदुर और

परां पीडां समाश्रित्य नष्टचित्तो महातपाः ।
चिन्ताशोकपरीतात्मा न जज्ञे मोहपीडितः ।
स समाश्वासितो राजा तूष्णीमासीद्विचेतनः ॥ ५८ ॥
इमं महायुद्धमखं महात्मनोर्धनञ्जयस्याधिरथेश्च यः पठेत् ।
स सम्यगिष्टस्य मखस्य यत्फलं तदाप्नुयात्संश्रवणाच्च भारत ॥ ५९ ॥
मखो हि विष्णुर्भगवान्सनातनो वदन्ति तच्चाग्न्यनिलेन्दुभास्वरः ।
अतोऽनसूयुः शृणुयात्पठेच्च यः स सर्वलोकानुचरः सुखी भवेत् ॥ ६० ॥
तां सर्वदा भक्तिमुपागता नराः पठन्ति पुण्यां वरसंहितामिमाम् ।
धनेन धान्येन यशसा च मानुषा नन्दन्ति ते नात्र विचारणास्ति ॥ ६१ ॥
अतोऽनसूयुः शृणुयात्सदा तु वै नरः स सर्वाणि सुखानि चाप्नुयात् ।
विष्णुः स्वयम्भूर्भगवान्भवश्च तुष्यन्ति ते तस्य नरोत्तमस्य ॥ ६२ ॥
वेदावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह दृष्टा रणे बलं क्षत्रियाणां जयो युधि ।
धनज्येष्ठाश्चापि भवन्ति वैश्याः शूद्राऽऽरोग्यं प्राप्नुवन्तीह सर्वे ॥ ६३ ॥
तथैव विष्णुर्भगवान्सनातनः स चात्र देवः परिकीर्त्यते यतः ।
ततः स कामाल्लभते सुखी नरो महामुनेस्तस्य वचोऽर्चितं यथा ॥ ६४ ॥
कपिलानां सवत्सानां वर्षमेकं निरन्तरम् ।
यो दद्यात्सुकृतं तद्धि श्रवणात्कर्णपर्वणः ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ कर्णपर्व समाप्तम् ॥

सञ्जय के समझाने पर, दैव और होनी को सबसे प्रबल और अनिवार्य जानकर अपने आसन पर बैठे हुए, अचेत के समान चुपचाप सोचने लगे॥५७।५८॥ हे महाराज ! जो कोई महात्मा अर्जुन और कर्ण के संग्राम का यह वृत्तान्त पढ़ता या सुनता है, उसे विधिपूर्वक यज्ञ करने का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। पण्डितों का कहना है कि अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य— ये भगवान् सनातन विष्णु के रूप हैं और वे विष्णु ही यज्ञ-स्वरूप हैं। जो व्यक्ति असूया-रहित होकर इस संग्राम यज्ञ के वृत्तान्त को पढ़ता या सुनता है वह सुखी और सर्वश्रेष्ठ होता है। भक्तिपूर्वक निरन्तर इस पवित्र उत्कृष्ट वर महिमा (महाभारत) को जो पढ़ता है वह धन धान्य सम्पन्न, यशस्वी और समस्त सुख पाने का अधिकारी होता है। उस पर भगवान् स्वयम्भू, शम्भु और विष्णु सदा कृपा करते हैं॥५९। ६२॥ इस कर्णपर्व का पढ़ने से ब्राह्मण का वेद-ज्ञान बढ़ता है, क्षत्रिय का बल-वीर्य बढ़ता है और उसे संग्राम में विजय प्राप्त होती है। ऐसे ही वैश्य को धन सम्पत्ति और शूद्र को आरोग्य प्राप्त होता है। इस पर्व में सनातन भगवान् विष्णु के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इसलिए जो कोई इस कर्णपर्व को पढ़ता या सुनता है उसके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं। वेदव्यास का यह कथन सत्य है। एक वर्ष तक नित्य बछड़े सहित दुधारु गाय का दान करने से जो पुण्य होता है, वही पुण्य इस कर्णपर्व के पढ़ने और सुनने से भी प्राप्त होता है॥६३।६५॥

कर्णपर्व का छियानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९६ ॥

कर्णपर्व समाप्त हुआ ॥

अतः परं शल्यपर्व भविष्यति तस्यायमाद्यः श्लोकः—

जनमेजय उवाच—एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना ।

अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज ॥ १ ॥

